कनिंघम कृत

सिक्खों का इतिहास

Cunningham's

History of the Sikhs

इतिहास प्रकाशन संस्थान

वाराणसी - १

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

संपादक की कलम से:—

कनिंघम कृत सिक्खों का इतिहास भारतीय शौर्य की एक निराली गाथा है। सिक्ख, भारतीयों में पहले से जिन्होंने आनेवाले युग का सामना आगे कढ़कर किया, पश्चिमी शक्तियों के जय, उनके उन्नति शील आयुधों, उनके अनुशासन को अपनाया और अंग्रेजों से यह मनवा लिया कि हम भी कुछ कम नहीं।

सिक्खों के प्रसंग में कनिंघम ही एक ऐसा इतिहास कार है जिसने निहायत ही इमानदारी से तथ्यों को पाठकों के समक्ष रखने का प्रयास किया यद्यपि, उसकी कीमत अपनी उच्च नौकरी से ही नहीं, सम्मान हीनता और प्राणों से चुकानी पड़ी।

पुस्तक आपके हाथ में हैं। पाठकों की सुविधा के लिए हमने दूसरे विद्वानों की कृतियों से टिप्पणियाँ भी संगृहीत की हैं। हमारे पाठक इस ग्रन्थ को अपनायेंगे ऐसी आशा है।

कमलाकर तिवारी

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

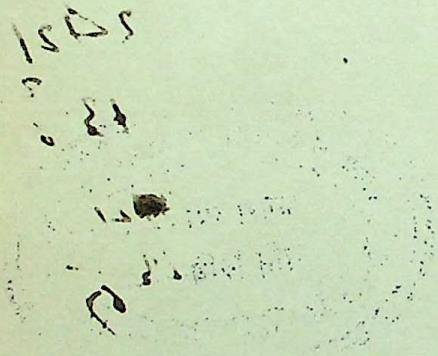

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कर्निंघम कृत
सिक्खों का इतिहास

History of the sikhs
by
Cunningham

संपादक :—
कमलाकर तिवारी

3421
13/3/67
State Museum, Library, Lko.
क्रम सं० 3421
प्राप्ति तिथि 13/3/67

अनुवादक

रमेश तिवारी
प्रवक्ता
कालिका धाम इण्टर कालेज
सेवापुरी, वाराणसी

सुरेश तिवारी
वकील
जौनपुर

इतिहास प्रकाशन संस्थान वाराणसी,

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रकाशक
इतिहास प्रकाशन संस्थान
वाराणसी ।

954.5
त स

(C)
दिसम्बर सन् ६५
मूल्य १८ रुपया मात्र

मुद्रक—
श्री हरि प्रेस,
सा. ६।७३ बाग बरियार सिंह,
वाराणसी ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इतिहास प्रकाशन संस्थान के
इस तृतीय अनुवादित ग्रन्थ
को हम

उन वीर सैनिकों को

समर्पित करते हैं

जो लड़ते-लड़ते मर गये परन्तु देश की अखंडता
को नहीं मरने दिया। देश का सम्मान
जीवित रक्खा। उस पाठ को
दुहराये जाने से रोका
जो इस ग्रन्थ में
है

सतीश तिवारी
प्रबन्ध सहयोगी
इतिहास प्रकाशन
संस्थान
वाराणसी

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सम्पादकीय

ग्रन्थों का सम्पादन एक कठिन काम है। आसान भी है। कठिनाई तब सामने आती है जब हमें यह अनुमान लगाना पड़ता है कि किस ग्रन्थ के क्रम में प्रथम स्थान मिले किसको बाद में। इस तथ्य को हमें प्रकाशक की सामर्थ्य और पुस्तक के महत्व के संदर्भ में आँकना पड़ता है। जैसा कि आम-तौर पर, खास कर भारत में होता है, ऐसी पुस्तकों का वितरण बहुत ही कठिन कार्य है। वितरण की कठिनाई और बिक्री की कमी से पुस्तकों का संस्करण बहुत ही सीमित संख्या में होता है। अतः पुस्तकें स्वाभाविक रूप से कीमती होती हैं। प्रकाशन व्यवसाय में अनुभवी लोग जानते ही हैं सीमित संख्या में प्रकाशित पुस्तकों का मूल्य अधिक होता है। इस संदर्भ में मुझे लगता है कि कनिंघम कृत सिक्खों का इतिहास प्रकाशक की सामर्थ्य से फिलहाल बाहर था। परन्तु मेरे सुझाव पर इतिहास प्रकाशन संस्थान ने इसको प्रकाशित कर हिन्दी के पाठकों को भारी उपहार दिया है जिसे उन्हें मानना चाहिये।

इतिहास प्रकाशन संस्थान वाराणसी अभी छोटी संस्था है। हिन्दी में इतिहास व ऐतिहासिक महत्व की पुस्तकों के प्रकाशन का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। हजारों ऐसी अलभ्य पुस्तकें अन्य भाषाओं में भरी पड़ी हैं जिनका प्रकाशन हिन्दी की श्री वृद्धि के लिए आवश्यक है। अपने आदर्श की प्राप्ति के लिये इतिहास प्रकाशन संस्थान तेजी से कार्य कर रहा है परन्तु बिना अन्य प्रकाशकों, प्रकाशन संस्थाओं के सहयोग के इसका कार्य उतना तीव्र गति से नहीं हो सकता जितना होना चाहिये। अतः उनका सहयोग आपेक्षित है। मेरा सुझाव है अन्य प्रकाशन भी इस कार्य में हमें सहयोग देकर राष्ट्रभाषा को उन्नतिशील बनाने के इस राष्ट्रीय कार्य को आगे ले चलें।

कनिंघम उन विद्वानों में था जो जातिगत व राष्ट्रगत, अन्ध भक्ति के ऊपर उठकर तथ्यों को आँकते हैं। कर्नल टाड, ग्रान्ट डफ, मैक्समूलर, विलियम इरविन, मोरलैण्ड की श्रेणी के इस विद्वान् इतिहासकार को हिन्दी के पाठकों के सामने लाना एक भारी कार्य था जिसे हमारे अनुवादक रमेश तिवारी, सुरेश तिवारी ने अत्यन्त कुशलता के साथ पूरा किया है। हम इतिहास प्रकाशन संस्थान तथा पाठकों की ओर से उनको धन्यवाद देते हैं और आशा करते हैं कि वे उसी गति से अपना कार्य करते रहेंगे।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अन्त में मुझे अपने पाठकों से भी कुछ कहना है। वे पुस्तक को सिर्फ इस निगाह से मत देखें कि उसमें त्रुटियाँ ही खोजनी है। इस निगाह से भी देखें कि उसे प्रकाशित करने में कितनी कठिनाई और परिश्रम लगा है, उस प्रयास की ओर भी अपना ध्यान केन्द्रित करें जो इसके प्रकाशन का आधार है।

पुस्तक जैसी भी है, आपके हाथ में है। जिग ढंग से आपने हमारे पिछले प्रकाशनों को अपनाया है, इसे भी अपनायें और अपने सुझाव हमें अवश्य प्रेषित करें।

जमालपुर
२२-१२-६५

पाठकों का चिरकृत
कमलाकर तिवारी

अनुवादकों का वक्तव्य

जब पहली पुस्तक का अनुवाद किया था तो ऐसा लगता था जैसे कोई जबरदस्ती लादा गया कर्तव्य पूरा कर रहा हूँ। धीरे-धीरे देखा, अब स्वयम् की इच्छा होने लगी है कि 'यह किताब अवश्य अनुवाद करनी है', 'अमुख लेखक को हिन्दी के पाठकों को सामने न ले आना अन्याय होगा।'—अस्तु:

प्रस्तुत पुस्तक स्वयम् की इच्छा से अनुवादित ग्रन्थ है। अनुवाद करते समय यह भी पता नहीं था कि इसके प्रकाशन का भार कौन लेगा। यही कारण है कि अनुवादित पाण्डुलिपि काफी दिनों तक पड़ी थी। अन्त में इतिहास प्रकाशन संस्थान ने इसे पाठकों के सामने लाने का भार लिया और अब प्रकाशित ग्रन्थ आपके हाथ में है।

अनुवाद और मूल में अन्तर तो हो ही जाता है, फिर भी हमारा प्रयास रहा है कि शब्दश: अनुवाद से दूर, लेखक की भावना को सही रूप दिया जाय। उस सन्दर्भ से हमें पूरी आशा है पाठक निराश न होंगे। त्रुटियों के लिये पाठकों से हम क्षमा प्रार्थी हैं। प्राय: यन्त्रगत त्रुटियों का जिम्मेदार भी अनुवादक ही माना जाता है अत: उसके लिये भी हम पाठकों से क्षमा ही चाहेंगे।

रमेश तिवारी
सुरेश तिवारी
२२-१२-६५

———

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विषय सूची

अध्याय		पृष्ठ
प्रथम अध्याय	सिक्ख और उनका देश	१—१४
दूसरा अध्याय	प्राचीन भारतीय विश्वास, नवीन सुधार, नानक की शिक्षा (१५३९)	१५—३७
तीसरा अध्याय	सिक्खों के गुरु, तथा गुरु गोबिन्द सिंह कृत परिवर्तन	३८—९३
चौथा अध्याय	सिक्ख स्वतन्त्रता की स्थापना (१७१६-६४)	९४—१२२
पांचवा अध्याय	सिक्खों की स्वतन्त्रता से महाराजा रणजीत सिंह द्वारा सत्ता प्राप्ति तथा अंग्रेजों के साथ सन्धि तक (१७७५-१८०८-९)	१२३—१७३
छठवाँ अध्याय	रणजीत सिंह की सत्ता स्थापना से मुल्तान, कश्मीर, और पेशावर से अधिकार खोने तक (१८०९-१८२३-२४)	१७४—२२२
सातवाँ अध्याय	मुल्तान, कश्मीर व पेशावर की प्राप्ति से रणजीत सिंह की मृत्यु तक (१८२४-३९)	२२३—२८२
आठवाँ अध्याय	महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु से वजीर जवाहिर सिंह की मृत्यु तक (१८३९-१८४५)	२८२—३४२
नौवाँ अध्याय	अंग्रेजों के साथ युद्ध (१८४५-४६)	३४२—३९९
उपसंहार		४००—४०९
परिशिष्ट		४११

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कनिंघम का संक्षिप्त जीवन चरित्र

जन्म सन् १८१२ ई०

भारत आगमन—सन् १८३४ ई०

कर्नल वेड का सहायक—१८३७ ई०

प्रथम सिक्ख युद्ध के समय भावल पुर राज्य मे पोलिटिकल एजेण्ट

सोवराँ के युद्ध में सर हेनरी हार्डिज (गवर्नर जनरल) का एड-डी-कैम्प ।

बाद में भोपाल का पोलिटिकल एजेण्ट ।

सिक्ख इतिहास समाप्त १८४९ ई० ।

लेखक के दृष्टिकोण से उच्चाधिकारी रुष्ट-सैनिक सेवा में वापसी अपमान से दुखित होकर मृत्यु सन् १८५१ ई०

प्रकाशकीय

इतिहास प्रकाशन संस्थान ने एक व्रत लिया है; हिन्दी पाठकों के समक्ष अन्य भाषाओं में छिपी अमूल्य ऐतिहासिक व साहित्यिक कृतियों को रखने का। प्रथम, हमने, रानाडे कृत 'मराठों का उत्कर्ष' प्रकाशित किया, पाठकों ने उसका स्वागत किया, दूसरे ग्रन्थ मैक्समूलर कृत पुराण शास्त्र एवम् जन कथाएँ' का भी अच्छा सम्मान हुआ। उसी में तीसरा यह भी है, आशा है, आप इसे भी अपना लेंगे। आपका निर्देशन ही हमारा पथ प्रदर्शन करे यही कामना है।

सतीशतिवारी

३०–१२–६५

८, कैलगढ़ कालोनी

जगतगंज, वाराणसी

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सिक्ख और उनका देश

सिक्ख प्रभाव की भौगोलिक सीमाएँ—जलवायु, उपज-निवासी-लोगों का धर्म धर्म और जाति की विशेषताएँ-जातियों का आंशिक वहिर्गमन ।

ईसा की सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दी में क्षत्रिय कुलोत्पन्न गुरु नानक तथा बाद में गुरु गोविन्द सिंह ने अपना धार्मिक सम्प्रदाय स्थापित किया और जाटो में तथा मुख्यत: सतलज नदी के दक्षिण भूभाग में धर्मसुधारार्थ अपने मत का प्रचार करने के लिये कुछ शिष्यों को दीक्षित किया । यही शिष्य शब्द आगे चल कर सिक्ख में परिवर्तित हो गया और सिक्खों की एक जाति ही बन गयी, तथा आगे चल कर सिंध के मैदान से कराकुरम पहाड़ियों तक तथा दिल्ली से पेशावर तक समूचा भूभाग उनके प्रभाव क्षेत्र में आ गया । इस प्रकार २८° उत्तरी अक्षांश से लेकर ३६° उत्तरी अक्षांश तक तथा ७१° पूर्वी देशान्तर रेखा से लेकर ७७° पूर्वी देशान्तर रेखा के बीच का क्षेत्र उनके प्रभाव क्षेत्र में आ गया था और यदि पानीपत से खैबर दर्रा तक एक आधार खींच दिया जाय तो इसकी लम्बाई ४५० मील होगी, जिस पर दो प्राय: अनुरुप त्रिभुज बनेंगे और महाराजा रणजीत सिंह द्वारा जीते गये तथा सिक्खों का निजी प्रदेश इन्हीं त्रिभुजों के अन्तर्गत आजायेंगे ।

सिक्खों का यह देश प्राय: उन्हीं अक्षांशों में स्थित है, जिनमें संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का भूभाग तथा उत्तरी अफ्रीका के देश हैं । इस देश में या तो लम्बे चौड़े मैदान हैं, जो सागर तल से अत्यधिक ऊँचे नहीं हैं या पहाड़ी श्रृंखलाएँ हैं जो सागर तल से कहीं कहीं दो दो या तीन तीन मील ऊँची हैं । अत: इस देश की जलवायु सर्वत्र एक सी नहीं है तथा यहाँ की उपज भी भिन्न भिन्न स्थानों में भिन्न भिन्न है । लदाख का जाड़ा लम्बा और कड़ा होता है, जिसमें प्राय: ६ महीने तक के लिये सारी भूमि बर्फ से ढँक जाती है । इस प्रान्त का शान्त एकान्त दिल को हरा कर देता है और एक भी जीवित प्राणी दृष्टि पथ में नहीं आता, परन्तु इसी स्थान की भेड़ों से जो ऊन प्राप्त होता है, उसी के बने शाल-दुशाले इस स्थान को मशहूर करने के लिए पर्याप्त हैं, साथ ही जहाँ कहीं भी कृषि योग्य थोड़ी बहुत समतल भूमि निकल आती है, वहाँ गेहूँ और जौ की

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अप्रतिभ फसल उत्पन्न होती है।[१] यहाँ की वायु इतनी पतली है कि बादल की गरज भी कानों को कठिनता से सुनायी पड़ती है। मुल्तान[२] के समीपस्थ भूभाग में इतनी गर्मी पड़ती है और गर्द के इतने तेज तूफान उठते हैं कि उनकी तुलना में तिब्बत की बर्फ की आँधी ही अधिक सहनीय प्रतीत होती है, फिर भी इस नगर की स्थिति इतनी सुविधा जनक है तथा इसके पड़ोस में इतने अधिक जल स्रोत हैं कि इस स्थान को हरा भरा बनाये रखते हैं। यह स्थान अपनी स्थिति के कारण ही सिल्क तथा कालीन बनाने के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ गेहूँ और नील की भी बहुत अच्छी पैदावार होती है। यहाँ की रुई भी काफी अच्छी होती है। हिमालय की दक्खिन की ढलानों पर कभी कभी बाढ़ आ जाती है, परन्तु इसका प्रभाव मुल्तान पर कम ही पड़ता है। केन्द्रीय पंजाब की भूमि में झाड़ियों के जंगल पाये जाते हैं और चरागाह योग्य हैं। यद्यपि यहाँ पर नदियों के होने से ही यह स्थान मरुभूमि होने से बचा हुआ है, परन्तु यहाँ के सूखेपन के कारण ही यह स्थान घातक जंगली पशुओं से भी सुरक्षित रहता है। यहाँ के पशु इनके लिये पर्याप्त उपयोगी हैं। पहाड़ियों की तराई में जो समतल भूमि पड़ती है, उससे अच्छी फसल शायद ही भारत में कहीं होती हो। सिंध तथा उसकी सहायक नदियाँ इन मैदानों को उपजाऊ बनाती रहती हैं। यहाँ के नगर ऐसे जुलाहों से भरे पड़े हैं जो सूत या रेशम या ऊन के कपड़ों की बुनाई से अपनी रोजी कमाते हैं। चमड़ा लकड़ी और लोहे पर कलात्मक काम करने वाले कारीगर भी यहाँ अत्यधिक हैं। यहाँ पानी की सतह काफी ऊँची है अर्थात् पानी बहुत कम खोदने पर ही मिल जाता है अतः सिचाई के लिए यहाँ लोग पर्शियन चक्र प्रयोग में लाते हैं। यहाँ गन्ना की उपज अच्छी होती है अतः चीनी के कारखाने बहुत हैं। अमृतसर के व्यापारी सिन्ध तथा काबुल तक माल

१—मूर क्राफ्ट के अनुसार तिब्बत गेहूं और जौ के लिये प्रसिद्ध है। उसने तिब्बत में एक खेत में जौ की ऐसी उत्तम खेती देखा था कि उसके पहले उसने ऐसी खेती कहीं नहीं देखा था।

२—मुल्तान के गेहूं में ट्रूँड़ नहीं होता है इसके दाने भी मोटे और वजनी होते हैं। राजपूताना में यहाँ का गेहूं बहुत खपता है। यहाँ के लोग सालाना ५०,००० रु० का कालीन बनाते हैं। यहाँ के सिल्क उद्योग से कालीन की पाँचगुनी आय होती है। अब यहाँ अँगरेजी सूत का प्रयोग अत्यधिक होने लगा है, परन्तु महँगा पड़ने से अभी यहाँ के बड़े लोग ही इनका प्रयोग कर सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पहुँचाते हैं, इसीलिये अमृतसर को उत्तरी भारत का इम्पोरियम कहते हैं।[1] काश्मीर के कारीगर, काश्मीर की घाटी की विविध उपज, यहाँ की केसर की उपज, यहाँ के खूबसूरत शाल दुशाले इतने प्रख्यात हैं कि इनकी विस्तृत चर्चा करने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। बाबर के समय में यहाँ पर गैंडा बहुतायत से पाया जाता था। वह इनके शिकार का बहुत शौकीन था, मगर अब अटक और पेशावर के बीच एकदम मैदान हो जाने से यहाँ से यह जीव गायब हो गया है। अब इन मैदानों में चावल गेहूँ और जौ के हरे भरे खेत दिखाई पड़ते हैं। पहाड़ियों में रासायनिक पदार्थ और फलों की बहुतायत है। इनकी ऊँचाइयों पर सदाबहार जंगल पाये जाते हैं। यहीं ताँबा, नमक और लोहा भी मिलता है। सिंध नदी और काश्मीर के बीच अनेक उपजाऊ नदियाँ हैं, जिनका सौन्दर्य दूर दूर तक प्रख्यात है। यहाँ की ऋतुएँ यूरोप की ही तरह की होती हैं और यहाँ की वसन्त कालीन वर्षा इसको और भी सौन्दर्य प्रदान करती है।

जहाँ तक सिक्खों का राज्य अथवा प्रभाव है, उन प्रदेशों में विभिन्न जाति के लोग रहते हैं, उनकी भाषा में भी विभिन्नता है और उनके धर्म में भी। उत्तर भारत के जिन मैदानों में ब्राह्मणों एवम् क्षत्रियों ने एक अद्वितीय सभ्यता को जन्म दिया था, वह बार बार पारसियों, सिथियनों, यूनानियों एवम् अनेक मुसलमान आक्रमणों द्वारा यादाक्रान्त हुआ है। एक के बाद एक जो अनेक आक्रमण हुए हैं, उन सबके निशान अब तक विभिन्न जातियों के रूप में पाये जाते हैं, फिर भी उनके मुख्य दो विभाग इस प्रकार हैः (१) मुसलमान मजहब का पंजाब में आगमन तथा (२) अपर एशिया से जाटों के झुण्ड का आगमन। अति प्राचीन काल में भारत से ग्रीकों तथा यूचियों का जो भी सम्बन्ध रहा हो, उसके विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं है, यह भी सिद्ध करने की जरूरत नहीं है कि आज के जाट चन्द्रमा के वंशज यदु की सन्ताने हैं और न यही सिद्ध करना है कि रणजीत सिंह के शरीर में कडफिसीज का भी रक्त था। यहाँ इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि ईसवी सन् के प्राथमिक दिनों में हिन्दू जाति में इतनी शक्ति थी कि उसने सहज ही इन आक्रमकों को अपने में पचा लिया और कुछ ही दिनों के अन्दर जाट जाति पूरी तरह से हिन्दू धर्म में

१—मि० मूर क्राफ्ट के अनुसार काश्मीर की शालों की सालाना बिक्री ४५ लाख रुपयों की होती थी, परन्तु यह हिसाब ग़लत मालूम होता है, क्योंकि करीब साढ़े ग्यारह लाख रुपये का तो कच्चा ऊन ही काश्मीर में खप जाता था।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

समा गयी। उन्हीं की भाषा तथा उन्हीं के विश्वासों को भी उन्होंने अपना लिया। सिंध के दक्षिण भाग में जो बसे वे मुसलमानी प्रभाव में मिल गये। जो लोग उत्तर में बसे, उन्होंने अधिक दिनों तक अपने मूर्तिपूजक अस्तित्व को कायम रक्खा, परन्तु कालान्तर में जैसे एक नया जीवन धारण करके उन्होंने एक देव वाद को अपना लिया और समस्त मानव जाति को समान मानने लगे। हिन्दुओं तथा मुसलमानों में मिलकर एक बार फिर उन्होंने राज-सत्ता प्राप्त कर ली। बौद्धधर्म के भारत में निर्बल पड़ जाने के बाद मुसलमानों की अधिकार स्थापना के पश्चात् भारतीय इतिहास का एक नया युग शुरु होता है। लोगों की सामान्य भाषा भी बदल गयी और मुसलमानों के प्रभाव से भारत में मानो एक नयी जीवन प्रणाली शुरु हुई परन्तु नव विजेताओं (मुसलमानों) ने पराजित हिन्दुओं को इतना दबाया कि आज भी जाट लोग तथा अन्य जातियों के लोग तुर्क शब्द को भयंकर दमनकारी के अर्थ में ग्रहण करते हैं। सम्भव है कि धार्मिक विभिन्नता भी इसका कारण रही हो। भारत के राजपूत राजा भी इन मुसलमानों के समय एक दम विवश हो उठे। उनकी प्रवृत्ति में इन मुसलमानों की दासता का भाव इतना समा गया था कि उन्होंने अपनी भाषा में तुरुकाना (मुसलमानों को दिया जाने वाला रुपया) शब्द को स्थान दे डाला जो राज कर के अर्थ में ग्रहण किया जाता है।

सिंध नदी के ऊपरी भाग की घाटियों में अर्थात् लदाख़ तिब्बत खुर्द में जो भोटी जाति के लोग निवास करते हैं वे नृतत्व शास्त्र की दृष्टि से तारतारों के वर्ग के हैं। थोड़ा और आगे चल कर गिलगिट तथा चुलास में दर्दुस तथा डोंगरा जाति के लोग निवास करते हैं, परन्तु स्वयम् गिलगिट तथा इस्कार्डो में उन तुर्कमान जाति का सामीश्रण हैं जो काशगर तथा पामीर की जंगली बस्तियों से आये हैं। काश्मीर में उत्तर के लोग प्रायः आते और मिलते रहे हैं। दक्षिण तथा पश्चिम से आयी हुई जातियों का भी सम्मिश्रण इनमें होता रहा है। उनकी भाषा हिन्दू तथा उनका धर्म मुसलमानी है, और आदिम कालीन काश और कछ फिरकों के ऊपर तारतारी रक्त का प्रभाव है। काश्मीर के पश्चिम में सिंध नदी तक के क्षेत्र में कूका तथा बम्बा जाति के लोग रहते हैं, जिनके विषय में लोगों को बहुत कम ज्ञान है परन्तु नदी के तट पर यूसुफ—जायी लोगों का निवास है साथ ही और भी अफगानों के फ़िरक़े के लोग रहते हैं। अन्य विस्तृत घाटियों में गूजर लोग रहते हैं, जिनके इतिहास का अभी तक निश्चय नहीं हो पाया है। हाँ इतना निश्चय है कि वे अरेषियन सैय्यदों तथा अफ़गानों के भूमिधर हैं या तुर्कमानों के असामी भूमिधर हैं।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

काश्मीर के दक्षिण में जो पहाड़ियाँ हैं, झेलम के पश्चिम में अटक तक और सिंधतट पर स्थित कालाबाग तक घक्करों की बस्तियाँ हैं तथा इनके साथ साथ गूजर, खट्टर, अवान, जाँजुआ तथा अन्य जातियाँ भी निवास करती हैं। ये सब की सब जातियाँ समय समय पर हिन्दू जाति में मिलती गई हैं। इनकी भाषा भी हिन्दुओं की है तथा इनकी भावनाएँ भी। इनमें घक्कर तथा जाँजुआ लोग स्थानीय रुप से प्रसिद्ध हैं। पेशावर में तथा उसके चतुर्दिक की पहाड़ियों में अफगान जाति के लोग रहते हैं, उत्तरी पश्चिमी इलाके में यूसुफजाई मुसलमान, केन्द्र में ख़लील जाति वाले, दक्षिण में अफ़ीदी रहते हैं। कोहाट के दक्षिण की पहाड़ियों तथा टंक व बन्नू में असल अफगान लोग रहते हैं। सिंध के उसपार विभिन्न घाटियों में विभिन्न जातियाँ रहती हैं, जिनके स्वार्थ प्रायः आपस में टकराते रहते हैं। कहीं कहीं उनकी भाषा एवम् उनके रीति रिवाजों में भी भारी अन्तर पाया जाता है। यहाँ एक बात ध्यान देने की है कि अफ़गान एवम् तुर्कमान लोग दक्षिण की कम शक्ति शाली जाति दर्दू लोगों को दबाते आ रहे हैं।

कालाबाग़ के दक्षिण में सिंध नदी के दोनों ही किनारों पर मुल्तान के चारों ओर बसने वाली जातियों में कुछ तो वलूची लोग हैं और कुछ जार लोग। इस भूभाग में कुछ अन्य जातियाँ भी रहती हैं और सुलेमान पर्वत की ओर अफ़गान लोग रहते हैं। सिंध और सतलज के बीच के मैदानों में जून, भोटी, स्याल, कुरुल, काठी और अन्य जाति के लोग रहते हैं, जिनमें से अनेक चरवाहे हैं तथा शेष कृषक गण। झेलम और चिनाब के बीच के मैदानों में यहाँ के आदिवासी ही रहते आये हैं। इन पर हिन्दू या मुसलमान विजेताओं का बहुत कम प्रभाव पड़ा है। भोटी लोग अपने को चन्द्रवंशी कह कर गौरवान्वित मानते हैं। पश्चिमोत्तर भारत में भोटी या भाटी जाति वाले कभी पर्याप्त शक्ति शाली थे। अब इनकी शक्ति जैसलमेर तक ही सीमित है। सतलज के किनारे किनारे पाकपत्तन तक वत्तू तथा जोहिया राजपूतों की बस्ती है। और भी दक्खिन में लंगा जाति के लोग रहते हैं, जिनका पहले ऊच तथा मुल्तान पर आधिपत्य था।

सतलज और काश्मीर के बीच की पहाड़ियों पर राजपूत परिवारों का आधिपत्य है। मुसलमानों के आक्रमण ने यहाँ के अनेक लोगों को एक ओर राजपूताना के रेगिस्तान व बुन्देलखण्ड की पहाड़ियों में धकेला और दूसरी ओर हिमालय की पहाड़ियों में। यहाँ की आबादी मिली जुली है, जम्मू के आसपास डोंगरा तथा उसके पूर्व की ओर कनेत जाति के लोग रहते हैं। इसी प्रकार की आबादी गंगा और जमुना तक है। ये सभी लोग अपने को राजपूत ही कहते

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हैं। इन्हीं में एक जाति गादी कहलाती है जो अपने को क्षत्री कहते हैं। एक आदिवासी कही जा सकने वाली जाति है, जिसे कोहली कहते हैं। ये लोग सम्भवतः आदतों, रिवाजों एवम् भाषा में मध्य भारत के जंगली लोगों से (शायद) मिलते है। बर्फीली पहाड़ियों की ओर भोटी जाति के लोग हैं तथा ये काश्मीर तक के भूभाग की जनसंख्या में मिले हुए हैं।

केन्द्रीय भाग झेलम से हाँसी, हिसार तथा पानीपत तक फैला हुआ है, जिसके दक्षिण में खुशान तथा प्राचीन दियाल पुर है। इस भाग में अधिकांश बस्ती जाटों की है। सिक्खों की वास्तविक भूमि लाहौर के ही आसपास है, जिसमें सतलज के उत्तर का भूभाग भी शामिल है, जिसमें अमृतसर का शहर पड़ता है। गुजरात में भी सिक्खों का ही निवास है। सतलज के दक्खिन भटिंडा और सुनाम है। एक मैदान यहाँ के निवासियों में माँझा (मध्य) नाम से प्रसिद्ध है और दूसरे को मालवा कहते हैं। ये दो नाम मध्यभारतीय नामों के समरुपी हैं। यहाँ के निवासियों में भी डोंगरा तथा भोटी लोग मिले हुये हैं। चतुर्दिक फैले हुए छोटे छोटे क़स्बों एवम् गाँवों में पठान और राजपूत भरे हुए हैं। गूजरों की भी संख्या कम नहीं है। पठानों में कसूर के पठान संख्या में भी अधिक हैं और शक्ति में भी। राहन के राजपूत भी कम प्रसिद्ध नहीं है। इस लम्बे चौड़े कृषि-योग्य मैदान के प्रायः २।५ लोग जाट ही हैं, १।१० से कुछ अधिक गूजर होंगे, १।५ राजपूत होंगे, जो अपने को शुद्ध राजपूत मानते हैं, विदेशी मुसलमानों की औसत भी १।१० तो होगी ही, यद्यपि सम्भावना यही विश्वसनीय प्रतीत होती है कि यहाँ के १।३ मुसलमान ऐसे हैं जो पहले हिन्दू ही थे।

हर कस्बे व शहर में धार्मिकों, सैनिकों, व्यापारियों, कारीगरों इत्यादि की अलग अलग जमातें हैं इस प्रकार हर शहर में ब्राह्मण होंगे, सय्यद होंगे, अफ़ग़ान या बुन्देला सिपाही होंगें, व्यापाररत बनियें होगे, काश्मीरी जुलाहे होंगे। अन्य कितने ही प्रकार के पेशे वाले इन शहरों में रहते हैं। इनमें कोई भी वर्ग ऐसा नहीं है जो इतना संगठित हो कि नगर के चतुर्दिक बसे लोगों पर आवश्यकता पड़ने पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित कर सके। फिर भी यह कहा जा सकता है कि यहाँ के निवासियों में जाट और क्षत्रिय लोग ही सर्वाधिक प्रभावशाली हैं। यही लोग साहसी भी अधिक हैं।

इस भाग में कुछ घुमक्कड़ जातियाँ भी हैं, इनमें से छंगर जाति ही अधिक ध्यान देने योग्य है। इनकी संख्या भी पर्याप्त है। ये लोग टर्की के चिंगान, रूस के ज़िगान, जर्मनी के ज़िगेन, इटली के ज़िंगारो, स्पेन के जिटन और इंग्लैण्ड के

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जिप्सी लोगों के ही समान हैं। दिल्ली के आसपास इन लोगों को कंजड़ कहते हैं, परन्तु पंजाब में नाचने वाली लड़कियों को भी इसी नाम से पुकारते हैं।

जाति और धर्म की एक सी सीमाएँ नहीं हैं नहीं तो हिन्दुओं और मुसलमानो का सम्मिलित रुपेण विचार करना अधिक सुविधा जनक होता। लद्दाख की जनता भी और यहाँ परतंत्र शासक भी लामाओं के बुद्धधर्म को मानते हैं। सेंट्रल एशिया में भी यह धर्म अधिक प्रचलित है, परन्तु तिब्बत के इस्कार्डो, गिलगिट के दर्दु, पहाड़ियों पर रहने वाले कूका और बम्बा लोग इत्यादि शिया मुसलमान हैं। काश्मीर, किश्तवार, भिम्बर, पखली और नमक, की पहाड़ी के दक्षिण पश्चिम के लोग सुन्नी मुसलमान हैं। पेशावर, सिंध की घाटी के दक्षिण, मुल्तान और पिंड दादन खाँ, चिनियाटे तथा दियालपुर तक के लोग भी सुन्नी ही हैं। किश्तवार तथा भिम्बर के पूरब ब्राह्मण धर्म के मानने वाले हिन्दू लोग हैं। उत्तर में कुछ बौद्धजन भी रहते हैं। दक्षिण पश्चिम में कुछ मुसलमान परिवार भी रहते हैं। मांझा तथा मालवा के जाटों में अधिकांश सिक्ख हैं, फिर भी झेलम से जमुना तक के निवासियों में मुश्किल से १।३ सिक्ख हैं और शेष २।३ में कुछ ब्राह्मण धर्म के मानने वाले हैं और कुछ मुसलमान।

शायद लेह को छोड़कर प्रत्येक नगर में और पेशावर तथा काश्मीर के मुसलमानी प्रदेशों में साथ ही मांझा तथा मालवा प्रदेश में व्यापार का कार्य मुख्यतः हिन्दू ही करते हैं। दूकाने भी प्राय. उन्हीं की हैं। क्षत्रियों की संख्या उत्तरी नगरों में अधिक है और मुल्तान में अरोरा लोगों की जनसंख्या अपेक्षाकृत अधिक है। बौद्धिकता में भी और उपयोगिता में भी काश्मीर के ब्राह्मण मराठा ब्राह्मणो तथा बंगाल के बाबुओं से बढ़े चढ़े हैं। वे अधिकांश सरकारी दफ्तरों में में काम करते हैं। क्षत्रिय और अरोरा जाति के लोग साधारण लेखा जोखा का काम तथा लगान उगाहने का काम करते हैं। मालवा में अर्थात् भटिंडा तथा सुनाम के आसपास ही सिक्खों की ऐसी आबादी है, जिसमें किसी जाति का कोई मिश्रण नहीं हैं और कहावत में कहा जाता है कि यहाँ पुरोहित से लेकर हलवाहे तक सब सिक्ख ही हैं।

जिस प्रकार सारे भारत में उसी प्रकार समूचे पंजाब में भी एक वर्ग है, जिन्हें ब्राह्मणों ने किसी प्रकार का धार्मिक अधिकार नहीं दिया है। इनमें से अनेक लोग मुसलमान हो गये हैं परन्तु अब भी बहुत से लोग हिन्दू ही हैं। ये लोग ग्रामदेव या बनदेव की पूजा करते हैं। कहीं कहीं उन्होंने पत्थर की मूर्तियाँ बना ली हैं और उसे ही माता मानकर पूजते हैं। इनमें से कितने ही अपने को निम्नश्रेणी का सिक्ख ही मानते हैं। दूर हिमालय की पहाड़ियों में ऐसी जगहें

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हैं जहाँ न तो ब्राह्मण धर्म पहुँचा है और न बौद्ध या मुसलमान यहाँ के लोगों का न तो कोई निश्चित धर्म है और न कोई धार्मिक विश्वास। वे लोग हर ऊँची चोटी के शिखर को ही देवता मानकर पूजा करते हैं और उन्हीं के नाम पर मन्दिर बनाते हैं और उनका विश्वास है कि समय समय पर इनके पुजारियों के मुख से देवता ही बोलते हैं और उसी से पता चलता है कि ईश्वर की क्या इच्छा है। सवारी निकालते समय जब वे इन देवताओं के रथ को कन्धे पर लेकर चलते हैं तो इनके दाहिने या बाएँ कन्धे पर जो अधिक दबाव पड़ता है, उसी से शकुन निकालते है।

समूचे देश में जातीय उच्चता या धार्मिक उच्चता ही श्रेष्ठ मानी जाती है। आर्थिक स्थिति की उच्चता का यहाँ कम ही आदर है। पूर्वी संसार में बौद्ध धर्म, ब्राह्मण धर्म तथा मुसलमान धर्म लोगों के रक्त में मिल सा गया है और वे दैनिक जीवन में करोड़ों व्यक्तियों की जीवन प्राणली को नियंत्रण में रखते हैं, परन्तु अब ये धार्मिक नियंत्रण पर्याप्त ढीले पड़ते जा रहे हैं; अब लोगों के धर्म में जैसे जीवनी शक्ति की कमी आ गयी है। अब ये धर्म जातीय परम्परा से अधिक मूल्य नहीं रखते। अब वे केवल उन पर इसीलिये विश्वास करते है कि शताब्दियों से वे ऐसा करते चले आये हैं और उस प्रणाली को छोड़ने में एक अज्ञात भय उन्हें सताता रहता है। एक तिब्बती का विश्वास है कि भगवान अवतार लेकर संसार में रहते हैं और उसका विश्वास है कि चक्र-प्रवर्तन एक प्रकार की प्रार्थना ही है हिन्दू अपने उपास्य देवों की पत्थर या मिट्टी की मूर्तिया बनाकर ही प्रसन्न होता है। तारीफ तो यह है कि यह सब होते हुए भी वे इनके विपरीत किसी भी पर धर्मावलम्बी की बात नहीं सुनेंगे। हाँ अब वह प्रवृत्ति नहीं रह गयी है, जिसके वशीभूत होकर महात्मा बुद्ध के ऊँचे ऊँचे मन्दिर बने थे तथा जिनके सहारे ब्राह्मणों ने उच्च दर्शन, सुन्दर काव्य तथा नाना प्रकार की विद्याओं को जन्म दिया था। अब उनमें न वह सादगी ही है और न वह शक्ति ही, जिनके बल पर उनका अतीत इतना उज्वल है। चाहे बौद्ध विद्वान हो या वेद दर्शी ब्राह्मण, दोनों ही अपनी अतीत की कृतियों से अपने को अमर समझते हैं। अब उनमें सत्य का स्वागत करने की न इच्छा ही रह गयी है और न योग्यता ही। इन लोगों में यह एक विचित्र प्रवृत्ति आ गयी है कि जब तक स्वयम् उनपर आपत्ति नहीं आ जाती, तब तक वे पड़ोसी के ऊपर आयी हुई विपत्ति को दूर करने को सचेष्ट ही नहीं होते। उसे लोगों की भी परवा नहीं रहती, जिनसे उनका मतभेद है। यद्यपि मुसलमान धर्म में ऐसी कोई मान्यता नहीं है, फिर भी औरों की देखा देखी उनमें भी यह विश्वास

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आ गया है मृत व्यक्ति आगे चलकर उनके लिये प्रार्थना कर सकता है। अब वह भी हिन्दुओं की तरह तीर्थ करने का प्रेमी हो गया है। जिन पवित्र भावनाओं के साथ अरब में मुसलमान धर्म का प्रचलन हुआ था, उस पवित्रता का कहीं नामोनिशान अब नहीं रह गया है। यह सत्य है कि मुस्लिम संसार में अब भी अनेक उमंगपूर्ण लोग हैं, अब भी अनेक पहाड़ी और चरवाहों की मुस्लिम जातियाँ हैं, जो आज भी धर्म के लिये शस्त्र ग्रहण कर सकते हैं और जरुरत पड़ने पर खामोश कुरबानी (दूसरों की नहीं अपनी ही) भी दे सकती है, यह भी सत्य है कि इस्लामी झण्डे के नीचे जितनी सरलता से आज भी विभिन्न देशीय मुसलमान इकट्ठे खड़े हो सकते हैं कि ईसाई राज्यों के लिये वह एक असम्भव सी बात हो जायगी। मुसलमान मानता है कि उसका मुक्ति मार्ग सुरक्षित है और आज भी स्वधर्मानुयायियों की संख्या बढ़ाने के लिये उसमें वही जोश है। इस प्रकार का जोश न हिन्दुओं में ही है न बौद्धों में ही। इन तीनो ही धर्मावलम्बियों में धार्मिक कार्यों की देखरेख के लिये एक वर्ग ही अलग हो गया है, और उसी वर्ग के सहारे सब कुछ छोड़कर शेष लोग सांसारिक कार्यों में लगे रहते हैं। उनकी आशाएँ भी सन्तुष्ट हैं और उनके तर्क भी और यही कारण है कि इनको समझा बुझाकर क्रिश्चियन धर्म में परिवर्तित करना यदि असम्भव नहीं तो बहुत ही कठिन अवश्य है। ईसाई मिशनरी के लोग न तो इन लोगों की अनुभूति को डिगा सकते हैं और न इनकी कल्पना शक्ति को प्रभावित कर सकते हैं। वे इन लोगों को ऐसी कोई आशा भी नहीं दिला सकते, जो उनके लिये नवीन हो। वे न तो बनों में तपस्या ही कर सकते हैं और न प्रार्थना करने के लिये गिरिशिखरों पर ही जा सकते हैं। वे किसी ऐसी आशा-पूर्ति का भी विश्वास नहीं दिला सकते, जो उनके लिये नयी हो। उनके नियम भी इतने आकर्षक नहीं हैं कि इनको अपनी ओर खींच सकें। पवित्रता की कोई भी भावना समष्टि को प्रभावित नहीं कर सकती और कोई भी पंडित या कोई भी मुल्ला इनके समान ही वार्ताएँ सुना सकता है। संक्षेप में इन हिन्दुओं तथा इन मुसलमानों को सम्पूर्ण रुप से ईसाई बना सकना सम्भावना के विरुद्ध ही है।

प्राचीन विश्वासों पर विश्वास करने वाले शान्ति पूर्वक अपना जीवन बिताते हैं। वे पूर्णतया सन्तुष्ट रहते हैं और दूसरों के प्रति पूर्ण उदासीनता ही उनकी प्रवृत्ति है, किन्तु सिक्ख मज़हब अभी नया है, उनकी उमंग अभी ताज़ी है और उनका मज़हब अब भी क्रियाशील है जीवन्त है। उनको विश्वास दिलाया गया है कि भगवान उनके साथ है, वह उनके हर प्रयत्न में उनकी मदद करता है और देर-सवेर वह अपने यश-वर्द्धन के लिये शत्रुओं का नाश करेगा ही। अँग-

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

रेजों को सिक्खों के इस मत पर ध्यान देना चाहिये। एक सभ्य जाति से सम्बन्धित होने के नाते भी और सर्वाधिक शक्तिमान होने के नाते भी उन्हें इस बात को समझ लेना चाहिये और इसे सदा स्मरण रखना चाहिये। जिस किसी ने सिक्खों के गुरु को अपनी जाति के सुनिश्चत भविष्य के बारे में बोलते हुए सुना है, उसने देखा होगा कि वक्ता की आँखें उत्साह से रक्तिम हो जाती हैं, जोश के मारे उसकी एक एक पेशी फड़क रही होती है। इनको बोलते हुये देखने वाला ही समझ सकता है कि किस प्रकार की भावना के वशीभूत होकर नंगे बदन अरबों ने रोम और फ़ारस के विरुद्ध अभियान किया था। स्वयम् हमारे ही पूर्वज उसी भावना के वशीभूत होकर समूचे यूरोप को लाँघ कर एशिया में लड़ने गये थे। सिक्खों का सम्प्रदाय छोटा ही है, परन्तु उनकी शक्ति संख्या के कारण नहीं है। उनकी शक्ति है उनके संगठन में, उनके धार्मिक जोश में और उनके युद्धोचित स्वभाव में। अपने खालसा के लिये वे घोर साहसी बन जायँगे, असीम दुख भी सह ले जायँगे। वे हार से निराश होने वाले जीव नहीं हैं। वे आज के लिये लड़ भी नहीं रहे हैं। वे तो उस दिन की आशा में लड़ रहे हैं, जब नानक और गुरु गोविन्द सिंह के दोहरे जीवन उद्देश्य को न केवल भारत वाले वरन् अरब वाले, फ़ारस वाले तथा टर्की वाले भी मानने लगेंगे।

भारत ही एक ऐसा देश है जहाँ की जातीय भावना धार्मिक भावना से भी गहरी है, परन्तु कहीं के लोगों का विचार करते समय हमें उनके जन्म व लालन पालन के परिणाम, उनका वंश, उनकी शिक्षा दीक्षा सबको समग्ररुप में देखना चाहिये। उत्तर और पश्चिम भारत में जाट लोग अपने कड़े श्रम एवम् अच्छे किसान होने के रुप में प्रसिद्ध हैं, परन्तु वे उतनी ही तत्परता से शास्त्र भी उठा सकते हैं, जिस तत्परता से वे हल उठाते हैं। शायद वे ही भारत के प्रथम ग्राम वासी हैं। जमुना नदी के किनारे को देखने मात्र से ही उनकी श्रेष्ठता का पता चल जाता है। भरतपुर उनकी उच्चता का साक्षी है। उधर सतलज के के किनारे को देखने से ही पता चलता है कि धार्मिक सुधारों एवम् राजनैतिक श्रेष्ठता ने उनके उद्योग को कितना प्रोत्साहन दिया है और उनके साहस को कितनी क्रियाशीलता और कितना उद्देश्य दिया है। रायन, माली तथा कुछ अन्य जातियाँ परिश्रम एवम् गम्भीरता में जाटों से शायद ही कम हैं यद्यपि उनमें साहसिकता एवम् दृढ़ता की कमी है। राजपूतों की वीरता तो विख्यात ही है साथ ही वे अच्छे कृषक भी हैं। गूजर लोग कृषि से ज्यादा चरवाहा होना अधिक पसन्द करते हैं, चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान हों। वलूची लोग कभी

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भी अच्छे किसान नहीं बन सकते, चाहे वे कितने ही दीर्घ काल तक मैदानों में स्थायी रुप से रह रहे हों। पहाड़ियों की तलहटियों में रहने वाली जातियाँ अधिकांश हलचल पसन्द और लुटेरु प्रवृत्ति की हैं। ये अधिकांश ऊँटों को पालते हैं और इन्हीं पर लादकर वे झुण्ड के झुण्ड इधर-उधर माल ले आते हैं, ले जाते हैं। भारत के मैदानों में शांत जीवन बिताकर ये लोग बड़े ही अच्छे खेतिहर बन गये हैं। स्वयम् अपनी ही घाटियों में वे जब युद्ध की आशंका से मुक्ति पा जाते हैं तो उनकी खेती चमक उठती है। फिर भी वे बलूचियों से भी अधिक हलचल पसन्द हैं और भारत की किसी भी सेना में लुटेरु सैनिकों के रुप में उन्हें देखा जा सकता है। वास्तव में स्वयम् इन्हीं के देशों में ये जातियाँ डाकुओं से कुछ ही ऊँचे स्तर पर है। मुसलमान मज़हब ने उन्हें यह भी सिखा दिया है कि गैर-मुसलमानो को लूटना मारना पुण्य का काम है। उसी मज़हब ने उन्हें आक्रमणार्थ या रक्षार्थ एक ही झण्डे के अन्दर ला दिया है। शहरों में रहने वाले क्षत्रिय तथा अरोरा लोग शहरों में रहते हैं और बनियों की तरह दाँवँ लगाने वाले तथा व्यापारियों की तरह मितव्ययी होते हैं। वे ही देश के लोगों को व्यापार इत्यादि के लिये रुपया देने वाले तथा आय व्यय का समुचित हिसाब करने वाले हैं, परन्तु एक दिन ये क्षत्रिय ही देश में राज्य करते थे और उनका वह जुनून कभी-कभी उभड़ जाता है। वे कभी-कभी प्रान्तों के गवर्नर तथा कभी-कभी सेनापति[1] भी बना दिये जाते हैं। सुदृढ़ शरीर से युक्त काश्मीरियों की गरीबी

१—रंजीत सिंह के सेनापतियों में सर्वाधिक साहसी प्रकृति का सेनापति हरीसिंह क्षत्रिय था। वह एक सफल शासक था। मोखमचन्द और सावनमल भी क्षत्रिय ही थे। बोलूमल एक खन्ना क्षत्रिय था, जिसकी विद्या से ब्राह्मण लोग भी जलते थे। वह अहलूवालिया के सिख सर्दार का अनुयायी था। लाहौर और जलन्धर दो आब के ब्राह्मण उससे डाह रखते थे। निज़ाम हैदराबाद के मैनेजर पद पर जिसने बहुत दिनो तक काम किया वह भी उत्तरी भारत का खत्री था। उसने उस रियासत में अरबों एवम् अफ़गानों के सामने हैदराबाद में सदा सिक्खों को प्राथमिकता दी। शासकों के स्तर से उतर कर व्यापारी वर्ग में चले आना इन्हें यहूदियों के समान बनाता है। क्रियाशील मस्तिष्क वाले अपने लिये उचित व्यवसाय खोज ही लेते हैं। हम जानते हैं कि स्पेन के आधीन रहने वाले मूरजन कितने परिश्रमी होते थे। विजयी रोमनो के समक्ष यूनानियों की भी यही दशा हुई थी। बृटिश भारत में मुगल इक्सचेंज का व्यापार अपनाते चले जा रहे हैं। जब भी कोई शासक जाति दुर्भाग्यवश पराजित हो जाती है तो प्रायः वह ऐसा ही पेशा अपनाने का प्रयत्न करती है, जिसमें श्रम नाम मात्र का हो तथा लाभ व सम्मान बराबर मिलता रहे।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भी विचारणीय है और उनका उद्योग तथा यन्त्र-कौशल भी। उनकी भावनाएँ उदार हैं तथा उनमें नैतिकता का पूर्ण अभाव है। काश्मीर के दक्खिन और पूर्व की पहाड़ियों में रहने वालों की कोई चारित्रिक विशेषता नहीं है। हाँ राजपूतों में उनका वंशगत अभिमान एवम् व्यक्तिगत वीरता का अभाव नहीं है तथा थक्कर लोग अब उन्हीं समयों को याद कर गौरव का अनुभव करते हैं, जब उन्होंने बाबर का मुक़ाबला किया था, या हुमायूँ की मदद की थी। तिब्बत वालों के खेत सीढ़ीनुमा होते हैं। अतः वहाँ की भूमि का क्षरण अत्यधिक होता रहता है। वे अच्छे खेतिहर तो हैं, परन्तु उनकी भावनाओं में बल नहीं होता। बहुविवाह वहाँ मानो एक सुस्थापित नियम है। पहाड़ियों के बीच जहाँ थोड़ी भी जमीन मिल गयी है, वहाँ युगों से खेती होती चली आ रही है। खेती योग्य ज़मीन कम है अतः यहाँ आबादी का अधिक होना मानो भूकों मरने की तैयारी करना है। यहाँ की मानो यह परम्परा ही है कि जो भी व्यक्ति किसी साधन से कुछ धन कमा लेता है, वह अपना प्रबन्ध अलग कर लेता है। पहाड़ियों में चिब तथा बहोव फ़िरके के लोग होते हैं। ये लोग प्रायः जंगली ही हैं। जून, काठी तथा डोंगरा लोगों का अलग से विवरण देना आवश्यक नहीं है। इनमें कुछ कृषि करते हैं और कुछ लूटमार का पेशा सा करते हैं। इनका व्यवसाय पूरी तरह परिस्थिति पर निर्भर करता है। जून तथा काठी जाति के लोगों का वंश प्राचीन है। वे लम्बे और सुन्दर होते हैं। ये लोग ऊँट और भैंसें पालते हैं तथा इन्हीं द्वारा नगरों की दुग्धपूर्ति सम्भव होती है।

ऊपर हमने जिन जातियों का वर्णन किया है, उनके निवास-स्थान में कोई स्थायित्व नहीं है। समूचे भारत में समय-समय पर सामूहिक वर्हिगंमन होते ही रहते हैं। इन वहिर्गमनों के मूल में कभी राजनैतिक दमन होते हैं, कभी सूखा और कभी बाढ़। कभी कभी खेतिहर लोग अच्छी भूमि की तलाश में भी सामूहिक रूप से निवास परिवर्तन कर देते हैं। भारत के सामन्त व सर्दार ऐसे लोगों का सदा स्वागत करते हैं और उनको कम मालगुजारी पर अच्छी जमीन देने को हरदम तैयार रहते हैं। इस कारण से स्थान स्थान की आबादी में घटबढ़ भी होती रहती है और जनसंख्या में विभिन्न लोगों का अनुपात भी बदलता रहता है। इस प्रकार परिवारों के विभिन्न लोग भिन्न भिन्न स्थानों पर जाकर बस जाते हैं अतः भारत में जातियों उपजातियां की सीमा नहीं है। सिक्ख राज्य में बलूचियों का आगमन कोई प्राचीन घटना नहीं है। लोअर सतलज के भूभाग में सिंधियों का आधिपत्य अभी १०० वर्ष के भीतर की घटना

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

है। डोंगराजन का दिल्ली से निकल कर फीरोजपुर को चला आना और जोहिया लोगों का मारवाड़ से निकल कर पाक पट्टन चला आना अभी हाल की ही घटना है। हिन्दुओं में मेहतम लोग अब भी रावी नदी से पूर्व की ओर चले जा रहे हैं। ये लोग परिवार के परिवार या गाँव के गाँव निकलते हैं और इनके इसी घुमक्कड़ पन ने इनमें साहसिकता का बीज बो दिया है।

बौद्धों ब्राह्मणों तथा मुसलमानों में शुद्धतः धार्मिक युद्ध शायद कभी भी नहीं हुए। बौद्धों तथा ब्राह्मणों में अब धार्मिक उमंग इतनी अधिक नहीं रह गई है कि वे धर्म प्रचार का काम तेजी से कर सके, हाँ मुसलमानों में इतना धार्मिक जोश अभी शेष है और अभी भारत में अनेक अज्ञ और जंगली जातियाँ हैं, जिन्हें सरलता से मुसलमान बनाया जा सकता है। आजकल लेह की ओर मुसलमानो का प्रसार व प्रचार बढ़ रहा है। और इस प्रकार वह अवनति ग्रस्त बौद्ध धर्म को और भी आघात पहुँचा रहा है। उधर पेशावर की ओर जो थोड़े से काफिर रह गये थे भी धीरे धीरे मुसलमान बनते जा रहे हैं। काश्मीर के दक्खिन और पूर्व में भी मुसलमान धर्म प्रसारित हो रहा है। जहाँ कहीं भी मुसलमानों का शासन है या जहाँ कहीं बड़े शहर हैं वहाँ मुसलमानों का धर्म प्रचार तेजी से बढ़ रहा है। हिमालय की पहाड़ियों में किश्तवार के पूर्व की ओर राजपूत विजेता ब्राह्मण धर्म को निचली घाटियों के आगे नहीं ले जा पाये हैं। जंगली इलाकों में स्थानीय देवताओं की पूजा करने वाले लोग रहते हैं, जिनके ऊपर धीरे धीरे बौद्धों का प्रभाव बढ़ रहा है। जिन स्थानों पर अभी एक ही पीढ़ी पूर्व लोगों के पैर भी नहीं पड़े थे, वहाँ तिब्बत के लामा लोग अब सक्रिय हो उठे हैं। भारत की जंगली जातियों में ब्राह्मण का प्रभाव बढ़ रहा है और जो भी भील, गोंड या कोहली लोग भौतिक रूप से कुछ उन्नत हो जाते हैं वे म्लेच्छ न कहे जाकर हिन्दू कहलाना ही अधिक पसन्द करते हैं। यद्यपि हिन्दुओं में पुरोहित वर्ग का बड़ा दबदबा है, परन्तु पिछले कुछ वर्षों से गोसाईं लोग तथा अन्य साधु जन जनता की श्रद्धा के पात्र बनते जा रहे हैं। सिक्ख लोग भी धर्म परिवर्तन के द्वारा अपनी संख्या बढ़ा रहे हैं परन्तु उनका प्रयत्न अपने ही भूभाग तक सीमित है क्योंकि दिन प्रतिदिन बढ़ती जाने वाली अँगरेजों की महती शक्ति ने उनकी प्रगति को पूर्व देश की ओर रोक दिया है।

———

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अध्याय १

प्राचीन भारतीय विश्वास, नवीन सुधार, नानक की शिक्षा

१५३९ ई० तक

बौद्ध मतावलम्बीजन—ब्राह्मण और क्षत्रिय—विजेता ब्राह्मणों पर बौद्धों की प्रतिक्रिया—कट्टरता—आचार्य शंकर और शैव—साधु-वर्ग—रामानुज एवम् वैष्णव सम्प्रदाय—मायावाद—मुसलमानों की विजय - ब्राह्मण और मुसलमान—रामानन्द, गोरखनाथ, कबीर, चैतन्य और वल्लभाचार्य—नानक का धर्म सुधार।

अति प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय तक का भारतीय इतिहास संसार के इतिहास की एक शृंखला है जो संसार की एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना है यदि रोम का पतन और ईसाई धर्म के अभ्युदय को छोड़ दिया जाय। अति प्रारम्भिक काल में भारत का यह प्रायद्वीप-दक्षिणी घाटों से लेकर उत्तर में हिमालय की पर्वत श्रेणियों तक-प्रायः उस युद्ध प्रिय जाति के अधिकार में रहा, जो काकेशियन जाति की ही एक शाखा थी। इस जाति की भाषा मेडिक तथा फ़ारसी के समान थी। इस जातिवालों ने यहाँ वहाँ बड़ी नदियों के समीप तथा समुद्र के किनारे अपनी बस्तियाँ बसायीं और उन्होंने अपना विकास भी किया। ये लोग जिस धर्म को मानते थे, वह मिश्र तथा बेबीलोन वालों के धर्म से काफी मिलता जुलता था। यही धर्म कुछ परिवर्तनों के साथ आज भी संसार के लोगों को आत्मतुष्टि प्रदान कर रहा है। आर्यावर्त में वे भूभाग सम्मिलित थे, जिन्हें हम आज दिल्ली, लाहौर, गुजरात तथा बंगाल कहते हैं, परन्तु ब्राह्मणों की जिस धार्मिक प्रवृत्ति ने संसार में अनन्य ख्याति अर्जित की, उसका उद्भव व विकास गंगातट पर विशेषतया इसके उत्तरी भाग में ही हुआ। इनके कुछ वीरत्वपूर्ण कार्य ऐसे थे, जिनकी तुलना संसार के इतिहास में नहीं मिलती। दारा की शक्ति एवम् सिकन्दर के गौरव को इसी देश ने महत्व दिया था।[1] ग्रीस के दर्शन एवम् चीन के धर्म ने यहीं से गौरव

१—विक्रमादित्य ने शकों को निर्मूल करके ही शकारि की पदवी प्राप्त किया था। यह जाति अब भी तारतार के जंगलों में पारकन्द तथा मानसरोवर झील के बीच में शुद्धरुप में पायी जाती है। जिन लोगों को मुसलमान कालमुक कहते हैं उन्हें बराबर तिब्बत वालों का भय लगा रहता है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्राप्त किया। जिस समय रोम वाले जर्मनी एवम् सिम्ब्रीवालों से लड़ रहे थे, जिस समय गोथ एवम् हूण जातियों के समक्ष उनको झुकना पड़ रहा था, प्रायः उसी समय भारत के हिन्दू सहज ही सिथियाँनको आत्मसात् करते जा रहे थे, शकों को हराकर भगाये दे रहे थे, उन्होंने कितनी ही अन्य जातियों को अपने में खपा लिया था और अन्य कितने ही लोगों से सुरक्षा का काम ले रहे थे।[1] कालान्तर में भारत ने विजयी मुसलमानों के बढ़ते हुए कदम को प्रभावशाली ढंग से रोका परन्तु मदोन्मत्त शक्तिशाली तुर्कों के सामने उनकी एक न चली और अन्ततः तुर्कों का एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण साम्राज्य बनकर रह गया। एक समय ऐसा भी आया कि अरब विद्वानों का पूरा प्रभाव हिन्दूमस्तिष्क पर पड़ा और हिन्दुओं ने उस प्रभाव को स्थायी बना लिया। अब इस समय भारत तथा भारतियों का भाग्य जिस जाति से बँधा है, वह पश्चिम की सर्वप्रधान जाति है और ऐसी सम्भावना है कि जूडियन मत तथा रोमन नीति दोनों मिलकर बाह्मणों से करारी टक्कर लेंगे और इन्हीं के संग मिल जायँगे कट्टरपंथी मुल्ला तथा उनसे भी कट्टर सिक्ख।

ब्राह्मणों एवम् उनके बहादुर क्षत्रियों ने बहुत दिन तक प्राचीन भारत के उस धर्म से टक्कर लिया है, जो बहुत कुछ सँवर सुधर कर अन्त में बौद्ध धर्म के नाम से विख्यात हुआ।[2] जब शायद ईसा पूर्व की नवीं शताब्दी में मनु ने

१– उस स्थान पर अग्नि कुल के चार परिवारों की ओर संकेत किया गया है। ये चारो कुल हैं :—चौहान, सोलंकी, पँवार और परिहार ऐसा सम्भव है कि ये लोग भी आक्रामक रहे हों, जिन्होंने संघर्ष में ब्राह्मणों का पक्ष लिया हो। ब्राह्मणों के ये युद्ध या तो क्षत्रियों से हुए रहे हों या सेमेटिक जातियों सेया वैक्ट्रिया वालों से। इनकी सहायता से प्रभावित हो ब्राह्मणो ने उन्हें अग्निकुल का बना दिया ताकि वे सूर्य तथा चन्द्रवंशियों से अलग ही रहें। ऐसा कहा जाता है कि जिस यज्ञ के कुण्ड से उनकी उत्पत्ति बतायी गयी है, वह माउण्ट आबू पर किया गया था। वे अब भी उज्जैन से लेकर बनारस के निकट रींवाँ तक के भूभाग में रहते हैं। विक्रमादित्य को यदि ब्राह्मणो के अनुसार माना जाय तो वह बड़ा ही शक्तिशाली था। वैसे अग्निकुल वालों की वीरता प्रख्यात है और इनमें बड़े-बड़े राजे तथा वीर हो चुके हैं।

२—आजकल के विद्वानों में इस बात को लेकर काफी विवाद है कि हिन्दूधर्म प्राचीन है, अथवा बौद्धधर्म। समूचे भारत में बौद्धधर्म का एक बार

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अपना धर्मशास्त्र लिखा, जब सिकन्दर ने भारत को जीता और सात सौ वर्ष बाद जब फाहियान ने भारत की यात्रा की तो यहाँ ऐसे राज्य थे जो आर्यों

प्रसारित होना उतना ही सत्य है, जितना एक बार हिन्दूधर्म का प्रसारित होना। वे दोनों ही धर्म एक दूसरे से पूर्णतः स्वतंत्र हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। एक बार ये दोनों ही धर्म भारत में साथ-साथ ही चल रहे थे। बौद्धधर्म का प्रसार व प्रचार दक्षिण पश्चिम में था तथा ब्राह्मण धर्म का प्रचलन अवध व तिरहुत में अधिक था। हमें मि० बर्नाफ के साथ ही यह मत नहीं मान लेना है कि बौद्धधर्म मूलतः भारतीय ही था, यद्यपि इसका यह नाम संस्कृत 'बुद्धि' से निकला है या बोदी से जिसका अर्थ होता है पीपल का पेड़। ब्राह्मणो में इतनी प्रतिभा थी कि वे समूचे देश पर छाये हुए थे, परन्तु उनकी उच्चविद्या का लाभ उनके विरोधियों ने भी उठाया था। गौतम एक राजकुल के थे, उन्होंने अपने ज्ञान को काम में लाकर उस प्राचीन धर्म को जो रूप दिया वही बौद्धधर्म कहलाया। [यह प्रश्न इसलिये और भी उलझ जाता है कि गौतम ने ही दर्शन को न्यायशाखा को प्रतिपादित किया तथा बुद्ध को भी भगवान के दस अवतारों में मान लिया गया है, यद्यपि सनातनी लोग इस बात को यों समझाते हैं कि बनारस के राजा दिवोदास को भ्रम में डालने के लिये ही प्रतिपालक बिष्णु ने यह स्वरुप धारण किया था, क्योंकि दिवोदास परमात्मा की सत्ता को नहीं मानता था] आज जो धर्म प्रचलित हैं, उनमें शैव धर्म ही प्राचीन वैदिक धर्म है और शाक्त धर्म प्राचीन जनो के अति प्राचीन विचारों का प्रतिनिधित्व करता है। बौद्ध अवशेषों में भिलसा का स्तूप ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है और यह अँगरेज जाति के लिये लज्जा की बात है कि उन्होंने ऐतिहासिक अवशेषों की खोज में इसके कुछ अंश को बरबाद कर डाला। (अब यह बात अन्तिम रुप से मान ली गयी है कि ईसापूर्व ६०० के युग में ब्राह्मणधर्म ही प्रचलित था और चूँकि गौतम का जन्म ईसा से ५६७ वर्ष पूर्व हुआ था। इसी से सिद्ध हो जाता है कि बौद्ध धर्म ब्राह्मण धर्म की अपेक्षा नवीन है। जिस समय कनिंघम ने उपरोक्त बात लिखा था, तब से पुरातत्व की खोजों ने इन दोनों धर्मों के पूर्वापर सम्बन्ध को स्पष्ट कर दिया है। अतःउ परोक्त वर्णन से किसी भ्रम में न पड़ना चाहिये।—अनुवादक

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के नहीं थे और उस समय में बौद्ध धर्म पर मरने वाले जितने लोग थे उतने ब्राह्मणों के एक देववाद पर विश्वास करने वाले नहीं थे, जिसमें अग्नि, वायु या सूर्य[1] जैसे उलझन पूर्ण देवता थे। इस युग में हिन्दुओं की प्रतिभा खूब उन्नत थी और बौद्धिकता में ब्राह्मण ग्रीस वासियों के प्रतिद्वन्द्वी होने की योग्यता रखते थे। रामायण और महाभारत[2] के विवरणों में इतनी शक्ति है कि वे लोगों के मनस को मथ कर रख देते हैं। उनका गणित शास्त्र इतना सम्पूर्ण था, उनका नक्षत्र विज्ञान इतना विस्तृत था, कि उन्होंने सूर्य और चंद्रमा के भ्रमणपथ को नाप लिया था।[3] कुछ लोगों के दार्शनिक विचार ही लोगों के लिये धार्मिक विचार बन गये थे और ब्राह्मण धर्म ने इस धर्म की मुख्यताओं में, ईश्वर की एकता, संसार की सृष्टि, आत्मन् का अमरत्व और मानव का उत्तर दायित्व को स्थान दिया। जीवन की जिस गति व स्थिति के बारे में मूसा खामोश

१—मि० एलफिंस्टन ने प्रोफेसर विल्सन को उद्धृत करते हुए कहा है कि न तो उस समय उपास्य देवों की मूर्तियाँ ही थीं न वे किसी वस्तु की ही पूजा करते थे। आप चाहे ओल्ड टेस्टामेंट को देखें या नये को, दोनों में ही अग्नि को पवित्र आत्मा का प्रतीक माना गया है। वेदों में शक्तियों के साकार रुप की कल्पना की गयी है और सर्जक ब्रह्मा, पालक विष्णु तथा संहारक शिव की त्रिमूर्ति-कल्पना से उनका एकदेववाद तनिक भी प्रभावित नहीं होता। हमें सत्य ही वेद और वेदान्त से बहुत कुछ सीखना है यद्यपि कोलब्रुक सरीखे कुछ विद्वानों ने इस दिशा में पर्याप्त काम किया है।

२—वर्तमान काल में शायद ही कोई रामायण, महाभारत पढ़ता हो। इसके दो कारण हैं :—एक तो संस्कृत का ज्ञान ही लोगों को कम है तथा दूसरे ये अत्यधिक विशाल ग्रन्थ हैं। इनमे क्षेपक भी अनके जुटे हुए हैं। मि० पी सी० राय ने १८९४ ई० में महाभारत का शब्दशः अनुवाद किया था। ठाकुर राजेन्द्रसिंह 'भारत का महायुद्ध' नाम से एक संक्षिप्त अँगरेजी अनुवाद सन् १९१५ में छपाया था, जो इलाहाबाद में छपा था।

३—भारत के वर्ष को सौरवर्ष माना जाता है जो हर प्रकार से ठीक बैठता है, यद्यपि उसमें सौरगति का विवेचन नहीं है। शायद हिन्दुओं को उस समय समपात की बात भी पूर्णतया ज्ञात थी क्योंकि उनकी युग सम्बन्धी धारणाएँ सदैव यही प्रदर्शित करती है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

रह गये[१] हैं, उसी को गंगातीर निवासियों ने सर्व सुलभ कर दिया। उस सर्जक की एकात्मकता और सर्वशक्तिमत्ता की बात हिन्दुओं को ज्ञात थी पर न बहुदेव वादी ग्रीक ही इन्हें जानते थे और न रोमन[२] ही।

इधर व्यास जी ने इस क्षेत्र में सबको पीछे छोड़ दिया, जब उन्होंने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि मरणोपरान्त हर भले बुरे[३] काम का सुपरिणाम व कुपरिणाम भोगना पड़ता है। उनकी इस वाणी से प्रत्येक ऐसा हृदय काँप उठा, जिसमें बुराई बसती थी। आत्मा के अमरत्व की व्याख्या पुनरागमन[४] (आत्मा का

१—इस बात को तो सभी लोग मानना चाहेंगे कि यहूदियों ने जेहोवा को केवल अपना ही देवता माना था। वे आत्मा को नश्वर मानते थे। पाश्चात्य जगत में सर्वप्रथम हेराडोटस ने ही इस बात का दावा किया कि आत्मा अमर है। सुकरात और प्लाटो को भी ऐसी अनुभूति हुई थी कि आत्मा में अनिश्वरता का कुछ न कुछ अंश अवश्य है।

२—एथेंस वासियों के अज्ञात देव, फेट, बदलालेने वाले नेमेसिस तथा ज़ीअस तथा जुपिटर से भिन्न जो देवता थे, वे मानव के उस असन्तोष के प्रतीक मात्र थे, जो प्राचीनो के मन में उनकी पौराणिक गाथाओं से निःसृत हुआ था (फिर भी आरफ़ियस, प्लाटो, सिसरो इत्यादि ने भी भगवान को एक ही माना है)।

३—देखिये रिटर कृत ऐशियेर फिलासफी २,३८७ पर लेखक ने प्लाटो की इस भूल के प्रति पर्दा डालने का यत्न किया है, जहाँ उसने कर्तव्य के प्रति उदासीनता प्रगट की है। रिटर ने कहा है कि ऐसा इसलिये हुआ है कि सुकरात को प्रणाली में अनिवार्य नियम की बात ही नहीं मानी गयी है परन्तु जेनाँफन के अनुसार सुकरात ने स्वथम् कहा है कि देवताओं की उपासना मनुष्य का परम कर्तव्य है। मैकाले भी यही कहता है कि समाज के लिये यह अति आवश्यक है कि परमात्मा के प्रति मानव के मन में प्रबल उपासना का भाव रहे। पूर्व के देशों में दर्शन शास्त्र का धर्मशास्त्र से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। ग्रीस तथा वर्तमान योरप में ऐसी बात नहीं है।

४—हिन्दू धर्मशास्त्र पर लिखने वाले ईसाई लोग आवागमन (पुनर्जन्म) को इच्छा की स्वतंत्रता में बाधक मानते हैं और कहते हैं कि इससे आत्मा की एकान्त सत्ता पर आघात पहुंचता है। उनके अनुसार इस बात को मान लेने पर मनुष्य का जीवन ग्रीकों और रोमनो के 'भाग्य' पर अधिक निर्भर करने लगता है, परन्तु पूर्व जीवन में किये गये पापों का बोझ इस जीवन

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जन्म बार बार होता रहता है) के द्वारा की गई। इसमें कर्म से विचार पर अधिक ध्यान दिया गया। इसका एक कुपरिणाम यह हुआ कि यह मानना कठिन हो गया कि प्रत्येक मानव समान है। सम्भवतः धर्म रक्षकों के रुप में पुरोहितों का प्राधान्य भी इसी विचार धारा की देन है।

आगे चलकर ब्राह्मणों ने बौद्ध धर्म को भारत से उखाड़ फेंकने में सफलता प्राप्त की, और जब ईसा के ९०० वर्षों बाद आचार्य शंकर ने अपनी जय-यात्रा आरम्भ की, तो उनके सामने कुछ जैन[1] आचार्य ही शास्त्रार्थ में आये। क्षत्रियों ने राज्य की स्थापना कर ली थी, अपर जातीय लोगों ने अपने को हिन्दू धर्म में मिला लिया था या उन्हें हराकर भगा दिया गया था। वह युग ही ऐसा था कि उसमें धर्म प्रचार के लिए राज-शक्ति की आवश्यकता होती थी। हिन्दुत्व अपनी सीमा पर पहुँच चुका था, अतः उसकी विजय के रुप में मानो उसके पतन का बीज बोया गया। विदेशियों के सम्मिश्रण ने भी उनके स्वाभाव को परिवर्तित करने का काम किया। उनकी परम्पराएँ भी बदलीं। फल स्वरुप मानव के मन में स्वतः ही ऐसी इच्छाएँ उठने लगीं कि उनके उपास्य देव जो भी हों, उन्हें धारणा के अनुकूल होना चाहिये। शक्तियों की अमूर्त

में मानने पर धार्मिक जीवन निर्बाध चला करता है। दार्शनिक रुप से सोचने पर आत्मन् को बुराई से मुक्त रखना ही इसका मुख्य उद्देश्य प्रतीत होता है। सुक़रात ने कहा है कि 'जिसकी जितनी ही कम इच्छाएँ हैं, वह स्वर्ग के उतने ही समीप है।'

१—आधुनिक जैनियों के अनुसार उनके धर्म का बौद्ध धर्म से कोई विरोध नहीं है। वे आगे कहते है कि भिलसा का स्तूप जैनियों का है न कि बौद्धों का। यह शंकास्पद हैं कि जैन धर्म का प्रारम्भ कब से हुआ। हाँ यह बात अवश्य आश्चर्य जनक है कि अमरकोष में जैन धर्म का विवरण नहीं है, हाँ भौतिक संसार की संरक्षिका माया देवी को जिन नाम से अवश्य स्मरण किया गया है, जो गौतम की माता थीं। भागवत में भी बुद्ध को जिनका पुत्र कहा गया है। अमरसिंह स्वयम् भी बौद्ध थे। उनका समय ईसा पूर्व की प्रथम या ईसा की पाँचवीं शती माना गया है। मालवा की जनश्रुति के आधार पर शंकराचार्य से अमरसिंह विवाद में हार गये थे। अतः उनका समय नवीं शताब्दी होता है, परन्तु तब उनके कोष में जैन शब्द क्यों नहीं मिलता?

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भावना[1] उन्हें उपासना करने के लिये अपर्याप्त सी जान पड़ने लगी। काले पत्थर का एक लिंगाकार पत्थर उनकी भावनाओं[2] को तुष्टि नहीं देता था और शंकराचार्य ने बौद्धों की भौतिक भावना एवम् चार्वाको के सुख साधनों का खण्डन करके शुभगुणों एवम् शक्तियों के पूजन का विधान किया। उन्होंने ही यह मान्यता स्थापित की कि मंदिर में दोनों प्रकार के उपास्य-साधन—अर्थात् निराकार और मूर्तरूप—दोनों ही प्रकार की मूर्तियाँ होनी चाहिये। स्वयम्भू की प्रत्यक्ष साधना की आवश्यकता नहीं रह गयी और सनातनियों ने या कट्टर लोग पालक विष्णु, संहारक शिव, संरक्षक सूर्य, गणेश, जन्मदात्री प्रकृति की अनुकृति की उपासना इस श्रद्धा के साथ करने लगे कि उनकी प्रार्थनाएँ अवश्य ही उपास्य देव[3] द्वारा सुनी जायँगी, उनके चढ़ावे स्वीकृत होंगे। उस सर्वशक्ति मान के अनेक रुपों की उपासना यहीं से शुरु हुई।

ब्राह्मणों की प्राचीन उपासना पद्धति घरेलू थी, अर्थात् वे अपने घरों में ही उपास्य का वन्दन कर लिया करते थे, परन्तु बौद्धों की उपासना पद्धति सामाजिक थी अर्थात् वे किसी स्थान विशेष पर इकट्ठे हो कर अपने उपास्य देव का पूजन व आराधन करते थे। ब्राह्मण साधु अपने को समाज से अलग

१—मि० एसर्फिस्टन का कहना है कि मानवा कृति में जिनकी मान्यता हुई, उन राम और कृष्ण के उपासक अधिक हुए और शिव के कम। ईसाई धर्म में भी क्रूस पर लटके हुए ईसा ने लोगों को अधिक आकर्षित किया। जेनाफ़न ने एक स्थान पर कहा है कि यदि बैलों में उपासना पद्धति चल निकले तो उनका उपास्य देव बैलों से मिलते जुलते आकार का होगा।

२—हिन्दू विचारधारा के अनुसार प्रत्येक वस्तु ईश्वर का ही अंश है। केवल इसी भावना की तुष्टि के लिये लिंगोपासना की पद्धति का प्रचलन ब्राह्मणों ने किया था। ब्राह्मणों ने समझाया था कि लिंगोपासना भी भगवान की ही उपासना है जो समस्त सृष्टि का अदृश्य नियन्ता है। लिंग प्रजनन कर एवम् इसीलिये सृष्टि का एक महत्वपूर्ण विधान है, ऐसी विचारधारा वाद में निकली है और इसके जनक ऐसे ही कुछ विद्वानों द्वारा हुआ है जो सामान्य में भी आसमान्य को ढूँढ़ निकालते थे। पुराणों में इस प्रकार की व्याख्या कहीं नहीं है।

३—इस पन्थ के प्रवर्तक (विल्सन के अनुसार) चार्वाक् नामक एक ऋषि थे, परन्तु ब्राह्मण लोग चार्वाक् शब्द की उत्पत्ति चारु (सुन्दर) से एवम् वाक् (वाणी) मानते हैं। ये लोग भौतिक वादी होते हैं और सब प्रकार के आनन्दोपभोग की भावना ही इस पथ का मूल सिद्धान्त है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

रखते थे परन्तु बौद्ध साधुओं का जीवन अधिकतर सामूहिक था। वे किसी समूह या वर्ग की एक इकाई मात्र ही अपने को समझते थे। ब्राह्मणों की परम्परा में साधु होने के पूर्व परिवार सेवन करीब-करीब आवश्यक था, परन्तु बौद्ध जन अति प्रारम्भ से ही गृहत्यागी होकर अपना एक अलग ही समाज स्थापित कर लिया करते थे और गृहत्यागी होकर इन्द्रिय गत सुखों का परित्याग कर देते थे। विजितों की इस भावना ने विजेताओं को भी प्रभावित किया और सनातन नियमों की स्थापना करने वाले आचार्य शंकर ने सेन्ट बेसील का भी पार्ट अदा किया और पोप ओनोरिअस[1] का भी। उन्होंने भी ब्राह्मण साधुओं के मठों की व्यवस्था की। दण्डियों के लिए दण्ड और कमण्डल का विधान उन्हीं का किया हुआ है, जो भिक्षा वृत्ति के द्वारा जीवन यापन करते हुए पवित्र जीवन बिताते थे। इस सम्प्रदाय में शिव को सर्वोच्च देव माना गया। ग्यारहवीं शताब्दी में हुए रामानुज, जिन्होंने शिव का स्थान विष्णु को दिया। उन्होंने निराकार और निर्गुण को साकार एवम् सगुण के रूप में मान्यता[2] दी। जब भी कोई संघ या संस्था स्थापित हो तो उसके सदस्यों का कर्तव्य हो जाता है कि तत्सम्बन्धी नियमों को मानें या उस संघ या संस्था के आध्यात्मिक श्रेष्ठ पुरुष के आदेशों का पालन करें। ब्राह्मणों का व्यक्तित्व सदा ही पवित्र माना जाता रहा है, ऐसा विश्वास किया जाता था कि एक पवित्र बौद्ध अपने आत्मन् को सांसारिक मोह से मुक्त कर सकता है वह इस संसार में रहकर भी देवत्व प्राप्त कर सकता है। जब शंकराचार्य ने अपने कुछ

१—एशियाटिक रिसर्चेज़ की १५वीं तथा १६वीं जिल्द में मि० विल्सन ने इस विषय की क्रमवद्ध सामग्री को प्रस्तुत किया है, जिसके लिये हम सबको उनका ऋणी होना चाहिये। इस सामग्री के सम्पादन में भक्तमाल से भी उनको प्रचुर सामग्री मिली है। हाँ यदि उन्होंने इन भावनाओं का क्रमिक विकास भी प्रदर्शित किया होता तो हमारा अधिक उपकार सम्भव होता।

२—रामानुज का समय ११ वीं और १२ वीं शती के बीच का है। मध्य भारत की जनश्रुतियों के अनुसार वे शंकराचार्य के भान्जे थे और उन्होंने आचार्य जी से ही कहा था कि उनका पथ समुचित नहीं है। रामानुज ने स्वयम् एक मार्ग प्रदर्शित किया और विष्णु को सर्वाधिक उपासना-योग्य बताया। रामानुज ने अपने सम्प्रदाय का नाम श्री सम्प्रदाय रक्खा। उनके तीन शिष्यों ने क्रम से इस प्रकार विभिन्न मार्गों की नींव डाली :—१—माधव, २—विष्णु स्वामी, और उनके शिष्य वल्लभ जी तथा ३—निम्बार्क या निम्भादित्य ये तीनों ही वैष्णव सम्प्रदाय के थे।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जाने-माने शिष्यों को आज्ञाभंग एवम् नियमोल्लंघन के अपराध में संघ से अलग कर दिया तो उसी समय से उन्होने भी यह उपदेश दिया कि लोग अपनी पूरी धार्मिक श्रद्धा किसी देवता के प्रति तो रक्खें ही, परन्तु अधिकारी व्यक्ति को भी वे पूर्ण श्रद्धा का पात्र माने। थोड़े ही दिनों में यह भावना इतनी बढ़ गई कि गुरु के लिए सब कुछ छोड़ा जा सकता है और गुरु को सब कुछ अर्पित किया जा सकता है तन भी, मन भी और धन भी [1]। गुरु को इतना महत्व देने का शायद यही कारण था कि धर्म की गूढ़ बातों को समझ पाने योग्य बुद्धि सबकी नहीं होती अतः ऐसे लोगों को चाहिए कि वे धर्म की गम्भीरता में न जाकर केवल वाह्य आचरण से ही अपने को पवित्र बनावें और वाह्य आचरण के लिए वे गुरु वाक्य को ही प्रमाण मानें। यहीं से वाह्य आचरण ही धर्म के आधार बन गये। एक बार जब आन्तरिक ज्ञान तथा आन्तरिक पवित्रता के बिना ही लोगों का काम चलने लगा तो जैसे आन्तरिक पवित्रता की आवश्यकता ही नहीं रह गयी। इस कमी को तुरन्त महसूस कर लिया गया, और तब उसके रोक के लिये ऐसी वाह्य क्रियाओं का प्रचलन किया गया, जिनमें आन्तरिक साधना की अनिवार्य आवश्यकता होती थी। रहस्य वादी विचार धारा का श्री गणेश भी यहीं से होता है।

भारत में दर्शन सदैव ही धर्म के साथ-साथ चलता रहा है। अब भी उसने धर्म का साथ दिया। सामान्यजनो को धार्मिक बातों की गूढ़ता को समझाना अति कठिन काम होता है, रहस्य की बातों के द्वारा उसका सरल रुप जनसाधारण के सामने आ जाता है और लोग उसको समझने लगते हैं। इसी क्रमके अन्तर्गत भारतीय ज्ञान की छहों शाखाओं में गूढ़ और सरल का जो वाद विवाद चला, उसमें प्रत्येक शाखा की दो-दो उपशाखाएँ हो गयीं एक सनातनी शाखा और दूसरी नवीन शाखा। इन दोनों ही शाखाओं ने यह प्रयत्न करना प्रारम्भ किया कि या तो मानव मस्तिष्क से या प्रकृति के तार्किक विश्लेषण से ही भगवान का ज्ञान प्राप्त हो जाय[2]। उनका विवाद इस बात पर भी था कि पदार्थ वास्तविक और शास्वत हैं या नहीं, चैतन्यता और बुद्धि में क्या सम्बन्ध है, जीवन तथा आत्मा क्या है, जीवन और आत्मा एक हैं या विभिन्न, क्या आत्मा परमात्मा के समान ही है। इसका परिणाम यह हुआ कि ईश्वर की खोज करने वालों के ही दो दल हो गये १—नास्तिक, जो भगवान की स्थिति को ही नहीं स्वीकार करते थे और २—आस्तिक जो ईश्वर

१—कृपया देखें परिशिष्ट ५।—अनुवादक

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

को मानते थे और उसके रूप में किसी देव-मूर्ति की पूजा करते थे। यहीं से माया-वाद का भी सिद्धान्त चला और माया-वाद का प्रभाव यह पड़ा कि लोग यह भी मानने लगे कि मृत्यु के इस ओर इन्द्रियाँ ही हमारी सर्वश्रेष्ठ-मार्ग-दर्शिकाएँ हैं तथा इस संसार में न तो कुछ स्थिर है और न कुछ निश्चित। इस मायावाद ने आगे चल कर बहुत जोर पकड़ा। आगे आने वाले सुधारकों ने इन सिद्धान्तों का डट कर प्रयोग एवम् प्रचार किया।

ईशा की १० वीं शती में हिन्दू धर्म और हिन्दू नीति का यही हाल था। तत्कालीन लोगों ने समाज के लिए जो मूल पद्धति अपनाया था, वही धीरे-धीरे जाति प्रथा के रूप में सामने आने लगी। ब्राह्मणों ने पहले ही अपने को युद्ध एवम् कृषि से अलग कर लिया था। ब्राह्मणों ने एकाधिक देवताओं को मान्यता देकर तथा साधु समाजों को गृहस्थों से श्रेष्ठतर मान कर जो भूल किया था। उससे स्वयम् उनकी ही एकता पर आघात होने लगा। उन्होंने एक विचारधारा को और स्थान दिया था। उन्होंने प्रत्येक गुण या प्रत्येक भावना के लिए अलग-अलग देवताओं की कल्पना की थी। इन दोनों भूलों का परिणाम यह दिखाई पड़ा कि कालान्तर में प्रत्येक विभाजन में भी उपविभाग बनने लगे। थोड़े ही दिनों के बाद आदमियों या वर्गों की प्रतियोगिता ने देवों की प्रतियोगिता को जन्म दिया और विभिन्न देवों के विभिन्न उपासकों में अस्वस्थ प्रतियोगिता का भाव बढ़ने लगा। क्षत्रिय जाति योद्धाओं की जाति थी। अब उस जाति ने राजनैतिक बाना धारण करना आरम्भ कर दिया। ये राजन् लोग समयानुसार कभी एक देवता को कभी अन्य देवता को उपासना के लिए ग्रहण करते थे। ब्राह्मणों के अनेक देव-वाद ने सामान्य जन को भी इस चक्कर में डाल दिया कि वे समझ ही नहीं पाते थे कि उन्हें किस देव की उपासना करनी चाहिए। उधर अनेक देव-वाद ने स्वयम् ब्राह्मणों को भी विभक्त कर दिया था। ऐसी दशा में जनता और भी पथ-भ्रान्त हो उठी।

इसी किंकर्तव्य विमूढ़ता के युग में एक नवीन जाति ने उत्तर पश्चिम के दर्रों से भारत में आक्रान्ता एवम् लुटेरु के रूप में भारत में प्रवेश किया और इस नवीन जाति ने बहु-वर्ग-विभक्त हिन्दू जाति को एक असहनीय धक्का दिया और हिन्दू जाति का समूचा ढाँचा ही हिल गया। हिजरी की प्रथम तथा द्वितीय शताब्दी में (ईसाकी ६ वीं तथा सातवीं शताब्दी में) अरबों का जो आक्रमण हुआ था, उसका प्रभाव भारत पर नहीं के बराबर ही पड़ा था, परन्तु जब अब्बास ख़लीफ़ा हुआ तो उसने अपने साम्राज्य को संगठित करना चाहा, क्योंकि स्पेन उनके साम्राज्य से अलग हो चुका था और फलस्वरूप

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अरब साम्राज्य के विस्तार में कमी आगयी थी। ऐसी स्थिति में ख़लीफ़ा ने सोचा कि साम्राज्य दूर दूर तक फैले, इसकी अपेक्षा यही अधिक उत्तम होगा कि वह छोटा ही रहे पर रहे पूर्ण सुसंगठित क्योंकि राजधानी से अति दूर देशों में बगावत हो जाने पर अरब से वहाँ सहायता पहुँचा सकना प्रायः असम्भव ही होता था। एक बात यह भी थी कि अरब के सिपाहियों में वह एकान्त निष्ठा भी नहीं रह गई थी। उनमें अब स्वार्थ की मात्रा भी पर्याप्त मात्रा में आगई थी। उनके पैगम्बर ने जो प्रेरणा उन्हें दी थी, उसके बल पर वे एक बड़ा साम्राज्य स्थापित कर चुके थे और उनकी शक्ति सीमा पर पहुँच चुकी थी। अब वे एक तरफ दिल्ली और दूसरी ओर कांस्टैपटीनोपुल को विजय करने का स्वप्न देख रहे थे। यह भावना दो वर्गों में ही अधिक थी—एक तो पहाड़ी कर्दों में तथा दूसरे चरवाहे तुर्कों में, जो अज्ञात कारणों से दक्खिन की उपजाऊ भूमि को पादाक्रान्त करना चाहते थे। ९ वीं शताब्दी में इन लोगों ने अपने को सिंध से लेकर कृष्णसागर तक सुव्यवस्थित करना प्रारम्भ किया। इस भाग में विस्तृत मुहम्मद के साम्राज्य को उन्होंने दृढ़ किया। उनमें दो धुन थी, एक तो वे धर्मप्रचार का पुण्य लूटना चाहते थे और दूसरे भारत की अतुल सम्पत्ति को लूट कर खुद सुखी होने की कामना करते थे। जिन जंगली असभ्य जातियों ने यूरोप पर आक्रमण किया वे ईसाई बन गयी और जिन्होंने एशिया को लूटा वे उससे भी अधिक आसानी से मुसलमान बन गये। उनकी अधकचरी भावनाओं को मुसलमान की दृढ़ धारणा का सम्बल मिला और वे झट मुसलमानी सभ्यता और उनकी विद्या के प्रभाव में आ गये। वे एक ही खुदा के बन्दे बने, धर्म प्रचार ही उनका उद्देश्य बना और साम्राज्य उनका ध्येय बना। इन सब कारणों ने मिलकर इनके दो दल बना दिये। एक वर्ग कैसर के साम्राज्य को बर्बाद करने को बढ़ा और दूसरा भारत को पादाक्रान्त करने को तत्पर हुआ।

सन् १००१ ई० में मुहम्मद ने सिंध नदी को पार किया। अभी शंकराचार्य के उपदेश को बहुत दिन नहीं हुए थे, परन्तु भारतीय जन को परेशान करने वाली विविधता को दूर कर पाने में वे सफल नहीं हो सके थे। मुहम्मद ने पंजाब पर स्थायी रूप से अधिकार कर लिया और सुल्तान की मृत्यु के पूर्व ही गुजरात और कन्नौज पादाक्रान्ता हो चुके थे। गज़नवी वंश को सन् ११८३ में गोरियों ने अपदस्थ कर दिया। इन अपदस्थकर्ताओं ने बंगाल को भी जीत लिया और १२०६ ई० में कुतुबुद्दीन ऐवक भारत का प्रथम मुसलमान शासक हुआ और भारत एक पृथक मुसलमानी राज्य बन गया। अगले १५० वर्षों में पूरे भारत

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

को मुसलमानों ने जीत लिया। १३ वीं शती में मुगल आये और पन्द्रहवीं शती में अफ़ग़ान। लगातार मुसलमानी शासन होने से देश की भाषा भी बदलने लगी और देश के लोगों के विचार भी परिवर्तित होते रहे। खिलजी तुग़लक़ एवम् लोदी शासक जोश में अन्धे हो रहे थे। वे मनमाना कर लगाना अपनी अधिकार सीमा में मानते थे और अधिकतम कर लगाना ही अपने लिये लाभ-जनक समझते थे। कभी कभी धार्मिक जोश में आकर वे हिन्दुओं को मुसलमान बनाने की बात भी सोचते थे पर यह सोचना ही सोचना होता था। जिस देश को वे जीतते थे, उसीको अपना समझने लगना उनकी प्रवृत्ति थी। इस समय की बनी हुई कितनी ही मसजिदों से उनका धार्मिक जोश ही प्रगट होता है। इन्हीं शासकों ने चान्द्रवर्ष के स्थान पर सौरवर्ष का प्रचलन किया। इन मुसलमानों का भी भारतीयकरण हुआ और सोलहवीं शती में महान् अकबर ने यह प्रयत्न किया कि दीन इलाही में हिन्दू मुसलमान दोनों को एक कर दिया जाय किन्तु राजनैतिक आज्ञा पालन और धार्मिक मिलाप में बहुत बड़ा अन्तर होता है। अकबर की धार्मिक नीति की धार्मिक प्रतिक्रिया दिखायी पड़ी जाकर औरंगजेब के शासन काल में और इस प्रतिक्रिया ने मुग़ल साम्राज्य को मटियामेट कर डाला।

एक नयी जाति के प्रभाव ने भारत के अधिकांश जन के मस्तिष्क पर प्रभाव डालना शुरु किया और लोगों को एक बार फिर वेदों की ओर उन्मुख किया, जिसे आचार्य शंकर ने अपनी विचारधारा में स्थान ही नहीं दिया था। ये नये लोग साहस में या तो क्षत्रियों के समान थे या उनसे भी बढ़े हुए थे। ये लोग ब्राह्मणों की श्रेष्ठता को घृणा की दृष्टि से देखते थे। इन्होंने अधिकृत रुप से परमात्मा के एकत्व पर जोर दिया। इस प्रभाव की गति अपेक्षाकृत धीमी रही, क्योंकि यहाँ के लोगों के मन पर मनु के धर्मशास्त्र की जो छाप पड़ चुकी थी, उसका हटाना सहज नहीं था। इधर नवीन लोगों ने भी जान-बूझ कर क्रान्ति-कारी कदम नहीं उठाया। यहाँ पर जो भी विजयी हुआ, उसी ने ब्राह्मणों के प्रभाव को माना। मुसलमानों में शेख़ और सैयद लोग परम्परा से पवित्र माने जाते थे। मुग़लों और पठानों ने राजपूतों का अनुकरण किया। नवीन अन्ध-विश्वासों ने भी प्राचीन विश्वासों की भित्ति को धक्का दिया। हिन्दुओं के कृष्ण और भैरव की ही तरह मुसलमानों में भी पीर और शहीद होने लगे। भारत के मुसलमानों का एक देववाद से विश्वास डिग गया। इस प्रकार परम्पराओं का परम्पराओं से, मतों का मतों से जो संघर्ष हुआ, उसमें कुछ लोग तो कुरान और वेद की ओर लौट पड़े, परन्तु सामान्य जनता को न तो ब्राह्मणों में शान्ति

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मिली न मुल्लाओं में, न उन्होंने महादेव का शान्ति-स्थल के रुप में पाया मुहम्मद को।[1]

हिन्दू मुसलमान धर्मों का जो संघर्ष चला, उसने चौदहवीं शती के अन्त में एक नये ही सम्प्रदाय को जन्म दे डाला। इस सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक थे बनारस के रामानन्द जी, जो रामानुज के सम्प्रदाय में से थे। विश्वासों की एक रुपता या उपासना प्रणाली की एक रुपता तो समाप्त हो चली थी। देश पर विधर्मी शासन ने धार्मिक गुरुओं की एकता को भी खत्म कर दिया। विद्या का ह्रास हो चुका था। कवियों की कल्पना और पौराणिक गाथाओं की ओर झुकी हुई थी और वे वेदों[2] को इनका आधार बनाने पर तुले हुए थे। गंगा के मैदान के मध्य भाग में लोगों की भक्ति राम की ओर मुड़ी और चूँकि मुसलमानों की विजय ने हिन्दुओं के धार्मिक जगत् में हलचल मचा दिया था, अतः रामा-

---

१—गिब्बन ने स्वलिखित इतिहास में भाग २ पृष्ठ ३५६ पर दिखाया है कि किस प्रकार विद्वान ग्रीको और रोमनो ने ईसाई धर्म का पथ प्रशस्त किया। जून १८४६ के क्वार्टलीरिव्यू नामक पत्रिका में पृष्ठ ११६ पर एक अन्य विद्वान ने इसी विषय पर समुचित मत दिया है। आज हम लोग इसके महत्व को भली भाँति नहीं आँक पाते कि मुसलमानों की विद्या तथा उनकी सभ्यता ने यूरोप के मस्तिष्क को कितना प्रभावित किया है। विलियम ग्रे ने केवल पूर्वीय कथाओं की प्रशंसाही नहीं की है वरन् उसने यह भी कहा है कि गोथिक प्रतिभा पर उनका बड़ा प्रभाव पड़ा है। अरब वालों ने उस विज्ञान तथा ज्ञान को पूर्णतया सुरक्षित रक्खा है, जो भारत या मिश्र को गयी जिसे ग्रीस तथा रोम में क्रमबद्धता मिली जो वर्तमान पाश्चात्यों द्वारा इतने आगे ले जायी गयी है। ईसाइयों के मस्तिष्क पर मुसलमानी प्रभाव स्पष्ट है, स्पेन के शासन प्रणाली में यह प्रभाव अब भी स्पष्ट है। हमारे ज्योतिष तथा औषधि शास्त्र पर भी मुसलमानी प्रभाव सदा ही दिखायी देता है।

२—आधुनिक आलोचक पुराणों को बहुत प्राचीन नहीं मानते। इनमें कितने ही अंश अभी हाल ही के जोड़े हुए मालूम होते हैं। कठिनाई यही है कि नवीन और प्राचीन अंशों को अलग नहीं किया जा सकता। समालोचकों ने इस तथ्य को भुला दिया है कि रामायण और महाभारत में जोड़े गये अंश बहुत ही कम हैं, और ये दोनों ही पुराणों में मुख्य हैं। पुराणों को नवीन सिद्ध करने लिये यह तर्क दिया जाता है कि इनमें अनेक अपेक्षाकृत नवीन राजवंशों का समावेश किया गया है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नन्द ने प्रतिपादित किया कि हिन्दू और मुसलमान दोनों का ईश्वर एक ही है और उसकी नजर में सब समान हैं। ब्राह्मणों और क्षत्रियों की उच्चत्ता तो समाप्त ही हो चुकी थी। रामानन्द ने न तो किसी देवता विशेष की उपासना पर बल दिया और न किसी विशेष उपासना पद्धति पर। उन्होंने हर जाति के लोगों को अपना शिष्य बनाया। उन्होंने बताया कि सामाजिक कर्त्तव्यों को करने से ही अन्त में मुक्ति मिल जाती है[1]। उसी समय में गोरखनाथ को भी ख्याति मिली। उन्हें खासकर योग साधक रुप में ख्याति मिली, जो न्यूनाधिक रुप से बौद्धों का मार्ग था और जिसका प्रतिपादन व्यास द्वारा भी हुआ और बुद्ध द्वारा भी। यह बात मान ली गयी थी कि कलियुग में यदि प्रायश्चित के विधान अत्यधिक कड़े रक्खे गये तो जनसामान्य प्रायश्चित की विधियों को पूरा नहीं कर सकेंगे और इस प्रकार उन्हे सुन्दरम् की प्राप्ति कभी भी नहीं हो सकेगी, परन्तु गोरखनाथ जी का कहना था कि यदि कुछ मानसिक क्रियाएँ (जो दुःसाध्य अवश्य थी) की जायँ तो सायुज्य प्राप्ति हो सकती है और आत्मा का परमात्मा से सम्मिलन हो सकता है। उन्होंने शिव को आराध्य बनाया और बताया कि शिव के समक्ष जातिपाँति का कोई भी झंझट नहीं है। उनके शिष्य अपना कान छिदाये रहते थे और इसीलिये उन लोगों को कनफटा योगी[2] नाम से अभिहित किया जाता था।

१—प्रोफेसर विल्सन का दावा है कि शंकराचार्य और रामानुज द्वारा चलाये गये सम्प्रदाय में ब्राह्मणों की ही संख्या अधिकतम थी। इन पन्थों में विद्वान व्यक्ति ही सम्मिलित हुए थे। वैष्णवों और शैवों में पूरी प्रतिद्वन्दिता थी। कहा तो यहाँ तक जाता है कि वैष्णव जन नर्मदा को इसलिये पार नहीं करते थे कि नर्मदा में शंकर का निवास था।

मध्यप्रदेश वालों में यह विश्वास बड़ी दृढ़ता के साथ जमा हुआ है कि एक दिन पवित्रता में नर्मदा गंगा का स्थान ले लेगी यद्यपि इस विश्वास के आधार का पता नहीं चलता। कहते हैं कि नर्मदा में माहेश्वर नामक स्थान पर एक भँवर है, जिसमें पकड़र पत्थर के टुकड़े अपने आप शिवलिंग का आकार ग्रहण कर लेते हैं। हिमालय में शालिग्राम जैसे असंख्य पत्थर मिलते हैं, जिसकी पूजा वैष्णव जन करते हैं।

२—दबिस्ताँ में मोहसिन फ़ानीने लिखा है कि जोगियों और मुसलमानों में बहुत समानता है। हम लोगों के लिये योग की बारिकियों को समझना अत्यन्त कठिन है। इसमें मस्तिष्क को पूर्णतया भावात्मक संसार में ले जाने

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

एक सर्वथा नवीन प्रचलन सा दिखाई पड़ने लगा। अब तक जीवन की उच्चता भोगों एवम् आनन्दों के त्याग पर निर्भर मानी गयी थी और यही जाति निर्धारण का आधार बन गया था। इन्हीं के आधार पर ब्राह्मणों की सारी महत्ता टिकी थी। इस नवीन धारा ने उस आधार को ही आत्मसात् कर लिया। सन् १४५० के आसपास रामानन्द के शिष्य जुलाहे कबीर ने मूर्तिपूजा का प्रबल खण्डन किया। उन्होंने कुरान और हिन्दू धर्मशास्त्रों का भी मजाक उड़ाया और उपदेश के साधन के रूप में पंडितऊभाषा के प्रयोग को निषिद्ध माना। अपने उपदेशों में उन्होंने दोनों को सम्बोधित किया वे उस अदृश्य शक्ति (ईश्वर) की प्रार्थना करें और आन्तरिक पवित्रता को प्राप्त करने का प्रयत्न करें। उन्होंने इस दृश्य संसार को माया माना या ऐसी स्त्री जो ठगिनी हो और मानव की उस निर्बलता की भर्त्सना की, जो उसे बुराइयों के प्रति आकृष्ट करती है। उन्होंने अन्तर और वाह्य के साम्य पर जोर दिया और राम तथा विष्णु को पूर्ण ब्रह्म माना। अपने पूर्वकाल के विचारकों की भाँति उन्होंने भी ईश्वर को आकार प्रदान किया और उन्होंने भी संसार को छोड़ने पर ही जोर दिया। उन्होंने यह भी बताया कि प्रत्येक जीव परत्मामा का ही प्रतिरुप है।कबीर का दृष्टिकोण इतना सुलझा हुआ नहीं है कि हम लोग उसे स्पष्टता पूर्वक समझ सकें, परन्तु अपनी भाषा के कारण जनता के निम्न वर्ग ने उन्हें खूब पसन्द किया[1]।

की बात कही जातीहै और कहते हैं कि इसी से मनुष्य नश्वरता से ऊपर उठकर ईश्वर से सान्निध्य स्थापित कर पाने में सफल हो जाता है। प्लाटो का ख्याल था कि मानव के लिये ईश्वर का सान्निध्य प्राप्त करना असम्भव है, फिर भी कई अर्थों में प्लाटो की विचारधारा कबीर के बहुत निकट है। यदि कपिल और पातंजलि को मिला दिया जाय तो न्यूनाधिक रुप से प्लाटो से वे मिल जायँगे। परमात्मा भी शास्वत है और पदार्थ भी भारत का महः और ग्रीकों का लोगस भी समान हैं। मानव संसार को भगवान से अलग न देखे यही कबीर का मत है, जिसका प्रचार उन्होंने अपनी भाषा में किया।

१—कबीर एक अरबी शब्द है, जिसका अर्थ है महत्तम। विल्सन को शक है कि इस नाम का कोई व्यक्ति कभी हुआ भी था। वे कबीर शब्द को एक भावना मानते हैं न कि व्यक्ति। यदि कोई व्यक्ति ऐसा था भी तो कबीर उसका नाम नहीं बल्कि उपनाम या पदवी होने की अधिक सम्भावना है। कहते हैं कि उनकी मृत्यु के उपरान्त कबीर के मृत शरीर के लिये हिन्दू

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

बंगाल में रामानन्द के सिद्धान्तों का प्रचार चैतन्यदेव ने किया जो नदिया के एक ब्राह्मण थे। उन्होंने कुछ मुसलमानो को हिन्दू भी बनाया और सभी जातियों को अपने पन्थ में स्थान दिया। उन्होंने भक्ति पर ज़ोर दिया और बताया भक्ति पातकी को मुक्ति दिला देती है, परन्तु उनके अनुयायियों ने गुरु को ईश्वर के भी ऊपर स्थान देना शुरु कर दिया। इसी समय के आसपास तेलंगाना के एक ब्राह्मण वल्लभस्वामी ने यह प्रचार किया कि विवाहित गुरुओं को तो उपदेश देने का अधिकार है ही, गृहस्थों को भी उपदेश देने का पूर्ण अधिकार है। वास्तव में भगवान द्वारा दी हुई चीज़ो को भोगने का अधिकार गुरु को भी है और शिष्य को भी। शान्तिप्रिय व्यापारियों ने इस मत को अधिक अपनाया, इस सम्प्रदाय में दीक्षित गुसाइयों को जैसे इन वणिकों का नेतृत्व सहज ही प्राप्त हो गया। इन लोगों ने बालगोपाल को सृष्टि का कर्ता माना।

इस प्रकार १६वीं शताब्दी के आरम्भ में हिन्दू मस्तिष्क में स्थिरता नहीं रह गयी थी। मुसलमानो के संसर्ग एवम् विविध सम्प्रदायों ने हिन्दू जाति को किसी भी परिवर्तन के लिये तैयार कर दिया था। रामानन्द एवम् गोरखनाथ ने धार्मिक समानता पर ज़ोर दिया। चैतन्य ने भी जाति विचार को अनावश्यक बतलाया। कबीर ने मूर्तिपूजा को अज्ञानमूलक बताया और उनके उपदेश सामान्य भाषा में ही हुए। वल्लभाचार्य ने भक्ति को मुक्ति का कारण बताया, ऐसा प्रतीत होता है कि उपरोक्त सभी धर्मोपदेशक जीवन की निस्सारता से पूर्ण प्रभावित थे कि उन सभी ने जातिगत उच्चता और निम्नता को विचारयोग्य भी नहीं समझा। संक्षेप में वे सबके सब पुरोहित वाद, मूर्तिपूजा तथा बहुदेववाद से छुटकारा पाना चाह रहे थे। उनका एक मात्र ध्येय यही था कि युग में व्याप्त भ्रष्टता से मानव को युक्त किया जाय। आज भी उनके सम्प्रदाय ज्यों के त्यों पाये जाते हैं। शायद यह नानक के ही भाग्य में था कि वे सुधार के सर्वोत्तम रास्ते को अपनावें और यह उन्हीं का प्रभाव था कि कालान्तर में गुरु गोविन्द सिंह ने कृपाण धारण कराके सिक्खों की जाति को एक राष्ट्र के रुप में परिवर्तित कर दिया। उन्होंने सत्यतः यह सिद्ध कर दिया कि उच्चतम और निम्नतम में कोई भेद नहीं है और यह समानता धर्म में भी है और विश्वास में भी, राजनैतिक अधिकारों में भी है और धार्मिक आशाओं में भी

मुसलमानों में काफी विवाद हुआ। दबिस्ताँ भाग २ पृष्ट १९३ के अनुसार रामानन्द एवम् कबीर वैष्णव सम्प्रदाय के अनुयायी थे। (पाठकों को इन पाद टिप्पणियों के फेर में पड़ने से सावधान रहना चाहिये, सम्पादक)

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नानक का जन्म लाहौर[1] के समीप १४६९ ई० में हुआ था। उनके पिता कालू राम जी युद्धप्रिय क्षत्रियों में बेंदी वर्ग के क्षत्रिय थे, परन्तु उनके पिता अपने ही गाँव में रहकर व्यापार का ही काम करते थे।[2] ऐसा जान पड़ता है कि नानक बचपन से ही धार्मिक प्रवृत्ति के थे। वे चिन्तनशील बालक थे और ऐसा विश्वास करने का कारण है कि उन्होंने युवावस्था तक ही हिन्दू धर्म और मुसलमान-धर्म की प्राम्भिक बातों का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। उन्होंने हिन्दू धर्म शास्त्रों के साथ ही कुरान का भी अध्ययन किया। उन्हें तत्कालीन समाज में प्रचलित एवम् मान्य कितनी ही बातें अनुचित या सारहीन मालूम होती थीं और यह देख कर उन्हें घोर असन्तोष होता था कि समाज में जो पढ़े लिखे लोग हैं, उन्हें इन सब बातों में तनिक भी रुचि नहीं है। दर्शनशास्त्र के कुछ नियमों को जैसे अपना कवच बनाकर वे अपना जीवन व्यतीत करते थे। यह भी हो सकता है कि कबीर एवम गोरखनाथ की बातों ने उन्हें अत्यधिक प्रभावित किया हो।[3] वे इन सब असंगतियों को दूर करने को बद्धपरिकर हुए और उमंग की इसी तीव्रता ने उन्हें घर छोड़ने पर विवश कर दिया। ज्ञान प्राप्ति के लिये वे निरन्तर चिन्तन करने लगे। उनके चिन्तन मनन के दो साधन थे :—अध्ययन और लोगों से तद्विषयक वार्ता। इसी के

१—कहा जाता है कि नानक का जन्म लाहौर के उत्तर में रावी नदी के किनारे तलवाड़ी में हुआ था, जो भुट्टी वंश के क्षत्रिय राय भुआ के अधिकार में था, एक लेख के अनुसार उनके पिता तलवाड़ी में रहते थे, परन्तु नानक का जन्म कनकाच नामक स्थान में हुआ था, जो लाहौर से १५ मील दक्खिन में है। वे अपने नाना के घर पैदा हुए थे। प्रायः ननिहाल में पैदा हुए बालकों को नानक (लड़कियों को ननकी कहा जाता था।

२—सियारुल मुताख़रीन में लिखा गया है कि नानक के पिता गल्ले के व्यापारी थे। दबिस्ताँ के अनुसार खुद नानक ही गल्ले के व्यापारी थे। सिक्ख-प्रदत्त विवरण नानक के पिता के विषय में ख़ामोश हैं, परन्तु उनके अनुसार नानक की बहन एक गल्ले के ही व्यापारी को ब्याही थी और या तो व्यापार कौशल सीखने के लिए या अपने बहनोई को मदद देने के लिये नानक अपनी बहन के ही यहाँ रहते थे।

३—यदि आदि ग्रन्थ को देखा जाय तो पता चलता है कि उसमें कबीर की रचनाओं के उद्धरण प्रायः मिलते हैं। उसमें गोरखनाथ का नाम भी प्रायः आता है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

लिये उन्होंने दूर दूर की यात्राएँ की और शायद भारत से बाहर भी गये।[1] उन्होंने एकान्त में प्रार्थनाएँ कीं, वेद में कही गयी बातों का विचार किया, इस्लाम धर्म की बातों पर भी गौर किया। कितने ही लोगों से उन्होंने यह ज्ञान प्राप्त करने की कोशिश की कि 'परमेश्वर की इच्छा क्या है ? तथा दुःखों से मुक्त होने का रास्ता कौन है ?'[2] वास्तव में नानक मानव के संघर्षमय

२—अपने भ्रमण काल में नानक कुछ फकीरों से भी मिले, एक दरवेस से भी उनकी सुव्यवस्थित वार्ता हुई। इन लोगों की बातों ने नानक पर पर्याप्त प्रभाव डाला। इन्हीं सब की बातों ने मिल कर उनके भविष्य के जीवन पथ को निर्धारित किया। मालकम ने तो यहाँ तक लिखा है कि एक बार नानक ने अपने बहनोई के बरबार का समूचा गल्ला जरुरत मन्दों के बीच बाँट दिया, किन्तु बाद में गोदाम ज्यों का त्यों भरा ही मिला। ऐसा भी लिखा मिलता है कि इनके बहनोई के पास जो सरकारी रुपया रहता था, उसका एक न एक अंग नानक जी ग़रीबों को दे ही डालते थे। जब उनके मालिक दौलतखाँ लोदी को इसकी ख़बर मिली तो उसने तुरन्त हिसाब किताब की जाँच शुरु करवा दी। कहा जाता है कि जाँचने वालों की पूरी सावधानी के बावजूद हिसाब किताब एकदम सही निकला।

नानक के विषय में सिक्खों द्वारा दिये गये विवरणों से पता चलता है कि गुरुनानक की भेंट बाबर से भी हुई थी और बाबर इनकी बातचीत तथा व्यवहार से अति प्रसन्न हुआ था। कहा जाता है कि नानक ने बाबर से कहा था कि दोनों ही राजा हैं और दोनों का राज्य १० पीढ़ी तक चलेगा।

२—ऐसा प्रायः कहा जाता है कि नानक ने पूरे भारत का भ्रमण किया था, फ़ारस गये थे और उन्होंने मक्का की भी यात्रा की थी, परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने यह भ्रमण कब शुरु किया, वे कितने दिनों तक भ्रमेण करते रहे और लौटकर कब स्वदेश में आये,। उनके मित्र भी कई थे। रबाब बजाने वाला मरदाना, लहना, बाला, सिंधु जाट तथा रामदास उनके परिचितों में थे। मरदाना तो हरदम नानक के साथ ही रहता था। कहा जाता है कि जब नानक मक्का में थे तो एक दिन वे सो रहे थे और उनके पाँव मूख्यालय की ओर थे। लोगों ने क्रोधित होकर उन्हें बुरा भला कहना शुरु किया। नानक ने नम्रता से उत्तर दिया मैं किधर पैर करुँ, कोई बता दे कि परमात्मा किधर नहीं है। उनकी वाणी की नम्रता और रहस्य-पूर्णता ने लोगों का क्रोध शान्त कर दिया। मॉलकम के अनुसार नानक कभी कभी मुसलमान दरवेशों का सा वेश बना लेते थे। मुल्तान में वे एक

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जीवन को सुखमय बनाना चाहते थे और उसी के साधन की खोज में वे निरन्तर भ्रमण, निरन्तर अध्ययन और निरन्तर ज्ञान चर्चा में लगे रहे। निरन्तर शांति-पथ की खोज में रहने पर भी उन्हें निराशा ही हाथ लगी। तब निराश होकर उन्होंने कहा, 'सब गलती पर हैं, मैंने कुरान पढ़ा, पुराण पढ़ा, पर परमात्मा को कहीं भी नहीं पाया।' आदिग्रन्थ में उपरोक्त मन्तव्य के पद भरे पड़े हैं। रतन माला में नानक ने कहा है 'आदमी वेद पढ़ सकता है, कुरान का पाठ कर सकता है, इन सबके द्वारा अस्थायी आनन्द भी प्राप्त कर सकता है कि परमेश्वर की कृपा के बिना मुक्ति असम्भव है।' वे अपने देश को लौट आये। उन्होंने साधु बाना उतार फेंका और शेष जीवन में उन्होंने यहीं उपदेश दिया कि 'उसी एक की पूजा करो, जो अदृश्य है, पवित्र जीवन बिताओ और दूसरों की त्रुटियों के प्रति सहिष्णु बनो'। उनका नम्र व्यवहार, सच्ची पवित्रता, औरलोगों को सत्पथ पर ले जाने वाली गम्भीर वाणी सदैव प्रशंसनीय रही। सत्तर वर्ष की अवस्था में उनकी मृत्यु हुई और उस समय तक उनके बहुत से शिष्य[1] हो गये थे।

उनके पूर्व जितने भी सुधारक हो गये थे नानक ने सबकी अच्छाइयों को एक में मिला दिया और उनकी समझ के अनुसार उनके पूर्व के सुधारकों की जो भी त्रुटियाँ थी, उन सबको उन्होंने छोड़ दिया। उन्होंने ईश्वर को एक बताया, पूर्ण बताया और देश काल के ऊपर बताया, जो सर्जक है, स्वयम्-स्थित है, अज्ञेय है और शास्वत है। उन्होंने भगवान को सत्य माना जो सृष्टि के पहले भी था, आज भी है और प्रलय के बाद भी रहेगा। हम जो कुछ देखते हैं,

---

मुस्लिम जमात में जा पहुँचे। आने का कारण पूछने पर उत्तर दिया कि मैं पवित्र गंगा की धारा के सदृश हूँ और पवित्रता जहाँ भी मिलती है, उसी में समा जाता हूं।

१—नानक की मृत्यु-तिथि पर अधिकांश विवरण एक मत के ही हैं। वे सब लोग उनका मृत्यु-सम्बत् १५९६ माना जाता है अर्थात् ई० सन् १५३९। एक गुरुमुखी विवरण के अनुसार नानक ने ७ वर्ष ५ महीना ७ दिनों तक उपदेश किया और असौज मास में १० वें दिन मरे। फार्स्टर के अनुसार नानक का भ्रमणकाल १५ वर्षों का था। उनकी मृत्यु लाहौर से ४० मील उत्तर रावीतट पर स्थित करतार पुर में हुई। उनके दो पुत्र थे (१) श्री चन्द, जिन्होंने उदासी पन्थ चलाया और लक्ष्मीदास, जिनके बारे में कुछ अधिक ज्ञान नहीं है। नानक वंश के लोगों का सिक्खों में बहुत सम्मान है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जानते हैं, उसका मूल कारण वही है।[1] उन्होंने मुल्ला तथा पण्डित, दरवेश तथा सन्यासी सबको समान रुप से सम्बोधित किया और सबको यह याद रखने पर जोर दिया कि वह परमात्मा स्वामियों का भी स्वामी है और असंख्य मुहम्मदों, विष्णु और शिव[2] को आते और जाते देख चुका है। उन्होंने बताया कि भगवान का ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है शेष ज्ञान का कोई महत्व नहीं है। आगे चलकर उन्होंने समझाया कि भगवान को तब तक नहीं पाया जा सकता, जब तक स्वयम् भगवान् कृपा नहीं करता[3]। यह भगवान् की यह कृपा दो तरह से मिलती है :—(१) हम अपनी इच्छाओं को मर्यादा में रक्खें तथा (२) अपने गुणों को लाभकारी रुप से प्रयोग करें। नानक का कहना है कि परमात्मा ने मुक्ति को अच्छे कामों तथा सदाचरणों में रक्खा है। भगवान मनुष्य से पूछता है कि उसने क्या किया है[4]। आगे चलकर नानक ने फिर कहा है, 'यदि हिसाब होने के दिन तक तुमने प्रायाश्चित्त नहीं किया है तो परमात्मा अवश्य दण्ड देगा[5]।'

नानक ने स्वदेशवासियों की ही दार्शनिक प्रणाली का प्रयोग किया और बताया कि आत्मा का परमात्मा की संगति में होना ही परमानन्द है, परन्तु यह तभी होता है, जब पुनर्जन्मों का चक्कर समाप्त हो जाता है। जीवन उड़ती हुई चिड़िया है, परन्तु आत्मन् कुम्हार की चाक है जो अपनी कीली पर ही अपने स्थान

१—सिक्खों में परमात्मा को अकाल पुरिक कहते हैं, जो अँगरेजी के आलमाइटी का समानार्थक है, उनका गोविन्द आदिमध्यान्त हीन है। भारत के सांख्यकार, पौराणिक एवम् शैव लोग काल (टाइम) को सृष्टि का एक तत्व मानते हैं।

२—आदिग्रन्थ के पूरक पृष्ठों में नानक का कहा हुआ एक अंश है, जिसमें कहा गया है कि इस संसार में कितने ही पैगम्बर एवम् पवित्र महात्मा लोग हो गये हैं। इस अंश की अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:—स्वामियों का स्वामी वही एक परमात्मा है,

सर्वशक्तिमान भगवान् वह अकेला है,
कब किसने जाना है असंख्य गुण उसके।

३—मिलाइये तुलसीदासको, :—सोइ जानइ जेहि देहु जनाई, सम्पादक

४—आदिग्रन्थ, प्रभाती रागिनी।

५—नसीहत नामा देखें या कारों को दी गयो शिक्षा देखें। कारों एक कल्पित राजा है किन्तु ग्रन्थ साहब में उसकी चर्चा नहीं है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पर ही चक्कर लगाकर नाना प्रकार की सामग्री बनाया करती है[१]। उन्होंने समयानुसार जनता की भाषा में ही अपना विचार प्रगट किया। उन्होंने कहा कि जो इस अज्ञानावृत्त जगत में द्युतिमान् रहता है, माया में फँस कर भी अडिग (अच्युत) रहता है, तथा लोभों में रहकर निर्लोभी बना रहता है, उसी को आनन्द की प्राप्ति होती है[२]। यह मान लेना भूल ही है कि उन्होंने प्लाटो अथवा व्यास के समान[३] भौतिक सुख साधनों की प्राप्ति पर जोर दिया। यदि हम उनके इस सिद्धान्त के कारण उनकी बुराई करें कि उन्होंने आवागमन के क्रम में आत्मा की निरन्तर शुद्धि का प्रचार किया तो यह उचित न होगा[४]। नानक ने अरब के पैग़म्बरों की भी चर्चा की है, हिन्दू अवतारों की भी बात उन्होंने कहा है किन्तु वे यह मानते हैं कि उनको परमात्मा ने खास इसीलिये भेजा है कि वे मानव जाति को उपदेश देकर उसे सुधारें क्योंकि मानव इस संसार में आकर निरन्तर बुराइयों में फँसता चला जाता है। उन्होंने अपने को मानव ही समझा, मानवेतर नहीं, यद्यपि उनके शिष्यों ने उन्हें उन महात्माओं की श्रेणी में रक्खा, जो मानव जाति का उपकार करने के लिये इस पृथ्वी पर अवतरित हुए हैं और जिन्होंने अपने ज्ञान के प्रकाश से प्रत्येक गिरे हुए को ऊपर उठाया है। नानक ने अपने को स्वयम् कहा कि वे भगवान की आज्ञानुसार ही उस प्रकार के उपदेश दे रहे थे और यह कि उन्होंने जो भी कहा वह शास्वत सत्य है[५]। उन्होंने यह नहीं कहा कि उनकी रचनाएँ ईश्वर कृत हैं और न उन्होंने यही घोषित किया कि परमात्मा कोई चमत्कार[६] दिखा कर उनकी बातों की सत्यता को स्वयमेव

१—आदिग्रन्थ, आसाराग के अन्तिम छन्द।

२—आदिग्रन्थ सूही एवम् रामकली खण्ड।

३—परिशिष्ट संख्या ८ देखें

४—मुसलमानों को हिन्दुओं के आवागमन के सिद्धान्त में सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि किसी भी मनुष्य को अपने पिछले जन्मों में किये गये कर्मों एवम् पाये हुए दण्डों का स्मरण क्यों नहीं रहता। उनका कहना है कि स्मरण न रहना ही इस बात का अकाट्य प्रमाण है कि मानव में सदैव सदबुद्धि का आवश्यक रूप से होना अनिवार्य नहीं है।

५—नानक के उपदेशों का सार यही है कि 'भगवान ही सब कुछ है'' और मानसिक पवित्रता ही इस जीवन का सब कुछ है।

६—मुसलमान लेखकों ने भी नानक की बातों की सराहना की है, देखें 'सायरुल मुताख़रीन भाग १, पृष्ट ११०, १११, तथा 'दबिस्ताँ भाग २ पृष्ट २५१, २५२'।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सिद्ध कर देगा। उन्होंने बताया कि 'लड़ो, किन्तु शब्दों से न कि हथियारों से'[1] संसार का त्याग अनावश्यक है। भगवान की नजरों में संसार का त्याग करने वालों में, तथा गृहस्थ बनकर रहने वालों में तनिक भी भेद नहीं हैं; वे दोनों ही उसकी दृष्टि में बराबर हैं। वल्लभाचार्य ने विवाहितों का गृहत्यागियों से अच्छा बताया था। नानक ने सिद्धान्तः तो ऐसा नहीं कहा, परन्तु चूँकि वे स्वयम् भी विवाहित थे, गृहस्थ भी रहे, अतः इसके विपरीत भी उन्होंने कुछ नहीं कहा। उनका तो यही कहना था कि प्रकृति दत्त कर्तव्यों को पूरा करो। हिन्दू लोग गाय को पवित्र मानते हैं, मुसलमान सुअर को त्याज्य मानते हैं। नानक ने दोनों को सहानुभूति पूर्वक देखा। उनकी शिक्षा भी ऐसी थी और उनकी प्रवृत्ति भी ऐसी ही थी कि वे किसी का खण्डन करना पसन्द ही नहीं करते थे। उन्होंने कहा 'पीर व गुरु लोग किसी भी जीवित प्राणी का वध नहीं करते।'[2]

इस प्रकार नानक ने अपने अनुयायियों को उन सभी त्रुटियों से दूर रक्खा जो चिरकाल से विभिन्न सम्प्रदाय वालों में चली आ रही थीं। उन्होंने विचारों की शुद्धता और सदाचार पर ही सर्वाधिक बल दिया। उन्होंने निज मतावलम्बियों के मस्तिष्क को प्रायः पर-सम्प्रदाय द्वेष एवम् कठोर-नियन्त्रणों से परे ही रक्खा ऐसा शायद इसीलिये किया कि उनके शिष्य लोग संतुलित मस्तिष्क से अपने ही धर्म की उन्नति में सारा दिमाग लगावें। उनके सुधार अधिकांश कर्तव्य सम्बन्धी और नैतिक थे। अपने पर विश्वास रखने वालों को उन्होंने

१—मालकम, स्केच पृष्ठ २०, २१, १६५

२—आदिग्रंथ। मालकम ने स्वलिखित स्केच में पृष्ठ ३६ की टिप्पणी में लिखा है कि नानक ने सुअर के गोश्त को अखाद्य माना था। हिन्दुओं में प्रायः यह वस्तु सुभक्ष्य मानी भी नहीं जाती। दबिस्ताँ के अनुसार नानक ने शराब और सुअर के गोश्त का निषेध किया था। वे स्वयम् किसी प्रकार का मांस नहीं खाते थे। इस बात के विरुद्ध भी अनेक लोगों ने लिखा है। बार्ड ने 'हिन्दू जाति' नामक ग्रन्थ में भाग ३ में पृष्ठ ४६ पर लिखा है कि नानक उनका भी पक्ष ग्रहण करते थे, जो गोश्त खाते थे, और कहा करते थे कि—स्तन-दुग्ध-पान करनेवाला बच्चा माँ के ही गोश्त से तो जीवित रहता है। 'गुरु रत्नावली' का लेखक इसी बात को विचित्र ढंग से कहता है। उसका कहना है कि सहधार्मिणी भी तो स्त्री है और बड़े बड़े ग्रंथों पर चमड़े की जिल्द बनायी जाती है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सिक्ख कहा। उस समय उनके मन सामाजिक चेतना ही अधिक थी, राजनैतिक नहीं। उन्होंने सिक्खों की उन्नति को समय के भरोसे छोड़ दिया। इसकी वजह भी थी। उनके शिष्यों की संख्या सीमित ही थी और समाज की व्यवस्था में कृतिमता का बोल बाला था। वे न तो मनु की बातों को काट सकते थे। और न ही विभिन्न फ़िरकों एवम् सम्प्रदाय वालों में मत परिवर्तन ही उपस्थित कर सकते थे। वे यह भी नहीं चाहते थे कि उनके शिष्य संकुचित होकर अपना एक अलग समाज ही बना लें। शायद इसी लिये उन्होंने अपने उदासीन, गृह-त्यागी पुत्र को भी अपना धार्मिक उत्तराधिकारी नहीं बनाया। कहते हैं कि जब उनका अन्तकाल समीप आ गया तो उन्होंने आगे के लिये सीधे सादे लहना को अपना उत्तराधिकारी बनाया। एक बार वे अपने शिष्यों के साथ यात्रा कर रहे थे तो रास्ते में एक मृत पुरुष कफन से ढँका हुआ मीला। उसे देख कर उन्होंने शिष्यों से कहा 'जो मेरा सच्चा शिष्य हो, वह इसे खाय'। और सब तो हिचकिचा उठा मगर लहना ने आगे बढ़ कर उस पर पड़े हुए कपड़े को उठाया और सबके आश्चर्य की सीमा न रही, जब उनसब ने देखा कि मृत पुरुष के स्थान पर स्वयम् नानक जी कही प्रतिरुप पड़ा था। गुरु ने अपने आज्ञा-कारी शिष्य को गले लगाया और कहा कि 'यह तो मेरे ही समान है और मेरे मरने के बाद मेरी आत्मा इसी में निवास करेगी।'[२] उसी समय से लहना का

१—मालकम (स्केच पृष्ठ ४४ तथा १४७) के अनुसार नानक ने हिन्दुओं की सामाजिक स्थिति में नहीं के बराबर ही परिवर्तन किया। वार्ड (द हिन्दूज, पृष्ठ ४६३) के अनुसार सिक्खों का न तो कोई फौजदारी कानून है न सिविल। इसी प्रकार की बातें प्रारम्भिक क्रिश्चियानिटी के बारे में भी कही जाती हैं। इस प्रकार की बातों की जानकारी के लिये 'चर्च आव इंगलैण्ड' की सातवीं धारा तथा 'स्काटिस कनफेशन आव फेथ' का उन्नीसवाँ अध्याय देखिये। इनमें तत्कालीन धर्म प्रचारकों की कठिनाइयों का पता चलता है। जिस प्रकार क्रिश्चियंस पर यहूदीधर्म का प्रभाव है, उसी प्रकार का प्रभाव सिक्खों पर ब्राह्मण धर्म का भी है। इस विषय में अधिक जानने के लिये कृपया देखें :—(१) वार्ड लिखित द हिन्दूज' भाग ३ पृष्ठ ४५६, मॉलकम लिखित 'स्केच' पृष्ठ १५७ की टिप्पणी तथा फार्स्टर कृत 'ट्रैवेल्स भाग १ पृष्ठ २६३, २६५, ३०८।

२—इस कथा का वर्णन कई एक सिक्ख लेखकों ने किया है। अपनी 'हिस्ट्री आव् द सिख्स' में डा० मैकग्रेगर ने इनमें से एक कथा का उद्धृत किया है, जो उपरोक्त कथा से थोड़ा भिन्न है। दबिस्ताँ (भाग २ पृष्ठ २०८

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नाम बदल कर अंगद कर दिया गया अर्थात् अपना ही शरीर।[१] इस कहानी में रुपक सी सत्यता हो या नहीं परन्तु आज भी सिक्खों का विश्वास है कि उनके प्रत्येक गुरु के शरीर में गुरु नानक की आत्मा का ही निवास होता है।[२] अंगद को सिक्खों का द्वितीय गुरु माना जाता है। नानक जी के पुत्र श्री चन्द्र को भी अपने पिता की न्यायनिष्ठा से पूरा सन्तोष हुआ और आगे चलकर उन्होंने सिक्खों के उदासी सम्प्रदाय की नींव डाली। उनके शिष्य इस संसार के कारनामों से मुक्त होकर धार्मिक साधन किया करते थे।[३]

---

२६६) में भी उसके लेखक ने इसी प्रकार की एक कथा दी है, जिसमें प्रत्येक युग में अलग अलग गाय, घोड़ा, हाथी तथा मानव की बलिका विधान है। ऐसा कहा गया है कि बलि दिये गये मानव का मांस खाने वाला पाप भागी नहीं होता था और बलि किया हुआ पुरुष भी जी उठता था।

१—देखिये मालकम कृत 'दस्केच आव द सिक्ख्सन' पृष्ठ २५ की पाद-टिप्पणी। [अंगद एक प्राचीन नाम है, जिसने रावण की सभा में राम का प्रथम सन्देशा पहुँचा कर कहा था कि यदि रावण उस शर्त को नहीं मानता है तो युद्ध का होना अनिवार्य ही है। (केनेडी कृत हिन्दू माइथालोजी पृष्ठ ४३८) जे. डी. सी.]

२—यह विश्वास सिक्खों के धर्म का एक अंग है। देखिये दबिस्ताँ भाग २ पृष्ठ २५३, २८१। गुरु हरगोविन्द ने एक पत्र मोहसिन फ़ानी (दबिस्ताँ का लेखक) को लिखा था, जिसमें नीचे उनके हस्ताक्षर के स्थान पर केवल नानक लिखा हुआ था।

३—उदासी पन्थ के विवरण के लिये एशियाटिक रिसर्चेज अंक २७ पृष्ठ २३२ देखें, जिसे विल्सन ने लिखा है। इस पन्थ वाले सिक्खों से सम्बन्धित होने में अपना बड़ा गौरव मानते हैं। वे भी ग्रन्थ साहब को ही अपना आदि ग्रन्थ मानते हैं।

नोट :—नानक के सम्बन्ध की अनेक कथाएँ हैं, जिन्हें विस्तार भय से इस पुस्तक में नहीं दिया गया है। जिज्ञासु जन को चाहिये कि एतत् सम्बन्धी कथाओं के लिये मालकम कृत 'दस्केच' द्वितीय भाग देखें। दबिस्ताँ तथा मैकग्रेगर कृत 'सिक्खों का इतिहास' में भी अनेक उपयोगी विवरण हैं।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अध्याय ३

सिक्खों के गुरु तथा गुरुगोबिन्द सिंह कृत परिवर्तन
(१५३९ से १७१६ ई०)

गुरु अंगद--गुरु अमरदास तथा उदासी सम्प्रदाय—गुरु रामदास—गुरु अर्जुन—प्रथम ग्रन्थ तथा सिक्खों का नागरिक संगठन—गुरु हरगोबिन्द तथा सिक्खों की नवीन व्यवस्था (सैनिक रूप में)—गुरु हरराय—गुरु हरिकिशन गुरु तेगबहादुर—गुरु गोविन्द सिंह तथा सिक्खों की राजनैतिक व्यवस्था —बन्दा वैरागी—सिक्खों का संघ भंग।

अमर दास, गुरु नानक के सिद्धांतों का दृढ़ पालक मृत्यु-१५५३ इसवी

नानक की मृत्यु सन् १५३९ में हुई। उन्हीं की पसन्द के अनुसार नानक के पश्चात् अंगद[1] उनके उत्तराधिकारी बने। अंगद तिहान उपवर्ग के क्षत्री थे। अंगद की मृत्यु व्यास नदी के किनारे स्थित कदूर नामक स्थान पर सन् १५५२ में हुई। कदूर गोन्डवाल के पास है। अंगद के समय का कुछ विशेष विवरण प्राप्य नहीं है, सिवा इसके कि उन्होंने नानक के पुराने साथी बाल सिन्धु तथा स्वयम् के निरीक्षण के आधार पर गुरु नानक के बारे में एक ग्रन्थ लिखा। उस ग्रन्थ को पीछे गुरु ग्रन्थ साहब में मिला दिया गया। अंगद ने गुरु नानक के सिद्धान्तों का पूर्ण प्रतिपालन किया एवम् उसपर अपनी प्रगाढ़ आस्था दिखायी। यही कारण था कि उन्होंने अपने किसी भी पुत्र को अपना उजराधिकारी न बना कर अमरदास को बनाया जो उनकी निगाह में गुरु ग्रन्थ साहेब के आदेशों का दृढ़ पालक थे।

१—अधिकांश विवरणों के अनुसार (गुरु अंगद का जन्म सम्बत् १५६१ विक्रमीय (१५०४ ई०) में हुआ था। कुछ अन्य विवरणों के अनुसार सम्बत् १५६७ के वि० (ई० सन् १५१०) में हुआ था। उनका मृत्यु-काल सम्बत् १६०९ (ई० सन् १५५१) माना जाता है। कुछ लोग उनका मृत्युकाल सन् १५५१ ही मानते हैं।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अमरदास भी क्षत्रिय थे किन्तु वे भल्ला उपवर्ग के थे। वे उपदेश में क्रियाशील थे और सिक्ख धर्म के प्रसार में उनका महत्वपूर्ण योग रहा। कहा तो यहाँ तक जाता है कि स्वयम् अकबर महान उनकी वाणी को पूर्णतया संतुष्ट होकर सुना था। नानक के पुत्र श्री चन्द के मतानुयायी भी सिक्खों में ही गिने जाते थे और यही स्थिति गुरु अंगद के जीवन काल तक रही, परन्तु गुरु अमरदास के समय में स्वयम् गुरु की इच्छा से ही उदासी पन्थ वालों को सिक्खों से अलग कर दिया गया। यही कारण है कि उदासी पन्थ आजतक जीवित है[1], अन्यथा वह सिक्ख सम्प्रदाय में ही खप गया होता। नानक के ही समान गुरु अमर दास ने भी कहा कि 'सच्ची सती वह है जो दुःख के आधिक्य से जलती है न कि चिता की अग्नि से।' इस प्रकार नरम शब्दों में लोगों को समझा बुझाकर ही वे रास्ते पर ले आते थे न कि नियमों या विधियों[2] द्वारा। अमरदास की मृत्यु सन् १५७४ में हुई। वे करीब २२½ साल तक गुरुपद पर रहे। उनके एक पुत्र था और एक पुत्री थी और ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने अपने पुत्र के बदले दामाद को ही अपना उत्तराधिकारी बनाया। उनकी पुत्री ने शायद अपने पिता से वचन ले लिया था कि भविष्य में गद्दी उसी के वंश में रहेगी। रामदास गुरु अमरदास के दामाद थे। वे क्षत्रिय थे और सोधी उपवर्ग में से थे। गुरु की उनपर विशेष कृपा थी और उनकी स्त्री का पूर्ण प्रेम उन्हें प्राप्त था। कहा जाता है कि अकबर महान् इनका बहुत सम्मान करता था। उससे

अमरदास

१५५२-७४ उदासी सम्प्रदाय सिक्खों से अलग

सती प्रथा

रामदास ने अमृतसर को निवास स्थान बनाया

१—माकलम ने स्पष्ट ही कहा है कि यह विलगाव अमरदास का ही किया हुआ था। दबिस्ताँ के अनुसार यह विलगाव गुरु की इच्छा से हुआ था। आज कुछ शिक्षित सिक्खों की राय है कि उदासी पन्थ वालों को गुरु अर्जुन ने अलगाया था।

२—आदि ग्रन्थ का अमरदासकृत सूही परिच्छेद फ़ार्स्टर (ट्रैवेल्स भाग १ पृष्ठ ३०९) के अनुसार नानक जी ने ही सती प्रथा पर रोक लगायी थी और विधवाओं के पुनर्विवाह की व्यवस्था कर दिया था, किन्तु नानक द्वारा बनाये गये किसी प्रकार के सती-निषेधक नियम का पता नहीं चलता। वास्तव में अकबर तथा जहाँगीर ने इसे बन्द करने का प्रयास किया और अन्त में लार्ड विलियम बेंटिंक ने इसे विधिपूर्वक रोका।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उन्हें एक भूभाग भी मिला था। उसी भूमि में उन्होंने एक सरोवर खुदवाया, जिसे अमृतसर की संज्ञा दी गयी। बाद में उसी स्थान पर जो नगर बसा, उसे भी अमृतसर के ही नाम से पुकारा गया। जिस समय सरोवर खोदा जा रहा था और वहाँ झोपड़ियों का एक छोटा मोटा क़स्बा बस गया था, उस समय उसे रामदास पुर कहा करते थे[1]। रामदास जी सर्वाधिक

१५७४-८१ आदरणीय गुरुओं में से थे, यद्यपि उनकी श्रेष्ठता का कोई विवरण प्राप्य नहीं है। वे गुरुपद पर ७ वर्ष से अधिक नहीं रहे। इस काल में सिक्खों की प्रगति बहुत धीमी रही और उनके मरण-काल में सिक्खों की कुल संख्या उनकी मूल संख्या की दूनी से अधिक नहीं थी[2]।

अर्जुन ने १५८१ ई० में अपने पिता की गद्दी प्राप्त की और इस प्रकार गुरु अमरदास की पुत्री की ही इच्छा पूरी हुई[3]। गुरु अर्जुन देव ही प्रथम

१—देखिये मालकम कृत 'स्केच' पृष्ठ २६, फ़ार्स्टर कृत 'ट्रैवेल्स' भाग १ पृष्ठ २६७, दबिस्ताँ' भाग २ पृष्ठ २७५ सिक्खों द्वारा दिये गये विवरण से पता चलता है कि जिस समय अकबर ने उक्त भूभाग गुरु रामदास को दिया तो एक वैरागी ने उस विषय में एक वाद उपस्थित किया कि उस स्थान पर एक तालाब था जो उसके पूज्य श्री रामचन्द्र को समर्पित किया गया था। इस पर गुरु रामदास ने कहा कि वे स्वयम् श्री रामचन्द्र के प्रतिनिधि हैं। वैरागी के पास कोई प्रमाण तो था नहीं, परन्तु रामदास जी ने उक्त भूमि में एक स्थान पर गहरा गढ़ा खुदवाया और अनेक मान्य लोगों के सामने ही उस गढ़े में तालाब की पक्की सीढ़ियाँ दिखाई पड़ी। इस बात को देखकर वैरागी शान्त हो गया।

२—भाई कन्ह सिंह द्वारा लिखित एक हस्तलेख में ऐसा लिखा है कि उन्होंने ८४ सिक्खों से वार्ता की।'

रामदास जी का जन्म सं० १५८१, ई० सन् १५२४ माना जाता है, उनका विवाह सन् १५४२ ई० में हुआ, अमृतसर की नींव सन् १५७७ ई० में पड़ी और उनकी मृत्यु सन् १५८१ ई० में हुई।

३ - इसमें सन्देह है कि रामदास के दो या तीन पुत्र थे, पिरथी चन्द (या भारुतमल या धीमल), अर्जुन और माधव। यह भी शंका स्पद है कि अर्जुन बड़े थे या पिरथी चन्द। यह प्रायः निश्चित सा है कि पिरथी चन्द ने अपने भाई की मृत्यु पर अपने उत्तराधिकार का दावा किया न पिता को

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गुरु थे, जिन्होंने नानक वाणी के पूर्ण रहस्य को समझा। इसी बात को यों भी कह सकते हैं कि सर्वप्रथम अर्जुन गुरु ने ही इस बात को समझा कि नानक के उपदेश जीवन की हर स्थिति तथा प्रत्येक सामाजिक दशा में कैसे लागू किये जा सकते थे। उन्होंने अमृतसर को केन्द्र बनाया और आज रामदास पुर नामक वही छोटा गाँव सिक्खों का परम पवित्र स्थान[1] तथा एक बड़ा शहर हो गया है। अर्जुन गुरु ने ही अपने सभी पूर्ववर्ती पुरुषों के लेखों को क्रमवद्ध किया[2]। उक्त संग्रह में उन्होंने पिछली कुछ शताब्दियों में हुए कुछ अन्य महात्माओं के वचनों का भी संग्रह किया और अन्त में कुछ स्वरचित पद एवम् प्रशस्तियों को जोड़ कर आदि ग्रन्थ को पूरा किया। इस संग्रह को उन्होंने ग्रन्थ की संज्ञा दी। उन्होंने ही स्वमतावलम्बियों को धार्मिक एवम् नैतिक आचार संहिता प्रदान किया। उन्होंने कहा कि ब्राह्मण जैसी पवित्र जाति वेदाध्ययन करते-करते थक गयी, परन्तु उनका अन्तर ज्यों का त्यों शून्य रह गया, अर्थात् उनकी प्राप्ति नहीं के बराबर ही[3] रही। उन्होंने हर नगर तथा उपनगर में सिक्ख-समाज जैसी संस्था की स्थापना की और उनसे कहा कि वे एक निश्चित् दर से शुल्क अदा करके उपासना

अर्जुन ने अमृतसर को केन्द्र बनाया

१५८१-१६०६ आदि ग्रन्थ का संग्रह

क्षत्यु के पश्चात्। उनके वंशज अब भी फ़िरोज पुर के दक्षिण सतलज के पड़ोस में कोट हरसहाय नामक स्थान पर हैं।

१—सिक्खों के विवरण से ज्ञात होता है कि गुरु अर्जुन ने अमृतसर से ही रहना शुरु किया था, परन्तु चाहे थोड़े ही समय के लिये सही, वे तरन तारन में भी अवश्य ही रहे थे, जो सतलज व्यास के संगम तथा अमृतसर के मध्य में स्थित है देखें 'दबिस्ताँ भाग २, पृष्ठ २७५।

२—मालकम स्केच पृष्ठ ३० परम्परा तथा लेखकों की धारणा के अनुसार प्रथम गुरुग्रन्थ अर्जुन द्वारा तैयार किया गया। यद्यपि नानक द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का रक्षण अंगद ने किया। फॉरेस्टर ने (ट्रैवेल्स भाग १ पृष्ठ २६७) लिखा है कि रामदास ने अपने पूर्ववर्तियों का इतिहास एवम् उनके सिद्धान्तों को क्रमवद्ध कर गुरुग्रन्थ की टिप्पणी प्रस्तुत की। उसी ने (ट्रैवेल्स भाग १ पृष्ठ २६६ में) यह भी स्वीकार किया है कि गुरु ग्रन्थ का संग्रह अंगद ने ही किया है।

३—आदिग्रन्थ या प्रथम ग्रन्थ का 'सूही' अध्याय अंगद द्वारा लिखा गया है। आदिग्रन्थ या प्रथम ग्रन्थ के बारे में पाठक परिशिष्ट १ देखें।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इत्यादि का खर्च चलाया करें। अपनी सामाजिक परम्परा में बँधे हुए सिक्ख इस द्रव्य को खुशी खुशी दिया करते थे। उनकी वह श्रद्धा भी कम न थी, जिसके वशीभूत होकर वे प्रायः गुरु के चरणों में सदा सर्वदा कुछ न कुछ भेंट चढ़ाया ही करते थे, किन्तु अर्जुन देव के शिष्य लोग घूम-घूम कर दान प्राप्त करके एक वार्षिक उत्सव में गुरु को भेंट रुप में दिया करते थे। मुहसिन फ़ानी नामक लेखक उनका समकालीन ही था। उसने लिखा है कि धीरे धीरे सिक्ख गण एक सरकार जैसी संस्था में परिणत होते जा रहे थे[1]। अर्जुन देव धनसंग्रह हेतु बड़े ही सचेष्ट थे और अन्य कितने ही प्रकार से धनसंग्रह किया करते थे। प्रभाववृद्धि के प्रति भी उनकी चेष्टा कम न थी। उन्होंने अपने शिष्यों को दूर दूर देशों में भेजा और उन्हें समझाया कि वे सांसारिक विषयों में भी वैसे ही दृढ़ रहें, जैसे दृढ़ अपने धार्मिक विश्वासों में थे। यही कारण था कि सिक्खों में अच्छे व्यापारियों की प्रमुखता है। उस समय वे तुर्किस्तान[2] में घोड़े खरीदने का ही व्यवसाय प्रायः किया करते थे।

अर्जुन गुरु धार्मिक लोगों में अत्यन्त प्रख्यात हुए और उनके जीवन वृत्त लेखकों ने ऐसे साधुओं की एक लम्बी सूची दी है जो अर्जुन देव के उपदेशों से अति प्रभावित होकर सिक्ख सम्प्रदाय में शामिल हो गये थे। ऐसी भी बात नहीं है कि बड़े लोग अथवा धनाढ्य लोग उनसे खिचे हुए रहते रहे हों। यद्यपि धन के प्रति आकर्षण था; परन्तु वे धन को साधन ही मानते थे न कि साध्य। हम सब जानते हैं कि धन को साधन न मान कर साध्य मान लेने के कारण ही अनेक अत्याचारियों को जन्म मिलता रहा है और मिलता ही रहेगा। कहते हैं कि लाहौर के तत्कालीन हाकिम चन्दू शाह की एक पुत्री थी और वह उसका व्याह अर्जुन देव के पुत्र के साथ ही करना चाहते थे[3]। ऐसा लगता है कि आगे

१—देखें दबिस्ताँ भाग २ पृष्ठ २७० और मालकम का स्केच पृष्ठ संख्या ३०।

२—सिक्खों की साधारण परम्पराओं के सन्दर्भ में देखें दबिस्ताँ भाग २ पृष्ठ २७१।

३—फ़ार्स्टर कृत 'ट्रैवेल्स भाग १ पृष्ठ २९८। सिक्खों द्वारा दिये गये विवरणों के अनुसार चन्दू से लोगों ने कहा था कि गुरु का पुत्र उसकी कन्या का योग्य वर है, किन्तु चन्दू को यह बात पसन्द नहीं आयी। उसने कहा कि गुरु धनिक हैं अवश्य किन्तु हैं तो भिखारी ही। यह बात गुरु से कही गयी। बाद में चन्दू ने स्वयम् गुरु से एतदर्थ प्रार्थना की, परन्तु गुरु ने इन्कार कर दिया।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

चलकर वे राजनीति से भी प्रभावित हो चले थे क्योंकि उनके विषय में ऐसा कहा गया है कि उन्होंने खुसरु के लिये प्रार्थनाएँ की थीं खुसरु जहाँगीर का पुत्र था। उसने पिता के विरुद्ध विद्रोह किया था और अस्थायी रुप से पंजाब को हस्तगत कर लिया था। इस कार्य के लिये गुरु को मुगल सम्राट ने मुगल दर्बार में तलब किया था और कुछ लोगों के षड्यन्त्र से प्रभावित होकर बादशाह ने उनपर भारी जुर्माना किया और उन्हें बन्दीगृह में डाल दिया। कहते हैं कि इस षड्यन्त्र का जनक चन्दूशाह ही था जिसकी लड़की का व्याह गुरु ने अपने पुत्र के साथ करने से इन्कार कर दिया था और इसी के बदले चन्दूशाह ने बादशाह को समझा दिया था कि गुरु की महत्वाकांक्षा एक दिन मुगल साम्राज्य के लिये खतरनाक हो सकती है[1]। गुरु अर्जुन की मृत्यु सन् १६०६ में हुई। कहते हैं कि बन्दीगृह की सख्तियों के कारण ही उनकी मृत्यु इतनी जल्दी हुई। उनके अनुयायियों का कहना है कि एक दिन गुरु ने रावी नदी में स्नान करने की आज्ञा माँगी। उन्हें आज्ञा मिल गयी और अनेक रक्षकों की देख रेख में वे स्नान करन पहुँचे। नदी में जो वे एक बार घुसे तो फिर कभी नहीं निकले[2]।

राजनीति में पड़कर कैद तथा मृत्यु

अर्जुन गुरु के गुरुत्व काल में नानक के सिद्धान्त उनके अनुयायियों के मस्तिष्क को पूर्ण रुप से प्रभावित किये हुये थे। उनके एक शिष्य गुरुदास ने नानक के विचारों को कल्पना पूर्ण स्वरूप प्रदान किया। गुरुदास ने नानक को व्यास और मुहम्मद का प्रतिरुप मानते हुये पवित्रता का प्रत्यावर्तक माना। गुरुदास ने कहा कि नानक ने लोगों के मन में बसे शैतान मुसलमानों की धर्मान्धता तथा हिन्दुओं

सिक्ख धर्म का प्रचार

१—दबिस्ताँ भाग २ पृष्ठ २७२, २७३। सिक्खों द्वारा दिये गये विवरण में गुरु के ऊपर लगाये गये अभियोग की बात को तो सत्य माना गया है, परन्तु षड्यन्त्र की बात नहीं कही गयी है। उनके अनुसार बादशाह ने गुरु को निर्दोष पाया था। गुरु के लम्बे बन्दी जीवन के लिये वे चन्दू के षड्यन्त्र को उत्तरदायी मानते थे। मोहसिन फ़ानी ने लिखा है कि खुसरु का साथ देने के कारण जहाँगीर ने थानेश्वर के एक साधु को भी देश निकाला दे दिया था।

२—मालकम 'स्केच' पृष्ठ ३३; दबिस्ताँ भाग २ पृष्ठ २७२, २७३; फार्स्टर ट्रैवेल्स भाग १ पृष्ठ २६८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के सन्यास आदि आडम्बरों से उस संसार को मुक्ति दिलाने का मार्ग प्रशस्त किया। मुसलमानों को हिंसात्मक वृत्तियों को भी गुरुदास ने अनुचित ठहराते हुये मानवों को अपने हृदय की बुरी भावनाओं को त्याग शान्ति और दैवी जीवन यापन की ओर प्रेरित हुये अपने समस्त भार और मानसिक यातनाओं को उस ईश्वर को सौंप देने की सलाह दी जिसकी भक्ति का मार्ग गुरु नानक प्रशस्त कर गये थे। साधारणतः यह कहा जाता है कि गुरु अर्जुन ने अपने इस दृढ़ निश्चयी परन्तु प्रिय शिष्य के लेखन को गुरु ग्रन्थ साहेब में स्थान देने से इन्कार कर दिया क्योंकि वे यह समझते थे कि गुरुदास की इन उक्तियों का नानक की उक्तियों से कोई मेल नहीं है। गुरु नानक ने कभी भी किसी अन्य सम्प्रदाय की टीक नहीं की थी न किसी अन्य धर्मावलम्बियों को उनकी धर्मिक भावनाओं के कारण बुरा भला ही कहा था। वास्तविकता यह है कि गुरदास की रचना संसार की वास्तविक बातों का रुपक मय वर्णन है न कि परमात्मा के भजन। हाँ उनकी विशेषता यही है कि वे नानक के उस उद्देश्य को उनमें अभिव्यंजना मिली है, जिसके द्वारा नानक ने सोचा था कि हिन्दुओं और मुसलमानों को मिला एक नवीन सम्प्रदाय के रुप में संगठित कर दिया जाय। उदाहरण स्वरुप वे चाहते थे कि मानव की या व्यक्ति की सुकुमार भावनाओं को जगाकर उसे एक समूह के रुप में लाया जाय और उस समूह में नवचेतना द्वारा क्रियाशीलता लायी जाय। उनका यह भी विचार था कि उपयोगी किन्तु सामान्यतम नियमों एवम् मान्यताओं को पौराणिक रुप दे दिया जाय। मन, वाणी एवम् कर्म में एकता रखने वाले नानक मानव की निर्बलताओं को भी समझते थे। अपने भक्तों कों प्यार भी कम नहीं करते थे। गुरदास एवम् अन्य सिक्खों के मत से नानक इस लोक के प्राणी नहीं थे और मानते थे कि उनकी वाणी ईश्वर की वाणी थी न कि मानव या महा-मानव की, जो संसार को दुःख मुक्त करने के लिये संसार में अवतरित हुई थी। नानक के सदुद्देश्य को प्रमाणित करने के लिये मानो भारत की सभी जातियों के लोगों की भावनाओं को जीवन्त[1] किया गया है।

गुरदास भुले के लेख

१—भाई गुरुदास भल्ले की रचनाएँ या तो स्वयम् उन्हीं के नाम से जानी जाती है या उन्हें ज्ञान रत्नावली कहा जाता है। देखें मालकम 'स्केच' पृष्ठ ३० की टिप्पणी। ज्ञात रत्नावली को सिक्ख लोग बड़े प्रेम से पढ़ते हैं। इसमें कुल ४० अध्याय हैं और उसमें विभिन्न छन्दों का प्रयोग हुआ है। इनके कुछ उद्धरण परिशिष्ट १६ में दिये गये हैं। गुरदास वैसे अर्जुन

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गुरु अर्जुन की मृत्यु के बाद उनके भाई पिरथी चन्द ने कुछ इस प्रकार की कोशिशें की कि वे ही गुरुगद्दी पर आसीन हो जायँ, क्योंकि अर्जुन गुरु के एक ही पुत्र था, जिसकी आयु कम थी, परन्तु लोगों को ऐसा प्रतीत हुआ कि गुरु अर्जुन की मृत्यु में कुछ पिरथीचन्द का भी षड्यंत्र था, अतः अर्जुन गुरु के अल्पवयस्क पुत्र को ही सिक्खों ने अपना सच्चा गुरु स्वीकार किया, यद्यपि कुछ सिक्खों ने पिरथीचन्द का भी साथ दिया, और इस प्रकार सिक्खों के संघ में पहली बार ही फूट के लक्षण दिखायी पड़े। इसी प्रकार के बीज हर सम्प्रदाय की सर्वतोमुखी उन्नति में बाधक होते[1] हैं। हरगोविन्द की अवस्था पिता की मृत्यु समय ११ वर्ष से अधिक नहीं थी, परन्तु सिक्खों ने उन्हें समझाया कि उन्हें चन्दूशाह को शत्रुता का उचित उत्तर देना चाहिये। अतः यह प्रयत्न होने लगा कि या तो षड्यंत्र के मामले में स्वयम् मुगल बादशाह ही चन्दूशाह को दण्ड दे या उसे गुरु हरदेव ही खुले रुप से मार[2] डालें। हरगोविन्द के गुरुत्व तथा चन्दूशाह की मृत्यु के विषय में चाहे जो कुछ भी कहा जाय, पर इतना तो निश्चय ही है कि गुरु हरदेव सिक्खों के आध्यात्मिक गुरु होने के साथ साथ, उनके सैनिक प्रधान भी बने। नानक जी ने निरपेक्ष रहकर ही अपने संघ की उन्नति का प्रयत्न किया था। अर्जुनगुरु ने इस प्रवृति को और बढ़ाकर सामान्यता की स्थिति में ला दिया। गुरु हरगोविन्द के समय में परिस्थितियाँ भी ऐसी थीं और स्वयम् उनकी प्रवृत्ति भी ऐसी थी कि उन्होंने अपने शिष्यों को सैनिक संगठन के रूप में लाने का कार्य आरम्भ कर दिया। इस नवीनता में स्वयम् अर्जुन देव की मृत्यु भी कम सहायक नहीं हुई थी। मनु के धर्मशास्त्रानुसार निम्नतम वर्ग के

१६०६-४५
हरगोविन्द

चन्दूशाह की मृत्यु

देव के ही विचार वाहक थे, परन्तु उनकी महत्वकांक्षा प्रबल आत्म गौरव के कारण ही गुरु उससे रुष्ट हो गये थे। इसीलिए उनकी रचनाओं को ग्रन्थ साहब में स्थान नहीं मिला। बाद में गुरु की इच्छा भी हो गई थी कि उनको ग्रन्थ साहब में मिला दिया जाय, परन्तु गुरदास ने स्वयम् इस विषय में अनिच्छा प्रगट की। अन्त में गुरु ने सिद्धान्तः इस बात को मान-लिया कि सिक्खों को इसे भी पढ़ना चाहिये।

१—मालकम 'स्केच' पृष्ठ ३०; दबिस्ताँ भाग २ पृष्ठ २७३। इन विभक्त लोगों को मीना कहा जाता है। यह शब्द कोई प्रशंसा सूचक नहीं है।

२—फार्स्टर ट्रैवेल्स भाग १ पृष्ठ २६८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

व्यक्ति को भी आत्मरक्षार्थ शस्त्र उठाने का विधान है[1] । इस सिद्धान्त ने भी सिक्खों को प्रेरित किया कि वे आत्मरक्षार्थ सन्नद्ध हो जायँ। गुरु अर्जुन ने व्यापराना ढंग पर काम किया और राजनैतिक कार्यों में उन्होंने पुरोहितों का सा काम किया, परन्तु गुरु हरगोविन्द ने हाथों में तलवार पकड़ा और अपने अनुयायियों के मुखिया के रूप में उन्होंने मुग़ल साम्राज्य की सीमाओं में प्रवेश करना शुरु किया या प्रान्तीय शासकों तथा निजी शत्रुओं को उन्होंने यथाशक्ति दबाने का काम प्रारम्भ कर दिया। नानक जी स्वयम् मांसाहार नहीं करते थे, और अर्जुन गुरु भी इस दिशा में नानक से एक कदम आगे ही रहे और उन्होंने और भी संयमित जीवन बिताया, किन्तु बहादुराना स्वभाव वाले हरगोविन्द ने न केवल सिक्खों को शिकार खेलने के लिये ही आज्ञा दी, बल्कि वे स्वयम् मांसाहार करने लगे, और उनके शिष्यों ने भी उनका अनुकरण करना प्रारम्भ कर दिया[2]। सिक्खों की इस नयी प्रवृत्ति ने उन्हें कैम्प जीवन की ओर उन्मुख किया। अब चाहे युद्ध क्षेत्र हो या शिकार कार्य, सिक्खों में मिलकर काम करने की प्रवृत्ति बढ़ने लगी और शीघ्र ही इस प्रवृत्ति के लाभजनक होने का प्रमाण भी उन्हें मिल गया। वास्ताविकता यह थी कि हरदेव के मनमें गुरु गोविन्द की भावनाओं को पिता के अन्तिम काल ने बुरी तरह से प्रभावित कर दिया था और अब वे मुगलों के विरुद्ध तलवार उठाने को तत्पर हो गये। यही कारण था कि उन्होंने अपने सम्प्रदाय में ऐसे लोगों को भी दीक्षित किया जिनमें साहसिकता के अतिरिक्त अन्य कोई गुण न था। अर्थात् उनके शिष्यों में कितने ही अपराधियों को भी स्थान मिल गया। जहाँ पर किसी प्रकार की प्रतिद्वन्दिता का भाव उदय हो जाता है, वहाँ पर अन्य प्रवृत्तियों के विकास में बाधा खड़ी हो जाती है। यही स्थिति सिक्ख संगठन को भी हुई। धीरे धीरे यह धार्मिक सम्प्रदाय राजनैतिक सम्प्रदाय में बदलने लगा। जीवन के आंतरिक सुधार के बदले राजनैतिक अधिकार ही उनका मूलमंत्र हो गया और इस सम्प्रदाय की धार्मिक प्रवृत्तियों का धीरे-धीरे लोप होने लगा, क्योंकि उनका यह विश्वास दृढ़ हो गया था स्वर्ग में जाने के लिये इतना ही पर्याप्त है कि वह सिक्ख हों[3]। अब गुरु के अस्तबल में ८०० घोड़े थे। तीन सौ घुड़सवार सर्वदा गुरु के पीछे चलते

सिक्खों के सिद्धान्तों में परिवर्तन

१—इस मान्यता के लिए देखें मॉलकम कृत 'स्केच' पृष्ठ ४४–१८६

२—दबिस्ताँ भाग २ पृष्ठ २४८; मॉलकम स्केच पृष्ठ ३६।

३—दबिस्ताँ भाग २ पृष्ठ २८४, २८६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

थे। ६० बन्दूक धारी सिक्ख सदा गुरु की रक्षा को तत्पर रहते थे। इस प्रकार गुरु का जीवन पूर्णतया सुरक्षित था। सिक्खों को जो प्रेरणा गुरु ने दी उसने सिक्ख सम्प्रदाय को भारत के अन्य सम्प्रदायों से बिल्कुल भिन्न कर दिया और यह निश्चित हो गया कि हरगोविन्द ने जिस रास्ते पर सिक्खों को चला दिया था, उस पथ को आगे चलकर भी वे छोड़ नहीं सकेंगे। तात्पर्य यह कि जैसे इस सम्प्रदाय के फिर से धार्मिक होने का रास्ता बन्द हो गया[1]।

हरगोविद गुरु ने बादशाह जहाँगीर के क़दमों पर चलना शुरु किया और प्रायः अपने अन्तकाल तक वे पूरे उमंग पूर्ण साहसिक बने रहे। शाही कैम्प के साथ साथ वे काश्मीर गये। एक बार मुग़लों के धार्मिक गुरु से उनका वार्तालाप भी हुआ। एक बार बादशाह उनसे इसलिये भी रुष्ट हो गया था कि गुरु ने सैनिकों में बाँटे जाने वाले रुपयों को निजी खर्च में ले लिया था। उनके पास सिक्खों का एक बड़ा दल सदैव ही रहा करता था। एक दल का नेता होने के कारण गुरु को भी स्वतन्त्रता प्रिय लगने लगी थी। सम्भव है कि बादशाह को उनकी इस भावना का परिचय मिल गया हो और वह उनसे रुष्ट हो गया हो। यह निश्चित है कि जहाँगीर उनसे नाराज़ हो गया था। गुरु अर्जुन के ऊपर जो जुर्माना हुआ था, वही अदा तो हुआ नहीं था, अतः गुरु हर गोविन्द को उसी के लिये कैद कर लिया गया और ग्वालियर के किले में साधारण कैदी की भाँति रक्खा गया था, किन्तु इस परिस्थिति में सिक्खों का अपने गुरु की दैवी शक्तियों में पूर्ण विश्वास था। वे सब के सब ग्वालियर में इकट्ठे हुए, और उन दीवालों को बन्दगी करने लगे, जिनके भीतर उनके आदरणीय गुरु कैद थे। उनकी इस प्रकार की भक्ति को देख देख कर या तो जहाँगीर ने या तो दैवी प्रकोप के भय से त्रस्त होकर या सिक्खों की गुरुभक्ति से प्रभावित हो कर गुरु को छोड़ दिया[2]।

सन् १६२८ ई० में जहाँगीर की मृत्यु हो गयी, परन्तु गुरु हरगोविन्द मुसलमानों की खिदमत में लगे ही रहे। इसी समय के आस-पास कुछ ऐसी घटनाएँ हो गयी होंगी, जिनके कारण गुरु में एवम् पंजाब के हाकिम में मतभेद हो गया और उसके कारण गुरु को शस्त्र का सहारा लेना पड़ा। बात यह हुयी कि एक शिष्य तुर्किस्तान से कुछ बहुत अच्छे घोड़े लाया। पंजाब के हाकिम

१—दबिस्ताँ भाग २ पृष्ठ २७७। कृपया परिशिष्ट १६ देखें

२—दबिस्ता भाग २ पृष्ठ २७५। इस बारे में विभिन्न लेखकों ने विभिन्न विवरण दिये हैं। इस विषय को देखने के लिये दबिस्ताँ का पृष्ठ २८४ देखें।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ने उन घोड़ों को यह कह कर जप्त कर लिया कि ये घोड़े बादशाह को भेजे जायँगे, परन्तु उसने उन्हीं में से एक घोड़ा लाहौर के काजी को भेंट कर दिया। गुरु ने उक्त घोड़े को यह कर कर ले लिया कि वे उसे खरीदना चाहते थे। काज़ी इस बात से काफी नाराज हुआ। इसी बीच एक और बात हो गयी। एक युवती थी जिसके बारे में कहा जाता है कि वह गुरु हरगोविन्द के प्रति आकर्षित थी। कुछ लेखकों ने उसे उक्त काजी की पुत्री माना है और कुछ के अनुसार वह काजी की रखैल थी। सिक्खों ने इस युवती को उड़ा लिया। इस बात से क़ाजी को और भी गुस्सा आया। गुरु की कुछ और बातें भी शायद उसे नापसन्द आयी हों। अतः पंजाब के हाकिम ने इरादा किया कि वह गुरु को पकड़ले और उनके शिष्यों की तितर बितर कर दे। हाकिम ने गुरु के ऊपर हमला कर दिया, किन्तु गुरु ने उसे अमृतसर के समीप पराजित कर दिया। कहा जाता है कि गुरु के पास केवल ५,००० सिक्ख थे जब कि मुग़ल सेना में ७,००० सिपाही थे, परन्तु जीत गुरु की ही हुई। इसी समय एक घटना और हो गयी। पहले ही कहा जा चुका है कि शक्ति बढ़ाने की प्रबल इच्छा के कारण गुरु इस बात की पर्वाह नहीं करते थे कि उनके नये मतानुयायियों का चरित्र कैसा है। उन्हें तो केवल साहसी आदमियों की जरुरत थी। इसी अन्धाधुन्धी में एक अवांछनीय व्यक्ति भी सिक्ख बन गया, जो पहले डाके डाला करता था। उसने लाहौर के शाहो अस्तबल से दो शाही घोड़े चुरा लिये। इसी बात पर लाहौर की सेना ने फिर गुरु पर आक्रमण पर दिया, परन्तु सिक्खों ने उस सेना को नष्ट भ्रष्ट कर डाला और मुग़ल सेना नायक भी लड़ाई से ही मारा गया। कई कारणों से गुरु ने वहाँ से हट जाना ही अच्छा समझा और वे सदलबल भटिंडा की ओर चले गये, क्योंकि सतलंज के दक्षिण वाले भूभाग में लाहौर की सेना को पीछा करने में बड़ी ही कठिनाइयाँ उठानी पड़तीं। वे अवसर की ताक में रहे और शीघ्र ही पंजाब की ओर लौट पड़े, जहाँ नये नये प्रकार के संघर्ष मानों उनकी राह देख रहे थे। एक थे पइन्दा खाँ जो उन्नति की दो एक सीढ़ियों पर चढ़कर स्थानीय रुप से थोड़ी ख्याति अर्जित कर चुके थे। उनकी माँ कभी गुरु हरगोविन्द की दाई रह चुकी थी। अतः गुरु उसे भाई की ही तरह मानते थे, और उस पर उनकी दया कम न थी। गुरु का जेठा लड़का एक बाज़ पाले हुए था। एक दिन वह किसी प्रकार उड़कर पइन्दा खाँ के मकान पर जा पहुचा और पइन्दा खाँ ने उसे पकड़ लिया। वह स्वयम् भी कुछ दिनो से बाज पालने की इच्छा कर रहा था उस एक पक्षी को लेकर जो वाद विवाद प्रारम्भ हुआ, उसी क्रम में यह व्यक्ति गुरु का पक्का शत्रु बन बैठा। गुरु

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गुरु गोविन्द का दुर्भाग्य ही कुछ ऐसा था कि जब भी वे पंजाब में रहते थे तभी कोई न कोई झगड़ा उठ खड़ा होता था। अबकी बार पइन्दाखाँ ही उनका प्रतिद्वन्दी हो उठा। गुरु के ऊपर बाकायदा हमला हुआ और इस संघर्ष में गुरु के बचपन का मित्र स्वयम् उन्हीं की तलवार से मारा गया। इस लड़ाई मे भी वे विजयी हुए। इसी युद्ध में एक अन्य सिपाही तलवार तानकर गुरु की ओर दौड़ा, परन्तु गुरु ने सहज ही उसका वार बचा कर तलवार के एक ही वार से उस सिपाही के दो टुकड़े कर दिए। गुरु ने उसके वार को रोकते हुए कहा 'यों तलवार नहीं चलाते, और फिर अपनी तलवार से उसके दो टुकड़े करते हुए बोले, 'देखो तलवार यों चलायी जाती है।' दबिस्ताँ का लेखक कहता है कि उक्त संघर्ष में गुरु इस प्रकार सहज भाव से तलवार चला रहे थे, मानो शिष्यों को शिक्षा दे रहे हों।

गुरु हरगोविन्द के सम्मुख और भी कठिनाइयाँ थीं। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे एक के बाद एक करके लोग उनके ऊपर झगड़े लादते गये और प्रायः परिस्थितियाँ उन्हें संघर्षों में झोंक देती थीं। इन तमाम कठिनाइयों के बीच सौभाग्य यही था कि सिक्खों की श्रद्धा उनको सदा प्राप्त रही और उनकी दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती रही। अपने मृत्यु काल के समीप उन्हें प्राचीन पारसी धर्म [1] के एक विद्वान साधु से मिलने का अवसर मिला। सतलज के तट पर स्थित कीरतपुर नामक ग्राम में पूरी शान्ति के बीच सन् १६४५ ई० में उनका देहावसान हुआ। यह गाँव उन्हें कहलूर के पहाड़ी सर्दार ने दिया था। उनके शिष्यों की अपार श्रद्धा का प्रमाण उनके अन्तिम संस्कार के समय मिला। एक राजपूत सर्दार गुरु के शरीर को जलाने वाली चिता में कूद पड़ा और उनके साथ ही जलमरा। एक जाट ने भी ऐसा ही किया और अन्य कितने ही लोग इसी प्रकार प्राण देने को तैयार थे, परन्तु अगले गुरु हरराय ने बड़ी ही दृढ़ता पूर्वक उन्हें मना किया [2]।

गुरु हरदेव के गुरुत्व काल में सिक्खों की संख्या बड़ी तेजी से बढ़ी। गुरु अर्जुन की अर्थिक नीति ने गुरु हरगोविन्द की सामरिक नीति से मिल कर

१—दबिस्ता भाग २, पृष्ठ २८०

२- ये बातें दबिस्तां के अनुसार लिखी गयी हैं। दबिस्तां में उनकी मृत्यु तिथि ३री मुहर्रम १०५५ हिजरी (१९ फर्वरी १६४५) दी हुई है। माँलकम कृत 'स्केच' पृष्ठ ३७ तथा फ़ार्स्टर कृत 'ट्रैवेल्स' भाग १ पृष्ठ २९९ के अनुसार उनके मृत्यु का सम्भव वर्ष १६४४ ई० है। सम्भव है कि एक सम्बत् को दूसरे में बदलने से ऐसी गड़बड़ी हो गयी हो।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मुगलसाम्राज्य के अन्तर्गत ही एक इश सत्ता की स्थापना कर दी। शायद अपनी शक्ति से गुरु अनजान नहीं थे और यही कारण है कि दुर्जय आत्म-विश्वास के साथ वे मुसलमानो से मिलते जुलते थे और जब कभी मुसलमान सर्दार झूठे आत्मगौरव का प्रदर्शन करते या करना चाहते थे तो वे तत्काल ही उन्हें रोकने को सन्नद्ध हो जाते थे। उनकी खूबी यही थी कि जीवन की इतनी अधिक व्यस्तताओं के बावजूद वे अपने को कभी भूले नहीं। वे अपने को नानक ही कहा करते थे, क्योंकि सिक्खों का विश्वास था कि नानक के बाद सिक्खों के जितने गुरु हुए, उन सब में नानक की ही प्रेरणा काम कर रही थी। जहाँतक उनके दार्शनिक विचारों का सम्बन्ध है वे उस समय की प्रचलित विचारधारा के परे नहीं जा सके। उनका विचार था कि 'ईश्वर एक है, यह संसार भ्रममात्र है और हम जो कुछ भी देखते हैं, वह वास्तविक नहीं है।' कभी-कभी वे शुद्ध अद्वैत वादियों के ढंग पर सोचते थे और 'सर्वं ब्रह्ममयम् जगत, का प्रचार सा करते प्रतीत होते थे, किन्तु इस प्रकार की विचार धराएँ न तो उनके मस्तिष्क को सन्तुष्ट कर पाती थीं न हृदय को। एक बार एक ब्राह्मण ने क्रोधित होकर गुरु से ही कहा, कि यदि ईश्वर तथा जगत दोनों एक ही हैं तो गुरु तथा (पास चरते हुए एक गधे की ओर इंगित करते हुए) उस गधे को एक ही होना चाहिये, परन्तु गुरु की सहनशक्ति अपार थी। वे ब्राह्मण के इस कथन को सुनकर केवल हँस कर रह गये। गुरु का विचार था कि हमारी अनुभूति और हमारा विवेक यही दोनों स्वर्गीय वस्तुएँ हमें मिली हैं, जो हमारा पथ-प्रदर्शन करती हैं। एक व्यक्ति ने उनसे कहा कि भाई बहिन का आपस में विवाह भगवान द्वारा निषिद्ध है। गुरु ने उत्तर दिया कि यदि यह बात भगवान द्वारा निषिद्ध होती तो भाई बहन में यौन सम्बन्ध असम्भव होता, परन्तु चूँकि भाई बहन का यौन सम्बन्ध सम्भव होते हुए भी निषिद्ध है अतः यह निषेध समाज द्वारा किया गया है न कि ईश्वर द्वारा।[1] मूर्तिपूजा के प्रति उनकी अरुचि और गुरु नानक से उनका सामायिक मत वैभिन्य निम्नलिखित विवरण से स्पष्ट हो जायगा :—एक सिक्ख ने एक देवमूर्ति की नाक उड़ा दी। गुरु से इस बात की शिकायत कई गैरसिक्ख सरदारों ने की। उन्होंने उस सिक्ख को अपने सामने बुलाया। उसने नाक उड़ाने से इनकार किया, किन्तु बड़े ही व्यंगपूर्वक उसने कहा कि 'यदि जिस देवता की नाक कटी है, वह स्वयम् साक्षी दे, तो मैं मरने को प्रस्तुत हूँ।' वादियों ने कहा, 'अरे मूर्ख, मूर्ति कैसे बोलेगी ?'

१—दबिस्ताँ भाग २ पृष्ठ २८०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सिक्ख ने उत्तर दिया, 'मूर्ख कौन है ? यदि मूर्ति स्वयम् अपनी नाक नहीं बचा सकती तो वह तुम्हारी सहायता कैसे करेगी ?'[1]

हरगोविन्द के ज्येष्ठ पुत्र थे गुरदित। उन्होंने पर्याप्त ख्याति अर्जित की थी, किन्तु उनकी मृत्यु गुरु से पहले ही हो गयी। उनके दो पुत्र थे, जिनमें से एक गुरु-पद के अधिकारी हुए[2]। नये गुरु हरराय कुछ समय तक कीरतपुर में ही रहे, परन्तु कई कारणों से कहलूर के राजा को दबाकर आज्ञाकारी बनाना आवश्यक जान पड़ा और इसलिए उन्होंने थोड़ा पूर्व की ओर हटकर सरमोर[3] के जिले को अपना अस्थायी निवास स्थान बनाया। उस स्थान पर वे तब तक बने रहे जब तक सन् १६५८-५९ ई० में परिस्थितियों ने उन्हें दारा का पक्ष ग्रहण करने को विवश न कर दिया। उस समय शाहजहाँ

१—दबिस्ताँ भाग २ पृष्ठ २७६

२—गुरदित या गुरदिता सम्बन्धी कुछ विवरणों के लिये दबिस्ताँ भाग २ का पृष्ठ २८१,२८२ देखना चाहिये। आज भी लोग उनका स्मरण श्रद्धापूर्वक करते हैं। उनकी निजी शक्ति तथा कुशलता के अनके क़िस्से आज भी कहे जाते हैं। उनका स्मारक कीरतपुर में सतलज नदी के तट पर है। सिक्ख लोग आज भी इसे तीर्थ स्थान के समान ही मानते हैं। उनकी मृत्यु के विषय में एक कथा कही जाती है, जिससे यह पता चलता है कि सिक्खों के गुरु लोग सिक्खों की श्रद्धा प्राप्त करने के लिये चमत्कार-पूर्ण होने या बनने को घृणा की दृष्टि से देखते थे। कहते हैं कि एक आदमी की एक गाय मर गयी। वह दौड़ा हुआ गुरदित के पास आया और बड़े ही दुःख से रोने लगा। गुरदित को दया आगयी और उन्होंने तत्क्षण गाय को जिला दिया। कहा जाता है कि उनके पिता ने इस प्रकार से सुयश प्राप्ति को ग़लत बताया और पुत्र की बहुत भर्त्सना की गुरदित ने कहा कि भगवान को एक आत्मा चाहिये थी, उसे मैंने वापस बुला लिया, अतः मैं स्वयम् अपनी आत्मा परमेश्वर को सौंप दूँगा। इतना कह कर वे लेट गये और उनकी आत्मा देह से निकल गयी। हरगोविन्द के कनिष्ठतम पुत्र अदलराय के बारे में भी ऐसी ही एक कथा कही जाती है। उन्होंने भी एक विधवा के मृत पुत्र को जीवित कर दिया था। पिता ने उनको भी बुराभला कहा था। उन्होंने कहा कि गुरुओं के सिद्धान्तों की पवित्रता और जीवन में पवित्रता लाने का प्रयत्न करना चाहिये न कि चमत्कारों द्वारा सस्ती ख्याति प्राप्त करने का।

३—दबिस्ताँ भाग २,२८२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

बीमार पड़ा था और दारा तथा औरंगजेब में सिंहासन प्राप्ति के लिए युद्ध हो रहा था। दारा के भाग्य में असफलता ही लिखी थी। उसके असफल होते ही उसके संगी साथियों में ही विद्रोह फैल गया। फलस्वरूप गुरु हरराय को अपना एक पुत्र बन्धक के रूप में रखना पड़ा। हरराय को सम्मानपूर्वक रक्खा गया और थोड़े ही दिनों बाद उन्हें मुक्त कर दिया गया, परन्तु औरंगजेब की इस राजनीति भरी चाल से गुरु की नाराजी में वृद्धि ही हुई[1]। हरराय का अन्त समीप ही था और कीरतपुर में ही सन् १६६१ ई० में उनकी मृत्यु हो गयी[2]। उनका गुरुत्व काल साधारण सा ही रहा, परन्तु इस काल में भी गुरु के प्रति सिक्खों की श्रद्धा बढ़ती ही रही। आज भी बहुत से सिक्ख लोग अपने को उन लोगों का वंशज कहने में गौरवान्वित समझते हैं, जो गुरु हरराय के समय में गुरु के प्रेमपात्र रहे थे[3]। और भी कितने ही सिक्ख ऐसे हैं जिनके पूर्वज इसी शान्तिपूर्ण अवधि में सिक्ख बने थे[4]।

१—यह बात केवल सिक्ख प्रदत्त विवरणों में ही मिलती है कि गुरु ने दारा का पक्ष लिया था। सम्भव है कि दारा के अति उदार धार्मिक दृष्टिकोण के कारण गुरु उसको मानते रहे हों।

२—केवल एक विवरण ऐसा है, जिसके अनुसार गुरु के मृत्यु १६६२ में हुई, शेष सभी विवरणों में १६६१ ही माना गया है। उनके जन्म सम्वत् के विषय में भी दो सम्वत् (सन् १६२८, व सन् १६२९ ई०) दिये गये हैं।

३—इनमें से भाई भगतू से कैथल परिवार चला है, जिन्होंने लार्ड लेक का साथ दिया था, परन्तु बृटिश शासन की नवीनताओं के कारण यह परिवार अब नाममात्र को ही रह गया है। धर्मसिंह बागरी भाइयों की शाखा के संस्थापक थे। यह स्थान सतलज तथा जमुना नदी के बीच में स्थित है। धर्मसिंह भी हरराय के ही शिष्य थे।

आज तो ऐसी प्रथा सी चल पड़ी है कि चाहे कोई भाइयों का वंशज हो या नहीं, किन्तु पवित्रता में थोड़ी भी ख्याति होने पर सिक्ख लोग किसी को भी भाई का पद दे देते हैं। सोधी और बेदी लोग आज भी अपनी शाखा को उसी मान्यता के अनुसार मानते हैं। सोधी लोग अपने को गोविन्द तथा रामदास का शिष्य कहते हैं।

४—इनमें सुग्री या सुग्रा लोग विशेष प्रख्यात हैं। ये लोग सुच्चा नामक ब्राह्मण के वंशज हैं, जिसका घर लाहौर था। एक खत्री व्यापारी भी हरराय का शिष्य बन गया था, जिसका नाम फत्तू था,

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हरराय के दो पुत्र थे, रामराय, उम्र १५ वर्ष के आसपास तथा हरिकिशन उम्र ६ वर्ष के आसपास, परन्तु रामराय का जन्म धर्मपत्नी से न होकर एक सेविका के गर्भ से हुआ था। इसके अतिरिक्त अपने जीवन काल में ही गुरु हरराय ने हरकिशन को उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था। गुरु पद के लिए इन दोनों भाइयों का विवाद इतना बढ़ा कि इस बात का फैसला मुगल बादशाह के हाथों होने का निश्चय किया गया कि गुरु-पद का अधिकारी कौन बने। कुछ विवरणों के अनुसार औरंगजेब इस विवाद में पड़ना नहीं चाहता था अतः स्वयम् उसकी इच्छा थी कि यह फैसला सिक्ख लोग ही करें, परन्तु कुछ अन्य भरोसे के लेखकों ने इस फैसले का विवरण इस प्रकार दिया है :— राजमहल में औरंगजेब की महारानी ने अपने जैसे ही कपड़े पहना कर कई औरतों को बैठा लिया और दोनों ही दावेदारों से कहा गया कि जो प्रथम बार में ही महारानी को पहचान लेगा उसी को गुरु पद मिल जायगा। कहते हैं कि हरकिशन बिना थोड़ी भी झिझक दिखाये झट महारानी की गोद में जाकर बैठ गये। परिणाम स्वरूप उन्हीं को गुरुपद मिला किन्तु अभी वे दिल्ली में ही थे कि चेचक की बीमारी से उनका देहान्त हो गया[1]।

जिस समय हरकिशन का मृत्युकाल अति समीप था, तो ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने कहा था कि उनका उत्तराधिकारी व्यास नदी के तट पर गोइन्दवाल के समीप बाकला ग्राम में मिलेगा। गुरु की खोज करने वालों को वहीं जाना चाहिये। इस गाँव में हरगोविन्द के अनेक रिश्तेदार रहते थे। तेग़बहादुर उनके पुत्र थे। वे बहुत दिनों तक इधर-उधर घूमते रहे और फिर बहुत दिनों तक पटना में रहने के बाद आकर इसी गाँव में रहने लगे थे। रामराय अपने दावे को बराबर आगे बढ़ाते रहे, परन्तु उनका दल कभी भी विशेष बड़ा न हो पाया। गुरु तेग़बहादुर सामान्यरुपेण गुरु मान लिये गये। इससे गुरु तेग़बहादुर को बड़ी प्रसन्नता हुई मगर उन्होंने अपनी अयोग्यता जता कर कहा कि वे अपने पिता की तलवार बाँधने के योग्य नहीं है। थोड़ा भी समय नहीं बीतने पाया था कि कुछ तो उनके स्वयम् के कामों के कारण[2] और अधिकांश में रामराय कृत विरोधी-कार्यों के कारण स्वयम् गुरु

१—मॉलकम 'स्केच' पृष्ठ ३८; फार्स्टर 'ट्रैवेल्स' भाग १ पृष्ठ २९९। हरकिशन का जन्म सन् १६५६ में हुआ था।

२—देखें मॉलकम कृत 'स्केच' पृष्ठ ३८; फार्स्टर कृत 'ट्रैवेल्स' भाग १ पृष्ठ २९९ तथा ब्राउनी कृत 'इंडियन ट्रैक्ट्स' भाग २ पृष्ठ ३,४। यह बात

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तेग़बहादुर का गुरुत्व भी खतरे में पड़ गया और उनके प्राण तक अरक्षित हो जाने की स्थिति आ गयी। मुग़ल बादशाह ने गुरु तेग़बहादुर को शान्ति का घातक बताकर तथा गुरुपद का अवास्तविक अधिकारी बताकर दिल्ली बुलाया, परन्तु गुरु का सौभाग्य ही था कि जयपुर के सर्दार के रुप में उन्हें एक रक्षक मिल गया। उस राजपूत ने गुरु का समर्थन किया और कहा कि तेग़बहादुर जैसे धार्मिक व्यक्ति तीर्थयात्रा के लिये बनाये गये हैं न कि राजनैतिक कार्यों के लिये। उक्त राजपूत ने मुग़लबादशाह से कहा कि वह शीघ्र ही बंगाल[1] की ओर जानेवाला है और गूरु को वह अपने साथ ही ले जाना चाहता है। गुरु उसी के साथ वास्तव में बंगाल की ओर चले गये। वह कुछ समय तक पटना में रहे और फिर इतिहासकारों का कथन है कि उन्होंने सेना में एक स्थान प्राप्त कर लिया, और आसाम के विरुद्ध की जाने वाली चढ़ाई में उन्होने भाग लिया।

पंजाब के ही लेखकों द्वारा कही गयी है। इस विषय में एक कथा कही जाती है। कहते हैं कि माखन शाह नामक एक सिक्ख बाकला ग्राम से गुज़र रहा था। उसने यह इच्छा प्रगट की कि वह अपने पन्थ के गुरु को कुछ भेंट देना चाहता था। उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उस गाँव में गुरुपद के कई लोग दावेदार थे। अन्त में उसने अपने हाथ में एक थैली ली और गुरुपद के समस्त दावेदारों को एकत्र करके सबको एक रुपया देकर कहा कि उसकी थैली में शेष रुपयों की सही संख्या जो भी बता देगा, वही सच्चा गुरु होगा। जन श्रुति के अनुसार ऐसा माना जाता है कि गुरु तेगबहादुर ने रुपयों की सही संख्या बता दी और तभी से वे गुरु मान लिये गये।

१—फार्स्टर एवम् मॉलकम के अनुसार इस सर्दार के रुप में राजा जयसिंह का नाम लिया जाता है, परन्तु पंजाबी जनश्रुतियों के अनुसार इस सर्दार का नाम बीरसिंह था। कर्नल टॉड के अनुसार आसाम जाने वाला राजपूत सर्दार जयसिंह का पुत्र रामसिंह था। हिन्दुस्तान में प्रायः ऐसा होता है कि लोग अपने को किसी मृत किन्तु मुख्य व्यक्ति से सम्बन्धित करने में गौखान्वित मानते हैं। आज भी पंजाब के अनेक सिक्ख अपने को रणजीत सिंह का सिपाही मानते हैं। ऐसी भी सम्भावना है कि मिर्जाराजा जयसिंह की ख्याति में रामसिंह की ख्याति डूब गयी हो। ऐसा भी हो सकता है कि राजा जयसिंह और सवाई जयसिंह के अन्तर को भी पंजाबी लेखकों ने न समझा हो। मॉलकम एवम् फार्स्टर के अनुसार इसी समय गुरु २ वर्ष तक शाही कैद में रहे थे।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्राय: गुरु ब्रह्मपुत्र के किनारे ध्यान लगाया करते थे। कहते हैं कि कामरुप के राजा पर उनका बड़ा प्रभाव पड़ा और लोगों का पूरा विश्वास है
१६७४-७५ कि इस प्रवास के अन्तिम दिनों उक्त राजा ने सिक्ख सम्प्रदाय के प्रति आस्था[1] प्रगट की थी।

कुछ समय के पश्चात् तेग़बहादुर पंजाब लौटे और थोड़ी सी ज़मीन भी उन्होंने खरीदी, जिसे आजकल मखोवाल कहते हैं। यह स्थान सतलज नदी के किनारे पर है और उनके पिता जी के प्रिय स्थान कीरतपुर के पास ही है। इस स्थान पर भी रामराय के षड्यंत्रों से उनकी परेशानियाँ बढ़ती रहीं; अब भी रामराय की शत्रुतापूर्ण कार्यवाहियों से उनका पीछा न छूट सका था. न रामराय द्वारा प्रभावित क्षेत्रों से उन्हें कोई सहयोग ही मिल पा रहा था। यद्यपि वे एक पवित्र विचारों के निर्दोष धर्म गुरु थे, परन्तु सिक्खों द्वारा लिखित विवरणों से ज्ञात होता है कि दिल्ली दरबार ने एक बार पुन: उन्हें अपराधियों की श्रेणी में ला खड़ा किया था। सत्य तो यही प्रतीत होता है कि तेग़बहादुर जी ठीक उसी नीति का पालन कर रहे थे जिसका निर्धारण उनके पिता ने किया था; वे असाधारण योग्यता के साथ हरगोविन्द जी के चरणचिन्हों पर चल रहे थे। यह भी ज्ञात होता है कि उन्होने अपनी योजनाओं के कार्यान्वयन के लिए जो स्थान चुने थे, वे थे हाँसी और सतलज नदियों के बीच स्थित खण्डहर। इस तथ्य में सत्यता का पर्याप्त अंश अवश्य है कि अपने तथा अपने शिष्यों के भरण-पोषण व अन्य सैनिक व्ययों के लिए उन्हें जहाँ तहाँ लूट-पाट करना पड़ता था, परन्तु उनके सामने जो महान लक्ष्य था, उसपर दृष्टि रखते हुए किसानों को उनके साथ सहानुभूति थी, और कृषक-वर्ग में उनकी लोकप्रियता पर कोई विशेष हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ा था। सिख-विवरणों से यह भी विश्वस्त रुप से ज्ञात होता है कि तेग़बहादुर जी ने आदम हाफ़िज़ नामक एक मुसलमान सन्त से बहुत घनिष्ट सम्पर्क स्थापित कर लिया था। इस हाफ़िज़ की सहायता से तेग़बहादुर जी धनी हिन्दुओं से पर्याप्त धन वसूल किया करते। ठीक उसी प्रकर आदम हाफ़िज भी समृद्धि मुसलमानों से मनमाना धन वसूल कर लिया करता था। दिल्ली दरबार सिक्खों के विरुद्ध तो उसी समय से था, जबसे कि गुरु नानक जी द्वारा इस धर्म की स्थापना हुई थी; और नानक जी की मृत्यु के कुछ वर्षों बाद ही सिक्ख धर्म को इस्लाम् का विरोधी करार देकर उनके दमन एवम्

१—ये अन्तिम दो बाते गुरु तेग़बहादुर की जीवनी के एक संक्षिप्त गुरुमुखी पाण्डुलिपि पर आधारित हैं।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रताड़न के लिए शाही फरमान जारी किया जा चुका था। जैसा कि हम ऊपर देख-चुके हैं, दिल्ली दरबार गुरु तेग़बहादुर जी को एक अपराधी का दर्जा दे चुका था; अतः जब वहाँ यह समाचार पहुँचा कि वे सभी बागियों को अपने यहाँ शरण देते हैं, और उन दोनों--तेग़बहादुर जी तथा आदम हाफ़िज़ के सम्मिलित आतंक से देश की समृद्धि का मार्ग अवरुद्ध हुआ जाता है तो दिल्ली दरबार ने उनके विरुद्ध सीधी कार्यवाही करने का निश्चय किया। शाही सैन्य दलों ने पंजाब की ओर कूच कर दिया और अल्पकालीन संघर्ष के पश्चात् वे दोनों पराजित हुए। मुग़ल सेना ने उन्हें बन्दी बना लिया, और औरंगजेब के समक्ष उपस्थित किया। मुसलमान बागी सन्त, आदम हाफ़िज़ पर औरंगजेब ने कुछ उदारतापूर्वक विचार किया, और उसे देश-निकाले का ही दण्ड दिया, परन्तु हिन्दुओं, और विशेष कर सिक्खों प्रति उसके हृदय में संचित
१६६४-७५ अपार घृणा के कारण उसने गुरु तेगबहादुर को प्राणदण्ड देने का निश्चय किया[1]। जब तेग़बहादुर जी दिल्ली के मार्ग में ही थे, तभी उन्हें औरंगजेब के निश्चय का आभास मिल चुका था, अतः उन्होंने अपने एकमात्र पुत्र गोबिन्द जी को बुलावा भेजा जो अभी किशोरावस्था में ही था। पिता पुत्र के इस हृदयद्रावक मिलन पर गुरु तेग़बहादुर जी ने गोविन्द जी को हरगोबिन्द जी की यशस्वी तलवार का भार सौंपा, और उन्हें सिक्खों का गुरु घोषित किया। उन्होंने इस क्षणिक भेंट में अपने पुत्र को बताया कि उन्हें मृत्यु के मुख में ले जाया जा रहा है। उन्होंने गोविन्द जी को अपनी अन्तिम इच्छाओं का साधक मानते हुए उन्हें आदेश दिया कि मृत्यु के पश्चात् उनके शव को किसी भी मूल्य पर कुत्तों द्वारा नोचे जाने के लिए न छोड़ा जाय, साथ ही उन्होंने अपने किशोर पुत्र को प्रतिहिंसा की महत्ता एवम् आवश्यकता स्पष्ट करते हुए उन्हें सैन्य-संगठन का परामर्श दिया। जब वे बन्दी के रूप में दिल्ली पहुँचे और उन्हें मुग़ल-सम्राट औरंगजेब के समक्ष प्रस्तुत किया गया। जैसा कि तत्कालीन लिखित विवरणों से ज्ञात होता है, बादशाह ने अपमानजनक और व्यंगात्मक ढंग से उनसे कहा

१—सिअर-उल-मुताखरीन' का लेखक गुरु तेगबहादुर जी के लूट पाट तथा इस प्रकार के अन्य आतंकवादी कार्यों का उल्लेख करता है (खण्ड १:११२,११३) तथा तत्कालीन साधारण पाण्डुलिपियों के संकलन भी यह स्वीकार करते हैं कि उन पर ऐसे आरोप लगाए गए थे, परन्तु वे ऐसे आरोपों के प्रति अविश्वास भी प्रकट करते हैं। इन पाण्डुलिपियों के अनुसार मखोवाल के लिए गुरु जी ने कहलूर के राजा को पाँच सौ रुपए दिए थे।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कि वे जिस लक्ष्य तथा जिन ईश्वरीय शक्तियों का हवाला देकर अपने शिष्यों को को उपदेश दिया करते थे, उनके प्रमाण के रूप में दरबार में दैवी चमत्कारों का प्रदर्शन करें। औरंगजेब के इस कथन के उत्तर में तेगबहादुर जी ने प्रशान्त स्वर में कहा कि मनुष्य का कर्तव्य है, सर्वशक्तिमान ईश्वर की आराधना करना। बादशाह कोई चमत्कार देखना ही चाहता है तो वे एक प्रदर्शन करने को प्रस्तुत हैं। उन्होंने कहा कि वे एक मन्त्र लिखेंगे, और जो इस मन्त्र को अपने गले में बाँध लेगा, उसकी गर्दन पर तलवार के तगड़े से तगड़े वार का भी कोई प्रभाव नहीं होगा। उन्होंने इस मन्त्र को अपने ही गले में बाँधा और वधिक को वार करने का संकेत किया। वधिक ने पूरे जोर का हाथ मारा और उनका सिर छिटककर एक ओर जा गिरा। दरबारियों ने जब कौतूहल से उस कागज़ को देखा जिसे गुरु तेगबहादुर जी ने अपने गले में बाँधा था, उन्हें उस पर केवल पाँच शब्द लिखे मिले, और मृत गुरु जी के समक्ष उनके हृदय श्रद्धा से झुक गये; वे पाँचों शब्द थे, "सिर दिया, सिरे (अर्थात् रहस्य, भेद) न दिया।" उन्होंने अपना सिर कटा दिया परन्तु अपना रहस्य या भेद नहीं प्रकट किया, परन्तु उनके इस कृत्य से जो प्रेरणा मिली, उनके देवदूत होने का जो प्रमाण मिला, उससे अब भी ईश्वर भक्तों का पथ प्रदर्शन होता है। उक्त घटना का कोई प्रमाणिक विवरण नहीं मिलता, परन्तु यह एक निश्चित तथ्य है कि गुरु तेगबहादुर को विद्रोही घोषित करके सन् १६७५ ई० में प्राण-दण्ड दिया गया था तथा इस्लाम के कट्टर भक्त औरंगज़ेब ने उनके शव को दिल्ली की सड़कों पर घुमवाया था।[1]

१—सभी उपलब्ध विवरण इस बात पर सहमत हैं कि औरंगजेब ने गुरु तेग़बहादुर के प्राण लेने में अत्यन्त निन्द्य ढंग का प्रयोग किया था। उनके वध के लिए कोई निश्चित तिथि पास नहीं है, परन्तु इतना निश्चित है कि यह घटना सन् १६७५ ई० के अन्तिम चरण की है उनके जन्म के सम्बन्ध में भी कोई तिथि प्रामाणिक रुप से नहीं मिलती, इस सम्बन्ध में भी इतना निश्चित है कि वे सन् १६१२ ई० के पश्चात् तथा १६२१ ई० के पूर्व उत्पन्न हुए थे [कहा जाता है कि प्राणदण्ड दिए जाते समय ही गुरुजी ने मुग़लों के ऊपर गोरों के आधिपत्यसे सम्बन्धित प्रसिद्ध भविष्यवाणी की थी (यद्यपि कुछ आधुनिक आलोचक इस बात को सन्दिग्ध तथा कुछ, कपोलकल्पित भी मानते हैं)। वध के पूर्व, कहा जाता है, उन्होने पूर्ण साहस के साथ मुग़ल-बादशाह औरंगजेब के समक्ष तन कर

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जब हम तेग़बहादुर जी के व्यक्तिगत चरित्र का उपलब्ध सूचनाओं व विवरणों के आधार पर विश्लेषण करते हैं तो ज्ञात होता है कि वे बहुत सख्त किस्म के व्यक्ति थे, उनमें न तो वैसी जिन्दादिली थी जैसी उनके पिता में थी, और न वह मानसिक उच्चता ही थी जो उनकी माँ में थी;

तेग़बहादुर जी का चरित्र एवम् प्रभाव

फिर भी उन्होंने अपने जीवन द्वारा अपने शिष्यों के समक्ष जो उदाहरण प्रस्तुत किया उसने सिक्ख धर्म के प्रवर्तक नानक जी के अनुयायियों को एक धार्मिक जाति के साथ साथ एक सैनिक जाति के रूप में भी संगठित होने में पर्याप्त सहायता पहुँचाई। अपने पिता, हरगोविन्द जी की तलवार के प्रति उनके हृदय में जितनी श्रद्धा थी, तथा जिस ढंग से उन्होंने अपने अनुयायियों को बार बार उस तलवार के उत्तराधिकारी की प्रत्येक आज्ञा का पालन करने का आदेश दिया था उससे यही आभास मिलता है कि उनमें राजसी प्रवृत्ति अधिक थी, धर्मगुरुओं जैसी प्रवृत्ति कम। वास्तव में, उस समय तक सिख गुरु स्वयम् को स्वतंत्र राजा मानने लगे थे, और उनके अनुयायी भी उन्हें 'सच्चा बादशाह' की उपाधि से भूषित करने लगे थे; सम्भवतः इस उपाधि का अर्थ यह था कि वे शस्त्रशक्ति से नहीं, बल्कि अपनी आध्यात्मिक व आत्मिक शक्तियों से अपने शिष्यों पर शासन करते थे। उससे यह अर्थ भी निकाला जा सकता है कि वे सांसारिक बन्धनों से मुक्ति दिलाकर अपने शिष्यों को मोक्ष का मार्ग प्रदर्शित करते थे, जब कि साधारण राजाओं का कार्य केवल प्रजा के सांसारिक कार्यों पर नियन्त्रण रखना होता है। परिस्थितियों के अनुसार उक्त उपाधि को किसी भी अर्थ में ग्रहण किया जा सकता था, और इस उपाधि के रहस्यवादी प्रयोगों के कारण ही

कहा था, "मैं पश्चिम में एक शक्ति का उदय देख रहा हूं जो तुम्हारे साम्राज्य को धूल में मिला देगी।" उनके क्षत शरीर को चार भागों में खण्डित करके दिल्ली के मुख्य नगरद्वारों पर लटका दिया गया; परन्तु सिक्खजन उस भविष्यद्रष्टा के वचनों को भूल न सके। ब्रिटिश शासन के प्रति सिक्खों में जो राजभक्ति थी, उसका मुख्य कारण उक्त भविष्यवाणी सम्बन्धी कथा को ही माना जाता है। सन् १८५७ में वीर पंजाब रेजिमेण्टों के होठों पर यही व्याख्या थी, कि वे अंग्रेजों की सहायता करके अपने उस शहीद गुरु का बदला ले रहे थे जिसे १८० वर्ष पूर्व एक मुग़ल बादशाह ही ने इतने निन्दनीय ढंग से मरवा डाला था (रॉलिन्सन, इण्डियन हिस्टारिकल स्टडीज' पृ. १७७, तथा मैकलिफ, १ खण्ड प्रीफेस, xiii तथा xviii, तथा जिल्द ४.३८१) यह कथा दो सिक्ख लेखकों द्वारा लिखी गई है]।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सम्भवत: मुग़ल-दरबार को गलतफहमी हो गई थी, और वे इस भ्रम के शिकार हो गये थे कि सिक्ख गुरु विद्रोही होने की प्रवृत्ति रखते थे। इसी भ्रम के प्रभाव में आकर एक मुसलमान लेखक लिखता है कि तेग़बहादुर जी हजारों सैनिकों का नेतृत्व करते थे और स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करने की महत्वाकांक्षा रखते थे।[1]

जिस समय गुरु तेगबहादुर सिंह को दिल्ली के मुगल-दरबार ने प्राणदण्ड दिया, उस समय उनके एकमात्र पुत्र गोबिन्द की अवस्था केवल पन्द्रह वर्ष थी।

गुरु तेगबहादुर के उत्तराधिकारी गोबिन्द सन् १६७५ ई.

भूतपूर्व, शहीद गुरु के अपमान पूर्ण अन्त तथा उनकी अन्तिम इच्छाओं ने किशोर गुरु गोबिन्द जी के मस्तिष्क पर अमिट प्रभाव डाला। पिता की मृत्यु के फलस्वरूप उनकी व्यक्तिगत हानि हुई ही, साथ ही देश की भी हुई। जिस दलित तथा प्रताड़ित अवस्था से देश गुजर रहा था, उसके विषय में जब भी विचार करने लगते थे, तो मुसलमानों के नाम से देश ही वे घृणा से भर उठते थे। वे मुसलमानों के कट्टर दुश्मन हो गये। उन्होंने अब इस सम्बन्ध में गम्भीरता पूर्वक विचार करना प्रारम्भ किया कि पद्दलित हिन्दू जाति की सुप्त स्वातंत्र्य-भावना को जागृत करके

१—उक्त विचारों को प्रकट करने वाले लेखक का नाम सैयद गुलाम हुसेन, तथा ग्रंथ का नाम 'सियर-उल-मुताखरीन' (१:११२ है।

'इण्डिया ट्वैक्ट्स' (जिल्द २, पृ. २, ३) में ब्राउन भी यही मत प्रकट करता है कि गुरु तेग़बहादुर जी को औरंगजेब ने इसीलिए मृत्युदण्ड दिया, क्योंकि उसे यह विश्वास हो गया था कि गुरु जी स्वतन्त्र राज्य की स्थापना का प्रयास कर रहे थे; और इसलिए भी कि वे अपने नाम के साथ 'बहादुर' शब्द जोड़ते थे जिससे उनके अभिमान का आभास मिलता था। पीछे गुरु जी के वध से सम्बद्ध जिस कथा का उल्लेख किया गया है, उसके सन्दर्भ में ब्राउन का कथन है कि उन्होंने किसी चमत्कारिक शक्ति के साधक होने के दावे से स्पष्ट इनकार कर दिया था। 'सच्चा बादशाह' की उपाधि के सम्बन्ध में कुछ अन्य विचारों के लिए देखिए आगे परिशिष्ट १३।

तेग़बहादुर जी द्वारा, पिता की तलवार को ग्रहण करने में अनाकानी, तथा अपने अनुयायियों को, अपने उत्तराधिकारी की प्रत्येक आज्ञा का पालन करने का आदेश, ये दोनों घटनाएँ देशी विवरणों के आधार पर दी गई है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उनका सैनिक संगठन किया जाय; वे अपनी शक्ति पहचानें तथा आत्म चैतन्य होकर स्वयम् को मुगलों के अत्याचार से मुक्त करें। परन्तु गुरु गोबिन्द जी की अवस्था अभी बहुत कम थी, अनुभव भी अधिक नहीं था, इसके अतिरिक्त मुगल-दरबार उनके अनुयायियों को सदैव सन्देह की दृष्टि से देखा करता था, तथा उनकी ओर से पूर्ण सतर्क था। स्वयम् सिक्खों में भी आपसी एकता नहीं थी; उनमें ऐसे अनेक दल थे जो तेगबहादुर जी के इस तेजस्वी पुत्र के प्रति द्वेषभाव रखते थे। सिक्खों में यह पारस्परिक मतभेद इस सीमा तक था कि मृत गुरुजी की इस अन्तिम इच्छा की पूर्ति के लिए,—कि मृत्यु के पश्चात् उनका शरीर कुत्तों द्वारा नोचे जाने के लिए मुगलों के पास न छोड़ा जाय कुछ निम्नवर्गीय शिष्य ही तैयार हुए[1], और उन्हीं के उत्साह तथा साहस पर गुरु गोबिन्द व उनके साथियों को सन्तुष्ट होना पड़ा। गोबिन्द जी ने जीवित लोगों के कल्याण, तथा मृतक की शान्ति के लिए मृतक संस्कार की समस्त क्रियाओं को स्वयम् सम्पन्न किया। इसके पश्चात् वे जनजीवन से दूर होकर यमुना नदी के दोनों तटों पर, निचली पर्वतीय श्रेणियों में चले गये और अनेक वर्षों तक चीतों तथा बनैले सुअरों का शिकार करने, फारसी भाषा का ज्ञान प्राप्त करने और अपने मस्तिष्क में उन कथाओं को संकलित करने में लगे रहे जो उनकी जाति के पौराणिक गौरवों का वर्णन करतीं हैं[2]।

गुरु गोबिन्द सिंह जी इसी प्रकार लगभग बीस वर्षों तक एकान्तवास करते रहे;[3] परन्तु युवावस्था में ही या उन्होंने जिस मानसिक उच्चता व दृढ़ता का

१—गुरु तेग़बहादुर के खण्डित शवों को प्राप्त करने के लिये कुछ भंगियों को भेजा गया था, और कहा जाता है कि उनकी सफलता का बहुत कुछ श्रेय मक्खन शाह के प्रयत्नों को था।

२—अधिकांश विवरण इस बात का समर्थन करते हैं कि उनकी युवावस्था का अधिकांश पर्वतीय बनों में ही व्यतीत हुआ था, परन्तु फार्स्टर (ट्रवेल्स : १ : ३०१) तथा कुछ गुरुमुखी विवरणों के अनुसार प्रारम्भ में उन्हें पटना ले जाया गया था, जहाँ कुछ समय तक निवास करने के पश्चात् वे श्रीनर की पहाड़ियों की ओर निकल गए।

३—किसी भी भारतीय अथवा अंग्रेज लेखक ने इस एकान्तवास की कोई निश्चित अवधि नहीं दी है तिथियों एवम् घटनाओं की पारस्परिक तुलना से ऐसा सम्भव प्रतीत होता है कि गोबिन्द जी ने पैंतीस वर्ष की आयु अर्थात् सन् १६९५ ई० के पूर्व गुरुपद का कार्यभार ग्रहण नहीं किया था। मेलकम ('स्केचेज़' पृ. १८६ नोट) द्वारा उद्धृत एक सिक्ख लेखक

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पूर्वाभास दिया था, उससे आकर्षित हो कर गुरु नानक के अनेक शिष्य उनके पास एकत्रित हो गये; उन्हें सिक्खों ने अपने नेता के रूप में मान्यता दी, रामनाम के अनुयायी बहुत सीमित हो गये और उनका एक असन्तुष्ट दल अलग बना रहा। गुरु गोबिन्द जी की श्रेष्ठता की भावना और उनकी महत्वाकांक्षी प्रकृति के आतंक से उनके पड़ोसी सरदार पर्याप्त प्रभावित हुए। परन्तु अपने पिता के दुर्भाग्य, की स्मृति तथा औरंगजेब की दमन पूर्ण धार्मिक कट्टरता उनके लक्ष्य का निर्धारण कर रही थे। अध्ययन तथा चिन्तन से उनका मस्तिष्क काफी विस्तृत हो गया था; संसार के अनुभव ने उनकी निर्णय-शक्ति-को परिपक्वता प्रदान की थी। अपने पिता के वध तथा मुगल दमन-चक्र से पीड़ित जनता का बदला चुकाने की मिश्रित भावनाओं के प्रभाव में आकर उन्होंने अपने अनुयायियों को जागृत कर उन्हें नवजीवन देने तथा नानक की सामान्य संस्थाओं को एक निश्चित लक्ष्य देने का निश्चय किया। एक शक्ति-शाली साम्राज्य की सीमा में ही बैठकर उन्होंने उस साम्राज्य को पलटने के लिए योजनाएँ बनाने में स्वयम् को व्यस्त कर लिया देश में व्याप्त सामाजिक पतन तथा धार्मिक भ्रष्टता में से ही उन्होंने सिक्खों में लक्ष्य के प्रति सन्नद्धता, इच्छा को पूर्ण करने के लिए उत्साह तथा तौर-तरीकों की सादगी आदि सद्गुणों का विकास करने में अपनी सारी शक्ति लगाने का निश्चय किया।[1]

गोबिन्द जी के चरित्र विकास, नए निश्चय, तथा लक्ष्य

१६७५-१७०८

गोबिन्द जी जितने वीर और साहसी थे, उतने ही गम्भीर और क्रमवद्ध भी; परन्तु उन्होंने एक प्रमत्त वंचक अथवा आत्मप्रवंचक उत्साही व्यक्ति के रूप में ग्रहण

गुरु गोबिन्द सिंह द्वारा किए गए नएसुधारों का प्रारम्भ समय सन् १६९६ ई० मानता है, परन्तु कुछ अन्य सूत्रों के अनुसार गोबिन्द जी के कुछ लेख एवम् वचन, लगभग इसी समय, दक्षिणी भारत में निकले थे, जहाँ वे अपनी मृत्यु के कुछ ही समय पूर्व पहूंचे थे।

१—साधारण विवरणों के अनुसार गोबिन्द जी ने भी अपने पितामह की भाँति, मुग़लों से अपने पिता का बदला लेने के लिए युद्ध प्रारम्भ किया था। पर गोबिन्द जी द्वारा मुग़लों का विरोध किए जाने की पृष्ठभूमि में अन्य लक्ष्य भी थे, इससे इनकार नहीं किया जा सकता; यह अवश्य है कि मुख्य प्रेरक कारण, प्रतिहिंसा की भावना ही थी।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

किया जाना आवश्यक नहीं है। उनका विचार था कि लोगों के मस्तिष्क को महान लक्ष्यों के प्रति सचेष्ट किया जा सकता था। विश्वव्यापी भ्रष्टाचार से वे सदा चिन्तित रहते थे, वे मुगलों के अत्याचारों के सबल प्रतिरोध की आकांक्षा रखते थे जिनसे उनका स्वयम् अपना जीवन संकट में पड़ा हुआ था और उनका विश्वास था कि मानवीय इच्छा की प्रसुप्त शक्तियों को जागृत करने के लिए एक नए प्रकार के गुरु के प्रकट होने का समय आ पहुँचा था। इस समय उनके मस्तिष्क में भूत-कालीन वीरों तथा योद्धाओं की स्मृति गूँजने लगी थी, उनकी कल्पना-शक्ति विश्व के लिए एक नवीन धर्म व्यवस्था की रूपरेखा बनाने के लिए भटक रही थी, और उनके मन में सम्भवतः यह भावना भी घर कर गई थी कि उनका जन्म किसी असाधारण कार्य को पूर्ण करने के लिए हुआ था।[1] एक उपलब्ध, प्रामाणिक ग्रंथ में[2] गुरु गोबिन्द जी अपने को प्राचीन राजाओं का वंशज सिद्ध करते हैं तथा अपने माता पिता की धार्मिकता का गुणगान करते हैं, जिन्हें धर्म के प्रति भक्ति के कारण ही ईश्वर ने अपने चरणों में स्थान दिया था। उनका कहना है कि स्वयम् उनकी अनवतरित आत्मा स्वर्गीय आनन्द का उप-भोग करती हुई, ध्यानावस्था में मग्न थी; उसी समय उस आत्मा के कानों को कुछ ऐसा सुनाई पड़ा कि उसे ईश्वर के दूत तथा नानक जी की आत्मा के उत्तराधिकारी के रूप में पृथ्वी पर प्रकट होना है, तथा नानक जी की आत्मा ठीक उसी प्रकार उसमें आ गई जिस प्रकार एक दीपक अपनी लौ, दूसरे दीपक को देता है। इसी प्रसंग में वे आगे वर्णन करते हैं कि किस प्रकार मानवों की क्रूरता को

१६७५–१७०८

सुधारने के लिए दैत्यों को पृथ्वी पर भेजा गया और वे ऐसा करने में असफल रहे, और किस प्राकर उनके बाद आने वाले देवताओं ने शिव, ब्रह्मा तथा विष्णु के रूप में स्वयम् को मानवों का आराध्य बना लिया, किस प्रकार सिद्धों ने विभिन्न सम्प्रदायों की स्थापना की, किस प्रकार गोरखनाथ तथा रामानन्द ने आराधना

१—मानवीय इच्छाशक्ति एवम् कारणों के परे किसी मानवेत्तर शक्ति द्वारा प्रेरित होने के दावे को आत्मवंचना या पागलपन मानना आवश्यक नहीं है। विश्व इतिहास में, मस्तिष्क की एक विशेष क्रिया के रुप में इस प्रकार के विश्वास के अनेक दृष्टान्त मिलते हैं, चाहे वे काव्य-रचना के सम्बन्ध में हों या वास्तविक जीवन के लिखित अनुभवों के रुप में हो।

२—'विचित्र नाटक' जो 'दसवीं बादशाह का ग्रंथ का एक भाग है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

की अन्य विधियों का प्रचार किया, और किस प्रकार मुहम्मद साहब ने लोगों को उस बात के लिए प्रेरित किया था कि अल्लाह के नाम को याद करते समय स्वयम् उनके नाम की याद भी की जाय। गुरु गोबिन्द जी आगे लिखते हैं कि इस प्रकार प्रत्येक नवीन धर्म-व्यवस्थापक ने अपनी विधियों व व्यवस्थाओं की स्थापना की, तथा संसार को ग़लत रास्तों पर भटकाया, परन्तु अब वे (गोबिन्द जी) पूर्ण धर्म का उद्घोष करने के साथ सद्गुणों के प्रसार तथा पाप के विनाश के लिए पृथ्वी पर आ गए थे। उन्होंने कहा कि इस प्रकार वे एक स्पष्ट लक्ष्य लेकर पैदा हुए थे, परन्तु वे भी अन्य मनुष्यों की भाँति, सर्वशक्तिमान ईश्वर के एक दास मात्र थे, वे भी उसकी सृष्टि के आश्चर्यों के एक सामान्य द्रष्टामात्र थे; उन्होंने बन्दों को चेतावनी दी कि जो कोई भी उन्हें ईश्वर का दूत मानकर उनकी पूजा करेगा, उसे अवश्य ही अनन्त ज्वाला का दाह सहन करना पड़ेगा। मुसलमानों तथा हिन्दुओं में प्रचलित आराधना की विधियों को उन्होंने निरर्थक बताया, उनके अनुसार कुरान तथा पुराणों का पाठ करना व्यर्थ की चीजें हैं, और मूर्तियों के भक्त तथा मृतकों के पूजक कभी भी स्वर्गीय आनन्द का उपभोग करने में समर्थ नहीं हो सकेंगे। उन्होंने लिखा कि ईश्वर को न तो ग्रंथों में ढूँढ़ा जा सकता है न विभिन्न सम्प्रदायों की परस्पर-विरोधी आराधना-विधियों में, बल्कि उसे तो केवल नम्रता तथा श्रद्धा से प्राप्त किया जा सकता है।[1]

यही है वह विधि, जिससे गुरु गोबिन्द जी ने मनुष्यों के मुख्य कर्तव्य को स्पष्ट किया; परन्तु उनके अनुयायियों ने उनके द्वारा प्राप्त ईश्करीय दर्शन को एक सांसारिक रूप दे दिया है। उनके विषय में कहा जाता है कि उन्होंने नैना नामक पहाड़ी की चोटी पर देवी जगदम्बा को प्रसन्न करने के लिए कठोर तपस्या की थी, और देवी का दर्शन मिलने पर उनसे यह पूछा था कि महाभारत काल में अर्जुन किस प्रकार एक ही बाण में सहस्रों का विनाश कर डालते थे। इस किंवदन्ती के अनुसार देवी जगदम्बा ने उन्हें बताया कि अर्जुन ने ऐसी शक्ति को प्रार्थना तथा बलिदान द्वारा प्राप्त किया था। गुरु गोबिन्द जी ने देवी का संकेत समझ कर बनारस से एक विख्यात पण्डित को आमंत्रित किया जो अदृश्य तथा इन्द्रियों से परे स्थित विश्व के सम्बन्ध में विशेष ज्ञान व शक्ति के अधिकारी के रूप में पर्याप्त ख्याति अर्जित कर चुका था। उस पण्डित के निर्देशन

१—देखिए मेलकम द्वारा उद्धृत 'विचित्र नाटक' के अंश; ('स्केचेज़, पृष्ठ १७२)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

में स्वयम् गुरु गोबिन्द जी ने बहुत सावधानी से वेदों अध्ययन किया। बनारस के पण्डित ने जिस विशाल यज्ञ का आयोजन किया था, उसमें सहायता पहुँचाने के लिए गोबिन्द जी ने अपने अगणित शिष्यों को बुला भेजा। अपने समस्त शिष्यों के समक्ष वे उस ऐन्द्रजालिक ब्राह्मण की परीक्षा लेते हैं, जिसमें वह खरा उतरता है, और तब हवन या होम के लिए एक विस्तृत वेदी बनाई जाती है। गुरु गोबिन्द जी को बताया जाता है कि एक सशस्त्र छाया के रूप में देवी उनके समक्ष प्रकट होंगी, और फिर बिना साहस खोए, वे उनका आह्वान करके मनचाहा वरदान माँग लें। जब देवी छायारूप में प्रकट हुईं गुरु गोबिन्द जी कुछ ऐसी भयपूर्ण मनः स्थिति में आ गए कि वे बोल ही न सके; उन्होंने प्रणाम की मुद्रा में अपनी तलवार आगे बढ़ा दी। स्वीकृति के प्रतीक रूप में देवी ने उनकी तलवार को स्पर्श कर दिया और ज्वालाओं के मध्य में दैवी अस्त्र के रूप में लोहे की एक चमकती हुई कुल्हाड़ी दिखाई पड़ी। देवी के इस चिन्ह को शुभ माना गया, परन्तु चूँकि देवी के प्रकट होने पर वे भयभीत हो गए, थे, अतः यज्ञ को अपूर्ण माना गया; जिसके दण्ड के रूप में बनारस के उस पण्डित ने यह व्यवस्था दी कि या तो स्वयम् गोबिन्द जी मरने के लिए तैयार रहें या देवी की सन्तुष्ट करने के लिए किसी ऐसे व्यक्ति की बलि चढ़ावें जो उनको सबसे अधिक प्रिय हो, और तभी उनके नवीन धर्म की विजय का डंका बज सकता था। गुरुजी बड़ी उदासी से मुस्कराए। उन्होंने शिष्यों के समक्ष कहा कि उन्हें अपने प्राणों का कोई मोह नहीं है, परन्तु अभी उन्हें सिक्खों के लिए बहुत कुछ करना है, और उनके पिता की आत्मा अभी भी असन्तुष्ट है, क्योंकि उनकी मृत्यु का बदला नहीं लिया जा सका है। उन्होंने अपने बच्चों की ओर देखा, परन्तु ममता ने उन्हें उनके ही बच्चों का बलिदान करने की कल्पना से भी विरत कर दिया; उसी समय पच्चीस शिष्य भीड़ में से बाहर आ गए और उन्होंने स्वेच्छा से धर्म तथा गुरु के लिए बलिवेदी पर चढ़ने के लिए तत्पर हो गए। गुरुजी ने उनमें से एक को चुना और भरे हुए हृदय से उसकी बलि चढ़ाकर भाग्य-देवी को सन्तुष्ट किया गया।[1]

१—थोड़े बहुत अन्तरों के साथ यह कथा कई पुस्तकों में मिलती है देखिए मेलकम कृत 'स्केचेज़' पृ० ५३, नोट, तथा मैकग्रेगर लिखित 'हिस्ट्री ऑव द सिख्स' (ज़िल्द १:७१)। सम्भवतः इस किंवदन्ती की उत्पत्ति उस प्रसिद्ध घटना पर आधारित है जब गुरुगोबिन्द सिंह जी ने सुप्तावस्था में उक्त महान देवी के दर्शन किए थे (मेलकम, पृ० १८७) इस घटना का समय मेलकम सन् १६९६ ई० मानता है (स्केचेज़, पृ० ८६)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

लिखित विवरणों से ज्ञात होता है कि इसके पश्चात् उन्होंने पुनः अपने अनुयायियों की एक सभा का आयोजन किया, और उनके समक्ष अपने नवीन धर्म की मुख्य बातों को स्पष्ट किया । एक नए धर्म की घोषणा की गई, और खालस[1] की स्वतन्त्र सत्ता का भी उद्घोष किया गया। इस सभा में उन्होंने जिन बातों पर मुख्य रूप से जोर दिया, वे इस प्रकार हैं ईश्वर की आराधना सत्यता एवम् श्रद्धा के साथ की जानी चाहिए; परन्तु उस सर्वव्यापी प्रभु का कोई प्रतिरूप बनाकर उसकी महत्ता को कम नहीं किया जाना चाहिए; ईश्वर की सत्ता का अनुभव वही कर सकता है जो खालास् के सामान्य रूप पर श्रद्धा रखता हो।[2] समस्त मानव समान हैं; निम्नतम वर्ग के लोग भी ईश्वर की दृष्टि में उच्चतम वर्ग के लोगों के समान हैं; जाति, भेद को भूल जाना चाहिये, चारों जातियों के लोगों को गुरु जी से ही दीक्षा लेनी चाहिए[3], और उन्हें सारे भेदभाव भूलकर एक ही बर्तन में से खाना चाहिए; तुर्कों का विनाश किया जाना चाहिए और मुस्लिम पीरों की मंजारों को उपेक्षित करना चाहिए; हिन्दुओं के धार्मिक तौर तरीकों व कर्मकाण्डों को तिलाजंल दे देना चाहिए; ब्रह्मणों का अपना यज्ञोपवीत तोड़ देना चाहिए; केवल खालसा को ही एक मात्र साधन मानने से ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। सिक्खों को अपने धर्म के नाम पर सब कुछ समर्पित कर देना चाहिए; और गुरु को ही एकमात्र पथप्रदर्शक मानना चाहिए।

१६७५-१७०८

गुरु गोविंद जी द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत

१—'खालस' या 'खालीस' अरबी भाषा से उत्पन्न शब्द है जिसका प्रयोग 'शुद्ध, विशेष, या स्वतन्त्र, मुक्त' आदि के अर्थों में होता है। भारत में इस शब्द का प्रयोग किसी स्वतन्त्र सरदार या राज्य के अधिकार क्षेत्र के लिए किया जाता है। इस प्रकार खालस शब्द 'गोबिन्द जी के राज्य' को अर्थ दे सकता है, या फिर इससे यह अर्थ निकाला जा सकता है कि सिक्ख ईश्वर द्वारा चुनी हुई जाति है।

२—यह आश्वासन 'रेहेत नमेह' में दिया गया है, 'जो ग्रंथ' में सम्मिलित नहीं है। उसी रचना में वे कहते हैं, या उन्हें यह कहते प्रदर्शित किया गया है, कि गुरु को देखने की इच्छा रखने वाला व्यक्ति उन्हें खालसा में देख सकता है।

३—पाहुल (जिसका उच्चारण पौल 'या' 'पाउल' रुप में भी किया जाता है) का शाब्दिक अर्थ होता है द्वार; यहाँ तात्पर दीक्षा से है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उनके शब्दों को 'कृत्नश, कुल्नश धर्म्नश और कर्म्नश' अर्थात् व्यवसाय, कुल, धार्मिक विश्वास तथा कर्मकाण्डों के भेदभाव से परे होना चाहिए। 'ऐसा करो, और विश्व तुम्हारा है," गुरु गोविन्द जी ने कहा।[1] उनके बहुत से ब्राह्मण और क्षत्रिय अनुयायी गुरुजी के इन सुधारवादी

१६७५-१७०८ वचनों एवम् प्रयत्नों के विरुद्ध मन ही मन भुनभुनाए परन्तु निम्नवर्गीय लोगों ने अपार प्रसन्नता व्यक्त की; उन्होंने गुरु गोबिन्द जी को स्मरण दिलाया कि उनके वर्ग में गुरु के प्रति कितनी अधिक सेवा भावना तथा भक्ति थी; उन्होंने समय समय पर देश व जाति की जो सेवाएँ की थीं, उनकी याद दिलाते हुए, गुरु जी से उन लोगों ने विनती की कि उन्हें भी पवित्र सरोवर में स्नान करने और अमृतसर के पवित्र गुरुद्वारे में प्रार्थना करने की अनुमति दी जाय। उच्चवर्गीय लोगों के असन्तोष में वृद्धि हुई, और बहुतों ने स्वयम् को गुरु गोविन्द जी के पक्ष से अलग कर लिया, परन्तु वे अपने इस निश्चय पर अटल रहे कि दलितों को ऊपर उठाया ही जाना चाहिए; उन्होंने यह भी कहा कि आगे से घृणा की दृष्टि से देखे जाने वाले इन लोगों का निवास उनके बगल में ही होगा।[2] इसके पश्चात् गोबिन्द जी ने एक पात्र में जल गिराया, और

१—अन्य विवरणों में भी यही शब्द मिलते हैं यद्यपि यहाँ यह कुछ संक्षिप्त रुप में है, जबकि अन्य विवरणों में काफ़ी विस्तार है, भाव यही हैं। इस सम्बन्ध में देखिए मेलकम लिखित 'स्केच', पृ० १४८, १५१।

२—जैसा कि पीछे लिखा जा चुका है, चरहस या झाड़ू लगाने वाली जाति के लोग ही गुरु तेग़बहादुर का शव दिल्ली से ले आये थे। इस घृणित जाति के अनेक सदस्यों ने पंजाब में सिक्ख धर्म ग्रहण कर लिया है, और सामान्यतः उन्हें रगरेट सिक्ख कहा जाता है। 'रंग़घर' का प्रयोग दिल्ली के आस-पास के उन राजपूतों के लिए किया जाता है, जिन्होंने इस्लाम कबूल कर लिया है, परन्तु मालवा में लूट पाट करने वाले राजपूतों के लिये भी 'रंगघर' शब्द का ही प्रयोग होता है, जिसकी उत्पत्ति सम्भवतः 'रंक' से हुई है जो 'राना' का विपरीतार्थी शब्द है, 'रंगरेट' शब्द भी 'रंग' की अपेक्षा 'रंक' से ही अधिक घनिष्ठता प्रकट करता है। रंगरेट सिक्खों को कभी कभी 'मजहबी' भी कहा जता है, क्योंकि जिन लोगों ने इस्लाम छोड़कर सिक्खधर्म ग्रहण किया है, उन्हें इसी नाम से पुकारा जाता है; और भारत में बहुत से भंगियों ने इस्लामग्रहण कर रक्खा है।

[भूतकाल में इन मज़हबियों ने अच्छे सैनिकों के रुप में ख्याति प्राप्त की थी, और आज भी वे अच्छे सैनिक माने जाते हैं। उन्हें प्रायः पायनियर रेजिमेण्ट्स—२३ वीं, ३२ वीं तथा ३४ वीं—में लिया जाता है, और इन

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इसे उसी कुल्हाड़ी तलवार से हिलाया जिसे देवी ने हस्तस्पर्श से पवित्र बना दिया था संयोग वश उसी समय गोबिन्द जी की धर्मपत्नी हाथ के थाल में पाँच प्रकार के, छूत से भ्रष्ट होने वाले खाद्य पदार्थों के साथ उधर से गुज़रीं। गोबिन्द जी ने इसे एक शुभ शकुन माना, क्योंकि उनके अनुसार ऐसे अवसर पर किसी स्त्री के आ जाने का अर्थ यह हुआ कि खाल्स की संख्या बढ़कर उतनी ही अधिक हो जायगी, जितनी वनों में पत्तियों की होती है। उन्होंने जल में शक्कर मिलाया और इसका एक भाग अपने पाँच श्रद्धालु शिष्यों पर छिड़का जिनमें एक और एक क्षत्रिय को छोड़कर शेष तीनों शूद्र थे। गुरु जी ने उन्हें 'सिंह' कह कर सम्बोधित किया, और उन्हें खाल्स घोषित किया। उन्होंने सर्वप्रथम उन्हीं पाँचों से स्वयम्

१६७५-१७०८

सिंह वर्ग की दीक्षा

रेजिमेण्टों ने अनेक अभिमानों में नाम कमाया है। सितम्बर १९०९ के 'ब्लैकवुड मैगज़ीन' के एक लेख में मि० कैण्डलर ने लिखा है; "सिक्ख होकर अपने को ऊँचा उठाने के प्रति निम्नजातीय हिन्दुओं की अनिच्छा की व्याख्या मज़हबियों के ऐतिहासिक अपवाद द्वारा की जा सकती है। घृणित भंगियों से मुस्लिम धर्म ग्रहण करने वालों की सन्तानों का स्वागत खाल्स द्वारा ऐसे समय किया गया जब कि वे (सिक्ख) इस्लाम की शक्तियों के विरुद्ध अन्तिम निर्णय तक युद्ध करने में व्यस्त थे; परन्तु जब सिक्खों ने पंजाब पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया तो उन्होंने (मज़हबियों ने) अनुभव किया कि उन्हें जिस समानता का आश्वासन, (सिक्ख) धर्म देता था, उसका अस्तित्व सिद्धान्त के रूप में ही था, वास्तविक नहीं। जाट और खाल्स सिक्खों के वंशजों के मध्य उनकी स्थिति वैसी ही हो गई, जैसी कि उनके पूर्वजों भंगियों की हिन्दुओं के मध्य थी; उन्हें समस्त सुविधाओं से वंचित कर दिया गया और कुछ समय के लिए उनका सेना में प्रवेश करना भी निषिद्ध हो गया था।

सन् १९१२ की जनगणना के अनुसार, मज़हबियों की जनसंख्या २१,६६१ थी। अब उन्होंने पशुपालन तथा खेती को अपना व्यवसाय बना लिया है—सम्पादक]।

हिन्दुओं को नवजीवन की आशा देने के सम्बन्ध में, कहा जाता है कि गोबिन्द जी ने कहा था कि वे 'गौरैया को भी बाज पर वार करना' सिखा देंगे (देखिए मेलकम, 'स्केच,' पृ० ७४)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

स्वधर्म की पाहुल या दीक्षा ग्रहण की। उन्होंने इसी दिन से अपने को गोबिन्द सिंह कहना प्रारम्भ किया, और उन पाँचों शिष्यों से कहा कि इसके पश्चात् जब कभी वे पाँचों सच्चे सिक्ख एक स्थान पर एकत्रित होंगे, तो वहाँ वे (अर्थात् गुरुजी) स्वयम् ही उपस्थित माने जाँयगे।[1]

इस प्रकार गुरु गोबिन्द जी ने सभी सामाजिक भेदों को समाप्त कर दिया।[2] उन्होंने अपने अनुयायियों को उन समस्त बन्धनों से मुक्त करके उन्हें मानसिक स्वतन्त्रता का उपभोग करने की योग्यता दी जो अन्ध विश्वासों तथा प्राचीन रीतिरिवाजों के रूप में उनके गले में फन्दा डालकर उन्हें पीछे खींचते रहे थे; परन्तु गुरु जी ने अनुभव किया कि मस्तिष्क को सन्तुष्ट करने के साथ-साथ सिक्खों के हृदय को भी सन्तुष्ट करने का प्रयास किए बिना वे अपने अनुयायियों को पूर्ण रूप से आश्वस्त न कर सकेंगे; उन्होंने सोचा कि सिक्खों को एक संगठन-सूत्र में आबद्ध करने के लिए कुछ ऐसे बन्धनों की रचना की जानी चाहिए, जिनसे निर्बलों को उनके नवजीवन का अनुभव हो सके, तथा खाल्स के प्रति उनकी भक्ति तथा श्रद्धा

१६७५-१७०८

१—जिन पाँच शिष्यों को इस समय गोबिन्द जी ने दीक्षित किया था, उनमें से ब्राह्मण शिष्य को दक्षिणी भारत तथा क्षत्रिय को पंजाब का निवासी बताया गया है; शूद्रों में से एक भींवर (कहार) था जो जगन्नाथ का निवासी था; दूसरा हस्तिनापुर का एक जाट, तथा तीसरा गुजरात स्थित द्वारका का एक छीम्बा या रंगरेज़ था।

गुरुजी की उपस्थिति का आभास देवेवाली इस पाँच शिष्यों की समिति के सम्बन्ध में विशेष विवरण के लिए देखिए मेलकम कृत' स्केच, पृ. १८६। [गोबिन्द सिंह जी के शिष्यों के पास जिन वस्तुओं का सदैव रहना आवश्यक है, उनकी संख्या भी पाँच ही है—केश, खण्ड, कंघा, कड़ा और कच]

गोबिन्द जी अपने नाम के साथ पहले 'राय' जोड़ते थे, जिसका प्रयोग हिन्दुओं के अनेक वर्गों में होता है; सैनिक मराठा भी अपने नाम के साथ इसी से मिलता जुलता शब्द 'राव' जोड़ते हैं; परन्तु जब गुरु जी ने पूरा सुधार किया तो उन्होंने 'राय' को भी समाप्त करके स्वयम् अपने, तथा अपने अनुयायियों के लिए 'सिंह' का प्रयोग आरम्भ किया जिसका प्रयोग क्षत्रियों द्वारा किया जाता है। प्रायः अजनबी लोग सिक्खों को 'सिंह जी' या सरदार जी कहते हैं।

२—देखिये परिशिष्ट १०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

में वृद्धि हो सके। गुरु गोबिन्द सिंह जी ने उनके लिए निम्न व्यवस्थाएँ कीं--वे उक्त पाँच श्रद्धालु भक्तों द्वारा जल छिड़कवा कर दीक्षा प्राप्त करेंगे,[1] और एक ही अदृश्य व निराकार ईश्वर की उपासना करेंगे; वे आदि गुरु नानक जी तथा उनके उत्तराधिकारियों का स्मरण सम्मान के साथ करेंगे;[2] वे आपस में मिलने पर अभिवादन के रूप में 'वाह गुरु'[3] का उच्चारण करेंगे, परन्तु वे 'ग्रन्थ'[4] के अतिरिक्त अन्य किसी भी दृश्य शक्ति के सामने सर नहीं झुकाएँगे जो उनका धर्म ग्रंथ है। उन्हें समय समय पर अमृतसर के पवित्र सरोवर में स्नान करना चाहिए; उन्हें अपने केशों को नहीं कटवाना चाहिए; सभी को अपने नाम के साथ 'सिंह' लगाना चाहिए, तथा समस्त भौतिक वस्तुओं में से उन्हें अपनी सारी शक्ति को केवल लोहे (तलवार) पर ही व्यय करना चाहिए।[5] उन्हें अपने व्यक्तित्व को अस्त्रों से सज्जित व गौरवान्वित करना चाहिए; उन्हें सदैव युद्धरत रहना चाहिए, और उस व्यक्ति को महान माना जायगा जो अगली पंक्ति में लड़ेगा, शत्रु का बध करेगा और पराजित होने पर भी हिम्मत नहीं हारेगा। गुरु गोबिन्द जी ने अपने अनुयायियों को आदेश दिया कि वे सिक्खों के निम्नलिखित वर्गों को पूर्णतः बहिष्कृत करें--धिरमली, या वे लोग जिन्होंने अर्जुन जी को विनष्ट करने की अभिसन्धि में सहयोग दिया था; राम-राय के वंशज जो उनके पिता तेगबहादुर जी की मृत्यु के कारणों में से एक थे; तथा मसन्दी, जिन्होंने स्वयम् उनके अधिकार को चुनौती दी थी। वे इमक्षु-

---

१—देखिए परिशिष्ट ११।

२—सिक्खों में यह विश्वास प्रचलित है कि आदि गुरु नानक जी की व्यक्तिगत आत्मा उनके प्रत्येक उत्तराधिकारी में समाविष्ट होती है; विचित्र नाटक' में गुरु गोबिन्द सिंह जो इस विश्वास की समता दीप करते हैं जो अपनी लौ दूसरे दीप को देकर उसे भी ज्योति दे देता है।

३—देखिए परिशिष्ट १२।

४—केवल 'ग्रंथ साहब' के समक्ष ही सर झुकाने की व्यवस्था 'राहत-नामा' में मिलती है; वास्तव में गुरु गोबिन्द जी अपने अनुयायियों को मूर्तिपूजा से बचाना चाहते थे; उन्हें भय था कि कहीं लोग उन्हीं को देवता मानकर उनकी पूजा न करने लगें, अतः उन्होंने ऐसे लोगों को 'विचित्र नाटक' में पहले ही सचेत कर दिया था।

५—देखिए परिशिष्ट १३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

१६७५-१७०८

विहीन, अर्थात बिना मूँछ दाढ़ी वाले लोगों के विरुद्ध थे जिनसे उनका तात्पर्य हिन्दुओं व मुसलमानों से था; उन्होंने एक घृणित प्रथा के उन गुलामों की भी तिव्र निन्दा की जो घर में कन्याओं के जन्म लेते ही उनका बध कर डालते थे।[1]

गुरु गोबिन्द जी ने इस दृष्टि से एक महान विजय प्राप्त की थी; वे अपने अनुयायियों की कल्पना के एकछत्र स्वामी, और लोकप्रिय जननायक बन चुके थे, परन्तु अभी उनका मुख्य लक्ष्य तो उनके सामने ही पड़ा था जिसकी प्राप्ति के लिए वह अभी कोई ठोस कदम नहीं उठा पाए थे; अभी वे मुग़ल अत्याचारियों के साम्राज्य के विनाश के लिए अभी तक उन्होंने कोई सक्रियता नहीं दिखाई थी, और इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए अत्यधिक श्रम अपेक्षित था। उन्होंने हिन्दुओं की भ्रान्ति तथा मुसलमानों की गलतियों के बीच ईश्वर द्वारा नियंत्रित माने जाने वाले खाल्स की स्थापना करके सिहों की एक नवीन जाति को जन्म दिया था। उन्होंने सिक्खों को पीरों, मुल्लाओं, साधुओं और पण्डितों के जाल से मुक्त कर लिया था, परन्तु अभी भी उनके सामने एक शक्तिशाली सम्राट की सेनाओं के विध्वन्स का श्रमसाध्य कार्य पड़ा हुआ था; उन्होंने उन जातियों को भी पराजित करने का संकल्प कर रखा था जिनके धर्मों की वे प्रायः निन्दा किया करते थे। जिन लोगों ने प्राचीन रोम की दृढ़ सत्ता तथा नियमित व स्थिर नीति का अध्ययन किया है और जो रोज़ ही आधुनिक यूरोप के सुव्यस्थित सरकारों के संसाधनों एवम् शक्ति को देखते सुनते हैं उनके लिए गुरु गोविन्द जी की सामरिक योजनाएँ अत्यन्त हृदयहीन एवम् बर्बर प्रतीत होंगी, परन्तु पश्चिम के कुछ अर्धसभ्य राज्यों के समान ही पूर्व के विस्तृत सीमा वाले साम्राज्य कभी भी बहुसंख्यकों के दृढ़ व सयंत विचारों व सिद्धान्तों पर आधारित नहीं रहे हैं; वे प्रायः एक ही जनजाति के राजवंश द्वारा संचालित रहे हैं जिन्होंने अवसर पाते ही अपनी युद्ध प्रियता के कारण शीघ्रातिशीघ्र अपने प्रभाव क्षेत्र का विस्तार कर लिया, और उनके नेताओं ने अपनी प्रतिभा से अधिकृत क्षेत्रों पर अपना प्रभुत्व बनाए रक्खा। यहाँ सदैव एक जाति, दूसरी से राज्य छीनती रही है, और साधारण जनता ने राजाओं व राजवंशों के सम्बन्ध में कभी विशेष रुचि नहीं ली है। जिस कार्य को साइरस ने अपने परशियनों की सहायता से,

गोविन्द जी द्वारा संघर्ष के निश्चय के समय मुगलों की दशा

१—देखिए परिशिष्ट १४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तथा शार्लमेन ने अपने फ्रैंकों की सहायता से किसी प्रकार पूरा किया; उस कार्य को बाबर ने कुछ इने गिने तातारी सैनिकों के साथ प्रारम्भ किया, और अकबर ने मुट्ठी भर तातारी सहयोगियों की सहायता से अपने पितामह द्वारा प्रारम्भ किया गया कार्य पूर्ण कर डाला। मुगलों ने जिस साम्राज्य की स्थापना की, उस पर उनका नियंत्रण बहुत ही ढीला था; बाबर के विश्वस्त सहायकों व सैनिकों की संख्या अत्यल्प थी; उसके पुत्र हुमायूँ को राज्य छोड़कर भागना पड़ा, और हुमायूँ का पुत्र अकबर अंशतः राजनीतिक दूरदर्शिता तथा स्वभावगत उदार सहानुभूति, तथा अंशतः व्यक्तिगत साहसिकता तथा अपने सहयोगियों के साहस के बलपर पुनः भारत का सम्राट हो गया। उसने स्थिति का अध्ययन किया, वक्त की आवाज़ पर ध्यान दिया; उसकी प्रभुत्वपूर्ण प्रतिभा ने उसे सामर्थ्य दी और उसने हिन्दुओं और मुसलमानों, राजपूतों तुर्कों तथा पठानों के पारस्परिक भेदभावों, ईर्ष्या-द्वेष तथा स्वार्थों से उत्पन्न संघर्षों को समाप्त कर मतैक्य स्थापित किया। पचास वर्षों तक शासन करने के पश्चात् उसने अपने उत्तराधिकारी, जहाँगीर के लिए एक विस्तृत और पूर्णतः व्यवस्थित साम्राज्य छोड़ा; जहाँगीर के एक पुत्र ने साम्राज्य के लिए पिता के विरुद्ध ही संघर्ष छेड़ा, शाहजहाँ ने उस ताज के लिए अपने पुत्रों को कुत्तों की तरह लड़ते पाया जिसे अभी भी वह अपने सिर पर धारण किए हुए था, और अन्ततः वह ताज-तख्त के प्रतिद्वन्द्वियों में सर्वाधिक योग्य एवम् सफल, औरंगजेब के हाथों बन्दी बनाना पड़ा। औरंजेब इस बात से सर्वदा भयभीत रहता था कि कहीं उसके पुत्र उसी के उदाहरण का अनुकरण न करें; स्वभाव से वह ढंडा था; मुसलमानों के प्रति उसकी नीति सन्देह द्वारा परिचालित थी, जब कि उसकी धार्मिक कट्टरता तथा उसके अन्याचारों से उसकी हिन्दू प्रजा उससे एकदम ही ऊब गई थी। वृद्धावस्था को प्राप्त होने पर, जीवन भर के पापों एवम् अत्याचारों से बोझिल उसकी आत्मा को कहीं भी शान्ति न मिल सकी। वीर और विश्वसनीय जातियाँ उससे दूर ही रहने में कल्याण समझती थीं; फिर भी अपनी प्रतिभाशाली कूटनीति के बल पर वह जीवन के अन्त तक सम्राट बना रहा; उसका साम्राज्य भीतर से कितना खोखला हो गया था, इसका आभास साधारण लोगों को उस समय तक नहीं लग सका जब तक कि उसे कब्र में न लिटा दिया गया। मुगलों के साम्राज्य में राजनीतिक ऐक्य का अभाव था; इसकी प्रशासनिक व्यवस्था तथा नियन्त्रणशक्ति में जो कुछ क्षमता थी वह भी उत्तराधिकार के लिए व्याप्त सन्देह तथा अनिश्चय के कारण

१६७५–१७०८

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ग्रस्त-व्यस्त हो गई।[1] इस साम्राज्य में अनेक छोटी बड़ी रियासतें सम्मिलित थीं जो पर्याप्त अनिच्छा से केन्द्रीय, प्रभुसत्ता सम्पन्न शक्ति के प्रतिनिधि, मुगल सम्राट, की इच्छाओं का पालन करतीं थीं। इन रियासतों के अतिरिक्त
१६७५-१७०८ समूचा साम्राज्य अगणित जागीरों में बँटा हुआ था, जिनके मालिक, जागीरदार, का पद वंशानुगत था। ये जागीरदार और अमीर-उमरा भी अवसर पाने पर केन्द्रीय शक्ति उठाए गए क़दमों का विरोध करने के लिए सर्वदा तत्पर रहते थे। उस समय लोगों का विचार था, और आज भी है, कि कोई राजा या सम्राट अपने निजी स्वार्थों की पूर्ति के हेतु सिंहासन पर बैठता है, और उसे देश के सामान्य कल्याण से कोई सम्बन्ध नहीं होता। न तो राजा किसी क्रमबद्ध नियम के आधार पर प्रजा पर शासन करता था, न प्रजा में इतनी बुद्धि ही थी कि वे जनमत द्वारा राजा के निरंकुश कार्यों पर कोई प्रतिबन्ध लगाया जाता था; "कोउ नृप होय, हमैं का हानी" का सिद्धान्त पूर्णतः लागू था; जो भी व्यक्ति अपने प्रयत्नों में सफल होकर राजमुकुट प्राप्त करता था, वह प्रजा की प्रशंसा का पात्र हो जाता था। अकबर ने शासक और शासितों के बीच व्याप्त इस पारस्परिक उदासीनता को दूर करने की दिशा में कुछ प्रयत्न किए, परन्तु उसके उत्तराधिकारियों ने उस जैसी उदार नीति को महत्व न देते हुए फिर पुराना रवैया अख्तियार कर लिया; सुधारकों ने प्रजा को कुछ सीमा तक जागृत किया, और मुगल सम्राटों की धार्मिक पक्षपात की नीति ने अग्नि में घृत का कार्य किया; और धार्मिक असन्तोष ने प्रजा की स्वातंत्र्य भावना को और अधिक उत्तेजित किया। दक्षिणी भारत के कुछ भागों पर भी मुगलों ने हाल ही में अधिकार कर लिया था, और उन भागों में अपने आधिपत्य को स्थायित्व प्रदान करने के असफल प्रयास में

१—मुग़लों की शासन व्यवस्था के इस दोष को देखते हुए कहा जा सकता है कि अंग्रेजों को भी अभी, अधिक दिनों तक स्थायी रहने योग्य प्रशासन की स्थापना के पूर्व बहुत कुछ करना है जो अकबर की परगना-चौधरियों और कानूनगो की व्यवस्था के समान काम कर सकें। उत्तराधिकार द्वारा पद प्राप्त करने के नियम में उतना सुधार अवश्य कर दिया गया है कि परिवार के सर्वाधिक योग्य व्यक्ति को ही परिवार का प्रतिनिधि मान कर उसे ही पद दिया जाय [प्रशासकों ने जिस ढंग से भूमि समस्या को हल किया है, उसे देखते हुए लेखक का यह कथन उसे अत्यन्त निराशावादी सिद्ध करता है—सम्पादक]।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

औरंगजेब एक लम्बे अरसे तक राजधानी से अनुपस्थित रहा।[1] हिमालय के क्षेत्र में, कश्मीर के अतिरिक्त, मुगल किसी अन्य भाग पर अधिकार करने में सफल न हो पाए थे, और मुग़ल-अधिकृत विभिन्न क्षेत्रों में से किसी भी स्थान पर किसी भी समय विद्रोह की आग अप्रत्याशित रूप से भड़क सकती थी। औरंगजेब की विपत्तियों की इस सूची में अन्तिम यह थी कि शिवाजी ने मराठा जनजातियों की सुप्त चेतना को मुगलों के विरुद्ध जागृत कर लिया था। शिवाजी ने उजड्ड जंगलियों व कबीलों को कुशल सैनिकों के दल में परिवर्तित कर लिया था, और वह सम्राट के सिर पर ही एक क्षेत्रीय सरदार के रूप में विपत्ति का डंका बजा रहा था। ऐसी ही परिस्थितियों में गोबिन्दसिंह ने सर्वत्र भड़की हुई स्वातंत्र्य-भावना में धार्मिक जोश की बारूद छिड़कना प्रारंभ कर दिया; औरंगजेब के गौरवपूर्ण साम्राज्य के एक भाग में जाटों का राज्य स्थापित करने की जो योजना गुरु गोबिन्द जी ने बनाई थी, उसे आकस्मिक, विचारहीन या लक्ष्यहीन नहीं माना जा सकता।

१६७५-१७०८

फिर भी गोबिन्द जी के कार्यों को एक उचित क्रम में व्यवस्थित करना, या उनकी प्रत्येक कार्यवाई का विशेष व निश्चित लक्ष्य को समझ पाना कोई सरल कार्य नहीं है। एक विश्वसनीय मुसलमान लेखक के विवरण से ज्ञात होता है कि उसने अपने अनुयायियों को सैन्य-दलों में संगठित किया था, और उन्हें अपने विश्वस्त अनुयायियों के नायकत्व में विभिन्न टुकड़ियों में विभाजित कर दिया था।[2] ऐसा ज्ञात होता है कि उनकी सेना में पठानों की एक टुकड़ी भी सम्मिलित थी, जिन्हें भारतीय इतिहास के पृष्ठों में एक वीर तथा लड़ाकू जाति होने का सम्मान प्राप्त है[3] और

गोबिन्द जी द्वारा सक्रिय प्रतिरोध की योजनायें लगभग १६९५

१—[यहाँ औरंगजेब द्वारा बीजापुर (सन् १६८६ ई०) और गोलकुण्डा (१६८७ ई०) विजयों की ओर संकेत है। सन् १६८७ ई० से मृत्यु १७०७ ई० तक सम्राट औरंगजेब इन दोनों राज्यों तथा उभरते हुए मराठों के विरुद्ध निरन्तर संघर्ष करने में व्यस्त रहा—सम्पादक]

२ - 'सिअर-उल-मुताख़रीन : १: ११३।

३—मराठा इतिहासों से ज्ञात होता है कि उसी प्रकार शिवाजी ने पठानों के सैनिक दस्तों को अपनी सेना में सम्मिलित किया था, जो बीजापुर के विनाश के पश्चात् उनके पास शरण के लिए आये थे। (ग्राण्ट उफ; 'हिस्ट्री ऑव मराठाज', १:१६५)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

यह भी निश्चित है कि उन्होंने सतलज और यमुना नदियों के बीच स्थित पहाड़ियों के दामन में दो या तीन दुर्गों का निर्माण कराया था। नाहन के निकट स्थित किर्दा घाटी में पौण्टा नामक उनकी एक चौकी भी थी जहाँ एक लम्बे अरसे के पश्चात् गुरखों और अंग्रेजों के बीच एक भयंकर युद्ध हुआ। आनन्दपुर मखोवाल[1] में भी उनकी एक वापसी चौकी थी जिसकी स्थापना उनके पिता जी द्वारा की गई थी; साथ ही एक तीसरी चौकी सतलज नदी के निचले भाग में, खुले मैदान में स्थित चमकौर में थी। इस प्रकार अपने पहाड़ी पड़ोसियों की किन्हीं शत्रुतापूर्ण कार्यवाइयों से सुरक्षित रहने के लिए गुरु गोबिन्द जी के पास पर्याप्त शरणस्थल हो चुके थे। ऐसा ज्ञात होता है कि प्रारम्भिक सुरक्षात्मक कारवाइयों को पूर्ण कर लेने के उपरान्त उन्होंने इन अर्ध-स्वतंत्र सरदारों से मेलजोल बढ़ाने, और उनको अपनी शक्ति से प्रभावित करने का प्रयास आरम्भ किया ताकि मुगलों के विरुद्ध नियोजित कार्यवाइयों के दौरान सुरक्षित स्थलों के रूप में पर्वतीय क्षेत्र अवसर पड़ने पर काम में लाए जा सकें। एक धर्मगुरु के रूप में उन्होंने भारत के समस्त भागों से दान के रूप में धन तो प्राप्त किया ही, साथ ही अगणित अनुयायियों को भी एकत्रित्र कर लिया।

१६७५-१७०८

परन्तु एक नेता के रूप में उन्होंने एक सैनिक केन्द्र की स्थापना की आवश्यता का अनुभव किया, और एक विद्रोही के रूप में एक सुरक्षित शरण-स्थल के महत्व को भी उपेक्षित दृष्टि से न देखा।

गुरु गोबिन्द सिंह जी ने स्वयम् कुछ ऐसी कार्यवाइयों का विवरण दिया है जिनमें उन्होंने मुख्य कर्ता के रूप में, दूसरों के सहयोगी के रूप में सक्रिय भाग लिया था।[2] ऐसे विवरणों में उन्होंने जो शब्द-चित्र प्रस्तुत किए हैं वे अत्यन्त सजीव

१—आनन्दपुर मखोवल के निकट ही स्थित है। गुरु गोबिन्द सिंह ने ही इस बस्ती का नाम आनन्दपुर रक्खा था। इस बस्ती के पास एक गोली सी छोटी पहाड़ी है जिस पर एक आसन बना हुआ है। इसके विषय में कहा जाता है कि पहाड़ी के इसी आसन से सवा कोस की दूरी तक तीर फेंकने का अभ्यास किया करते थे (पंजाबी कोस, उत्तर प्रदेश के कोस से से कुछ कम होता है; पंजाब का सवा कोस अंग्रेजी पैमाने से लगभग १$\frac{3}{5}$ मील के बराबर होता है)।

२—दृष्टान्ततः 'विचित्र नाटक' में ऐसे विवरण मिलते हैं, जिसे पहले ही द्वितीय 'ग्रन्थ' के एक भाग के रुप में उद्धृत किया जा चुका है। सुख सिंह का

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हैं ऐतिहासिक विवरणों के रूप में वे पर्याप्त महत्वपूर्ण हैं; नाहन तथा नालागढ़ और उनमें जिस क्रमबद्धता के दर्शन मिलते हैं, अन्य के राजाओं से विग्रह विवरणों में उसकी झलक पाना भी कठिन है। उनका प्रथम संघर्ष हुआ, उनके ही पुराने मित्र, नाहन के शासक से; उसे हिन्दूर के राजा की सहायता प्राप्त थी जो किसी कारण से गुरु जी से रुष्ट था। गुरुजी की सेना में जो पठान थे, उनका कुछ वेतन बकाया था। उन्होंने सोचा कि इस अवसर पर शत्रुओं का साथ देकर गुरुजो के क्षेत्र में लूटपाट द्वारा अपना बकाया मय सूद के वसूल कर लेंगे, और वे भी फूट गए। परन्तु उनके मनसूबे पूरे न हुए; इस संघर्ष में विजयश्री गुरुजी के गले में पड़ी; कुछ पठान नेता मारे गए और कुछ ने आत्मसमर्पण कर दिया। गुरु गोबिन्द सिंह जी ने नालगढ़ के युवा योद्धा हरीचन्द का बध अपने हाथों किया।

गुरु गोबिन्द सिंह जी ने इतने पर ही बस नहीं किया; उन्होंने सतलज तक बढ़ जाना उचित समझा, और आनन्दपुर की सुदृढ़ किलेबन्दी की। उस समय कुहलुर का राजा भीमचन्द कोट कांगड़ा स्थित शाही सेनाओं से भिड़ा हुआ था; उचित अवसर देखकर गुरुजी भी उसकी सहायता को पहुँच गए। अनेक पहाड़ी सरदारों ने मुग़ल सेनापति की मदद के लिए सेनाएँ भेजीं, परन्तु अन्त में वह पराजित हुआ, और विजयी होने के कारण भीमचन्द के विद्रोह को न्याय्य एवम् उचित ठहराया गया। कुछ समय तक शान्ति रही। उस शान्तिकाल में गुरु गोबिन्द सिंह जी ने अपने उन अनुयायियों को दण्डित किया जिन्होंने गत युद्धों में अनुशासनहीनता प्रदर्शित की थी। मुगलों के विरुद्ध कुहलुर के राजा की सहायता करने के कारण वे मुग़लों की आँखों में खटकने लगे, और शीघ्र ही मुस्लिम सेना की एक टुकड़ी ने उनके मोर्चे पर आक्रमण किया परन्तु उसे मुँह की खानी पड़ी। उधर भीमचन्द के प्रयत्नों एवम् विजय के उदाहरण से प्रेरित एवं उत्साहित होकर कुछ पहाड़ी

शाही सेनाओं के विरुद्ध कुहलुर के राजा तथा अन्य सरदारों की सहायता

१६७५-१७०८

'गुरु बिलास' गोबिन्द जी के विवरणों की पुष्टि करने के साथ, अनेक नई सूचनाएँ भी देता है। इस काल के सम्बन्ध में मेलकम (स्केच' पृ. ५८) द्वारा उद्धृत 'विचित्र नाटक' के कुछ अंशों से काफी जानकारी मिलती है; परन्तु इस सम्बन्ध में स्वयम् मेलकम जो विवरण देता है वे स्पष्टतः परस्पर विरोधी तथा सत्यता से दूर हैं।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

क्षेत्रों के राजाओं ने भी पूर्वनिर्धारित करों को अदा करने से इनकार कर दिया। एक शाही सेनापति फिर सेना लेकर, इन राजाओं के साथ गुरु गोबिन्द जी को भी सबक सिखाने के ध्येय से चढ़ दौड़ा। एक अल्पकालीन संघर्ष छिटपुट रूप में हुआ। पहाड़ी राजाओं ने सन्धि के रूप में मुगल सेनापति के साथ अस्थायी व्यवस्थाएँ कीं जो अधिक समय तक न टिक सकीं, और मुगल सेना का यह अभिमान उसके विनाश के रूप में समाप्त हुआ।

पहाड़ी राजाओं तथा मुगल सम्राट की चिन्ता (लगभग १७०१ई०)

मुगलों के विरुद्ध प्राप्त हुई इन सारी विजयों का श्रेय गुरु गोबिन्द सिंह जी को मिला, जिससे मुग़ल-दरबार उन्हें सन्देह एवम् चिन्ता की दृष्टि से देखने लगी। ऐसा लगता है कि पर्वतीय राजाओं को भी गुरु गोबिन्द सिंह जी की योजनाओं का आभास मिल गया था, और उन्हें चिन्ता होने लगी थी कि कहीं वे भी गुरुजी की महत्वाकांक्षी योजनाओं की चपेट में न आ जाँय; वे स्वयम् को 'सच्चा बादशाह' कहने वाले इस सिक्ख गुरु के विरुद्ध अब वे शाही सहायता प्राप्त करने के प्रयत्न में लग गए थे। औरंगजेब ने लाहौर और सरहिन्द के सूबेदारों को गुरुजी के विरुद्ध कूच करने का आदेश दे दिया, और यह अफवाह फैल गई कि औरंगजेब का पुत्र बहादुरशाह स्वयम् इस अभियान का सेनापतित्व करेगा[1]। शाही सेनाओं ने गुरुगोबिन्द जी को आनन्दपुर के निकट आ घेरा। गुरु जी का दृढ़ संकल्प किसी भी संकट का सामना करने की सामर्थ्य

१—मेलकम ('स्केच', पृ ६०) कहता है कि इस तथ्य के आधार पर इस युद्ध का समय सन् १७०१ ई० के लगभग माना जा सकता है, क्योंकि इसी समय बहादुरशाह को दक्षिण भारत से काबुल की ओर भेजा गया था। कुछ सिक्ख विवरणों के अनुसार गुरु गोबिन्द जी ने बहादुर शाह को अपने पक्ष में प्रभावित कर लिया था। 'विचित्र नाटक' में स्वयम् गोबिन्द जी कहते हैं कि बादशाह का एक पुत्र विद्रोह के दमन के लिए भेजा गया था, परन्तु वे उसके नाम का उल्लेख नहीं करते। एलफिंस्टन ('हिस्ट्री', २:५४५) भी इस प्रसंग में बहादुर शाह का नाम नहीं लेता, और वास्तव में उसका यह कथन अनुमान पर ही आधारित प्रतीत होता है कि शाही खानदान एक शाहज़ादा मुल्तान में हुए विद्रोह को कुचलने के लिए भेजा गया था, और उसने सरहिन्द के निकट सिक्खों से हुई लड़ाई में भाग लिया था।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गुरु जी की गहरी हार

रखता था, परन्तु उनके अनुयायियों ने इस विपत्ति की घड़ी में काफी बड़ी संख्या में उनका साथ छोड़ दिया। गुरुजी ने क्षुब्ध होकर इन भगोड़े विश्वासघातियों को इस लोक और परलोक में भी इस पाप का फल भोगने का श्राप दिया। जो लोग अब भी असमजंस में पड़े हुए थे, उन्हें भी उन्होंने अपने धर्म से बहिष्कृत कर दिया, और घृणापूर्वक उन्हें वहाँ से चले जाने आदेश दिया।

१६७५-१७०८

अब उनकी सामरिक स्थिति अत्यन्त गम्भीर हो गई, अब भी उनके अनुयायी धीरे धीरे उनका साथ छोड़कर खिसकते गये और अन्ततः उनके पास कुल चालीस शिष्य ही रह गए जो उनके साथ मर मिटने को तैयार थे। गुरुजी की माँ, उनकी पत्नियाँ तथा दो कनिष्ठतम बच्चे किसी प्रकार भागकर सकुशल सरहिन्द तक पहुँच गए थे, परन्तु कुछ विश्वासघातियों ने दोनों बच्चों को मुसलमानों के हवाले कर दिया और उन्हें मार डाला गया [1]। गुरुजी के साथ जो चालीस विश्वस्त अनुभवी बच रहे थे उन्होंने वचन दिया कि वे अपने 'बादशाह' तथा धर्मगुरु के लिए सर तक कटा देने को तैयार हैं। उन्होंने गुरुजी से प्रार्थना की कि वे उन दुर्बल हृदयवाले, कायर भगोड़ों को दिया हुआ अपना श्राप वापस लेलें, और उनका मोक्ष की आशा प्रदान करें। गोबिन्द जी ने कहा कि उनका वह क्रोध क्षणिक था, और उसका प्रभाव अल्पकालिक ही होगा। इस विपत्ति पूर्ण स्थिति में भी आशा का एक दीप चमकौर के दुर्ग के रूप में उनके पथ को आलोकित कर रहा था जो अभी भी उनके अधिकार में ही था। रातोरात भाग कर वे इस शरण स्थल पर पहुँच गए।

चमकौर से पलायन (सन् १७०५-०६ ई०)

परन्तु मुगल सेना ने उनका पीछा न छोड़ा और चमकौर पर भी घेरा डाल दिया [2]। मुगल सेनानी ने उनके पास सन्देश भेजा कि यदि वे अपनी सलामती चाहते हैं, तो आत्मसमर्पण कर दें, और इस्लाम क़बूल कर लें, परन्तु उनके पुत्र अर्जुन सिंह जी इस सन्देश पर इतने उत्तेजित हो गए कि उन्होंने सन्देशवाहक को अविलम्ब शान्त कर दिया। विशाल मुगल वाहिनी ने मुट्ठी भर सिक्खों को दबाना प्रारम्भ किया; गुरुजी प्रत्येक स्थान पर उपस्थित रहकर अपने अनुयायियों को साहस देते रहे, परन्तु ये

१—गुरु गोबिन्द जी के इन दोनों पुत्रों के नृशंस बध का सर्वाधिक विस्तृत विवरण ब्राउन के 'इण्डिया ट्रैक्ट्स', २:६७ में मिलता है।

२—चमकौर के ईंटों से बने छोटे से दुर्ग की एक मीनार में जीवन सिंह

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इने गिने वीर भला कितनी देर तक टिके रह सकते थे। गुरुजी के दो पुत्रों ने उनकी आँखों के समक्ष ही वीरगति प्राप्त की, और उनका छोटा सा दल लगभग विनष्ट हो गया। अन्त में उन्होंने भाग निकलने का निश्चय किया और रात्रि के सघन अन्धकार का लाभ उठाते हुए, वे चुपचाप शिविर से बाहर निकल गए, परन्तु कुछ ही आगे बढ़ने पर दो पठानों ने उन्हें पहचान कर उनका मार्ग रोक लिया।

१६७५-१७०८

कहा जाता है कि बीते दिनों में गुरु जी ने इन दोनों के साथ बहुत उदारता का व्यवहार किया था, और वे पठान् उनका उपकार भूले नहीं थे; उन दोनों ने बहलोल पुर तक पहुँचने में उनकी सहायता की, जहाँ गुरु जी ने अपनी सुरक्षा का भार पुनः इस्लाम के एक सच्चे बन्दे, पीर मुहम्मद पर छोड़ दिया; इस पीर मुहम्मद के साथ, कहा जाता है, गुरु जी ने कभी कोरान का अध्ययन किया था। यहाँ उन्होंने मुसलमानों द्वारा दिया गया भोजन ग्रहण किया, और व्यवस्था दी कि इस प्रकार की संकट पूर्ण स्थितियों में सिक्खों द्वारा ऐसा किया जाना धर्मविरुद्ध नहीं माना जायगा। स्वस्थ हो लेने पर उन्होंने मुस्लिम दरवेशों के नीलेवस्त्रों को धारण कर छद्मवेष बनाया और तीव्र गति से चलते हुए भटिण्डा के ऊबड़ खाबड़ क्षेत्र में जा पहुँचे। उनके अनुयायी पुनः उनके पास एकत्रित होने लगे और उन्होंने एक स्थान पर अपना पीछा करने वालों को पराजित किया; यह स्थान उसी समय से यह स्थान 'मुक्तसर' (अर्थात् मुक्ति का सरोवर) के नाम से प्रसिद्ध है। पीछा करने वाली टुकड़ी को भगाने के पश्चात् वे दम-दमा की ओर बढते रहे, जो हाँसी और फ़ीरोजपुर के मध्य में स्थित है। शाही सैन्याधिकारियों ने सोचा कि गुरु गोबिन्द जी की शक्ति पूर्णतः छिन्न-भिन्न हो गई है अतः उन्होंने उस उजाड़ और वीरान क्षेत्र में उनका पीछा करने में कोई लाभ नहीं देखा।

मुक्तसर में पीछा करने वालों की पराजय

नामक एकवीर योद्धा की कब्र अब भी दिखाई पड़ती है; वह भंगियों की जाति का था, और इसी युद्ध में वीरतापूर्वक लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुआ था। जिस स्थान पर गोबिन्द जी के दोनों ज्येष्ठ पुत्र, अजीतसिंह और जुझारसिंह मारे गये थे, वहाँ अब भी खड़ा एक मन्दिर उनके शौर्य की स्मृति दिलाता है।

सिक्ख विवरण गुरु जी की इस पराजय और उनके पलायन का समय सन् १७०५–०६ ई० में मानते है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

दम-दमा पहुँच जाने पर गुरु जी ने कुछ समय तक विश्राम किया, और इस अवधि में वे 'ग्रन्थ के पूरक अंश, 'दसवें बादशाह का ग्रंथ' की रचना में व्यस्त रहे जिससे सिक्ख धर्म में श्रद्धा रखने वालों का उत्साह बढ़े और उनमें आशा का संचार हो। इस पूरक ग्रंथ का मुख्य अंश है, 'विचित्र नाटक', जो किसी भी सिक्ख 'ग्रंथ' का एकमात्र ऐतिहासिक अंश है, और जिसका उपसंहार वे ईश्वर की स्तुति के रूप में लिखी गई एक प्रार्थना से करते हैं। इस रचना में वे कहते हैं कि एक अन्य ग्रंथ में वर्णन करेंगे उन कार्यों का, जिन्हें उन्होंने पूरा किया है, ईश्वर के गौरव का, जिसे उन्होंने देखा है, तथा अपने पूर्ववर्ती अस्तित्व के दृश्य एवम् संस्मरण जो उनकी स्मृति में जीवित है। वे लिखते हैं कि अब तक वे जो कुछ कर सके, वह सर्वशक्तिमान की सहायता से ही सम्भव हो सका; अपनी सुरक्षा का श्रेय वह 'लोह' (लोहा) की रहस्यमय शक्ति को देते थे। इस प्रकार जब वे शान्तिपूर्वक अपना लेखन-कार्य कर रहे थे, उनके पास मुग़ल सम्राट के दूत पहुँचे, और उन्हें दरबार में उपस्थित होने का शाही हुक्म सुनाया, परन्तु गोबिन्द जी ने राजाओं के उपदेशक की सी शब्दावली में लिखे गए नीतिवचनों की एक श्रृंखला में अपना उत्तर भेजा साथ ही पूरक के रूप में एक पत्र भी भेजा जिसमें विनीत भाव की अपेक्षा उद्धत तार्किक भाव ही प्रबल है। अपने ऊपर बादशाह के हृदयगत क्रोध को कम करने के स्थान पर वे उसपर ईश्वर का क्रोध आमंत्रित करते है; इस पत्र में वे बादशाह को बताते हैं उन्हें उस पर कोई विश्वास नहीं है; और बादशाह ने उन पर जो अन्याय किए हैं, उनका बदला खालसा लेगा। वे गुरु नानक जी के धार्मिक सुधारों का उल्लेख करने के साथ साथ वे अर्जुन जी तथा तेगबहादुर जी की मृत्युओं की ओर भी संकेत करते हैं। वे अपनी गलतियों का वर्णन करते हुए अपनी पुत्रविहीन असहाय स्थिति का उल्लेख करते हैं। समस्त सांसारिक बन्धनों से मुक्त, वे धैर्य पूर्वक मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे थे, और उन्हें राजाओं के राजा, ईश्वर के अतिरिक्त अन्य किसी का भय नहीं था। उन्होंने यह भी लिखा कि दीनों की प्रार्थना कभी भी व्यर्थ नहीं जाती, और अन्तिम निर्णय के दिन, यह देखना है कि मुग़ल सम्राट किस प्रकार अपने अन्याय और अत्याचार की सफाई देता है। औरंगजेब ने पुनः गुरुजी को दरबार में उपस्थित होने का सन्देश भेजा, और गोबिन्द जी

विचित्र नाटक की रचना

औरंगजेब द्वारा बुलाया जाना

१६७५-१७०८

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उससे भेंट करने के लिए दक्षिण की ओर बढ़े भी, परन्तु उनके पहुँचने से पूर्व ही वृद्ध सम्राट की इहलीला समाप्त हो गई थी।[1]

औरंगजेब की मृत्यु सन् १७०७ई. के प्रारम्भ में हुई। इस समय बहादुरशाह काबुल में था; पिता की मृत्यु की सूचना पाते ही वह सिंहासन पर अधिकार करने के लिए वह तीव्रगति से राजधानी की ओर चल पड़ा। आगरा पहुँचते-पहुँचते उसे, अपने ही एक भाई से संघर्ष करना पड़ा जिसे उसने पराजित करके मौत के घाट उतार दिया। थोड़ा दक्षिण की ओर बढ़ने पर उसकी भेंट अपने दूसरे भाई, कामबख्श, से हुई। वह भी बहादुरशाह के

औरंगजेब की मृत्यु, हाथों पराजित हुआ और घायल होकर मर गया। जिस

बहादुर शाह की समय बहादुरशाह कामबख्श से उलझा हुआ था, उसने

ताजपोशी, १७०७ई. गुरु गोबिन्द जी को अपने शिविर में उपस्थित होने का

गुरुजी का शाही सन्देश भेजा। गुरुजी वहाँ गए, और वहाँ उनका स्वागत

सेवा में प्रवेश, काफी सम्मान के साथ किया गया; बहादुरशाह ने गोदावरी घाटी में स्थित एक टुकड़ी का नायकत्व उन्हीं को सौंप दिया। सम्राट बहादुरशाह ने सम्भवतः यह सोचा कि लड़ाकू जाटों के इस साहसी सरदार का उपयोग विद्रोही मराठों की बाढ़ को रोकने के लिए काफी तफलतापूर्वक किया जा सकेगा। उधर दूसरी ओर गुरुगोबिन्द सिंह ने इस दृष्टिकोण से बहादुरशाह के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया कि ऐसी स्थिती में वे स्वयम् को मुगलों की सन्दिग्ध दृष्टि से मुक्त कर सकेंगे, साथ ही अपने अनुयायियों को फिर से संगठित भी कर सकेंगे[2]। दमदमा में एक बार पुनः अपने अनुयायियों को चेतावनी दी की यदि

१—गोबिन्द जी की युद्ध सम्बन्धी इन कार्रवाइयों के विवरण में मुख्यतः गुरु जी कृत' 'विचित्र नाटक' सुखसिंह कृत 'गुरु विलास' तथा फारसी और गुरुमुखी के साधारण संकलनों का सहारा लिया गया है। डा० मैकग्रेगर लिखित 'हिस्ट्री आव द सिक्ख' (पृ० ७६-६६) में भी कुछ अपूर्ण शाब्दिक रुपान्तरों का संकलन मिलता है।

२—सिक्ख लेखक यह सिद्ध करने में एकमत प्रतीत होते हैं कि उनके महान धर्मगुरु को दक्षिण में एक सैन्य दल का सेनापतित्व देकर सम्मानित किया गया था, जब कि हाल ही के कुछ मुसलमान लेखकों का मत है कि उनकी मृत्यु पटना में हुई थी; परन्तु तत्कालीन इतिहासकार खफ़ी खान यह कहते हुए बहादुरशाह के उदार व्यवहार की प्रशंसा करता

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इस बार वे अपने धर्मगुरु से विश्वासघात करके भागे तो वे अवश्य ही ईश्वर के कोप के भागी होंगे। दक्षिण में उन्होंने बन्दा नामक एक साहसी व्यक्ति को अपना मुख्य सहायक चुना जो इतिहास व जनकथाओं में बन्दा वैरागी के नाम से विख्यात हैं। शीघ्र ही सिक्ख पुनः सतलज नदी के तट पर एक दुर्जय सैनिक शक्ति के रूप में प्रकट हुए। परन्तु गुरुगोबिन्द सिंह की दौड़ की बारी अब समाप्त हो चली थी, और व्यक्तिगत रूप में कोई और ठोस कार्य कर सकना उनकी भाग्य रेखाओं में नहीं था। उन्होंने एक अफगान को भी अपनी सेवा में ले लिया था जो आधा साहसिक था और आधा वणिक। इस अफगान से उन्होंने पर्याप्त संख्या में घोड़े प्राप्त किए थे। उस अफगान वणिक या गोविन्द जी के सेवक ने अपनी ही आवश्यकताओं की पूर्ति पर जोर दिया, और अपने बकाया धन की अदायगी के लिये जिद करना प्रारम्भ किया। रकम लम्बी थी, और वह शीघ्रातिशीघ्र वसूल कर लेना चाहता था, अतः देर होते देख, अधीर होकर उसने क्रोध की मुद्रा का प्रदर्शन किया, और उसकी बातों से गुरु गोबिन्दजी इतने अधिक उत्तेजित हो गए कि उन्होंने उसे उसी समय तलवार के घाट उतार दिया। मृत पठान के शरीर को वहाँ से हटाकर यथाविधि दफन कर दिया गया, और उसके परिवार वाले भी भाग्य की दुहाई देकर चुप हो बैठ रहे। परन्तु पठान के पुत्रों में यह बात काँटे की तरह खटकती रही, और वे बदला चुकाने के लिए अवसर की ताक में रहने लगे। एक बार वे

गुरु जी पर आक्रमण

गुरुजी के विश्राम-कक्ष में चुपचाप, दबे पाँव जा पहुँचे, जहाँ वे निर्द्वन्द एवम् असुरक्षित, सो रहे थे। पठान-पुत्रों ने उन पर घातक वार किया; गोबिन्द जी उछल कर भूमि पर आ खड़े हुए, और आक्रमणकारी पकड़ लिए गए, परन्तु उन पठानों के चेहरों पर भय के स्थान पर एक विषैली मुस्कान भर ही दिखाई पड़ी और उन्होंने अपने इस घृणित कार्य के औचित्य को स्पष्ट किया। गुरुजी ने सुना; उन्हें उन बच्चों के पिता की दुर्भाग्यपूर्ण मृत्यु का स्मरण हो आया, साथ ही, सम्भवतः

है कि गुरु गोबिन्द जी को मुग़ल सेना में एक सम्मानित पद प्रदान किया गया था (एलफिन्स्टन' हिस्ट्री ऑव इण्डिया', २:५५६, नोट), और गोदावरी के तट पर गुरुजी की मृत्यु के तथ्य से भी इस मत की पुष्टि होती है। नदेर में सुरक्षित परम्परागत मान्यता से ज्ञात होता है कि वे, कार्तिक, सम्बत् १७६५ में. अर्थात् सन् १७०३ ई० के अन्त में उस स्थान पर पहुचे थे।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उनके हृदय में यह बात भी बिजली की तरह कौंध गई कि वे अबतक अपने पिता की मृत्यु का बदला नहीं ले सके हैं। उन्होंने ने युवा पठानों की प्रतिहिंसा की भावना की प्रशंसा की, और उन्हें सुरक्षित, मुक्त करने का आदेश दिया।[1] चोट घातक थी और गुरुजी मृत्यु शैय्या पर पड़े थे। उनके सभी पुत्र मारे जा चुके थे, और उनके अनुयायी उत्तराधिकारी के विषय में चिन्तित थे। उन्होंने गुरुजी की मृत्यु शैय्या के पास एकत्रित होकर दुःखी हृदय से पूछा कि उनकी मृत्यु के पश्चात् उन्हें (शिष्यों को) सत्य की भावना से कौन प्रेरित करेगा, और कौन उनका नेतृत्व करके उन्हें विजय दिलाएगा। गोबिन्द जी ने उन्हें सदैव प्रसन्न रहने का आशीर्वाद देते हुए कहा कि उनके द्वारा नियुक्त दस शिष्यों की समिति ने पूर्ण निष्ठा के साथ अपने निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति कर ली है, परन्तु अब वे खाल्स को ईश्वर की रक्षा में अर्पित किए जा रहे हैं जो अमर और अविनाशी है। "जो गुरु को देखना चाहता है, वह नानक जी के 'ग्रंथ' में उन्हें ढूँढ़े। गुरुजी खाल्स के साथ ही रहेंगे; दृढ़रहो और श्रद्धा रक्खो; जहाँ पाँचो सिक्ख एकत्रित होंगे, वहाँ मैं भी उपस्थित रहूँगा"।[2]

१—सभी लिखित विवरण गोबिन्द जी की मृत्यु के कारण के सम्बन्ध में एकमत प्रतीत होते हैं; कथा के विस्तार में थोड़ा बहुत अन्तर अवश्य मिलता है; कुछ विवरणों में इतना और मिलता है कि मृत पठान की विधवा पुत्रों को बदले के लिये सदैव उत्तेजित किया करती थी। अनेक विवरण, विशेष रुप से मुस्लिम लेखक यह मत प्रकट करते हैं कि इस समय उनका मस्तिष्क कुछ असंतुलित हो गया था। कुछ सिक्ख लेखकों द्वारा वर्णित कहानी इस मत को बल देती है जिसके अनुसार, पठान के वध के पश्चाताप स्वरुप गुरु जी उसके पुत्रों के हाथों मृत्यु प्राप्त करना चाहते थे; और इसी-लिए उन्हें प्रतिहिंसा का महत्व समझा कर उत्तेजित किया करते थे। 'सिअर-उल मुताखरीन' केवल यही बताता है (१:११४) कि अपने पुत्रों की मृत्यु के शोक से गुरु गोबिन्द जी का देहान्त हो गया। नदेर गुरु द्वारे से हाल ही में प्राप्त सूचनाओं के अनुसार गुरु जी के हत्यारों में से एक, पइन्द खान नामक एक पठान का पौत्र था जिसे हरगोबिन्द जी ने मार डाला था; हत्यारे पठानों और गुरु गोबिन्द जी के बीच किसी शत्रुतापूर्ण कारण का संकेत, इस सूत्र द्वारा नहीं मिलता।

२—गुरु जी के अन्तिम वचनों के सम्बन्ध में प्रायः समस्त सूत्र यही विवरण देते हैं; और यह विश्वास कि गोबिन्द जी ने नानक जी के लक्ष्यों

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गोबिन्द जी की हत्या सन् १७०८ ई० में, गोदावरी नदी के तट पर स्थित नदेर में हुई।[1] मृत्यु के समय वे अपनी आयु के अड़तालीसवें वर्ष में थे, और यदि लोग यह सोचें कि उनकी अचनाक मृत्यु से उनके पूर्ण जीवन के लिए निर्धारित लक्ष्य पूरा न हो सका, तो उन्हें यह भी याद भी रखना चाहिए कि:—

गुरुजी की मृत्यु

"मनुष्य का हाथ,
केवल दीर्घसूत्री दास है मस्तिष्क का,

को पूर्ण कर दिया था, उस समय लोगों के मन में गहरी जड़ जमा चुका था, जब कि अब सिक्खों की श्रद्धा के एक मुख्य आधार का रुपले चुका है, प्रामाणिक सूत्रों से ज्ञात होता है कि उनकी माँ तथा एक पत्नी, उनकी मृत्यु के कई वर्षों बाद तक जीवित रहीं थीं, परन्तु दोनों में से प्रत्येक ने मरते समय गुरुपद को ख ल्स के सामान्य संगठन में विलीन कर दिए जाने की इच्छा प्रकट की थी; किसी व्यक्ति को उत्तराधिकारी घोषित नहीं किया था, और इसीलिए सिक्ख समाज, अपनी जाति के महान से महान सदस्य को भी 'भाई' के पद से ही सम्बोधित करता है, उन्हें 'गुरु' नहीं कहता।

१—प्रामाणिक सूत्र, गुरु गोबिन्द जी का जन्म सम्बत् १७२८ के पोह मास (अर्थात् सन् १६६१ ई० के अन्त या सन् १६६२ ई० के प्रारम्भ) में तथा उनकी मृत्यु के समय भी, एकमत होकर, वे सम्बत् १७६५ के मध्य में (अर्थात् सन् १७०८ ई० के लगभग अन्त) में मानते हैं।

नदेर में सिक्ख-सम्प्रदाय की एक विशाल धार्मिक संस्था है जिसके व्यय की व्यवस्था, स्थायी भू-सम्पत्ति के उत्पादन, स्वेच्छा से दिए गए अर्थदान, तथा वार्षिक दर पर वसूल की जाने वाली एक निश्चित रकम द्वारा होती है। इस संस्था का प्रधान एक व्यक्ति को श्रद्धालु सिक्खों के यहाँ प्रतिनिधि के रुप में भेजता है, और वे सभी यथाशक्ति अर्थदान देते हैं। इसी प्रकार भोपाल की सेवा में नियुक्त प्रत्येक सैनिक बीस आना प्रतिवर्ष देता है, साथ ही विशेष धार्मिक उत्सवों पर भेंट आदि भी दी जाती है।

रणजीत सिंह जी ने नदेर की इस संस्था को पर्याप्त धन दिया था, परन्तु उनके धन से जिन भवनों का निर्माण प्रारम्भ किया गया था, वे अभी तक अपूर्ण ही हैं। नदेर को अपचल नगर भी कहा जाता है। दक्षिण एवम् मध्य भारत में यह स्थान 'गुरुद्वारा' के नाम से विख्यात है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

और अनुसरण करता है दृढ़तायुक्त तत्परता से
कल्पना के ज्वालामय चरणों का[1];"

उन्हें याद रखना चाहिए कि जिस समय हज़रत मुहम्मद साहब मक्का से भागे, 'किसी भी अरब के नेज़े का एक ही बार संसार के इतिहास को बदल सकता था,[2] और इसे भी याद रखना चाहिए कि महाकाव्यों में वर्णित एकिलीज़ ने ट्रॉय को अधिकृत किए बिना ही छोड़ दिया था। अल्पायु में ही अमर गौरव प्राप्त करने के लिए उत्पन्न मिरमिडन्स के स्वामी को उतने ही निन्दनीय ढंग से मृत्यु को गले लगाना पड़ा, जिस ढंग से मरने का भय उसके मनमे सिम्वायस व स्केमाण्डर से लड़ते समय उत्पन्न हुआ था; पूर्व और पश्चिम में अमर ख्याति प्राप्त करने वाले, वीर राजा रिचर्ड ने जेरुसलेम को नास्तिकों से मुक्त कराने का दृढ़ संकल्प किया था, परन्तु जब उसकी तमाम कोशिशों के बावजूद भी ईश्वर का वह पवित्र नगर ईश्वर द्रोहियों के ही हाथ में रह गया तो उसने दुःख और लज्जा से अपना मुख ढँक लिया; वह उस नगरी को अपनी आँखों से देखना भी नही चाहता था जिसे वह मुक्त नहीं करा सका था; वह पर्वत से नीचे उतर कर बन्दी बना और अपरिपक्व आयु में ही कब्र की शरण ली।[3] इस प्रकार केवल सफलता को ही महानता का मापदण्ड नहीं माना जा सकता। सिक्खों का यह अन्तिम देवदूत भी अपने लक्ष्यों की पूर्ति होते देखने के लिए जीवित न रहा, परन्तु यह बात कम महत्वपूर्ण नहीं थी कि उसने नींद में गाफ़िल जाति की प्रसुप्त शक्तियों को चैतन्य कर दिया था। गुरु गोबिन्द जी ने सिक्खों के मस्तिष्क व हृदय को राष्ट्रीय श्रेष्ठता तथा सामाजिक सुधार की उदात्त कामना से अनुप्राणित कर दिया था, और यही गुरु नानक जी के उपदेशों में वर्णित आराधना की पवित्रता के मुख्य अंग थे। गोबिन्द जो ने सिक्ख जनजीवन के उत्थान की सर्वप्रमुख नाड़ी को पहचाना, और अपनी सारी सामर्थ्य से उसमें रक्त के निरन्तर प्रवाह को व्यवस्था की। सिक्खों की सम्पूर्ण जाति अब भी एक जीवित और सक्रिय आत्मिक शक्ति से प्रेरित है, और गुरु गोबिन्द जी

१—'सर मेरमड्यूक मैक्सवेल' नानक गीति-नाटिका से, अंक ४ दृश्य ६।

२—गिबन लिखित 'डिक्लाइन ऐण्ड फ़ॉल ऑव रोमन इम्पायर' ६:२८५।

३—इस सिंह सदृश राजा की कथा के लिए देखिए गिबन (डिक्लइ एण्ड फ़ाल, ११:१४३), टर्नर द्वारा प्रस्तुत एकिलीज़ तथा तुलना (हिस्ट्री ऑव इंग्लैण्ड', पृ० ३००), तथा हल्लम कृत 'मिडिल एजेज़', ३:४८२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के प्रभाव ने न केवल उनकी मानसिक शक्तियों को परिवर्तित करके ऊपर उठाया है, बल्कि उनकी शरीर रचना में उल्लेखनीय परिवर्तन उपस्थित करके उन्हें भौतिक व शारीरिक श्रेष्ठता भी प्रदान की है। एक पूरी जाति का बाहरी आकार सुघरे और सक्षम रूप में परिवर्तित हो गया है, और एक सिक्ख सरदार की पहचान जिस प्रकार उसके व्यक्तित्व से टपकते हुए रुवाब, पौरुष और मुक्त व्यवहार से होती है उसी प्रकार एक सिक्ख धर्मोपदेशक की पहचान उसके चेहरे से हो जाती है, जो उसकी हृदय गत श्रद्धा व भक्ति का जीवित प्रतिबिम्ब होता है, जिसकी दृष्टि में वैचारिक उच्चता की झलक मिलती है; उसे देखते ही यह आभास मिल जाता है कि भक्ति की दिव्यता से आलोकित यह व्यक्ति ईश्वर के अस्तित्व से कितना निकट सम्पर्क रखता है।[1]

१७०८-१६ प्रायः इन परिवर्तनों और अन्तरों पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता और सिक्खों को भी हिन्दू-समाज का एक अंग समझा जाता है; भाषा, दैनिक व्यवहार, रीति रिवाज़ आदि में निस्सन्देह ऐसा है भी; कारण यह है कि गोबिन्द जी ने अपने शिष्यों के पावों में राजनैतिक प्रणालियों या नागरिक नियम व कानून की संहिताओं की बेड़ी नहीं पहनाई थी; फिर भी धार्मिक श्रद्धा तथा सांसारिक आकांक्षाओं की दृष्टि से, वे भारत की अन्य जातियों से पूर्णतः भिन्न हैं। उनमें सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे आन्तरिक भावना, और बाहरी लक्ष्य की एकता द्वारा एक दूसरे से बँधे हुए हैं।

गोबिन्द सिंह का सर्वाधिक प्रिय शिष्य था बन्दा जो दक्षिण भारत का निवासी था,[2] और बैरागी सम्प्रदाय का एक साधु था। मृत गुरु गोबिन्द की

३—इस शारीरिक परिवर्तन का उल्लेख सर एलेग्जेण्डर बर्न्स ('ट्रवेल्स' १:२८५; तथा २:३६), एलफिन्स्टन (हिस्ट्री ऑव इण्डिया २:५६४) तथा मेलकम (स्केच, पृ० १२६) ने किया है। इसी प्रकार दृष्टिकोण एवम् वेश आदि का अन्तर हिन्दू परिवारों के उन सदस्यों में भी देखा जा सकता है, जिनके पूर्वपुरुष एक या दो शती पूर्व मुसलमान हो गये थे। उनके व्यक्तिगत आचार व्यवहार और शारीरिक रचना व आकार की तुलना अब भी उनके मालवा और उत्तर भारत के हिन्दू भाइयों से की जा सकती है।

१—कुछ विवरण वन्दा को उत्तरी भारत का निवासी बताते हैं, और लेखक का मत है कि उसका जन्म जालंधर के दुआब में हुआ था। मेजर ब्राउन (इण्डिया ट्रैक्ट्स', १:६) इसी मत का अनुसरण करता है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तैयारियों तथा उनके साधनों के विस्तार को पूर्णतः समझने के लिए उनके शिष्यों की उपलब्धियों का वर्णन आवश्यक है। गुरुजी की मृत्यु के पश्चात् बन्दा बैरागी के व्यक्तित्व से आकर्षित होकर सिक्ख उस समय काफ़ी बड़ी संख्या में उसके पास एकत्रित होने लगे जब कि वह विजय की प्रतिज्ञा के प्रतीक, गुरु गोविन्द जी के बाणों को लेकर उत्तर-पश्चिम के क्षेत्रों में पहुँचा। जोश से भरा हुआ बन्दा आगे बढ़ा और सरहिन्द के निकट स्थित मुगल अधिकारियों कों मार भगाया; तत्पश्चात उसने सरहिन्द के सूबेदार पर धावा बोल दिया और उसे पराजित करके मार डाला। विजयी सिक्खों ने सरहिन्द में खुल कर लूटपाट की, और उन हिन्दुओं और मुसलमानों को तलवार के घाट उतार दिया जिन्होंने गुरु जी के साथ विश्वासघात किया था और उनके पुत्रों का वध किया था।[1] सरहिन्द विजय के पश्चात् बन्दा ने सिरमूर की पहाड़ियों के नीचे एक गढ़ी का निर्माण कराया'[2] उसने सतलज तथा यमुना नदियों के बीच स्थित समस्त क्षेत्र पर अधिकार कर लिया और सहारनपुर ज़िले को विरान कर दिया[3]।

बन्दा द्वारा नेतृत्व

सरहिन्द विजय १७०९-१०

इस बीच बहादुरशाह ने दिल्ली में अपनी स्थिति को सुदृढ़ बना लिया था। अपने विद्रोही भाई कामबख्स का सिर वह कुचल चुका था; मराठों के साथ भी

'गुरु-रत्नावली' के रचयिता सरुप चन्द का कथन है कि इस वैरागी ने अपना नाम 'बन्दा' उस समय रक्खा जब दक्षिण में उसकी भेंट गुरु जी से हुई; उसने अपने आराध्य देव विष्णु को गुरुजी की शक्तियों के समक्ष प्रभाव-हीन महसूस किया, और कहा, कि वह गुरुजी का बन्दा (गुलाम) हो जायगा

१—सरहिन्द विजय सम्बन्धी, यथार्थ या काल्पनिक, विस्तार के लिए देखिए ब्राउन (इण्डिया ट्रैक्ट्स, २:९,१०), एलफिन्स्टन (हिस्ट्री आव इण्डिया, २:५६५,५६६) सूबेदार का नाम था वज़ीर खाँ, परन्तु मेलकम उसका नाम फ़ौजदार खाँ बताता है (स्केच, पृ० ७७, ७८) जो गलत है।

२—यह गढ़ी सदोवरा के निकट स्थित मुखलिस पुर में थी; जो अम्बाला के उत्तर-पूर्व में स्थित है। सम्भवतः इसी गढ़ी को 'सिअर-उल-मुताखरीन' में 'लोहगढ़' लिखा गया है।

३—फार्स्टर, 'ट्रवेल्स', १:३०४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

१७०८-१६

सम्राट का लाहौर अभिमान

उसने युद्ध विराम सन्धि कर ली थी, और अब वह राजपूताना के राजपूत राजाओं को पुनः अपने अधीन करना चाहता था जो अवसर पाकर धीरे धीरे स्वतंत्रता प्राप्त करते जा रहे थे। अभी वह उस ओर बढ़ने की योजनाएँ बनाने में ही व्यस्त था जब उसे खबर मिली कि अभी तक अज्ञात, बन्दा नामक व्यक्ति ने सिक्खों के नायक के रूप में मुग़ल सेनाओं को मार भगा कर सरहिन्द पर अधिकार कर लिया है।[1] अभी बहादुरशाह दक्षिण के सफल अभियान के पश्चात् दिल्ली की ओर लौट ही रहा था, कि इस खबर ने उसे बेचैन कर दिया; उसने राजधानी में प्रवेश भी नहीं किया और तेज़ी से पड़ाव पर पड़ाव मारते हुए लाहौर की ओर बढ़ चला परन्तु

बन्दा का पलायन

उसके लाहौर पहुँचने के पूर्व ही मुगल सेनानायकों ने शक्ति संगठित करके सिक्खों की एक टुकड़ी को पानीपत के निकट-पराजित कर बन्दा बैरागी को उसकी नई गढ़ी में घेर लिया था। बन्दा को गुप्त रूप से गढ़ी से बाहर कर देने के लिए एक सिक्ख ने एक भीतरी युद्ध में स्वयम् को बन्दा बताकर मुगलों के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया, अवसर पा कर बन्दा बैरागी अपने तमाम अनुयायियो के साथ निकल भागने में सफल हो गया।[2] मार्ग मे भी उसे स्थान स्थान पर मुग़ल टुकड़ियों से छिटपुट संघर्ष करना पड़ा

बहादुरशाह की मृत्यु सन् १७१२ ई०

पड़ा, परन्तु कहीं भी उसका मार्ग अवरुद्ध न हुआ। उसने लाहौर के उत्तर की ओर स्थित, जम्मू के पहाड़ी भागों में अपना मोर्चा बना लिया, और पंजाब के सर्वाधिक समृद्ध भाग से कर वसूल करना प्रारम्भ कर दिया। मुग़ल बादशाह बहादुरशाह इस समय तक स्वयम् लाहौर आ पहुँचा था, और वहीं सन् १७१२ ई० के फरवरी मास में उसकी मृत्यु हो गई[3]।

बहादुरशाह की मृत्यु से, सिंहासन के प्रतिद्वन्दियों के पारस्परिक संघर्षों से दिल्ली का वातावरण पुनः अशान्त हो गया। उसका ज्येष्ठतम पुत्र, जहाँदरशाह

१—देखिए एलफिंस्टन की 'हिस्ट्री ऑव इण्डिया', २:५६१ तथा फार्स्टर की 'ट्रवेल्स', १:३०४। यह स्थिति सन् १७०६–१० ई० की थी।

२—पुनः देखिए उक्त दोनों ग्रंथ, क्रमशः २:५१६, तथा १:३०५। इस व्यक्ति के जोश की बहादुर शाह ने प्रशंसा की, परन्तु उसे क्षमा नहीं किया।

३—देखिए 'सिअर-उल-मुताख़रीन' १:१०६,११२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पूरे एक वर्ष तक ताज़ो-तख्त को अपने कब्जे में रक्खे रहा परन्तु सन् १७१३ ई० के फ़रवरी मास में उसके भतीजे, फर्रुखसीयर ने उसे पराजित करने के पश्चात् तलवार के घाट उतार दिया। दिल्ली में सिंहासन के लिए हो रहे इस संघर्ष से सिक्खों को पुर्नसंगठन का पर्याप्त अवसर प्राप्त हो गया; बिखरे हुए सिक्ख पुनः बन्दा के झण्डे तले एकत्रित होने लगे

१७०८-१६ और एक प्रबल सेना का संगठन करके, अपनी सुरक्षा के लिए बन्दा ने व्यास और रावी नदियों के बीच गुरदासपुर नाम के एक सुदृढ़ दुर्ग का निर्माण कराया।[1] लाहौर के शाही प्रतिनिधि ने सिक्खों की गतिविधियों को देखकर उनके विरुद्ध कूच कर दिया, परन्तु सिक्खों के बढ़े हुए हौसले के आगे उसे पराजित होना पड़ा। अब उत्साहित होकर बन्दा ने सिक्खों की एक टुकड़ी को सरहिन्द की ओर रवाना कर दिया। सरहिन्द का सूबेदार बायज़ीद खाँ उनका

सरहिंद में पुनः लूटपाट सामना करने के लिए आगे बढ़ा, परन्तु मार्ग में ही जोश में दीवाने एक सिक्ख ने उसके शिविर में घुसकर उसकी हत्या कर दी और मुग़ल सेना तितर बितर हो गई, ऐसा लगता है कि किसी कारणवश इस बार सरहिन्द शहर सिक्खों की लूटपाट से बच गया।[2] मुग़ल बादशाह ने अब पंजाब का सेनापतीत्व कश्मीर के सूबेदार अब्दुस समद खाँ को सौंप दिया जो एक तूरानी अमीर और कुशल सेनानायक था। अब्दुस समद की सहायता के लिए पूरब से कुछ चुनी हुई टुकड़ियों को भी सरहिन्द की ओर भेज दिया गया। कश्मीर के सूबेदार के पास उसके ही देश के कुछ हज़ार कुशल सैनिकों की एक टुकड़ी थी। जैसे ही उसे तोपखाने की एक टुकड़ी प्राप्त हुई, उसने लाहौर से कूच कर दिया और झपटता हुआ सिक्खों पर बाज की तरह जा टूटा। वीर बन्दा बैरागी ने विशाल मुगलवाहिनी का सबल प्रतिरोध किया, परन्तु उसकी एक न चली,

---

१—गुरुदास पुर कलनौर नामक स्थान के पास स्थित है जहाँ अकबर को सम्राट के रुप में पहली सलामी दी गई थी; विभिन्न विवरणों के आधार पर फ्रास्टर, मेलकम तथा कतिपय अन्य यूरोपीय लेखकों ने गुरुदास पुर तथा लोहगढ़ को एक ही माना है। यहाँ पर अब सारस्वत ब्राह्मणों का एक मठ है जिन्होंने सिक्खों के अनेक तौर-तरीकों को पूरी तरह अपना लिया है।

२—कुछ विवरणों के वर्णन से ज्ञात होता है कि बन्दा ने सरहिन्द पर पुनः अधिकार कर लिया था।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

और उसे पीछे लौटने के लिए विवश होना पड़ा। अब्दुस समद उसका पीछा करता गया, और वीरता से शत्रु का सामना करते हुए तथा उसे अधिकाधिक हानि पहुँचाते हुए, बन्दा चौकी पर चौकी छोड़ते हुए पीछे हटता रहा; अन्त में बचाव का कोई चारा न देख उसे गुरदासपुर के नवनिर्मित गढ़ में शरण लेने पर बाध्य होना पड़ा। मुस्लिम सेना ने गढ़ पर कड़ा घेरा डाल दिया और बन्दा को बाहर से किसी भी सामग्री की प्राप्ति असम्भव हो गई; दुर्ग में जो कुछ संचित था, उसके बल पर वह कुछ दिनों तक बन्द पड़ा रहा; खाद्य सामग्री समाप्त हो जाने पर उसने घोड़ों और गधों को काटकर उनके मांस से अपने साथ के सैनिकों को जीवित रक्खा, परन्तु जब उसके सामने जीवन-रक्षा का कोई भी मार्ग न दिखाई पड़ा तो उसने घुटने टेक दिए।[1] बन्दा और अन्य लोगों को बड़े अपमानजनक ढंग से दिल्ली ले जाया गया; उनके आगे कुछ मुग़ल सैनिक भालों पर उन सिक्ख सैनिकों के सिर टाँगे चल रहे थे जिन्हें गुरदासपुर में ही मार डाला गया था। मार्ग में उनके साथ वैसा ही घृणित, व्यवहार मुग़ल सैनिकों ने किया जैसा कि धर्मान्ध और बर्बर और अर्ध-सभ्य विजेताओं द्वारा प्रायः किया जाता है।[2] प्रतिदिन सौ सिक्खों का वध किया जाता था, जब कि धर्मभक्त सिक्ख पहले स्वयम् शहीद होने के लिए आपस में विवाद किया करते थे। आठवें दिन बन्दा वैरागी को विचार के लिए न्यायाधीशों के समक्ष उपस्थित किया गया। एक मुसलमान अमीर

बंदा का कैद होना सन् १७१६ ई०

१—देखिए मेलकम लिखित 'स्केच' पृ. ७६-८०; फार्स्टर का 'ट्रवेल्स' १:३०६ और नोट; तथा 'सिअर-उल-मुताखरीन,' १:११६,११७। साधारण विवरणों में सिक्ख सैनिकों की संख्या ३५००० (फार्स्टर के अनुसार २०,००० बताई गई है; उनके अनुसार अब्दुस समद लाहौर में एक वर्ष तक तैयारी करता रहा था, और समस्त पर्वतीय राजा उसकी मदद के लिए आ गए थे; ये दोनों ही स्थितियाँ सत्य होने की पर्याप्त सम्भावना रखती हैं।

२—सिअर-उल-मुताखरीन', १:११८,१२०; एलार्फिंस्टन, (हिस्ट्री, २:५७४ ५७५ तत्कालीन इतिहास कार खाफ़ी खान को उद्धृत करते हुए, सिख बन्दियों की संख्या ७४० बताता है। 'सिअर-उल-मुताखरीन' में यह वर्णन मिलता है कि बायजीद खाँ की वृद्धा माँ ने अपने पुत्र के हत्यारे के सिर पर पत्थर गिरा कर मार डाला जो अन्य बन्दियों के साथ लाहौर की सड़कों से गुज़र रहा था।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ने उस बैरागी से बहस के दौरान में पूछा कि उसके समान ज्ञानी और बुद्धिमान व्यक्ति ऐसे अपराधों में क्यों लिप्त है, जो उसे सीधा नरक में ले जायँगे; इस प्रश्न के उत्तर में बन्दा बैरागी ने कहा कि दुष्टात्माओं को सही मार्ग पर लाने के कार्य में वह तो ईश्वर का एक साधन मात्र है, और अब जो वह उन्हीं दुष्टात्माओं के समक्ष बँधा खड़ा है, वह इस कारण कि वह ईश्वर द्वारा सौंपे गये कार्य को पूर्ण नहीं कर सका है। न्याय का तमाशा करने वालों ने बैरागी के बेटे को उसके घुटनों पर रखते हुए बन्दा के हाथ में एक छुरा दे दिया, और उसे आदेश दिया कि वह अपने ही हाथों से अपने बेटे की जान ले ले। उसने चुपचाप, बिना हिचकिचाए ऐसा ही किया; इसके पश्चात् लोहे की सलाखों को तपा कर जल्लादों ने उसके शरीर में धँसाना शुरू किया, और इन्हीं यातनाओं को सहते सहते जब उसके प्राण निकल गए; तो ठहाका लगाते हुए मुसलमानों ने अनुमान लगाया कि उसकी काली आत्मा सीधे नरक की ओर गई होगी।[1]

बन्दा की मृत्यु

सिक्ख समाज में बन्दा की स्मृति तथा उसके कार्यों को कोई अधिक महत्व की दृष्टि से नहीं देखा जाता। विभिन्न विवरणों से ऐसा प्रतीत होता है कि वह निराशावादी और विषण्ण प्रकृति का व्यक्ति था; एक उत्साही और साहसपूर्ण नेता के रूप में सिक्ख सैनिक उसके आदेशों का पालन करते थे, परन्तु व्यक्तिगत रूप से वह अपने अनुयायियों की सहानुभूति से वंचित था। ऐसा लगता है कि वह गुरु नानक जी तथा गोबिन्द जी के सुधारों की सामान्य प्रकृति को भली भाँति नहीं समझ सका था; वह प्रकृति से कट्टर साम्प्रदायिक था। उक्त धर्मगुरुओं ने आराधना के जिन ढंगों, तथा जिन धार्मिक प्रथाओं का प्रचलन किया था, उनका महत्व वह न समझ सका; उसने अपनी बैरागी और हिन्दू विचारधारा के अनुसार पूर्वनिर्धारित व्यवस्था में अनेक परिवर्तन कर डाले। अधिक धर्मोत्साही सिक्खों द्वारा इन नवीन परिवर्तनों एवम् प्रतिबन्धों का

बन्दा का व्यक्तित्व एवम् सिक्खों पर प्रभाव

१—मेलकम स्केच, पृ. ८२ द्वारा 'सिअर-उल-मुताखरीन' उद्धृत। 'सिअर उल-मुताखरीन (१:१०६), ओर्मे (हिस्ट्री, २:२२) और एलफिन्स्टन (हिस्ट्री; २:५६४) ने बन्दा की पराजय और मृत्यु का समय सन् १७१६ बताया है जब कि फार्स्टर (ट्रवेल्स, १:३०६ : नोट) के अनुसार यह घटना सन् १७१४ ई० की है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विरोध किया गया, और सम्भवतः इसी कारण से बन्दा जैसा योग्य और साहस से ओत प्रोत नायक उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाने लगा[1]।

बन्दा बैरागी की मृत्यु के पश्चात् भी सिक्खों के दमन का कार्य कुछ काल तक अबाधगति से चलता रहा। गत युद्धों में ही सिक्ख धनजन की अत्यधिक हानि उठा चुके थे; और अब इस निरन्तर दमन से उनका बचा खुचा बल व साहस भी जाता रहा, और वे टूट से गए। सिक्खों को देखते ही उन्हें कैद कर लिया जाता था, और तब उनके सामने दो ही मार्ग बच रहते थे; या तो इस्लाम क़बूल करें या तलवार की धार पर उतरें। उनके सिरों के लिए इनाम रक्खे जाते थे, और उनसे बदला लेने की प्रवृत्ति ने मुगलों को पशु बना डाला था। उन्होंने दमन के ऐसे भयानक तरीको का प्रयोग किया कि अनेक सिक्खों ने हिन्दू धर्म ग्रहण कर लिया; कुछ अन्य ने सिक्खों के प्रतीकों-कच्छ; केश, कड़ा आदि को धारण करना बन्द कर दिया, और जो अधिक दृढ़ थे, वे भाग कर पर्वतीय भागों तथा सतलज नदी के दक्षिणी भाग में स्थित बनों में जा छिपे। लगभग एक पीढ़ी तक भारत के इतिहास में सिक्खों के विषय में कोई उल्लेख नहीं मिला।[2]

सिक्खों का दमन

इस प्रकार दो शतियों की समाप्ति तक सिक्ख धर्म, एक प्रबल भावना और दृढ़ पथप्रदर्शक सिद्धान्त के रूप में अपनी गहरी जड़ें जमाकर विश्व में अपने अस्तित्व की घोषणा कर चुका था। सर्व प्रथम नानक जी ने अपने छोटे से वर्ग को मूर्तिपूजक हिन्दुओं तथा अन्धविश्वासी एवम् कट्टर मुसलमानों से पूर्णतः भिन्न आस्तित्व प्रदान किया और उसे धार्मिक एवम् नैतिक पवित्रता के विस्तृत आधार

१—मेलकम, 'स्केच' पृ. ८३,८४; बन्दा को भी भारतीय कभी-कभी गुरु के पद से सम्बोधित करते है, जैसा कि 'सिअर-उल-मुताखरीन' (१:११४) में मिलता है। सिक्खों में अब भी एक वर्ग ऐसा है जो बन्दा को ही अपना आदि-नेता मानते हैं। ऐसी सूचना मिलती है कि बन्दा स्वयं अपना एक अलग सम्प्रदाय बनाना चाहता था; उसका मत था कि गुरु गोबिन्द जी का सम्प्रदाय स्थायित्व का गुण नहीं रखता। सिक्खों के प्रसिद्ध नारे, 'वाह गुरु की फतेह', को भी परिवर्तन कर उसके स्थान पर 'फतेह धरम' और 'फतेह दर्शन' को प्रचलित करना चाहता था।

२—देखिए फार्स्टर का 'ट्रवेल्स, १:३१२,३१३ ब्राउन का 'इण्डिया ट्रैक्ट्स' २:१३ तथा मेलकम का 'स्केच'; पृ. ८५ व ८६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पर पूर्ण आत्मिक स्वतंत्रता के साथ स्थित किया। उनके पश्चात् अमरदासजी ने इस शिशु सम्प्रदाय को साधुओं और निष्क्रिय वर्ग में परिवर्तित होने से रोका; फिर अर्जुन जी ने निरन्तर वृद्धि को प्राप्त अपने अनुयायियों को एक नागरिक संगठन और लिखित व्यवहार संहिता द्वारा उनकी पूर्ण स्वतंत्रता को कुछ सीमा तक नियंत्रित किया; हरगोबिन्द जी ने इस धार्मिक व नागरिक संगठन को अस्त्रशस्त्रों के प्रयोग तथा सैनिक प्रणाली के समारम्भ से शक्ति प्रदान की तथा गोबिन्द जी ने उसे एक स्पष्ट और स्वतंत्र राजनैतिक आस्तित्व दिया, तथा सिक्खों में सामाजिक तथा राष्ट्रीय स्वतंत्रता की आकांक्षा जागृत कर उन्हें अत्याचार व दमन का विरोध करने के लिए प्रेरित किया। इस वर्ग के लिए किसी अन्य विधान व व्यवस्था की आवश्यकता का अनुभव नहीं किया गया; सिक्खों में गुरु की आज्ञा का दृढ़ता से पालन करना धर्म समझा गया तथा एक अस्पष्ट, आस्थामय भावना ने सक्रिय सिद्धान्त का रूप ग्रहण कर लिया। इस धर्म की कार्यप्रणाली, एक निश्चित तथ्य है, यह अभी भी प्रगति के पथ पर है, और इससे प्राप्त होने वाले फलों का पूर्वाभास अभी नहीं मिल सका है। जहां एक ओर प्रबल एवम् विस्तारवादी इस्लाम, पतनोन्मुख तथा भ्रष्ट ब्राह्मणवादी सिद्धान्तों की जड़ों पर चोट कर रहा था वहीं दूसरी ओर, और भी अधिक विपरीत परिस्थितियों में सिक्ख धर्म का उदय हुआ। अब यह धर्म यूरोपीय ईसाइयों, तथा उनकी सभ्यता के निकट सम्पर्क में हैं, इस सम्पर्क का परिणाम क्या होगा, यह तो भविष्य ही बता सकेगा।[1]

सिक्ख धर्म की प्रगति पर विहंगम दृष्टि :

१—स्वयम् सिक्ख धर्म में ही परिवर्तन के तत्व निहित है, मतभेद सदैव कमज़ोरी और विनाश की ओर ले जाता है, यद्यपि कभी-कभी यह अस्थायी रुप से शक्ति एवम् उत्साह में वृद्धि भी करता है। सिक्खों में अनेक वर्ग हैं, परन्तु गुरुगोविन्द जी के मत, सिद्धान्तों की प्रबलता ने अन्य लभी वर्गों को ढँक रक्खा है। फार्स्टर ने नानक जी के 'खुलास' तथा गोबिन्द जी के 'खालस' में जिस वर्ग भेद का उल्लेख किया है ('ट्रवेल्स', १:३०६), उसका

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अस्तित्व अब नहीं रहा है। वर्तमान समय में 'खुलास' वर्ग का नाम भी नहीं सुनाई पड़ता और सभी सिक्ख स्वयम् को 'खालस' का सदस्य बताते हैं; नानक जी के शान्ति मार्ग के अनुयायी सिक्ख अब भी भारत के नगरों में हर जगह मिल सकते हैं, यद्यपि 'दसवे पादशाह', गोविन्द जी के मतानुयायी, युद्ध प्रिय सिंह ही पंजाब में प्रबल हैं और वीर सैनिकों के रुप में काबुल से भारत तक सर्वत्र बिखरे हुए हैं।

टिप्पणी—सिक्खों के कुछ 'ग्रंथों' से सम्बन्धित विवरण के लिए, गुरुओं के सिद्धान्तों और व्यवहारों की व्याख्याओं के लिये, जो गुरुओं के वचनों पर आधारित हैं, तथा नानक जी एवम् गोविन्द जी के कुछ पत्रों के लिए पाठक परिशिष्ट १,२,३ व ४ देखें; सिक्ख वर्गों की सूची के लिए परिशिष्ट ५ देखें।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अध्याय ४

सिक्ख स्वतन्त्रता की स्थापना

१७१६-६४

मुग़ल साम्राज्य का क्रमिक पतन– सिक्खों का क्रमिक उदय —मीर मन्नू द्वारा, तथा पुनः अहमदशाह के पुत्र तैमूर द्वारा सिक्खों का दमन—'खाल्स' की सेना, तथा 'खाल्स' के राज्य की, एक ठोस शक्ति के रूप में मान्यता—अदीन बेग खाँ तथा राघोबा के नेतृत्व में मराठे—अहमदशाह के आक्रमण एवम् सफलतायें—सरहिन्द तथा लाहौर के सूबों पर सिक्खों की प्रभुसत्ता—एक जागीरदारी संघ के रूप में सिक्खों का राजनीतिक संगठन—अकालियों का वर्ग।

तैमूर लंग के बंशजों में औरंगजेब अन्तिम सम्राट था जिसमें इतने विस्तृत साम्राज्य पर नियंत्रण रखने की क्षमता थी। मुग़ल साम्राज्य विभिन्न प्रकार की भूरचना एवम् जलवायु वाले क्षेत्रों तथा परस्परविरोधी

१७१६-३८ सिद्धान्तों का सामूहिक रूप था, और ऐसे भिन्न धर्मों, प्रथाओं, भाषाओं आदि से युक्त साम्राज्य पर नियंत्रण रखने में औरंगजेब के उत्तराधिकारी अक्षम थे परस्पर द्वेष रखने वाले, तथा सन्दिग्ध स्वामिभक्ति वाले स्वार्थी मंत्रियों व परामर्श दाताओं पर राजद्रोही प्रजा व आन्तरिक विद्रोहों के कारण, मुग़ल शासन का नाम भर रह गया था और सर्वत्र अराजकता व्याप्त थी। एक ही पीढ़ी की अवधि में, विभिन्न मुसलमान साहसी नायकों ने बंगाल, लखनऊ, और हैदराबाद में स्वतंत्र राज्यों की स्थापना कर ली थी; मराठा पेशवा ने सशस्त्र सेना के साथ शाही राजधानी में अचानक प्रकट होकर भारत के सारे मुसलमानों को बुरी तरह चौंका दिया था[1] तथा क्रूर नादिरशाह ने मुग़ल समृद्धि का अपहरण करके, एक अरसे से सिंहासन च्युत मुहम्मदशाह को घृणापूर्वक तुर्क बिरादर कह कर उसकी रक्तरंजित राजधानी

१—यह घटना सन् १७३७ ई. की है, जब मराठा पेशवा बाला जी राव आक्रामक के रूप में आगरा से दिल्ली की ओर बढ़ा-देखिए एलफिन्सटन लिखित 'हिस्ट्री' २: ६०६, तथा ग्राण्ट डफ लिखित 'हिस्ट्री आँव द मराठाज' १: ५३३-५३४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

में सम्मान के रूप में उसका उपहास किया था[1]। रुहेलखण्ड के अफगानों तथा भरतपुर के हिन्दू जाटों ने ठोस शक्तियों के रूप में अपना महत्व स्थापित कर लिया था[2] और जब ईरानी विजेता दिल्ली से लूटपाट में प्राप्त अपार धनराशि तथा अमूल्य सामग्रियों[3] के साथ विदा होने लगा तो मुग़ल-

१७१६-३८

दरबार और निर्बल हो चुका था, शासन-सूत्र तथा जन समाज का सामान्य जीवन छिन्न भिन्न हो गया था, और यह स्थिति उस काल की अपेक्षा बदतर थी जब बाबर ने इने गिने सैनिकों के साथ, भारत में अपने वंश के उपयुक्त सिंहासन प्राप्त करने के ध्येय से प्रवेश किया था।

दिल्ली दरबार की इस उथल पुथल से कुचले हुए सिक्खों को पुनः सर उठाने के लिए उपयुक्त और अनुकूल अवसर प्राप्त होने की आशा होने लगी, परन्तु लाहौर में अब भी अब्दुस समद का शासन निर्बल नहीं पड़ा था। उसके, तथा उसके पश्चात् अपेक्षाकृत निर्बल उत्तराधिकारी के समय में भी सिक्खों के जत्थे गाँवों में शान्तिप्रिय प्रजा की भाँति चुपचाप पड़े रहे, या डाकुओं के रूप में आजीविका के लिए पहाड़ी भागों, बनों तथा घाटियों में भटकते रहे;[5]

मुगल शासन की निर्बलता: अवसर

१—देखिए नादिरशाह का वह पत्र जो उसने अपने पुत्र को लिखा था, और जिसमें उसने भारत पर अपने सफल आक्रमण का विवरण दिया था। एशियाटिक रिसर्चेज़, १०:५४५, ५४६

२—रुहेलों के सम्बन्ध में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विवरण फार्स्टर लिखित 'ट्रवेल्स' (१: ११५) में मिलता है; रुहेलों के सर्वाधिक प्रसिद्ध सरदारों में से एक हाफिज रहमत खाँ-के संस्मरणों के प्रकाशन के लिए इतिहास प्रेमी पाठकों को लन्दन की ओरिएण्टल ट्रांसलेशन कमिटी का कृतज्ञ होना चाहिए।

भरतपुर, धोलपुर, हाथरस, तथा अन्य स्थानों के जाटों के कृत्यों का महत्व देखते हुए उनका एक अलग इतिहास लिखा जाना चाहिए।

३—[इन लूट की इन अमूल्य सामग्रियों में शाहजहाँ का विख्यात तख्ते ताऊस, तथा कोहिनूर हीरा भी सम्मिलित था; कोहिनूर का इसके बाद का इतिहास सर्वविदित है, और उसे दुहराने की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती-सम्पादक]

४—सम्भवतः वह बन्दा पर विजय प्राप्त करने वाले सूबेदार का पुत्र था, उसका नाम ज़करिया खाँ था, तथा उपाधि, खान बहादुर।

५—देखिए फार्स्टर लिखित 'ट्रवेल्स' १: ३१३, तथा ब्राउन लिखित 'इण्डिया ट्रैक्ट्स; २: १३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पाकर सिक्खों का उदय: १७१६-३८

फिर भी गुरु नानक जी तथा गोबिन्द जी के वचनों एवम् प्रेरक कृत्यों की जड़ उनके हृदय में काफी गहराई तक जमी हुई थी, वे गत साहसिक अभियानों को विस्मृत नहीं कर पाए थे; किसान और कारीगर गुप्तरूप से अपनी धार्मिक क्रियाएँ सम्पन्न करते थे तथा अधिक उत्साही लोगों की भुजाएँ प्रतिहिंसा तथा भविष्य में त्वरित विजयों की कल्पना से फड़का करतीं थीं। गुरुओं की शृंखला में अन्तिम, गोबिन्द जी ने मरते समय स्वयम् को अन्तिम पैग़म्बर घोषित किया था; धर्मोत्साही सिक्खों के पास कोई पथप्रदर्शक नहीं रह गया था, तथा उद्दण्ड और अशिक्षित सिक्ख जन-जो अपने अन्तिम गुरु को अवतारी मानने लगे थे बिना किसी क्रमबद्ध योजना के, महानता की ओर अग्रसर होने के लिए आकुल हो रहे थे, जब कि उनके पास एक ही धर्म के प्रति आस्था एवम् श्रद्धा के अतिरिक्त, एकता में बाँधने वाला कोई अन्य सूत्र नहीं था।

सिक्ख लुटेरों के दल के रूप में १७३८-३९ ई०

जिस समय नादिरशाह ने भारत पर आक्रमण किया, और दिल्ली तक चढ़ आया तो सिक्खों को मनमानी करने का स्वर्ण अवसर प्राप्त हो गया। उन्होंने अपने छोटे बड़े जत्थे बना लिए और इधर-उधर निर्द्वन्द होकर लूटपाट करने लगे। उनकी इस साहसिक वृत्ति के शिकार बने-ईरानी सेना के वे दल, जो स्वयम् बिखर कर उसी कर्म में लिप्त थे, तथा नज़दीकी इलाकों के वे धनी लोग, जो ईरानी विजेता के भारत प्रवेश की ख़बर पाते ही सुरक्षा के लिए पहाड़ों की ओर भागे जा रहे थे। दिल्ली में ऐतिहासिक हत्याकाण्ड-नादिरशाही कत्ले आम की ख़बर फैलने पर ऐसे भगोड़ों की संख्या बढ़ गई, और सिक्खों को हाथ गरम करने का और अच्छा अवसर मिला।[1] उन्होंने जब देखा कि उनकी

१--ब्राउन लिखित 'इण्डिया ट्रैक्ट्स; २: १३, १४ नादिरशाह ने मुगल बादशाह से सिन्ध व कांबुन के सूबे, तथा लाहौर सूबे के, झेलम तट पर स्थित चार जिलों को ले लिया था।

उस समय अब्दुस समद खाँ का पुत्र जकरिया खाँ लाहौर का सूबेदार था। दिल्ली सम्राट की पराजय तथा नादिर के दिल्ली प्रवेश की तिथियाँ क्रमशः १३ फरवरी, तथा मार्च १७३९ का पूर्वार्द्ध है, परन्तु लन्दन में इस महान घटना की खबर पहली अक्टूबर से पहले न पहुँच सकी; इससे ज्ञात होता है कि तीन पीढ़ी पूर्व अंग्रेज दिल्ली और वहाँ घटित घटनाओं को कितना कम महत्व देते थे, साथ ही यह भी कि संचार के साधन कितना धीमा कार्य करते थे। देखिए वेड लिखित 'क्रोनोलॉजिकल ब्रिटिस हिस्ट्री' पृ.४१७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

१७३८-४६ इन अराजकतापूर्ण कार्रवाइयों पर ध्यान देने की फुरसत किसी को नहीं है, तो उनका साहस और बढ़ गया, और छद्मवेष में, तथा गुप्तरूप से अमृतसर जाने के स्थान पर वे खुले रूप से आने जाने लगे एक मुसलमान लेखक का कथन है कि सिक्ख सवारों को अमृतसर के पवित्र गुरुद्वारे में प्रार्थना के लिए सरपट जाते हुए देखा जा सकता था। उनमें से कुछ मारे जाते थे, कुछ पकड़े भी जाते थे, परन्तु ऐसी कोई सूचना नहींमिलती कि इस प्रकार पकड़े जाने पर भी उनमें से किसी ने अपना धर्म छोड़ा हो या गुरुद्वारे जाना छोड़ा हो।[1] सिक्खों के कुछ दलों ने मिलकर रावी नदी के तट पर, डल्हवाल नामक स्थान पर एक गढ़ के निर्माण करने में सफलता प्राप्त की। अभी तक उनकी कार्रवाइयों पर किसी ने ध्यान नहीं दिया था, परन्तु जब वे काफ़ी बड़ी संख्या में एकत्रित होकर लाहौर के उत्तर में स्थित एमिनाबाद के इलाके से कर वसूल करने लगे तो लाहौर के सूबेदार की ओर से एक टुकड़ी इन लुटेरे सिक्खों को मार भगाने के लिए रवाना की गई जिसे सिक्खों ने भगा दिया और नायक को मार डाला। अब एक और बड़ी सेना भेजी गई और सिक्ख पराजित हुए; अनेक बन्दी सिक्ख लाहौर ले आए गए, और निर्दयतापूर्वक उनका वध कर डाला गया।

रावी के तट पर, डल्हवाल में गढ़ का निर्माण

पुनः दमन (लगभग १७४५-४६ ई०)

जिस स्थान पर यह हत्याकाण्ड हुआ था, वह 'शहीद गंज' नाम से प्रसिद्ध हुआ।[2] इसी स्थान पर भाई तरु सिंह की मजार है जिनसे मुसलमानों ने कहा कि यदि वे अपने जान की सलामती चाहते हैं तो अपने केश कटा दें और सिक्ख धर्म का परित्याग कर दें; परन्तु वे तो गुरु गोविन्द जी के अन्तरंग थे; वे न तो अपनी आत्मा व चेतना का हनन करने को राजी हुए, न अपने धर्म के प्रतीक, केशों को कटाना ही स्वीकार किया; उन्होंने उक्त धमकी के उत्तर में जो कुछ कहा, वह आज भी सुरक्षित है। उन्होंने कहा कि केश, खोपड़ी, और उसके ऊपर का चर्म, इन तीनों में

१—मेलकम (स्केच, पृ. ८८) ने इस मुसलमान लेखक को उद्धृत तो किया है, परन्तु उसका नाम नहीं दिया है

२ – देखिए ब्राउन का 'इण्डिया ट्रैक्टस; २:१३; १४ मेलकम, 'स्केच' पृ.८६ तथा मेरे लिखित 'रणजीत सिंह; प्रिंसेप द्वारा सम्पादित, पृ. ४। जकरिया खाँ ज्येष्ठपुत्र महिया खाँ उस समय पंजाब का सूबेदार था।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पारस्परिक सम्बन्ध है; मनुष्य का सिर, जीवन से कड़ी की भाँति जुड़ा होता है; और वे प्रसन्नतापूर्वक अपने प्राण का त्याग करने के लिए तैयार हो गए।

इस समय लाहौर की सूबेदारी के लिए अब्दस समद के उत्तराधिकारी ज़करिया खाँ के दो पुत्रों में संघर्ष चल रहा था। छोटे भाई, शाह नवाज़ खाँ ने बड़े भाई को पद च्युत कर दिया और अपहरण से प्राप्त अधिकार को सुदृढ़ बनाने के लिए उसने अहमदशाह अब्दाली से पत्रव्यवहार

१७४७-४८ आरम्भ किया जो जून १७४७ ई० में नादिरशाह के कत्ल के बाद अफगानिस्तान के तख़्त पर कब्ज़ा कर चुका था। इस दुर्रानी सुल्तान ने शीघ्रातिशीघ्र मध्य एशिया की युद्ध प्रिय जन जातियों के चुने हुए जवानों को एकत्रित कर लिया जो स्वभाव से ही दूर दूर के देशों में जाकर लूटपाट करने में विशेष आनन्द लेते थे।

भारत पर अहमदशाह का प्रथम आक्रमण-सन् १७४७-८:

अहमदशाह की आँखें भारत की समृद्धि पर पहले से ही गड़ी हुई थीं, और वह इस देश को एक आक्रामक के लिए सर्वाधिक लाभदायक समझता था। इस महत्वाकाँक्षा पर राजनीतिक आवरण डालने के लिए उसे दो बहाने भी मिल चुके थे-लाहौर की सूबेदारी के झगड़े का निबटारा करना, तथा, नादिरशाह द्वारा नियुक्त काबुल के भगोड़े सूबेदार के दिल्ली में हुए स्वागत के लिये बादशाह से जवाब तलब करना, क्योंकि उक्त सूबेदार उसका पूर्वघोषित शत्रु था[1]। अहमदशाह ने सिन्ध नदी को पार कर लिया, परन्तु इस बीच पासा पलट गया था; लाहौर के अपहरणकर्ता सूबेदार शाहनवाज़ खाँ को बुद्धि आ गई थी, बड़े भाई के प्रति षड़यंत्र से पश्चाताप ग्रस्त उसकी आत्मा ने कूटनीति पर विजय पाई और उसने बढ़ते हुए अफगानों को रोकने का संकल्प किया। लाहौर के सूबेदार के बदले हुए रुख पर भी अहमदशाह के बढ़े कदम न रुके, और उसने शाहनवाज़ खाँ को पराजित करके पंजाब पर अधिकार कर लिया। तत्पश्चात् अहमदशाह सरहिन्द की ओर बढ़ चला जहाँ उसकी मुठभेड़

१—देखिए प्रिन्सेप द्वारा सम्पादित मरे का 'रणजीत सिंह; पृ. ६ तथा ब्राउन लिखित 'इण्डिया ट्रैक्ट्स' २:१५

२—१५ काबुल के यह सूबेदार नासिर खाँ-न तो अपनी लड़की का विवाह अब्दाली से करना चाहता था, न उसे सुल्तान जैसा सम्मान ही देने के लिए तैयार था। एलफिन्सटन लिखित 'एकाउन्ट ऑव काबुल; २: २८५ भी देखें, परन्तु वह इन विस्तारों का वर्णन नहीं करता।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अहमदशाह की वापसी पृष्ठभाग पर सिक्खों का हमला मार्च (१७४८)

पतनोन्मुख मुगल साम्राज्य के वज़ीर से हुई। कुछ छिट-पुट लड़ाइयों के पश्चःत् एक निर्णायक युद्ध हुआ, और इसका परिणाम विदेशी आक्रामक के लिए इतना प्रतिकूल सिद्ध हुआ कि उसने बिना समय नष्ट किए पंजाब को पार किया; और इस प्रकार चौकन्ने सिक्खों को, अब्दाली की वापस लौटती सेना के पृष्ठ भाग पर आक्रमण करने, और अपनी शक्ति की धाक जमाने का अवसर मिल गया। अब्दाली के साथ हुए निर्णायक युद्ध में दिल्ली का वज़ीर गोले की चोट से समाप्त हो गया था, परन्तु उसके बेटे मीर मन्नू ने इस अभियान में जिस वीरता एवम् नेतृत्व शक्ति का परिचय दिया था' उस पर दृष्टि रखते हुए उसे मुईन-उल-मुल्क का खिताब देकर लाहौर का सूबेदार बना दिया गया।[1]

मीर मन्नू, अदीन बेग खाँ और कौरमल-सन् १७४८ ई:

यह नया सूबेदार एक दृढ़ इच्छा शक्ति वाला शासक था, परन्तु उसे मुग़ल साम्राज्य के हितों की अपेक्षा अपने ही स्वार्थों की चिन्ता अधिक थी, साथ ही अपने सूबे के प्रशासन में वह केवल उन्हीं भावनाओं व निर्णयों पर विश्वास रखता था जो स्वयम् उसके ही द्वारा प्रेरित होतीं थीं। सूबे की अराजकतापूर्ण स्थिति को देखते हुये उसने अपनी सहायता के लिए दो अनुभवी सरदारों अदीन बेग खाँ तथा कौरमल-को २ क्रमशः अपने सहायक, तथा जालन्धर दो आब के प्रबन्धक के पदों पर नियुक्त किया। इन दोनों सरदारों ने उस समय सदा अराजकतापूर्ण स्थिति बनाए रखने वाले सिक्खों का प्रतिरोध बड़ी कुशलता से किया था जो सदैव लाहौर के ग़द्दार सूबेदारों की नाक में दम किए रहते थे[2]। अहमदशाह के आक्रमण के समय सिक्खों ने अमृतसर के निकट स्थित एक गढ़-रामरौनी-को ध्वस्त कर दिया

—देखिए एलफिन्सटन लिखित 'काबुल, २: ८५-८६ तथा म लिखित 'रणजीतसिंह पृ. ६-८।

२—कौरमल स्वयम् नानकजी का मतानुयायी था, परन्तु उसने गोबिन्द जी के सिद्धान्तों को ग्रहण नहीं किया था। (फार्स्टर, 'ट्रेवेल्स' १: ३१४) अदीन बेग खाँ को जकरिया खाँ ने जालन्धर दो आब का इन्तिज़ाम कर नियुक्त किया था, और सिक्खों पर खास नजर रखने की हिदायत दी थी (ब्राउन, इण्डिया ट्रैक्ट्स २: १४)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जस्सा सिंह के नेतृत्व में सिक्खों का पुनः प्रकट होना: मन्नू द्वारा उनका दमन तथा अहमदशाह से सन्धि: १७४८ के अन्त में अब्दाली द्वारा पुनः सिन्ध पार करना:

था; इस समय उनका नेतृत्व एक बहुत ही योग्य नेता के हाथ में था जिसका नाम था जस्सा सिंह कलाल; उसने राज्य में एक नई शक्ति के अभ्युदय की घोषणा की जिसका नाम उसने खाल्स का 'दल'[1] या सिंहों के वर्ग की सेना रक्खा। मीर मन्नू ने अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के बाद ही इन बाग़ियो के विरुद्ध कूच कर दिया; उनके गढ़ पर अधिकार कर लिया, उनकी टुकड़ियों को बिखेर दिया, और सूबे की समुचित व्यवस्था के लिये आवश्यक कदम उठाए[2]। अभी वह क्षेत्र की व्यवस्था में ही लगा हुआ था कि अचानक अहमदशाह अब्दाली के पुनः भारत पर आक्रमण करने की योजना की खबर ने उसका ध्यान इस आसन्न खतरे की ओर खींच लिया। उसने सैनिक शक्ति, तथा कूटनीति दोनों के प्रयोग का निश्चय करके, एक ओर तो उसने सम्भावित आक्रमण का प्रतिरोध करने के लिए चिनाब की ओर कूच कर दिया, और दूसरी ओर अहमदशाह के इरादों को वादों और रियायतों द्वारा बदलने के लिए उसने उसके पास दूत भी भेज दिए। अभी अहमदशाह अपने शासन को भी सुदृढ़ नहीं कर पाया था; उसने इस नौजवान सूबेदार की योग्यता का सम्मान किया जिसने सरहिन्द में पिछली बार उसकी गति अवरुद्ध कर दी थी, और इस शर्त पर वापस लौट गया कि चार समृद्ध ज़िलों की माल गुजारी उसी प्रकार उसे दी जाय, जैसे कि पहले नादिर-शाह को दी जाती थी।[3]

२—देखिए ब्राउन का 'इण्डिया ट्रैक्ट्स' २: १६ जिसके अनुसार जस्सा सिंह के मुख्य सहायकों के नाम थे-चरसा सिंह तुका सिंह और किरवार सिंह।

३ – सामान्यतः ऐसा समझा जाता है कि नानक जो का मतानुयायी होने के कारण कौरमल में, तथा व्यक्तिगत नीति के कारण अदीन बेग-दोनों ने ही मीर मन्नू को सिक्खों के पूर्ण विनाश के प्रयत्न से विरत किया था-देखिए ब्राउन का २:१६ तथा फास्टर 'ट्रेवेल्स' १: ३१४, ३१५, ३२७, ३२८; फास्टर इस सम्बन्ध में अपना मत प्रकट करते हुए कहता है कि मीर मन्नू जैसे महत्वाकांक्षी व्यक्ति का मस्तिष्क ऐसी बड़ी बड़ी योजनाओं के निर्माण में व्यस्त था, कि इस छटे से वर्ग के दमन की ओर ध्यान देने का समय ही उसके पास नहीं था।

४—अफगानो का मत है कि मीर मन्नू ने अहमदशाह को पूरे पंजाब का कर देने का वादा किया था, और परिस्थितियों को देखते हुए इसमें सन्देह नहीं

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इन प्रशासकीय एवम् कूटनीतिक सफलताओं के लिए दिल्ली में मीर मन्नू की प्रशन्सा की गई, परन्तु दिल्ली साम्राज्य के वज़ीर सफदरजंग को उसकी महत्वाकांक्षा से भय होने लगा; वज़ीर स्वयम् भी अवध पर आँख गड़ाए बैठा था, और उसे शक था कि उसके पूर्ववर्ती वज़ीर का बेटा भी वैसी ही योजनाएँ बना रहा होगा। उसकी मत्रंणा से दिल्ली दरबार में यह योजना बनाई गई कि मुल्तान की सूबेदारी शाहनवाज़ खाँ को दे दी जिससे मीर मन्नू ने लाहौर की सूबेदारी छीन ली थी;[1] परन्तु मन्नू शाही ताकत से भी परिचित था' और अपने संसाधनों से भी; उसने अपने विश्वस्त सहायक, कौरमल को उसने नव-नियुक्त सूबेदार का प्रतिरोध करने के लिए भेज दिया। शाहनवाज़ खाँ पराजित हुआ और मारा गया, और विजयी मीर मन्नू ने अपने सफल सहयोगी, कौरमल को महाराजा की उपाधि देकर सम्मानित किया[2]। दिल्ली दरबार की वास्तविक स्वतंत्रता तथा सिक्खों के उपद्रवों के दमन से उत्साहित हो कर मीर मन्नू ने अहमदशाह को वह कर देना बन्द कर दिया जिसका वह वादा कर चुका था। अब्दाली की ओर से बकाया कर की माँग की गई; इधर से पूरी अदायगी का वादा किया गया; परन्तु दोनों ही दलों को एक दूसरे का विश्वास नहीं था। अफ़गान सुल्तान, अब्दाली लाहौर की ओर बढ़ चला, मन्नू ने सरहद पर ही उससे मुलाकात करने का दिखावा किया परन्तु अन्त में उसने अपना मोर्चा दीवालों से घिरे नगर की खाइयों में बनाया। यदि वह इसी प्रकार प्रतिरक्षात्मक नीति का पालन अन्त तक करता तो शायद अब्दाली के मन्सूबों पर पानी फिर जाता, परन्तु चार मास तक घिरे रहने के पश्चात् उसने ऊबकर खुली कार्यवाही करने का दुस्साहस किया। इस

१७४९-५२

अब्दाली का पुनः सिन्ध पार करना (७४९-५१:)

लाहौर प्रवेश: १७५२ ई०; मन्नू की पराजय, परन्तु उसका

कि वह उस आक्रामक को टालने के लिए कोई भी वादा कर सकता था-देखिए एलफिन्सटन का 'काबुल' २: २८६ तथा मरे का 'रणजीतसिंह पृ. ९, १०।

१—मुल्तान के स्थानीय वृतान्तों के अनुसार जकरिया खाँ का छोटा लड़का हयात उल्ला खाँ उस समय मुल्तान का सूबेदार था जब १७३९-४० ई. में नादिरशाह ने सिन्ध में प्रवेश किया, और मुल्तान को अपने अधिकार में ले लिया; इस ईरानी विजेता के साथ हुई सन्धि के परिणाम स्वरूप उसे शाहनवाज खाँ का खिताब दिया गया था।

२—देखिए मरे लिखित 'रणजीतसिंह; पृ. १०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पंजाब की सूबेदारी पर बना रहना- अप्रैल १७५२

युद्ध में उसका दाहिना हाथ, कौरमल- मारा गया; अदीन बेग ने इस युद्ध में कोई विशेष उत्साह नहीं दिखाया; मन्नू ने अनुभव किया कि अधिक समय तक लड़ते रहने में पूर्णतः विनष्ट हो जाने की ही आशा है, अतः वह पुनः गढ़ में बन्द हो गया, और अफ़गान बिजेता से शान्ति पूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने की प्रार्थना की। पर्याप्त धनराशि तथा लाहौर एवम् मुल्तान के समर्पण से अहमदशाह अब्दाली सन्तुष्ट हो गया। उसने मन्नू की नेतृत्व शक्ति, तथा प्रबन्ध-कौशल की प्रशंसा की, और उसे नव-अधिकृत क्षेत्रों का प्रबन्ध सौंप दिया। उसने कश्मीर पर भी अधिकार करने का प्रयत्न किया, और तब अपने देश की ओर लौट गया[1]।

विदेशी शक्ति द्वारा हुए लाहौर के इस दूसरे घेरे से सूबे का प्रशासन निश्चित व आवश्यक रूप से निर्बल पड़ गया, और सदैव अवसर की ताक में रहने वाले सिक्खों ने पुनः उपद्रव मचाना प्रारम्भ कर दिया। अदीन बेग ने लाहौर के पिछले युद्ध में निरुत्साह द्वारा, तथा सिक्खों के प्रति उदारता के व्यवहार से अपने चारो ओर सन्देह का जो जाल बुन डाला था, उसे छिन्न भिन्न करके पुनः सूबेदार का विश्वास प्राप्त करने के लिए उसने सिक्खों के उपद्रवों का प्रतिकार करना ही नीतिपूर्ण समझा, यद्यपि वह किसी विशेष उद्देश्य से सिक्खों की नज़रों में गिरना नहीं चाहता था। मीर मन्नू ने उसे सिक्खों का दमन करने का आदेश दिया, क्योंकि इस समय तक वे वास्तव में अमृतसर, तथा उत्तर की ओर स्थित पहाड़ियों के मध्य स्थित सारे क्षेत्र के स्वामी बन बैठे थे। सिक्खों के एक उत्सव के दिन उसने मखोवाल में उन पर अचानक हमला बोल दिया और उन्हें बुरी तरह पराजित कर दिया, परन्तु वह अब भी स्वयम् को सिक्खों का शत्रु सिद्ध नहीं करना चाहता था, अतः उसने उनके साथ यह समझौता किया कि उनकी लगान घटाकर नाम मात्र का कर दिया जायगा, तथा जिन क्षेत्रों से वे मालगुज़ारी वसूल करते थे, उन पर उनका अधिकार क्रमबद्ध व नियमित कर दिया जायगा।

१७५२-५६

सिक्खों का पुनः सर उठाना, परन्तु पुनः पराजय- १७५२ ई०

१—देखिए एलफिन्सटन लिखित 'काबुल' २: २८८, तथा मरे लिखित रणजीत सिंह पृ. १०, १३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उसने अनेक सिक्खों की अपनी सेना में भी ले लिया जिनमें जस्सासिंह नामक एक बढ़ई भी था जिसने कुछ समय बाद काफी प्रभाव जमा लिया था[1]।

मीर मन्नू की मृत्यु:लाहौर का दिल्ली में विलयन १७५२ ई०

नए अफगान विजेता के प्रतिनिधि के रूप में अपनी सत्ता की पुनर्स्थापना के कुछ माह पश्चात् ही मीर मन्नू की मृत्यु हो गई।[1] उसकी विधवा ने अपने प्रयत्नों द्वारा अपने नाबालिग़ पुत्र के लिए सूबेदारी प्राप्त कर ली, और स्वयम् संरक्षिका बन कर प्रशासन कार्य देखने लगी; दिल्ली दरबार और दुर्रानी सुल्तान के साथ भी उसका व्यवहार नीतिपूर्ण रहा। वह दोनों के प्रति अधीनता का भाव प्रकट करती थी, साथ ही उसने अपनी लड़की की सगाई दक्षिण के पहले निज़ाम, गाजि-उद्दीन से कर दी जिसने, भारत के पतनोन्मुख साम्राज्य के वज़ीर की हैसियत से अवध के सूबेदार का अधिकार हस्तगत कर लिया था[2]। परन्तु उसके इस जामाता ने उसके साथ विश्वासघात किया, जहाँ वह एक ओर अपने लिए एक बीबी चाहता था, वहीं वह मुग़ल साम्राज्य में एक और सूबा जोड़ना चाहता था; उसने लाहौर पहुँचते ही अपनी कुपित सास को अधिकार च्युत कर दिया। पंजाब उस समय तक अदीन बेग खाँ के नाममात्र के शासन में रहा, जब तक कि अहमदशाह ने पुनः आक्रमण करके सूबे को अपने अधिकार में न ले लिया। दुर्रानी सुल्तान ने सन् १७५५-५६ ई० के जाड़ों में लाहौर पार किया, और इससे पहले उसने अपने बेटे तैमूर को पंजाब का सूबेदार बनाकर जहानखाँ नामक एक सरदार को उसका संरक्षक नियुक्त कर दिया, अहमदशाह ने पंजाब की ही भाँति सरहिन्द को भी अपने राज्य में मिला लिया, और

अहमदशाह का चतुर्थ आक्रमण, शाहज़ादा तैमूर-पंजाब का सूबेदार

१—देखिए ब्राउन का 'ट्रैक्ट्स; २:१६,२०; फार्स्टर का 'ट्रवेल्स' १; ३१७, ३१८; एलफिन्सटन का काबुल, २: २६०; और ग्राण्ट उफ का हिस्ट्री ऑव द मराठाज' २: ११२ लगता है कि अदीन बेग १७५८ ई. के अन्त तक मर चुका था।

२—देखिए एलफिन्सटन लिखित 'हिस्ट्री' २: ६६६, ६७०।

३—नजीबुदौला तथा रुहेलों ने जब मराठों द्वारा अपने गाँवों को आग लगाए जाते देखा तो उन्होंने अहमदशाह अब्दाली से वापस लौटने का अनुरोध किया (एलाफिन्सटन लिखित 'हिस्ट्री ऑव इण्डिया; २: ६७० तथा ब्राउन का 'ट्रैक्ट्स' २: २०)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वैसे व्यक्तिगत रूप से कर दिया, परन्तु वह

१७५६-५८

नजीर बुद्दौला मुग़लों का मुख्य सेनापति १७५५-५६

मुग़ल साम्राज्य के वज़ीर गाजिउद्दीन को तो क्षमा उस समय तक कन्दहार न लौटा जब तक कि उसने दिल्ली और मथुरा को लूट न लिया; दिल्ली सम्राट अपने वज़ीर के हाथ की कठपुतली बना हुआ था, स्थिति को और संतुलित करने के लिए उसने नजीब-उद्दौला नामक एक रुहेले सरदार को दिल्ली की सेना का मुख्य सेनापति बना दिया, और इस प्रकार दिल्ली दरबार में उसने अपने हितों का एक सक्षम प्रतिनिधि रख दिया।[1]

पंजाब के नव-नियुक्त सूबेदार, शाहजादा तैमूर ने जैसे ही अपना कार्य-भार सँभाला, अपने सामने दो लक्ष्य निर्धारित किये : उपद्रवकारी सिक्खों की ताकत को पूर्णतः बिखेरना, तथा अदीन बेग खाँ को उस सहयोग के लिए दण्डित करना जो उसने लाहौर को मुगल साम्राज्य में मिलाने के लिए दिल्ली के वजीर को दिया था। इस समय तक जस्सा बढ़ई ने अमृतसर के रामरौनी गढ़ पर अधिकार कर लिया था, अतः पहला हमला उसी स्थान पर किया गया, गढ़ को ध्वस्त कर दिया गया, इमारतों को गिरा दिया गया और सिक्खों का पवित्र सरोवर मलवे से पट गया। इस घटना से शाहजादे पर से अदीन बेग का विश्वास उठ गया, तथा पहाड़ियों में गुप्तवास करता हुआ वह सिक्खों को गुप्त रूप से सहायता देता रहा तथा अफगानों से प्रतिकार के लिए उत्तेजित करता रहा। वे पुनः बड़ी संख्या में एकत्रित होने लगे और शीघ्र ही लाहौर के आसपास का क्षेत्र युद्धोन्मादी सिक्ख सवारों से भर उठा। जरा जरा से समयान्तर पर सिर उठा लेने वाली इस युद्ध प्रिय तथा

तैमूरद्वारा अमृत सर से सिक्खों का निष्कासन :

१—देखिए फास्टर का ट्रवेल्स, १:३१६-३१७ ब्राउन 'ट्रैक्ट्स' २: ४८, मॉलकम 'स्केच' पृ. ९२ ९४, एलफिन्सटन' काबुल; २: २८८, २८९, तथा मरे, 'रणजीत सिंह' पृ. १४, १५।

मीर मन्नू की विधवा की नाममात्र की सूबेदारी में, उसके सहायक के रूप में बिकरी खाँ ने अपना काफी रंग जमा लिया था, परन्तु अन्त में विधवा बेगम को सन्देह हुआ कि बिकरी खाँ उसका पद हथियाने का षड्यंत्र कर रहा था, अतः उसने अपने इस गद्दार सहायक को मरवा डाला वैसे उसे बेगम का प्रेमी समझा जाता था। (देखिए ब्राउन, २: १८ तथा मरे पृ. १४)

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

स्वतंत्रता की दीवानी जाति को बिखेरने के लिए शाह-जादा तैमूर तथा उसके संरक्षक, जहान खाँ द्वारा किए गए समस्त प्रयत्न विफल सिद्ध हुए और अन्ततः उन्होंने चिनाब की ओर लौट जाने में ही कुशल देखी। लाहौर पर सिक्खों ने अस्थायी रूप से अधिकार कर लिया, और उस जस्सासिंह ने लाहौर को एक वास्तविक सत्ता का प्रतीक बना डाला जिसने पहले ही 'खालस' के एक राज्य होने, तथा उसके लिए एक संगठित सेना रखने के इरादे की घोषणा की थी। मुगलों द्वारा स्थापित टकसाल तो अधिकार में थी ही, उसने खालस के नाम से रूपया ढालना भी प्रारम्भ कर दिया जिस पर यह मुद्रालेख अंकित था जस्सा कलाल द्वारा जीते गए अहमद के देश में "खालस" की कृपा से ढाला गया'।[1]

अफगानों की वापसी सिक्खों का लाहौर पर अधिकार सिक्का ढालना १७५६-५८:

इस समय दिल्ली-दरबार भी साजिशों का अखाड़ा बना हुआ था। अपनी व्यक्तिगत योग्यता तथा कूटनीति के साथ साथ अहमदशाह अब्दाली के प्रतिनिधि होने के कारण नजीबुद्दौला का प्रभाव बहुत बढ़ गया था। उसकी बढ़ती शक्ति से भयभीत होकर वजीर गाजिउद्दीन ने उसके प्रभाव को नष्ट कर उसे बहिष्कृत करने के लिए मराठों को बुला भेजा। वजीर ने पेशवा के भाई राघोबा को आगे बढ़ने के लिए बड़ी सरलता से तैयार कर लिया, मराठों ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया, और नजीबउद्दौला को भाग कर जान बचाना पड़ा। उधर अदीन बेग ने देखा कि सिक्खों की सहायता से उसकी महत्वकांक्षा पूर्ण न हो सकेगी, उसने अनुभव किया कि सिक्खों में न तो अधिक शक्ति विस्तार की इच्छा ही है, न उनमें इतनी शक्ति ही है कि उनके बल पर वह (अदीन बेग) पंजाब का सूबेदार बन सके, अतः अब उसने

१७५८-६१

दिल्ली में मराठे १७५८ ई०

१—देखिए ब्राउन 'ट्रैक्टस' २:१६, मालकम, स्केच पृ.६३' एलाफिन्सटन, 'काबुल' २: २८६ तथा मरे, रणजीत सिंह, पृ० १५

अफगान वृत्तान्तों के आधार पर एलफिन्सटन का कथन है कि अदीन बेग ने तैमूर की एक टुकड़ी को पराजित किया था, पंजाबी मुसलमानों के विवरणों को आधार मानते हुए मरे लाहौर पर सिक्खों के अधिकार का उल्लेख ही नहीं करता।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अदीनबेग द्वारा अफगानों के विरुद्ध मराठों की सहायता प्राप्ति-राघोबा का लाहौर प्रवेश; अदीनबेग को पंजाब की सूबेदारी मिलना-मई, १७५८ ई० अदीन बेग की मृत्यु—

मराठों को सिन्ध की ओर शक्ति-विस्तार करने के लिए आमंत्रित किया। स्वयम् उसके पास भी चुने हुए सिक्ख सैनिकों की एक टुकड़ी थी; अब उसने राघोबा के साथ यमुना से आगे बढ़ना प्रारम्भ किया। अहमदशाह द्वारा नियुक्त सरहिन्द के सूबेदार को निकाल बाहर किया गया, परन्तु अदीन बेग के सिक्ख सहायकों ने नगर की लूट में जिसे वे विशेष रूप से अपना अधिकार मानते थे—यह ले करके मराठों को क्षुब्ध कर दिया। सिक्खों ने लाहौर खाली कर दिया, और अनेक अफगान टुकड़ियाँ पीछे लौट गईं : इस प्रकार मुग़ल राजधानी के साथ-साथ मराठे मुल्तान से लेकर अटक तक के समस्त क्षेत्र के स्वामी बन बैठे। अदीनबेग को पंजाब का सूबेदार बना दिया गया, परन्तु अचानक मृत्यु के हस्तक्षेप से उसका पूर्ण स्वतंत्रता का स्वप्न स्वप्न ही रह गया, और अपने अधिकार को स्थापित कर लेने के कुछ माह पश्चात् ही, उसे कब्र में लिटा दिया गया।[1] मराठों के हौसले बढ़े हुए थे और वे पूरे भारत को अपने क़दमों में देखना चाहते थे, गाजिउद्दीन के दिल में भी खोट तो थी ही, अतः एक ऐसी योजना बनाई गई जो दोनों ही के हित में थी, और यह योजना थी अवध पर अधिकार करना तथा रुहेलों को मार भगाना।[2] परन्तु पंजाब के हाथ से निकल जाने पर अहमदशाह एक बार पुनः यमुना के तट तक आ पहुँचा, और मराठों का, स्वप्न सदैव के लिए टूट गया।[3]

अहमदशाह का पाँचवाँ अभियान १७५९-६१ ई०

बलूचिस्तान से चलकर दुर्रानीशाह ने सिन्ध नदी पार करके पेशावर में प्रवेश किया और वहाँ से आगे बढ़ता हुआ पंजाब पार कर लिया। उसके इस अभियान का समाचार पाते ही मराठे मुल्तान और लाहौर के सूबों को छोड़कर पीछे हट गए, और उधर अब्दाली के आगमन से प्रेरित होकर

१—देखिए ब्राउन, ट्रैक्टस २:१६,२० फार्टर 'ट्रवेल्स' १: ३१७, ३१८, ऐलफिन्सटन, काबुल २: २,९० ग्राएट डफ, 'मराठाज,' २:१३२; लगता है, अदीन बेग की मृत्यु १७५८ के अन्त के पहले ही हो चुकी थी।

२—देखिए एलफिन्सटन, 'हिस्ट्री ऑव इण्डिया,' २:६६९,६७०।

३—नजीबुद्दौला और रुहेलों ने जब अपने गाँवों में मराठों को आग लगाते देखा, तो उन्होंने अमहदशाह से वापस लौटने का अनुरोध किया (एलफिन्सटन, 'इण्डिया,' २:६७०, तथा ब्राउन, टैक्ट्स,' २:२०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वज़ीर गाज़िउद्दीन ने मुग़ल सम्राट के प्राण ले लिए। उस समय तक किशोरावस्था में ही पहुँचा मुग़ल शाहज़ादा, जो कालान्तर में शाह-

१७६०-६१

आलम के नाम से मुग़ल सिंहासन पर बैठा, दिल्ली से दूर बंगाल के नए स्वामियों अंग्रेजों से सन्धि करके अपनी शक्ति में वृद्धि करने का प्रयास कर रहा था। मराठा सेनापतियों को सिन्धिया और होलकर को अलग अलग पराजित कर दिया गया, और तब अफ़गान सुल्तान ने दिल्ली पर कब्ज़ा जमा लिया; इसके पश्चात् वह अवध के शुजाउद्दौला को मिलाने, तथा उसके साथ दक्षिण के उन हिन्दू राजाओं की शक्ति को छिन्न-भिन्न करने के इरादे से गंगा की ओर बढ़ा जो भारत से मुस्लिम शासन को जड़ से उखाड़ फेंकने की योजना बना रहे थे। इसी समय पेशवा के उत्तराधिकारी, तथा अन्य समस्त प्रसिद्ध मराठा सेनानायकों के साथ एक नया मराठा सेनानायक पूना से उत्तर की ओर बढ़ रहा था; यद्यपि अभी उसे उत्तर के युद्धों का कोई अनुभव नहीं था, परन्तु उसे अपने भाग्य पर, तथा साथ की विशाल सेना पर विश्वास था। यह नया, परन्तु आत्मविश्वास से भरा हुआ मराठा नायक था सदाशिव राव जिसने दिल्ली में पड़ी हुई अफ़गान टुकड़ी को बड़ी सरलता से मार भगाया और पेशवा के उत्तराधिकारी, विश्वास राव को भारत सम्राट के रूप में दिल्ली के सिंहासन पर बैठाने की डींग मारने लगा, जब कि मुख्य अफ़गान सेना अभी दोआब में व्यस्त थी। वहाँ से पलटकर १७६१ ई० के प्रारम्भ में उसने पानीपत के मैदान में मराठों पर महान् विजय प्राप्त की जिससे मराठा जनता में पेशवा के सम्मान, तथा हिन्दुस्तान में मराठों के प्रभाव को गहरा धक्का लगा, और वह सम्मान तथा प्रभाव फिर कभी वापस न हो सका, और इसी से उन विदेशियों को, अपनी इच्छा पूर्ति का अच्छा अवसर प्राप्त हो गया, जिनकी ओर अभी तक किसी देशी शक्ति ने ध्यान भी नहीं दिया था।[1]

दिल्ली पर अफ़गानों का अधिकार बाद में मराठों का अधिकार, १७६०ई०

पानीपत में मराठों की पराजय ७ जनवरी १७६१ ई०

१—ब्राउन, 'इण्डिया ट्रैक्ट्स,' २:२०,२१; एलफिन्सटन, 'इण्डिया,' २:६७०, तथा मरे. रणजीतसिंह,' १७,२०।

एलफिन्सटन का कथन है कि सदाशिवराव विश्वासराव को भारत सम्राट घोषित करने के लिए केवल उस समय तक प्रतीक्षा करना चाहता था, जब कि दुर्रीनियों को सिन्ध के पार न भगा दिया जाता; ग्राण्ट डफ़, 'मराठाज़,' २:१४२ और नोट भी देखिए।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पानीपत के इस युद्ध के पश्चात् सरहिन्द और लाहौर में अपने प्रतिनिधियों[1] को छोड़ते हुए, अहमदशाह अब्दाली अविलम्ब काबुल लौट गया; इस पूरे अभियान सिक्ख, केवल लुटेरे दलों के रूप में दुर्रानी सेना के इर्द गिर्द मँडराते रहे, परन्तु किसी भी तरह की नियमित शासन व्यवस्था के अभाव ने उन्हें अतिरिक्त शक्ति प्रदान की और वे केवल अपने गाँवों के स्वामी ही नहीं बन बैठे, बल्कि विदेशी वर्गों के प्रतिरोध की इच्छा से दुर्गों के निर्माण में भी लग गए। अन्य लोगों की तरह ही, रणजीत सिंह के पितामह चरण सिंह ने भी लाहौर के उत्तर में, अपनी ससुराल के गाँव, गुजरांवाली (या गुजरानवाल) में एक गढ़ बना लिया। दुर्रानी सूबेदार, या उसके नायब, ख्वाजा ओबेद ने १७६२ ई० के प्रारम्भ में इस गढ़ को ध्वस्त करने का प्रयास किया;[2] परन्तु इसकी रक्षा के लिए अनेक सिक्ख दल आ इकट्ठे हुए। घोर युद्ध के पश्चात् दुर्रानी सूबेदार पराजित हुआ; वह काफी सामान छोड़कर पीछे हटा, और भागकर स्वयम् को लाहौर के किले में बन्द कर लिया।[3] सरहिन्द का सूबेदार अपनी स्थिति पर अपेक्षाकृत अच्छी तरह डटा रहा, क्योंकि उसे देश के एक सक्रिय मुस्लिम नेता, मालेर कोटला के हिंगन खाँ की सहायता प्राप्त थी; परन्तु सिक्खों ने एक हिन्दुस्तानी पठान को इस शत्रुता का मजा चखाया जैसा कि उन्होंने जींदिआल के एक हिन्दू नेता के साथ भी किया जो तलवार तो उन्हीं की

खुले क्षेत्रों में सिक्ख अदभ्य

१७६१-६२

दुर्रानी सूबेदार की पराजय और लाहौर में शरण १७६१-६२ ई० अमृतसर में इकट्ठा होकर

१—ब्राउन के अनुसार लाहौर में बलन्द खाँ और सरहिन्द में जैन खाँ को छोड़ा गया था, देखिए ब्राउन, ट्रैक्ट्स', २:२१,२३।

२—मरे (रणजीत सिंह, पृ० २१) ख्वाजा ओबेद को सूबेदार बताता है; सम्भव है कि वह बलन्द खाँ का उत्तराधिकारी या सहायक रहा हो; बलन्द खाँ के विषय में पता लगता है कि बलन्द खाँ जब तक रोहतास में ही रहा करता था। जिस गाँव पर हमला किया गया था, वह गुजरानवाला के नाम से जाना जाता है; इसी स्थान पर रणजीतसिंह का भी जन्म हुआ था, और अब यह एक अच्छा खासा शहर है (मुंशी शहमत अली कृत 'सिक्ख एण्ड अफ़गान्स,' पृ० ५१ देखिए)।

३—मरे, 'रणजीतसिंह,' पृ० २२,२३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सिक्खों द्वारा सतलज के दोनों ओर आक्रमण किया जाना

तरह बाँधता था; फिर भी अहमदशाह का पक्ष लिया करता था। 'खाल्स की सेना' अमृतसर में एकत्रित हुई श्रद्धालु सिक्खों ने पवित्र सरोवर में स्नान करके दृढ़ संकल्प किया और सम्भवतः इसी अवसर पर प्रथम बार 'गुरुमत्त' समारोह नियमित ढंग से सम्पन्न किया गया। हिंगन खाँ द्वारा अधिकृत क्षेत्रों पर आक्रमण करके उन्हें नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया तथा जींदिआल पर अधिकार करके अधिक बड़े संघर्ष की तैयारियाँ की जाने लगीं।[1]

'सिक्खों के इस दुत्साहस की सूचना पाते ही युद्धप्रिय अहमदशाह पुनः हिन्दुस्तान की ओर बढ़ा। कठोर और साहसिक जीवन का आदी, तथा अफ़गानों की युद्धप्रियता का एक आदर्श नमूना, यह सुल्तान जो साम्राज्य की स्थापना के स्वप्न ही देखाता रह गया—शायद जीवित ही इसीलिए था कि वह प्रान्तों को जीतता-हारता रहे। वह सन् १७६२ ई० के अन्त में लाहौर पहुँचा, और सिक्खों के दल सम्भवतः इस योजना से सतलज नदी के दक्षिण ओर हट गए कि वे अपने उन भाइयों से जा मिलें जो सरहिन्द पर नज़र रक्खे हुए थे, साथ ही वे अहमदशाह से मुठभेड़ करने के पूर्व सूबेदार जैन खाँ से भी निपट लेना चाहते थे, परन्तु अहमदशाह जैसा कुशल सेनानी उनकी योजना को अविलम्ब समझ गया, और लाहौर से लुधियाना होते हुए दो ही तेज और लम्बे पड़ावों में उसने सिक्खों को जा घेरा जो जैन खाँ के ऊपर हमला करने की पूरी तैयारी के साथ, उस कार्य को प्रारम्भ ही करने वाले थे। भयंकर युद्ध के पश्चात् सिक्खों को उसने पूर्णतः परा-

अहमदशाह का छठा आक्रमण १७६२ ई०

लुधियाना के निकट सिक्खों की भयंकर पराजय फरवरी १७६२ ई०

जित कर दिया, और उसके सैनिकों ने हमले में जितनी सक्रियता दिखाई थी, उतनी ही, सिक्खों का पीछा करने में भी दिखाई। इस युद्ध में सिक्खों को अत्यधिक हानि उठानी पड़ी, और विभिन्न सूत्रों के अनुसार बारह हजार से पचीस हजार तक सिक्ख सैनिकों ने वीरगति प्राप्त की। आज भी 'घुलु घार' या 'महान विपत्ति' के नाम से इस पराजय का स्मरण किया जाता है।[2] पटियाला के वर्तमान परिवार का

१७६२-६३

१—देखिए ब्राउन, 'ट्रैक्ट्स,' २:२२,२३, तथा मरे, 'रणजीतसिंह,' पृ० २३।

२—यह युद्ध गुजरवाल तथा बरनाल के बीच, लुधियाना से सम्भवतः बीस

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

संस्थापक, अल्हासिंह भी सिक्ख कैदियों में से एक था, परन्तु उसके पौरुषमय व्यवहार से दुर्रानी सुलतान उस पर प्रसन्न हुआ, और उसे मुक्त करने के साथ ही उसे पटियाला के राजा की उपाधि देकर सम्मानित भी किया; इस कार्य के पीछे इस अफगान विजेता की एक चाल भी थी; वह अल्हासिंह को इस प्रकार सम्मानित कर वह 'मालवा' और 'माँझ' सिंहों के बीच की खाँई को और चौड़ी करके उन्हें एक दूसरे का कट्टर शत्रु बना देना चाहता था। सरहिन्दों में ही उसने अपने सहायक, या अधीनस्थ सरदार नजीबुद्दौला से भी मुलाकात की। लाहौर की सूबेदारी इस बार उसने एक हिन्दू को सौंपी जिसका नाम काबुली मल था। इसके पश्चात् अहमदशाह कन्दहार में हुए एक आन्तरिक विद्रोह को दबाने के लिए अपने देश की ओर तेज़ी से चल पड़ा, लेकिन इसके पूर्व उसने हिन्दुस्तान के प्रति अपने क्षोभ का पूरा प्रतिकार लिया, और एक कट्टर मुस्लिम विजेता की भाँति उसने अमृतसर में नव-निर्मित गुरुद्वारों व मन्दिरों को नष्ट भ्रष्ट कर डाला; पवित्र सरोवर में गो-रक्त उलवा कर उसे भ्रष्ट कर दिया, बन्दी सिक्खों के सिर काट कर, स्थान स्थान पर सिरों के ही टीले बना डाले, और अपने काफिर दुश्मनों के खून से मस्जिदों के दीवालों की रँगाई कराई।[1]

पटियाला का अल्हासिंह

काबुलीमल को लाहौर की सूबेदारी १७६२ के अन्त तक

अहमदशाह की वापसी

परन्तु उसके इस भयंकर दमन से सिक्खों के हौसले पस्त नहीं हुए; उनकी संख्या में निरन्तर वृद्धि होती रही; अब उनमें राष्ट्रीयता की भावना पूर्णरूपेण जागृत हो गई थी और वे अनुभव करने लगे थे कि वे एक राष्ट्र हैं; सभी के हृदय प्रतिकार की भावना से तप रहे थे, और उनके नेताओं में स्वतन्त्र सत्ता, तथा सैनिक–ख्याति की आकांक्षा प्रबल हो चली थी। उनकी साहसिक क्रियाओं का प्रथम लक्ष्य बना कसूर', जहाँ पठानों का उपनिवेश था; उन्होंने कसूर पर अधिकार करके क्षेत्र में अच्छी खासी लूट-पाट मचाई,

सिक्खों की शक्ति में निरन्तर वृद्धि : कसूर में लूटपाट:

मील दक्षिण में हुआ था। देखिए ब्राउन, ट्रैक्ट्स' १:२३; फास्टर, 'ट्रैवल्स,' १:३१६; मरे, 'रणजीतसिंह' पृ० २३,२५।

ज्ञात होता है कि यह युद्ध फरवरी १७६२ ई० लड़ा गया था।

२—देखिए फास्टर, 'ट्रवेल्स,' १:३२०, तथा मरे, 'रणजीतसिंह' पृ० २५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

और तब उन्होंने मालेर कोटला पर आक्रमण करके अपने पुराने शत्रु, हिंगन खाँ को तलवार के घाट उतार दिया। अब, उत्साहित होकर उन्होंने सरहिन्द की ओर कूच किया। जहाँ तक दिल्ली दरबार का प्रश्न था, उसमें इतनी शक्ति ही नहीं रही थी कि वह इस्लाम की रक्षा में शस्त्र उठा सकता। सरहिन्द के अफ़गान सूबेदार जैन खाँ ने दिसम्बर १७६३ ई० में सिक्खों की लगभग चालीस हजार की संख्या से मोर्चा लिया, परन्तु वह पराजित हुआ और मार डाला गया। इस प्रकार बिना किसी अन्य संघर्ष या विरोध के सिक्ख विजेता, सतलज व यमुना नदियों के बीच स्थित सरहिन्द के मैदान के स्वामी बन बैठे। जनकथाएँ अब भी बताती हैं कि किस प्रकार सिक्ख सैनिक विजय प्राप्त करते ही बिखर गए, किस प्रकार दिन रात घोड़ा दौड़ता, सिक्ख सैनिक अपने वस्त्र, तलवार म्यान, आदि फेंकते हुए, पूर्णत नग्न होकर जिस गाँव में पहुँच जाता, स्वयम् को उसका स्वामी घोषित कर देता। सरहिन्द को पूरी तौर पर नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया। सिक्खों में इस विजय की याद अब भी ताजी है, और उस स्थान से एक ईंट उखाड़ कर ले जाना पुण्य का कार्य समझा जाता है जहाँ गुरुगोबिन्द सिंह जी की पूजनीय माता जी तथा गुरुजी के अल्पायु बच्चों का रक्त गिरा था। विजयोन्माद से अनुप्राणित सिक्ख अब यमुना पार के क्षेत्रों पर भी धावा करने और आगे बढ़ने लगे। उनकी इस प्रगति से चिन्तित नजीबुद्दौला को उस समय दृढ़ प्रतिरोध का निश्चय करना पड़ा, जब सिक्ख सहारनपुर पहुँच गए; अभी तक वह सूरजमल के नेतृत्व में सर उठाए जाटों से उलझा हुआ था, परन्तु जब उसने अपने ही क्षेत्र को सिक्खों से आक्रान्त देखा तो उसे इसी में अपनी कुशलता दिखाई पड़ी कि सन्धिवार्ता तथा शक्ति, दोनों का प्रयोग करके सिक्ख आक्रामकों को पीछे लौटाया जाय।[1]

अफगानों की पराजय : दिसम्बर १७६३ ई०

सरहिंद पर सिक्खों का स्थायी अधिकार

१७६३-६४

जाटों के विरुद्ध संघर्ष में नजीबउद्दौला को सफलता मिली और सूरजमल लड़ाई में मारा गया, परन्तु सन् १७६४ ई० में भरतपुर के मृत जाट राजा

१—देखिए ब्राउन, 'इण्डिया ट्रैक्ट्स,' २:२४ तथा मरे, 'रणजीतसिंह,' पृ० २६, २७। कुछ वृत्तान्तों के अनुसार इस समय, अस्थायी रूप से सिक्खों ने लाहौर पर भी अधिकार कर लिया था।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

दिल्ली पर जाटों व, सिक्खों का सम्मिलित घेरा; १७६४ई०

के पुत्र ने दिल्ली में वज़ीर को जाघेरा, और सिक्खों ने काफ़ी बड़ी संख्या के साथ भरतपुर के उत्तराधिकारी को इस घेरे में सहायता पहुँचाई; मुग़ल शक्ति को सदैव टेढ़ी नजरों से देखने वाले मराठों ने भी जाटों को सहायता दी[1]। सरहिन्द के हाथ से निकल जाने पर कुपित होकर

अहमदशाह का सातवाँ अभियान एवम् तेज वापसी

अहमदशाह अब्दाली ने सातवीं बार सिन्ध को पार किया, और नजीबुद्दौला के ऊपर मड़राए विपत्ति के बादलों का आभास पा कर वह यमुना नदी के तटवर्ती क्षेत्र तक जा पहुँचा; परन्तु इस समय तक दिल्ली का घेरा, मराठा सेना-पतियों-सिन्धिया व होलकर-की मध्यस्थता से, या उनके फूट जाने से उठा लिया गया था, साथ ही अहमदशाह के अपने राज्य से भी विद्रोह की ख़बर आ रही थी, अतः वह सरहिन्द पर पुनः अधिकार करने के लिए कोई समक्ष प्रयत्न किए बिना ही, तेजी से वापस लौट गया। उसने अपनी तरफ़ से पटियाला के अल्हा सिंह को ही उस सूबे का सूबेदार घोषित करके ही सन्तोष कर लिया, जब कि अल्हासिंह ने उक्त नगर को गुरु के एक पुराने सहयोगी से विनिमय के रूप में प्राप्त कर लिया था। सिक्ख-विवरण अहमदशाह के निर्विरोध लौट जाने की बात स्वीकार नहीं करते; उनके अनुसार अमृतसर के समीप ही सिक्खों एवम् अफ़गानों में एक भयंकर युद्ध हुआ, जिसकी समाप्ति कुछ इस प्रकार हुई कि दो में से कोई भी दल विजयी होने का दावा नहीं कर सकता था; इस कथित युद्ध से इतना अवश्य हुआ कि अफगानों को अपने देश लौटने की और भी जल्दी पड़ गई और वे जैसे तैसे पीछे हट गए। अब सिक्खों के सामने, वर्तमान स्थिति में एक ही लक्ष्य शेष था, और वह था लाहौर के सूबेदार

लाहौर पर सिक्खों का स्वामित्व

काबुली मल को मार भगाना जिसे पूर्ण करते ही वे झेलम तथा सतलज नदियों के बीच स्थित समस्त क्षेत्र के स्वामी बन बैठे, और जिस तरह पिछले वर्ष सरहिन्द को सिक्ख-सरदारों ने आपस में बाँट लिया था; उसी प्रकार यह विस्तृत क्षेत्र भी बाँट लिया गया। अहमदशाह के पिछले अन्यायों के प्रतिकार स्वरूप सिक्खों ने अनेक मस्जिदों को ध्वस्त कर दिया,

---

१—देखिए ब्राउन, २:१४: सिक्ख जन कथाओं में उन सरदारों के नाम अब भी सुरक्षित हैं जिन्होंने इस अवसर पर दिल्ली की सब्जी-मण्डी में लूट पाट की थी।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

१७६४ और बन्दी अफ़गानों से सुअर के रक्त द्वारा उन मस्जिदों की नींव तक को धुलवा कर साफ़ कराया गया। इसके पश्चात् समस्त सिक्ख सरदार अमृतसर में एकत्रिक हुए, और उन्होंने एक सिक्का ढालकर घोषणा की कि अब क्षेत्र पर उनका राज्य चलेगा और सिक्ख धर्म ही राजधर्म होगा। इस सिक्के पर यह मुद्रा लेख अंकित था कि गुरु गोविन्द जी ने नानक जी से 'देग़ (अर्थात् विनय), तेग़ और फ़तह' प्राप्त किया था।[1]

इसके दो वर्ष बाद तक की अवधि में किसी भी शक्ति ने सिक्खों की व्यवस्था तथा उनके अधिकार में हस्तक्षेप नहीं किया; ये दो वर्ष व्यतीत हुए विभिन्न सरदारों की सत्ता का निर्णय करने, तथा उनका पारस्परिक सम्बन्ध निर्धारित करने में, और यह कार्य उनके लिए सरल नहीं था, क्योंकि अभी तक वे शक्ति एवम् स्वतंत्र-सत्ता के आदी नहीं थे। प्रत्येक सिक्ख स्वतंत्र था, और उनमें से हर एक मुख्य संघ का महत्वपूर्ण सदस्य था; परन्तु उनके साधनों, योग्यताओं और अवसरों में कोई विशेष साम्य नहीं था; उनमें बहुत सी व्यक्तिगत भिन्नताएँ थी, अतः शीघ्र ही वे अनुभव करने लगे कि सभी लोग नेतृत्व नहीं कर सकते और यह भी कि इस स्वतंत्र स्थिति में भी स्वामियों व सेवकों के दो वर्ग बदस्तूर क़ायम थे। उन्होंने जो शासन व्यवस्था कायम की, उसे सामन्तवादी संघीय प्रणाली कहा जा सकता है, जिसमें हर प्रकार की अनिश्चितता तथा गड़बड़ी व्याप्त थी. जो तीन सिद्धान्तों पर आधारित अर्ध-

---

१—देखिए ब्राउन, 'ट्रैक्ट्स,' २:२५, २७; फार्स्टर, ट्रवैल्स', १:३२१, ३२३; एलफिन्सटन, 'काबुल, २९६,२९७, तथा मरे, रणजीतसिंह', पृ.२६२७।

इन ढाले गए रुपयों को 'गोविन्द शाही' कहा जाता था, और इस पर मुग़ल सम्राट का नाम नहीं दिया जाता था (ब्राउन, २:२८) यद्यपि कुछ उपलब्ध सिक्कों से ज्ञात होता है कि कुछ छोटे मोटे सरदार बाद में जब तक सम्राट का नाम जोड़ने लगे थे। रणजीतसिंह के अधिकांश सिक्कों पर निम्न मुद्रालेख मिलता है।

'देग, तेग़ व फ़तह व नसरत बे दरंग
यापत अज़ नानक गुरु गोबिन्द सिंह।'

'देग, तेग, व फ़तह के सम्बन्ध में देखिए आगे परिशिष्ट ६ तथा १२। ब्राउन (२:भूमिका ७) 'देग' शब्द के लिए कोई विशेष व्याख्या नहीं देता, परन्तु उसने जो कुछ लिखा है, वह उस व्याख्या की अपेक्षा बेहतर है जो कर्नल स्लीमन देता है (देखिए, रैम्बुल्स आव ऐन इण्डियन आफिशियल,' २:२३३, नोट)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सभ्य समाज के लिए स्वाभाविक ही थी, ये तीनों सिद्धान्त इस प्रकार थे– उनका एकमात्र सहायक तथा न्यायाधीश ईश्वर था, धर्म के प्रति श्रद्धा उनकी प्रेरक शक्ति थी, तथा लोहे के प्रति गुरु गोबिन्द सिंह जी की भक्ति के अनुकरण के रूप में युद्धोचित शस्त्र-सज्जा ही उनकी भौतिक शक्ति थी। वर्ष में एक बार 'सरबत खालस', या सम्पूर्ण सिक्ख समुदाय, पौराणिक-युगपुरुष, राम के सम्मान में मनाये जाने वाले समारोह के अवसर पर अमृतसर में एक-

१७६४ त्रित होते थे। इस समय तक मौसमी वर्षा समाप्त हो जाती थी और सैनिक कार्यवाहियों के लिए मौसम सुविधाजनक होता था। सम्भवतः सिक्ख सरदारों ने यह उम्मीद की थी कि धार्मिक कर्तव्यों का पालन करते रहने, तथा अमृतसर जैसे पवित्र स्थान में रहकर, पाप या स्वार्थ से दूर रहने की प्रेरणा पाने से सिक्ख वर्ग जनकल्याण की महान भावना के समक्ष अपने निजी स्वार्थों का बलिदान कर देंगे; सरदारों की प्रशासन समिति को 'गुरुमत्त' की संज्ञा दी गई जिससे सिक्ख वर्ग गोबिन्द जी के मतों का अनुकरण करते हुए अपने गुरु तथा उनके वचनों से सद्बुद्धि एवम् मतैक्य का पाठ सीखें[1]। एक समान लक्ष्य को लेकर जो सरदार शुद्ध एवम् पवित्र हृदय से एकत्रित हुए थे, उनमें से कोई भी दूसरे को अपने से श्रेष्ठ नहीं समझता था; और उनके अनुयायियों में भी इसी भावना के व्याप्त होने के कारण इन सरदारों के आदेशों का पालन भी पूर्ण रूपेण नहीं हो पाता था, परन्तु अधीनता की शृंखला

१—गुरुमत्त' : गुरुमत या गुरु के विचार मालकम (स्केच, पृ० ५२) का विचार है कि 'गुरुमत्त' के संघ का निर्देशन गुरु गोबिन्द जी ने किया था, परन्तु इस विश्वास की पुष्टि के लिए एक भी प्रमाण उपलब्ध नहीं है कि उन्होंने किसी औपचारिक अथवा विशेष संस्था की स्थापना की थी; यह बात अवश्य सत्य है कि गुरु जी के आदेशों का क्षेत्र विस्तार, तथा उस समय की विशेष राजनीतिक परिस्थितियाँ ये दोनों ही तत्व, 'गुरुमत्त' के रूप में सहभोज के आयोजनों को अतिरिक्त शक्ति तथा उत्साह प्रदान करते थे; यह एक ऐसी प्रथा है जो मानव जाति के प्रत्येक वर्ग के इतिहास में कभी न कभी अवश्य प्रचलित हुई है, और भारत में तो अनन्तकाल से ऐसे आयोजन क्रमबद्ध रूप से होते रहे हैं। उस समय की सिक्ख शासन व्यवस्था, और सिक्खों के आस्तित्व को बनाए रखने वाले कुछ विशेष गुणों पर सामान्य विचारों के लिए देखिए फास्टर, 'ट्रवेल्स,' १:३२८ से; गुरुमत्त के समारोह की विधि तथा उसके रूपों के लिए देखिए मालकम, 'स्केच,' पृ० १२०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

की सैनिक परम्परा को एक नियम के रूप में मान्यता दी गई थी; संघबद्ध सरदारों की सम्मिलित विजयों से प्राप्त लाभ को उन सब में समान भागों में बाँटा जाता था; इसके पश्चात् प्रत्येक सरदार अपने भाग को उसी प्रकार अपनी टुकड़ियों के नायकों में विभाजित करता था, जब कि ये नायक भी अपने भाग को सैनिकों में बाँट देते थे[1]। यद्यपि यह नियम सिद्धान्ततः निर्धारित कर लिया गया था, परन्तु वास्तविक परिस्थितियों में यह सदैव लागू नहीं हो पाता था क्योंकि सिक्ख अंशतः अपनी सम्पत्ति पर 'प्रकृत प्रदत्त' अधिकार रखते थे, या बहुतों ने ऐसे भूभाग पर अधिकार कर रक्खा था, जो किसी केन्द्रीय शक्ति के हट जाने या ध्यान न देने से उस शक्ति के नियंत्रण से बाहर रहते थे। सिद्धान्ततः इस प्रकार के लोग न तो प्रजा की श्रेणी में ही आते थे, न वे किसी एक सरदार के अधीन रहने के लिए बाध्य थे। वे जब चाहते, एक सरदार का साथ छोड़कर किसी दूसरे सरदार को अपनी सेवायें अर्पित कर सकने के लिए स्वतंत्र थे; या अवसर से लाभ उठाकर वे स्वयम् सरदार बन सकते थे, और खालसा की सत्ता के नाम से अपने प्रयोग के लिए नया भूभाग जीत सकते थे। सिक्खों की सन्धियाँ और उनकी पारस्परिक अधीनता में जो अस्थायित्व था, उसे देखते हुए उनकी प्रणाली को निश्चित् संविधान पर आधारित नहीं माना जा सकता, और यदि हम उनकी प्रणाली की अस्पष्ट रूपरेखा निर्धारित करना चाहते हैं तो हमें मानवजाति की सामान्य प्रकृति व प्रवृत्तियों में उसकी खोज करनी चाहिए, समितियों के कार्य-

शासन प्रणाली अपूर्ण व अस्थायी: क्रमबद्धता का अभाव,

१—देखिए मरे का, 'रणजीतसिंह,' पृ० ३३-७, देश के उन भागों से सिक्ख 'रखी' (शब्दतः सुरक्षा-धन) वसूल किया करते थे जिन्हें वे जीत तो लेते थे, पर उनका अधिकार नहीं रहता था। 'रखी' की रकम निश्चित नहीं होती थी, और यह जमीन की सरकारी मालगुजारी के आधे से पाँचवें ($\frac{1}{2}$ से $\frac{1}{5}$) भाग तक के बीच में निश्चित की जाती थी। इस प्रकार 'रखी' का तात्पर्य उसी प्रकार के कर से है जिसे मराठे 'चौथ' कहते थे। देखिए ब्राउन 'ट्रैक्ट्स' २, भूमिका ८; तथा मरे. 'रणजीतसिंह,' पृ० ३२। सम्पत्ति के उपविभाजन कभी कभी इतने सूक्ष्म होते थे कि एक ही गाँव की रखी में दो तीन या दस सिक्ख तक सम्मिलित हो जाते थे, या किसी नगर की एक गली के मकानों से प्राप्त चुंगी में अनेक हिस्सेदार हो जाते थे। सिक्खों का न्यायविधान भी ऐसे ही विभाजनों का समर्थन करता था, अतः और भी अधिक गड़बड़ी होती थी।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

व्यवहारों, या धार्मिक पथप्रदर्शकों के आदेशों में उनके संविधान की झलक ढूंढ़ने का प्रयास व्यर्थ ही सिद्ध होगा। उनकी इस अस्थिर और क्रमविहीन प्रणाली से शीघ्र ही यह स्पष्ट होने लगा कि उनमें से जिनके पास शक्ति थी, वे दूसरों को अपने आदेशों के पालन में तत्पर देखना चाहते थे; और वे सदैव अपने प्रभाव के अन्तर्गत निरंकुश होने का प्रयास करते थे; साथ ही यह भी स्पष्ट हो गया कि धर्मगत या जातिगत संगठन कहीं भी इतनी क्षमता नहीं रखते कि वे अपने सदस्यों को एक दूसरे पर हावी होने से, या अपने स्वार्थ पर दूसरों के अधिकारों का हनन करने से रोक सकें फिर सिक्खों में ईश्वर की कृपा और उसके न्याय के प्रति आस्था थी, इस जाति का प्रत्येक सदस्य अब भी रहस्यमय खालसा को ही अपने कर्म समर्पित करता है, परन्तु किसी जाति के सामूहिक विश्वास और उत्साह को अधिकाधिक उपयोगी दिशा में सफलता पूर्वक मोड़ने के लिए एक प्रतिभा सम्पन्न-दूरदर्शी नेता की, या विशेष परिस्थितियों से उत्पन्न प्रतिक्रिया की आवश्यकता होती है।

सिक्ख-संघ या 'मिसल':

स्वतंत्रता प्राप्त करने के उपरान्त सिक्खों ने स्वयम् को जिन संघों में विभाजित किया, उनकी संख्या, प्रायः सभी सूत्रों द्वारा-बारह बताई गई है। इस प्रकार के प्रत्येक संघ के लिए जो शब्द प्रयोग में आता था, वह था अरबी भाषा का 'मिसल', अर्थात् 'समान'।[1] प्रत्येक 'मिसल' का एक सरदार होता था जिसके आदेश का पालन उस मिसल का प्रत्येक जन करता था, परन्तु यह 'सरदार' की उपाधि इतनी सामान्य थी, कि एक टुकड़ी के नायक से लेकर स्वतंत्र तथा समान 'सिहों' के बड़े-बड़े सेनापति को सरदार ही कहा जाता था। ये सभी, बारहो मिसल पूर्ण शक्ति के साथ एक साथ अस्तीत्व में नहीं आए थे, बल्कि क्रम यह था कि एक मिसल दूसरे को जन्म देता था, क्योंकि सामन्तवादी सिद्धान्त, संघ पर हावी थे और कोई भी महत्वाकांक्षी सरदार स्वयम् को अपने मिसल से अलग करके, एक और बड़े मिसल की स्थापना में प्रवृत्त हो सकता था। मिसलों के नाम कई आधारों में से किसी एक पर रक्खे

१—स्मरणीय है कि अरबी शब्द 'मुसलुहत' का अर्थ होता है शस्त्र या युद्धप्रिय लोग। हिन्दुस्तानी प्रयोग की दृष्टि से 'मिसल' का तात्पर्य कागजात की फाइल से या ऐसी चीजों से होता है जो कतार में, या एक क्रम से रखी जाती है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मिसलों के नाम और उत्पत्ति

जाते थे--जैसे सरदार के नाम पर, या उसके गाँव या ज़िले के नाम पर, या नेतृत्व या प्रथा की किसी विशिष्टता के आधार पर। पीछे जिन बारह मिसलों का उल्लेख किया गया है उनके नाम और विशेषताएँ इस प्रकार हैं --(१) 'भंगी' इस मिसल का यह नाम इसलिए पड़ा था कि इसके अधिकांश सदस्य भंग या भाँग के सेवन से काफी लगाव रखते थे; (२) 'निशानिया' के सदस्य संघीय सेना, या खालसा की सेना के निशान या झण्डे लेकर चलने वालों के पीछे चलते थे; (३) 'शहीद' और 'निहंग'; इन मिसलों का सरदार किसी सम्मानित शहीद अथवा योद्धा का वंशज होता था; (४) 'रामगढ़िया' का नाम राम-रौनी के गढ़ के आधार पर पड़ा था जिसे जस्सा बढ़ई ने और सुदृढ़ बना कर 'रामगढ़' नाम दिया था; (५) 'नक्कई'; इस मिसल का यह नाम, इसी नाम के एक स्थान पर पड़ा था जो लाहौर के दक्षिण में स्थित था; (६) 'अहलूवालियों ने अपना नाम उस गाँव से ग्रहण किया था जिसमें खालसा की सेना के अस्तित्व की प्रथम घोषणा करने वाला, जस्सा, रहता था; (७) 'घनई' या 'कन्हया'; (८) 'फ़ीजुल पुरिया' या 'सिंह पुरिया'; (९) 'सुकेरचुकिया'; (१०) 'दल्लेहवाला'; ये दोनों ९वाँ तथा १०वाँ -नाम सम्भवतः सरदारों के गाँवों के नाम के आधार पर रक्खे गए थे, (११) 'क्रोर सिंहिया'; यह नाम इस मिसल के तीसरे सरदार के नाम पर पड़ा था; ये अपने को 'पुञ्जगढ़िया' भी कहते थे जो उनके प्रथम सरदार के गाँव के नाम पर था और (१२) 'फूलकिया'; यह नाम अल्हासिंह तथा उसके परिवार के अन्य सरदारों के पूर्वजों के नाम पर रक्खा गया था।[1]

१—ऐसा प्रतीत होता है कि कैप्टेन मरे (रणजीतसिंह, पृ० २९) प्रथम व्यक्ति था जिसने सिक्खों की मिसल प्रणाली का पता लगाया और उल्लेख किया; फार्स्टर ने न तो इस संगठन का उल्लेख किया है, न इस नाम का ही; ब्राउन तथा मालकम भी उसी श्रेणी में हैं; सर्वप्रथम सर डेविड आक्टरलोनी ने संकेत किया कि मिसल' का तात्पर्य जाति से है, दल या संघ से नहीं, और उसने इसी अर्थ में 'मिसल' का वर्णन भी किया। 'क्रोरा सिंहियाँ मिसल की सर्दारी के उत्तराधिकार का विवरण जो दृष्टान्त प्रस्तुत करता है, इससे सिद्ध होता है कि 'मिसलों' की प्रणाली के सम्बन्ध में कितनी अनियमितता तथा अनिश्चितता का व्यवहार किया जाता रहा है, और वास्तव में प्रत्येक शक्ति के परिवर्तन तथा प्रगति की प्रक्रिया में ऐसा स्वाभाविक भी होता है। उक्त मिसल

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

फूलकिया मिसल को छोड़कर शेष सभी मिसलों का जन्म पंजाब में या सतलज नदी के उत्तर स्थित क्षेत्र में ही हुआ था, और लाहौर के निकटस्थ क्षेत्रों के आधार पर उन्हें 'माँझसिंह' कहा जाता था, इसी प्रकार सिरसा तथा सरहिन्द ज़िलों के बीच स्थित क्षेत्र के मिसलों को 'मालवा' सिंह कहा जाता था। माँझ में सर्वप्रथम, प्रसिद्धि प्राप्त करने वाले मिसले थे--फीजुलपुरिया, अहलूवालिया तथा रामगढ़िया, परन्तु शीघ्र ही भंगी मिसलवालों ने इतनी तीव्रगति से प्रगति की कि वे सर्वाधिक शक्तिशाली हो गए, और माँझ के इलाकों में उनकी अच्छी खासी धाक बन गई। इस ख्याति में भंगियों के उत्तराधिकारी हुए घनई मिसल वाले, जिन्होंने फ़ीजुलपुरियों से अलग होकर अपनी मिसल कायम की थी; परन्तु अन्त में रणजीत सिंह तथा सुकेरचुकियों के आगे इन सब मिसलों का आस्वीत्व ही जैसे समाप्त हो गया। मालवा में फूलकिया मिसल वाले, पटियाला शाखा की श्रेष्ठता को सदैव स्वीकार करते थे; पटियाला शाखा का सम्मान उस समय और भी बढ़ गया जब अहमदशाह अब्दाली ने इस परिवार के अल्हा सिंह को उपाधि देकर उसे व्यक्तिगत रूप से सम्मानित किया; इस प्रकार इस मिसल ने जो शक्ति प्राप्त की, उसके समक्ष भंगियों को छोड़कर कोई भी अन्य मिसल श्रेष्ठता का दावा नहीं कर सकता था। 'मिसल' शब्द के सही अर्थों में निशानियों तथा शहीदों के संगठनों को मिसल की संज्ञा देना तो ठीक नहीं है, परन्तु पूरक शक्ति के रूप में, विशिष्ट कारणों से उन्होंने हर मिसल का सम्मान प्राप्त किया।[1]

मिसलों की आपेक्षिक ख्याति

के संस्थापक का उत्तराधिकारी उसका भतीजा हुआ, परन्तु इस नए उत्तराधिकारी ने स्वेच्छा से अपना पद क्रोरासिंह को सौंप दिया जो उसका व्यक्तिगत सहकारी था; क्रोरासिंह ने भी अपना उत्तराधिकारी बघेलसिंह को बनाया जो उसका निजी सेवक था। इस विवरण से पाठकों को अलफतगीन और सुबुक्तगीन का स्मरण हो आना स्वाभाविक ही है। उल्लेखनीय है कि मि० मैकाले ने सत्रहवीं सदी में इंगलिश एडमिरलों के इसी प्रकार के उत्तराधिकार का एक दृष्टान्त दिया है; और वह दृष्टान्त है मिग्स, नरबोरो तथा शॉवेल का—(देखिए हिस्ट्री ऑव इग्लैण्ड, १ : ३०६)।

१—सम्भवतः कैप्टेन मरे ने निशानियों तथा शहीदों को नियमित मिसल मानने में सतर्कता से काम नहीं लिया है। इसी प्रकार झेलम के पश्चिम स्थित

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नक्कइयों को न कभी विशेष शक्ति प्राप्त हो सकी; न ख्याति ही; तथा फ़ीजुलपुरियों से अस्तित्व ग्रहण करने वाले दल्लेहवालों तथा क्रोरासिंहियों ने जो कुछ यश प्राप्त किया, वह केवल सरहिन्द पर अधिकार कर लेने के कारण; फीजुलपुरियों ने अपने वीरतापूर्ण कार्यों से प्रसिद्धि तो बहुत प्राप्त की, परन्तु वे कभी भी अन्य मिसलों पर हावी न हो सके।

मिसलों के मूल तथा अर्जित अधिकार क्षेत्र

देश में भंगियों के अधिकार क्षेत्र की सीमा उत्तर में, लाहौर तथा अमृतसर नगरों से लेकर झेलम के तट तक, तथा नीचे की ओर कुछ दूर तक विस्तृत था। घनई मिसलवालों का क्षेत्र अमृतसर तथा पहाड़ियों के मध्य में स्थित था। इसी प्रकार नक्काइयों का क्षेत्र लाहौर के दक्षिण-पश्चिम में रावी नदी के तट तक विस्तृत था; सुकेरचुकियों के अधिकार में, चिनाब से रावी नदी के मध्य, भंगियों की सीमा के दक्षिण स्थित क्षेत्र था; फीजुलपुरिया मिसल वाले, व्यास और सतलज के संगम से कुछ नीचे, दाहिने तट के साथ फैले हुए थे। अहलूवालियों के अधिकार क्षेत्र में इसी नदी का बाँया तट था। दल्लेहवालों ने ऊपरी सतलज के बाँए तट पर अधिकार कर रक्खा था, और रामगढ़िए, इन्हीं अन्तिम दोनों मिसलों के बीच में पहाड़ियों की ओर फैले हुए थे। जलन्धर दो-आब में क्रोर सिंही मिसलवालों का अधिकार था। फूलकियों का अधिकार क्षेत्र सतलज के दक्षिण में सुनाम और भटिण्डा के आस पास था; शहीदों और निशानियों के क्षेत्र में वही स्थान थे जिन्हें उन्होंने युद्धों तथा विजयों द्वारा प्राप्त किया था। सरहिन्द विजय में इन दोनों मिसलों के साथ माँझ सिंहों के भंगी, अहलूवाली, दल्लेहवाला, रामगढ़ी तथा क्रोरसिंह मिसल भी सम्मिलित थे, अतः उन्होंने आपस में सतलज नदी के दक्षिण, पहाड़ियों की तलहटी मे फ़ीरोजपुर से करनाल के मध्य स्थित क्षेत्र को बाँट लिया; इस विजय में फूलकियों ने भी उनका साथ दिया था, अतः उस मिसलवालों के लिए सरहिन्द तथा दिल्ली के मध्य स्थित क्षेत्र छोड़ दिए गए जो फूलकियों के मालवा स्थित भूभाग के निकट ही थे।[1]

क्षेत्र के कुछ दलों को भी इसी प्रकार भिन्न मिसलों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वास्तव में ऐसे विस्तारों के विवरण में कैप्टेन मरे ने सतलज के पड़ोस में स्थित क्षेत्र के स्थानीय मतों को ही व्यक्त किया है।

१—'हिस्ट्री आव सिख्ख' (१:२८) में डा० मैकग्रेगर कुछ मिसलों के सम्बन्ध में उपलब्ध सामान्य विवरणों में से कुछ का सारांश देता है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सिक्खों की सैन्य संख्या के विषय में विभिन्न सूत्र विभिन्न विवरण देते हैं; उनके द्वारा सिक्ख घुड़सवारों की कुल संख्या सत्तर हज़ार से लेकर दो लाख अस्सी हज़ार तक आँकी गई है। विभिन्न मिसलों की अलग अलग सैन्य संख्या भी अभी तक सन्देहास्पद ही बनी हुई है।[1] इस सम्बन्ध में केवल एक बात निश्चित है—और वह है शक्ति तथा ख्याति की दृष्टि से भंगी मिसल की श्रेष्ठता, तथा नक्काइयों एवम् सुकेर चुकियों की निम्नतम स्थिति।

सिक्खों की कुल शक्ति तथा मिसलों की आपेक्षिक सैन्य संख्या:

भंगी मिसल वाले अवसर पड़ने पर अपने दूर दूर तक विस्तृत क्षेत्रों से लगभग बीस हज़ार सैनिक एकत्रित कर सकते थे, जब कि सुकेर चुकिया मिसल इसका केवल दसवाँ अंश, अर्थात् दो हज़ार सैनिक इकट्ठा कर सकता था। ऊपर के अनुमान में सिक्ख सवारों की जो कम से कम संख्या दी गई है, (अर्थात् ७५०००), उसी को सिक्खों की राष्ट्रीय सेना या खालसा की सेना की वास्तविक संख्या समझना चाहिए। सभी सिक्ख, घुड़सवार ही थे; मैदानों में रहने वाले अर्ध-बर्बर लोगों में, तथा अनुशासनहीन सेनाओं के विरुद्ध युद्ध में सवार सेना ही सर्वाधिक उपयोगी होती है। घोड़ा दौड़ाते हुए पलीते वाली बन्दूक को कुशलतापूर्वक चलाने में पूर्ण योग्यता प्राप्त कर लेने के कारण सिक्ख सवारों की प्रसिद्धि बड़ी तेज़ी से विस्तार पाने लगी; कहा जाता है कि सिक्खों ने इस कौशल को अपने उन पूर्वजों से विरासत में पाया था, जिनका मुख्य अस्त्र धनुष ही होता था, चाहे वे ज़मीन पर हों, या घोड़े की पीठ पर। पैदल सेना का प्रयोग केवल किलों की ही रक्षा के लिए किया जाता था; खुले युद्ध में

१७६४

१—१७३८ ई० में, फास्टर (ट्रवेल्स, १:३३३) के अनुसार सिक्खों की सैन्य संख्या अनुमानतः ३ लाख बताई जाती थी, परन्तु इसे कम से कम दो लाख माना जा सकता था। ब्राउन (ट्रैक्ट्स', मानचित्र) ने उसी समय यह संख्या, ७३,००० सवार, तथा २५००० पैदल बताया। उसके बीस वर्ष पश्चात् 'लाइफ ऑव शाह आलम' (नोट, पृ० ७५) में कर्नल फ्रेंकलिन ने बताया कि सिक्खों के पास उस समय २४८००० सवार थे, तथा 'लाइफ ऑव जार्ज टामस', (पृ० ६८ नोट) में वही कहता है कि वे युद्ध में ४८००० से अधिक सवार न ला सके। स्वयम् जार्ज टामस ने उनकी संख्या का जो अनुमान लगाया था वह था, ६०,००० सवार तथा ५,००० पैदल।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उन्हें नहीं लाया जाता था, या फिर कोई पैदल सैनिक मिसल के साथ जाता भी था तो उतनी ही देर तक, जब तक कि लूटपाट करके घोड़े या घोड़ा खरीदने भर को न प्राप्त कर ले। प्रारम्भिक सिक्ख सेनाओं द्वारा तोप का प्रयोग नहीं किया जाता था; और जब उनका प्रयोग आरम्भ भी हुआ तो बहुत मन्द गति से, क्योंकि तोपें रखने के लिए अधिक धन या नागरिक तथा सैनिक संगठन आवश्यक होता है।[1]

अधीनता की साधारण सी भावना से बद्ध इन नियमित मिसलों के अतिरिक्त सिक्खों का एक वर्ग ऐसा भी था जो विशेष रूप से सिक्ख धर्म के धार्मिक तत्वों का प्रतिनिधित्व करता था; यह वर्ग था अकालियों का; जो स्वयम् को ईश्वर का सिपाही मानते थे। अकाली सिक्ख शरीर पर नीले वस्त्र तथा हाथों में कड़े पहनते थे, और स्वयम् को गुरु गोविन्द सिंह जी द्वारा स्थापित एक संस्था मानते थे। उनमें प्रचलित जन-कथा के अनुसार गुरु जी ने एक बार अपने धर्मानुयायियों का आह्वान करते हुए उन्हें ललकारा था कि वे धर्म के लिए सब कुछ बलिदान कर दें, अपना घर बार छोड़ दें तथा सेना में भरती हो और सैनिक व्यवसाय अपनाएँ, परन्तु उन्होंने तथा उनके सभी पूर्वाधिकारियों ने हिन्दू जातियों की आन्तरिक आस्था को तिलांजलि दे दी थी; इस प्रकार सिक्खों के मानस व कल्पना में युद्ध की ही भावना भरी गई, और उनकी विचार-भावना ने विनाशकारी मोड़ लिया। अकालियों ने अपने संघर्ष में अपनी युद्ध प्रियता, तथा दूसरी ओर सांसारिकता से मुक्ति के संतुलन को बनाए रखने का निश्चय किया। उनमें से जो निर्बल या शान्त व विनम्र थे, वे गुरुद्वारे में प्रभु की सेवा से ही संतुष्ट हो रहते थे, परन्तु उत्साही और साहसी लोगों ने यथावसर अमृतसर के सशस्त्र रक्षक के रूप में डटे रहने की प्रवृत्ति प्रकट की, या फिर किसी अन्धशक्ति के आकर्षण से वे किसी भी ओर घोड़ों का मुँह मोड़ देते थे, और कभी समूह में, तो कभी व्यक्तिगत रूप से तलवार की नोक पर दैनिक व्यय का प्रबन्ध कर लेते थे।[2] उन्होंने अपने ऊपर सेंसर

अकाली सिक्खों का वर्ग : उनकी उत्पत्ति तथा कार्य-सिद्धान्त:

१—सन् १८०० ई० में जार्ज टामस, उस समय सिक्खों की अनुमानित हैसियत देते हुए कहता है कि उनके पास ४० युद्धक तोपें थीं (फ्रेंकलिन लिखित 'लाइफ' पृ० २७४)।

२—देखिए मालकम, (स्केच', पृ० ११६), जो इस मत को दुहराता है कि

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जैसा उत्तरदायित्व भी ले लिया था, परन्तु खालसा के सम्मान के सम्बन्ध में कोई सरदार उनके हाथों नहीं गिरा, ऐसा प्रतीत होता है। लोग उनसे भय भी खाते थे और उनका सम्मान भी करते थे। वे कभी-कभी ऐसे लोगों को भी लूट लेते थे जो कभी उनका अपमान कर देते थे या संघ को कोई हानि पहुँचाते थे। अकालियों की यह उच्छृंखलता और मनमानी उसी समय तक अपना खेल दिखा सकी जब तक कि रणजीत सिंह ने सर्वोच्च सत्ता न प्राप्त कर ली, उनको तुरन्त नियंत्रण में रखने तथा अपने लोगों के हृदय में अपना सम्मान बनाए रखने के लिए इस नीति कुशल राजा को काफी कष्ट उठाना पड़ा।

अकाली सिक्ख, गुरु गोबिन्द जी द्वारा स्थापित एक संस्था थे। इस सम्बन्ध में गुरु गोबिन्द जी द्वारा लिखित कोई भी सूत्र उपलब्ध नहीं है जिससे केवल युद्धप्रिय लोगों द्वारा सिक्ख धर्म का प्रतिनिधित्व किए जाने की उनकी इच्छा प्रकट होती हो; यह स्पष्ट प्रतीत होता है, कि यह वर्ग उसी प्रकार अस्तित्व में आया था जैसा ऊपर लिखा गया है।

सिक्ख को काम करना चाहिए, या किसी भी व्यवसाय में लीन रहना चाहिए यह भावना इतनी प्रबल है कि जो सिक्ख संसार के मायाजाल को त्याग देता है या युद्धप्रिय नहीं है तो वह स्वयम् को अपने सम्प्रदाय के लाभ के लिए किसी न किसी प्रकार से अवश्य अर्पित कर देगा। एक बार लेखक ने एक अकाली को सतलज के मैदान से कीरतपुर जानेवाली एक सड़क की मरम्मत करते हुए या उसे बनाते हुए पाया। वह माया में लिप्त संसारवालों से बात भी नहीं करता था। लोगों के हृदय में उसके प्रति बड़ा सम्मान था जो उसके लिए निश्चित स्थानों पर रोटी कपड़ा आदि छोड़ जाते थे; उसके इस निष्ठापूर्ण तथा धैर्यपूर्ण चरित्र ने एक हिन्दू गड़ेरिए लड़के पर बहुत गहरा प्रभाव डाला, और उस लड़के ने भी अंशतः अकाली नीला वेश धारण करना प्रारम्भ कर दिया था और भक्ति जनित गुरुगम्भीरता से बोलने लगा था।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अध्याय ५

सिक्खों की स्वतन्त्रता से रणजीत सिंह द्वारा सत्ता प्राप्ति तथा अंग्रेजों के साथ सन्धि तक

१६७५—१८०८—६

अहमदशाह का अन्तिम आक्रमण—सिक्खों में भंगी मिसल का प्राबल्य—तैमूरशाह के अभियान—हरियाना में फूलकिया सिक्ख—ज़ाबित खाँ—सिक्खों में कन्हया मिसल की प्रमुखता——महान सिंह सुकेरचुकिया———शाह जमाँ के आक्रमण तथा रणजीत सिंह का उदय—सिन्धिया के नेतृत्व में उत्तर भारत में मराठों की प्रधानता जनरल पेरन तथा जार्ज टामस—मराठों व सिक्खों में सन्धियाँ—अंग्रेजों व सिक्खों की वार्ता—सिन्धिया तथा होलकरके विरुद्ध लार्ड लेक का अभियान—अंग्रेजों के साथ सिक्खों की प्रथम सन्धि—भारत पर फ्रांसीसी आक्रमण के विरुद्ध तैयारियाँ—रणजीत सिंह के साथ सन्धि, तथा सिस्—सतलज सिक्ख सरदारों को रक्षा का वचन।

इस समय तक सिक्खों ने करनाल और हाँसी से लेकर झेलम के तट के मध्य स्थित समस्त ऊपरी मैदान पर अधिकार जमा लिया था। अब उनमें एकता की आवश्यकता का अनुभव कम किया जाने लगा। जैसा कि कहा जाता है,

१७६७

असंस्कृत तथा अशिक्षित प्रायः अपने मस्तिष्क की बाग-डोर क्षुद्र भावनाओं के हाथों सौंप देते हैं, तथा अपने देश व अपनी जाति के कल्याण के हितों को उतना महत्व नहीं देते जितना अपने हित व स्वार्थों को। इसी आधार पर सिक्ख सरदारों में से कुछ का व्यवहार वास्तविक या काल्पनिक द्वेषों द्वारा संचालित होते थे, जबकि

अहमदशाह का अन्तिम आक्रमण; सिक्खों

कुछ अन्य पड़ोसी नगरों व जिलों पर कब्जा जमाने के प्रयास में रत थे। केवल आस्थावान सिक्खों ने अपने धर्म का विस्तार करने, तथा दूसरे क्षेत्रों पर पूर्ण विजय प्राप्त करके, या केवल कर देने के लिए विवश करके

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

की तत्परता: १७६७ ई०

खालसा के अधिकार क्षेत्र में वृद्धि करने का संकल्प किया था। इस प्रकार अल्पकालीन विश्रान्ति के पश्चात् तरोताजा तथा विभिन्न प्रवृत्तियों से युक्त सिक्खों के उदय का जब समय आया, ठीक उसी समय अहमदशाह के अन्तिम आक्रमण के आतंक ने सिक्खों को एक सूत्र में बद्ध होने के लिए प्रेरित किया। रोग से पीड़ित अब्दाली की बढ़ती हुई आयु के साथ उसकी शक्ति तथा सक्रियता में ह्रास होता जा रहा था, फिर भी उसने पंजाब को प्राप्त करने लिए एक बार पुनः प्रयास किया जो उसके समस्त प्रान्तों में सर्वाधिक उपजाऊ था। इस बार उसने सन् १७६७ ई० में सिन्ध नदी को पार किया, परन्तु उसने लाहौर में छेड़छाड़ नहीं की, और सतलज नदी के आगे नहीं बढ़ा। जब उसने कहीं भी निश्चित विजय की सम्भावना नहीं देखी तो उसने विभिन्न सरदारों से अलग-अलग सन्धि कर डालने में ही अपना कल्याण समझा। उसने युद्ध प्रिय अमर सिंह को महाराज की उपाधि देकर उसे सरहिन्द में प्रधान सेनापति का पद देकर सम्मानित किया; यह अमरसिंह पटियाला की वंश परम्परा में था, और उसने मालवा सिक्खों के, या पटियाला के राजा का पद अपने पितामह से उत्तराधिकार में प्राप्त किया था। अहमदशाह ने इसके प्रश्चात् कचोट के राजपूत राजा से वार्ता चलाई, और उसे उसने जलन्धर दोआब तथा निकटस्थ पर्वतीय क्षेत्रों के लिए अपना नायब नियुक्त किया। इसी समय उसकी सेना में फूट पड़ गई, और उसके बारह हजार सैनिकों ने काबुल की ओर कूच कर दिया जिससे अब्दाली के प्रयत्नों में बाधा पड़ गई, और उसने भी अपने सैनिकों के साथ ही लौट जाने में बुद्धिमत्ता समझी। उसकी वापसी में सिक्खों ने उसे रगेदना शुरु किया, और उसने अभी सिन्ध को पार भी नहीं किया था कि सुकेरचुकियों ने रणजीत सिंह के पितामह के नेतृत्व में रोहतास स्थित शेरशाह के पहाड़ी किले को घेर लिया जिन्हें पड़ोस के भंगी मिसल की एक टुकड़ी की सहायता भी प्राप्त थी। सन् १७६८ में रोहतास उनके हाथ में आ गया, और भंगी मिसल वालों ने अविलम्ब रावलपिण्डी तथा खानपुर की घाटी तक का क्षेत्र हथिया लिया; और यह स्पष्ट हो गया कि गखरों के पास गौर से अब उस प्राचीन कष्ट सहिष्णुता व

१७६७-६८

पटियाला के अमर सिंह और कचोट के राजपूत राजा से सन्धि, अहमदशाह की वापसी

रोहतास पर सिक्खों का अधिकार

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वीरता का बहुत थोड़ा सा ही अंश बच रहा था जिसके लिए आक्रामक मुगलों के साथ हुए युद्धों में उन्होंने ख्याति अर्जित की थी।[1]

हरी सिंह के नेतृत्व में भंगी मिसल ने इसके पश्चात् मुल्तान की ओर कूच किया, परन्तु बीच में ही उसकी मुठभेड़ मुसलमान, दाऊदपुत्रों से हो गई जो सिन्ध की ओर से आए थे; जब उन्होंने सुना कि नादिरशाह उन्हें गजनी में बसाने का निश्चय कर चुका है, तो वे भाग आए और उन्होंने भवलपुर के नाम से प्रसिद्ध स्थान में अपनी सत्ता स्थापित कर ली थी।[2] दाऊदपुत्रों के सरदार मुबारिक खाँ ने भंगी सरदार हरी सिंह से वार्ता करके उसे इस व्यवस्था पर सहमत कर लिया कि दोनों के अधिकार क्षेत्र की सीमा पाक-पत्तन नामक नगर को मान लिया जाय, जो उस समय एक प्रसिद्ध मुस्लिम सन्त के अधिकार में था। इस व्यवस्था के पश्चात् हरी सिंह ने डेराश्मजी खाँ तथा सिन्ध की ओर रुख किया। जिस समय वह इन क्षेत्रों में व्यस्त था, उसी समय उसके अधीनस्थ

सिक्ख; निचले पंजाब में :

१७७०

१—फास्टर, 'ट्रवेल्स', १:३२३; एलफिन्सटन, 'काबुल', २:२६७; मरे, 'रणजीत सिंह' पृ० २७; मूरक्राफ्ट 'ट्रवेल्स' १:१२७ तथा कुछ पाण्डुलिपियाँ।

२—जब नादिरशाह ने सिन्ध तक सत्ता विस्तार करने के लिए आगे बढ़ा तो शिकारपुर के जिले में उसकी भेंट भवलपुर परिवार के एक सम्मानित व्यक्ति से हुई; और नादिरशाह ने सूबे के ऊपरी तिहाई भाग, के लिए उसे अपना नायब नियुक्त किया, परन्तु बाद में उस पूरी जाति के प्रति सशंक होने पर उसने उन्हें गजनी भेज देने का निश्चय किया। ऐसी स्थिति में यह जाति सतलज की ओर निकल आई और शक्ति द्वारा कुछ भूभाग पर अधिकार कर लिया। उन्हें दाऊदपुत्र इसलिए कहा जाता है कि दाऊद (डेविड) ही उस परिवार का प्रथम व्यक्ति था जिसने ख्याति प्राप्त की थी। वे स्वयम् को खलीफा अब्बास का वंशज बताते हैं परन्तु उन्हें सिन्धी बलूची समझा जा सकता है। सतलज क्षेत्र में जम जमाने के प्रयास में उन्होंने प्राचीन लंगहो तथा जोहियों के बचे खुचे महत्व को लगभग समाप्त ही कर दिया; उन्होंने सिंचाई के लिए सिन्धी नहर प्रणाली प्रचलित की, और पाकपत्तन के नीचे नदी के दोनों तट, उनकी उद्योगशीलता तथा उनके कृषि-प्रेम के जीते जागते प्रमाण हैं।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गुजरात के एक सरदार ने-जिसने अभी हाल ही में रावलपिण्डी पर अधिकार किया था--सीधी सड़क द्वारा, कश्मीर में धँसने का प्रयास किया परन्तु उसे भारी हानि उठा कर वापस लौटना पड़ा। उधर यमुना नदी तथा विस्तृत दो आब के क्षेत्र में रायसिंह भंगी तथा बघेल सिंह क्रोर सिंहिया ने दोनों ओर से दबाव डालकर नजीबुद्दौला के नाको दम कर दिया, साथ ही रायसिंह ने जगाधरी के जिले व नगर में अपना पूरा अधिकार जमा लिया; अन्ततः नजीबुद्दौला इन नए सरदारों से इतना अधिक परेशान हो गया कि उसने सिक्खों के विरुद्ध मराठों के साथ संयुक्त अभियान करने की योजना बनाई परन्तु १७७० ई० में ही उसकी मृत्यु हो जाने से यह योजना सदैव के लिए स्थगित हो गई क्योंकि उसके उत्तराधिकारी के विचार कुछ और ही थे जिसने सिक्खों को संकटवाल में उपयोगी सहायक मानकर उन्हें और प्रोत्साहित करना प्रारम्भ किया।

भवलपुर से सिन्ध; कश्मीर पर असफल धावा; नजीबुद्दौला की परेशानी, ७७० ई०

हरीसिंह भंगी की मृत्यु के उपरान्त उसका उत्तराधिकारी हुआ झण्डासिंह जिसने मिसल की शक्ति को अन्तिम सीमा पर पहुँचा कर ही दम लिया। उसने जम्मू पर धावा करके उसे कर देने के लिए बाध्य किया; उस समय राजनीतिक व व्यापारिक दृष्टिकोण से जम्मू एक महत्वपूर्ण क्षेत्र था; बार बार होने वाले अफ़गान आक्रमणों, तथा सिक्खों की निरन्तर युद्धात्मक कार्यवाहियों ने मैदानों के व्यापारियों को पर्वतीय भागों की ओर जा बसने के लिए विवश किया था, जहाँ परिवहन की असुविधा होते हुए भी, प्राप्त सुरक्षा के कारण वे सन्तुष्ट थे। जम्मू के राजपूत राजा रणजीत देव का चरित्र भी कुछ ऐसा था कि व्यापारियों को उसके राज्य में किसी अनिष्ट की आशंका नहीं थी, अतः वे बड़ी संख्या में राजकीय सुरक्षा की इच्छा से राजधानी में आ बसे थे। जम्मू को कर देने के लिए बाध्य करने के पश्चात् सिक्खों ने कसूर के पठानों की ओर रुख किया और उनसे भी कर वसूला, अब झण्डा सिंह ने अपने सहकारी मुज्जा सिंह को मुल्तान की ओर भेज दिया[1], परन्तु

भंगी मिसल में झण्डासिंह की प्रमुखता; जम्मू द्वारा अधीनता स्वीकार किया जाना; कसूर पर विजय :

१—भवलपुर परिवार के संस्मरण तथा सिक्ख—इतिहासों की पाण्डुलिपियाँ; फार्स्टर 'ट्रवेल्स' १:१४८ भी देखिए।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मुल्तान पर अधिकार १७७२ ई० झण्डा सिंह की जयसिंह कन्हया द्वारा हत्या; १७७४ ई०

अफगान सरदारों तथा भवलपुर के राजा की सम्मिलित शक्ति से मुठभेड़ हो जाने पर सिक्ख सेना को पीछे लौटना पड़ा, और मुज्जा सिंह ने वीरगति प्राप्त की। अगले वर्ष, अर्थात् सन् १७७२ ई० में उक्त संयुक्त शक्तियों में परस्पर विवाद उठ खड़ा हुआ और उनमें विग्रह हो गया, और जब उनमें से एक ने झण्डासिंह से सहायता की प्रार्थना की, तो वह पुनः मुल्तान को ओर बढ़ चला, और उपयुक्त अवसर पाकर मुल्तान के किले पर सरलता से अधिकार कर लिया। जब वह मुल्तान से पलट कर पुनः उत्तर की ओर चला तो उसने देखा कि जम्मू के उत्तराधिकार सम्बन्धी विवाद में एक दावेदार ने चरनसिंह सुकेरचुकिया तथा कन्हया मिसल के उभरते हुए सरदार जयसिंह की सहायता प्राप्त कर ली थी। उसी समय अपनी ही बन्दूक के अचानक फट जाने से घायल होकर सरदार चरनसिंह की मृत्यु हो गई, और इसके साथ ही महत्वाकांक्षी कन्हया सरदार जयसिंह इतने निम्नस्तर पर उतर आया कि उसने अपना रास्ता साफ करने के लिए, सिक्ख जाति के यश के एक स्तम्भ—झण्डासिंह की हत्या करा डाली। अब इस प्रबल व प्रभावशाली सरदार के समाप्त हो जाने पर कन्हया

१७७२-७४

ने जम्मू के उत्तराधिकार के दावेदार का भी साथ छोड़ दिया, और उसे राय दी कि वह अपना मसला खुद अकेले ही हल करें। इसके पश्चात् जय सिंह कन्हया ने रामगढ़िया सरदार जस्सा बढ़ई के विरुद्ध कार्यवाही शुरू की जिसने अभी हाल ही में अहमदशाह के नाममात्र के नायब, कटोच के राजपूत राजा

जयसिंह के अन्य कृत १७७४ ई०

घमण्डचन्द तथा पहड़ी भागों के अन्य राजपूतों को कर देने के लिए बाध्य किया था; और इस कार्यवाही में उसने वृद्ध अहलूवालिया सरदार जस्सा सिंह कलाल को भी अपना सहयोगी बनाया। अन्त में उनकी शक्ति के आगे रामगढ़िया जस्सा बढ़ई को पराजित होना पड़ा; वह हारकर हरियाना के ऊबड़ खाबड़ इलाकों की ओर निकल गया, और लूट-पाट का व्यसाय अपना लिया। इसी समय, अर्थात् सन् १७७४ के लगभग काँगड़ा के मुसलान सूबेदार की मृत्यु हो गई। इस सूबेदार की हार्दिक इच्छा, अपना स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित करने की थी, परन्तु ऐसा सम्भव न हो सकने पर वह दिल्ली अथवा काबुल में से किसी एक के अधीन, नाममात्र को ही, रहना चाहता था, और ऐसा ही उसने किया भी;

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

यद्यपि कटोच के उभरते हुए राजपूत राजा की बहुत दिनों से इस प्रसिद्ध किले पर नज़र गड़ी हुई थी, पर उसने अपने किले को जीवन भर सुरक्षित रक्खा। उसकी मृत्यु होते ही कटोच के राजा के प्रस्ताव पर जयसिंह ने उसे सहायता दी और काँगड़ा जीत लिया गया, परन्तु सिक्खों ने इस किले को अपने ही पास रखने का निश्चय किया, और शाही किले पर अधिकार हो जाने से जयसिंह को, आस पास के राजाओं तथा ठाकुरों पर जस्सा सिंह के प्रभाव का अपहरण करने में भी काफ़ी सहायता मिली।[1]

पंजाब के दक्षिणी भाग में भंगी सिक्खों की प्रधानता पूर्ववत बनी रही; ऐसा प्रतीत होता है कि मुलतान के साथ ही उन्होंने मनकीरा के दुर्ग पर भी अधिकार जमा रक्खा था। यथा वे कालाबाग़ और नीचे के क्षेत्रों से भी कर वसूला करते थे। उन्होंने शुजाबाद को भी लेने का प्रयास किया, जिसे अफ़ग़ानों ने मुलतान खोने के बाद बसाया था, परन्तु अफ़ग़ानों ने उनका यह प्रयास विफल कर दिया। अहमदशाह की मृत्यु के पश्चात् सन् १७७३ ई० में तैमूरशाह काबुल की गद्दी पर बैठा। उसने भी अपने पिता का अनुकरण करते हुए सिन्धनदी पार की, परन्तु उसने अपना सीधा लक्ष्य सिन्ध, भवलपुर तथा निचले पंजाब को बनाया, और ऐसा प्रतीत होता है कि उसने लाहौर पर पुनः अधिकार करने का विचार ही नहीं किया था। सन् १७७७-७८ के बीच काबुली सेना की दो टुकड़ियों ने सिक्खों के हाथ से मुलतान को मुक्त कराने का प्रयास किया, परन्तु सन् १७७८-७९ में स्वयम् तैमूरशाह ने मुलतान के विरुद्ध कूच किया। इस अवसर पर भंगी मिसल के नए सरदार गण्डा सिंह को अन्य सरदारों की सहायता न मिली, और उसके मुख्य सहायक ने साधारण से प्रतिरोध के पश्चात् आत्मसमर्पण कर दिया। तैमूरशाह ने सन् १७९३ ई० तक राज्य

मुलतान पर तैमूर शाह का पुनः अधिकार; १७७९ ई०

१—भवलपुर परिवार के संस्मरण तथा सिक्ख वृत्तान्तों की पाण्डुलिपियाँ; देखिए मरे, 'रणजीतसिंह', पृ० ३८; फास्टर, 'ट्रवेल्स' १:२८१, २८६, ३१६।

जम्मू के रणजीत देव की मृत्यु सन् १७७० ई० में हुई।

सन् १७७४ में चरनसिंह की मृत्यु दुर्घटना से हुई थी, तथा झण्डासिंह की हत्या की गई थी।

ऐसा प्रतीत होता है कि हरी सिंह की मृत्यु सन् १७७० ई० में पटियाला के अमरसिंह के साथ हुई लड़ाई में हुई।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

१७७९-८१

किया, परन्तु इस सारे शासनकाल में वह सिन्ध, कश्मीर तथा उजबेकिस्तान में होने वाले विद्रोह में ही उलझा रहा, और उसे सिक्खों की ओर ध्यान देने की फुरसत ही न मिली। रावलपिण्डी तक सिक्खों को किसी भी शक्ति का भय नही रह गया था, और उनके लूट पाट की प्रवृत्ति रखने वाले सवार चच के मैदान से अटक की चारदीवारी तक निर्द्वन्द होकर धावा मारा करते थे।[1]

हरियाना पर फूलकियों का स्वामित्व १७६८-७८ ई०

हरियाना और दिल्ली की दिशा में युवकोचित उत्साह से परिपूर्ण अमर सिंह फूलकिया ने अपने अधिकार क्षेत्र का विस्तार करने, तथा सुदृढ़ बनाने का कार्य एक क्रम से प्रारम्भ किया। सर्व प्रथम उसने सिरसा, तथा फतेहाबाद पर अधिकार प्राप्त किया; उसके क्षेत्र की सीमा बीकानेर और भवलपुर की सीमाओं से जा मिली, तथा जीन्द एवम् कैथल में स्थित उसके अधीनस्थ नायकों ने हाँसी और रोहतक के चारो ओर स्थित मैदानी भागों पर अधिकार कर लिया। इसी समय दिल्ली दरबार सरहिन्द के इलाके में मुग़ल सत्ता की स्थापना का अन्तिम प्रयत्न कर रहा था, और इसीलिए अमरसिंह को पटियाला बुला लिया गया। सन् १७७९-८० में तत्कालीन वजीर, तथा शाही खानदान के एक सदस्य, फर्खुन्द बख्त के नेतृत्व में दिल्ली से एक शाही सेना ने सररिन्द की ओर कूच किया। पहला हमला करनाल पर हुआ जिसमें शाही सेना ने विजय पाई और क्रोर सिंहिया सरदार बघेल सिंह ने कुछ रकम देने का वादा करके अधीनता स्वीकार कर ली। कैथल के देशू सिंह को बन्दी बना लिया गया और उससे काफी जुर्माना वसूला गया, उसके पश्चात् शाही सेना सीधे पटियाला जा पहुँची। अमरसिंह ने युद्ध के स्थान पर कर देने का वादा किया, और क्रोरसिंह सरदार बघेल ने मध्यस्थता में काफी निष्ठा दिखाई; परन्तु अचानक ही यह समाचार फैल गया कि लाहौर से एक काफी बड़ी सेना मुग़लों के विरुद्ध कूच कर चुकी है, अतः मुगलसेना तेजी से पानीपत की

मालवा सिक्खों के विरुद्ध दिल्ली का अभियान १७७९-८०

१—भवलपुर के राजा के संस्मरण तथा अन्य इतिहासों की पाण्डुलिपियाँ देखिए, ब्राउन, 'ट्रैक्ट्स', २:२८, तथा फार्स्टर, 'ट्रैवेल्स', १:३२४; एलफिन्सटन ('काबुल', २:३०३ सिक्खों से मुलतान की मुक्ति की तिथि १७७९ नहीं, बल्कि १७८१ देता है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ओर हट गई; मुगल सैनिकों के मन में यह सन्देह दृढ़ता के साथ जम गया था कि उनके वजीर ने सिक्खों के सोने की चमक देख ली है, और मुग़ल बादशाह के हितों के साथ गद्दारी कर रहा है। इसी समय, अर्थात्

अमर सिंह की मृत्यु १७८१ ई०

सन् १७८१ ई० में अमरसिंह की मृत्यु हो गई, जिसके केवल एक पुत्र था जो अवयस्क तथा असन्तुलित मस्तिष्क का था। इसके दो वर्ष पश्चात् अकाल ने हरियाना को तबाह कर दिया; कितने ही लोग भूखों मर गए और शेष लोग भागकर दूसरे स्थानों में बस गए; सिरसा वीरान हो गया, और इस विपत्तिकाल में देश का एक काफी बड़ा भाग सिक्खों के हाथ से निकल गया, जिसे वे फिर कभी अपने अधिकार में न ला सकें।[1]

गंगा तथा यमुना के दोआब में सिक्ख, नजीबुद्दौला के पुत्र जाबित खाँ के उदासीन मित्र होने के स्थान पर उस पर हावी हो गए थे। उस समय जाबित खाँ मुग़ल साम्राज्य के वजीर के पद पर आँख गड़ाए बैठा था। शाही सेनाओं पर आँशिक विजय पा लेने के पश्चात् वह सन् १७७६ ई०

१७८१-८५

में दिल्ली की ओर, घेरा डालने के इरादे से बढ़ चला, परन्तु जब वास्तविक कार्यवाही का उपयुक्त समय आया तो उसे अपनी शक्ति व सामर्थ्य पर अविश्वास हो गया, और उसने कुछ भी न किया। सम्राट ने भी अपनी ओर से कोई ऐसा कदम नहीं उठाया कि जाबित खाँ उत्तेजित हो जाय; सन्धि वार्ता हुई और जाबित खाँ को सहारनपुर का इलाका दे दिया गया। इस अवसर पर जाबित खाँ की सहायता के लिए एक सिक्ख टुकड़ी भी उपस्थित थी, और वह सिक्खों से दोस्ती बनाये रखने का इतना इच्छुक था, कि, कहा जाता है उसने सिक्खों की ही तरह का वस्त्र धारण करना शुरू कर दिया था, 'पाहुल' प्राप्त किया था और अपना नाम भी बदल कर धरमसिंह रख लिया था।[2]

वजारत के लिए ज़ाबित खाँ की साज़िश में सिक्खों की सहायता १७७६ ई०

१—पाएडुलिपियाँ तथा भट्टियाना सीमा पर मि. रॉस बेल की १८३६ ई० की रिपोर्ट; देखिए फ्रैंकलिन, 'शाह आलम'; पृ० ८६, ९ तथा शाहनवाज़ खाँ का 'मिरित्—३—अफताबनुमा'।

२—देखिए फास्टर 'ट्रवेल्स', १:३२५; ब्राउन, ट्रैक्ट्स', २:२९; तथा फ्रैंकलिन, 'शाहआलम', पृ० ७२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जब कन्हया तथा अहलूवालिया मिसलों के सम्मिलित प्रयास से जस्सा सिंह रामगढ़िया को विवश होकर पंजाब की ओर भागने के लिए विवश होना पड़ा तो उसने हिसार के इलाके में अपना पाँव जमाने का प्रयास किया, और उसके इस प्रयास में अमरसिंह फूलकिया ने पूरी सहायता प्रदान की थी; जस्सासिंह यहाँ से दिल्ली की दीवालों तक कर वसूलने के लिए धावा किया करता था। सन् १७८१ ई० में फूलकिया तथा अन्य सिक्खों के एक दल ने दोआब की ओर प्रस्थान किया, परन्तु शाही सिपहसालार मिरज़ा शफ़ी बेग ने मेरठ की दीवालों के भीतर ही उनपर बड़ा सफल आक्रमण कर दिया, और जीन्द के गजपत सिंह को बन्दी बना लिया गया; फिर भी बघेल सिंह तथा अन्य नायकों में अभी इतनी शक्ति थी कि उन्होंने सन् १७८३ ई० में गंगा को पार करने की योजना बनाई, परन्तु दूसरे तट पर अवध की सतर्क सेना ने उन्हें इस निश्चय से विरत कर दिया। पीछे जिस अकाल का उल्लेख किया जा चुका है, सम्भवतः उससे हुई बरबादी से विवश होकर जस्सासिंह ने दोआब में प्रवेश किया। सन् १७८५ ई० में सिक्ख दलों ने रुहेलखण्ड में प्रवेश किया और चन्दोसी तक लूटपाट मचाया - जो बरेली से केवल चालीस मील की दूरी पर है। इस समय ज़ाबित खाँ को उसके घौसगढ़ नामक दुर्ग की दीवालों तक ही सीमित कर तथा गढ़वाल के राजा जिसके पूर्वाधिकारी ने औरंगजेब के विरुद्ध दाराशिकोह को शरण दी थी, तथा उसके साथ ही चिनाब के पश्चिम में स्थित पहाड़ी क्षेत्रों के सभी राजपूतों को कर देने के लिए विवश कर दिया गया। अवध की सीमा से लेकर सिन्ध नदी तक के सम्पूर्ण क्षेत्र में सिक्खों का ही बोलवाला था। यात्री फार्स्टर बड़े हास्यपूर्ण ढंग से वर्णन करता है कि एक छोटे से राजा, के किले की दीवाल के नीचे जब दो सिक्ख सवार दिखाई पड़े तो लोग भय से पीले पड़ गए; इसी प्रकार गढ़वाल के स्थानीय राज्याधिकारियों ने दो सिक्ख सवारों का सामन्तोचित सम्मान तथा स्वागत किया था जो अचानक वहाँ जा पहुँचे थे। वह इस प्रकार के अन्य दृष्टान्त भी देता है जिससे प्रकट होता है कि उस समय सिक्खों को कितने भय व सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था।[1]

बघेल सिंह के नेतृत्व में दोआब व रुहेलखण्ड में सिक्खों के उपद्रव; १७८१-५; मेरठ में सिक्खों की पराजय; १७८३ ई०

सन् १७८५ ई०

१—फार्स्टर, 'ट्रवेल्स, '१:२२८, २२९, २६२, ३०६, तथा नोट ! फ्रैंक

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

स्वयम् पंजाब में कन्हया मिसल के सरदार जयसिंह ने अभी तक अपनी धाक जमा रक्खी थी। सुकेर चुकिया मिसल के सरदार चरनसिंह के पुत्र महान सिंह को वह अपने ही संरक्षण में रक्खे हुए था। जब युवा महान सिंह ने एक मुसलमान परिवार के हाथ से रसूल नगर को छीनने के लिए धावा किया तो जयसिंह ने उसकी पूरी सहायता की थी। महान सिंह दिन ब दिन ख्याति तथा प्रगति के पथ पर बढ़ला गया, और सफलता उसके कदम चूमती रही। अभी तक वह एक तरह से जयसिंह के अधीनस्थ सरदार की हैसियत से रहता था, परन्तु सन् १७८४-८५ के लगभग उसने अपने ऊपर से जयसिंह की अधीनता का जुआ उतार फेंकते हुए, एक स्वतंत्र सरदार की हैसियत से जम्मू में घट रही घटनाओं में हस्तक्षेप किया। ऐसा समझा जाता है कि जम्मू के मामलों में वह उस समय तक टाँग अड़ाता रहा जब तक कि उसने उस स्थान को लूट नहीं लिया; परन्तु इस प्रकार उसने जो सम्पत्ति एकत्रित कर ली थी, तथा स्वेच्छा व व्यक्तिगत स्वतंत्रता की भावना से उसने जो कार्य किए थे, उनसे जयसिंह उस पर कुपित हो गया। महानसिंह ने क्षमा प्रार्थना तथा शान्ति प्रस्तावों द्वारा उसके क्रोध को शान्त करना चाहा, परन्तु जब जय सिंह ने उसका तिरस्कार किया तो वह भी उत्तेजित हो गया, और हथियारों से ही निपटारा करने का संकल्प करके वह चला गया। उसने जयसिंह के कट्टर शत्रु जस्सासिंह रामगढ़िया को सन्देश भेजा, जिसे पाकर वह सरदार बहुत ही प्रसन्न हुआ, क्योंकि अब उसे अपने खोए हुए अधिकार को वापस पाने तथा जयसिंह से बदला लेने का बहुत अच्छा अवसर प्राप्त हो गया था। वह अविलम्ब महानसिंह से जा मिला, साथ ही उसने कटोच के घमन्डचन्द के पौत्र ससाँरचन्द का सहयोग भी प्राप्त कर लिया। इन तीनों की सम्मिलित शक्ति से कन्हया मिसल को बुरी तरह पराजित होना पड़ा; जयसिंह का ज्येष्ठ पुत्र गुरबख्श सिंह भी इस युद्ध में मारा गया। इस दुहरी चोट से वृद्ध कन्हया सरदार का सारा जोश समाप्त हो

१७८४–९२ जयसिंह कन्हया की प्रमुखता

१७८४-८५: महान सिंह सुकेर-चुकिया का उदय:

कन्हया मिसल की पराजय १७८५-८६ ई० जस्सा बढ़ई पुनः प्रभाव में; काँगड़ा कटोच के ससांरचन्द को दिया जाना:

लिन 'शाहआलम, 'पृ-९३, ९४ तथा फारसी ग्रन्थ मिर्टित्-इ- अफनाबनुमा भी देखें।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गया और वह शान्त हो कर बैठ रहा। जस्सासिंह ने अपने पूर्व-अधिकृत क्षेत्रों पर पुनः स्वामित्व पाया, तथा संसारचन्द को काँगड़ा का किला दे दिया गया जिसके लिए उसके पिता व पितामह गहरी आकांक्षा रखते थे। अब महान सिंह पंजाब का सर्वाधिक शक्तिशाली व प्रभावशाली सरदार हो गया।

महान सिंह शक्ति के शिखर पर: ७८५-९२ महान सिंह की मृत्यु-१७९२:

जयसिंह के मृत पुत्र की विधवा ने महानसिंह के समक्ष यह प्रस्ताव रक्खा कि मृत गुरुबख्श सिंह की अल्पवयस्क कन्या तथा महान सिंह के एकमात्र पुत्र रणजीत सिंह (जन्म, सन्, १७८० ई०) को विवाह-सूत्र में बाँध कर दोनों परिवारों के सम्बन्धों को पक्का कर दिया जाय, और महान सिंह ने इस प्रस्ताव को प्रसन्नता से स्वीकार कर लिया। इसके पश्चात् महान सिंह ने गुजरात पर आक्रमण करने के इरादे से कूच किया जिसका वृद्ध भंगी सरदार गूजर सिंह सन् १७९१ ई० में मर गया; परन्तु इस घेरे के दौरान में वह स्वयम् बीमार पड़ गया, और अगले वर्ष अर्थात् सन् १७९२ ई० के प्रारम्भ में ही उसकी मृत्यु हो गयी। मृत्यु के समय इस महान नायक की आयु केवल सत्ताइस वर्ष ही थी।[1]

काबुल के सिंहासन पर शाह ज़माँ सन्, १७९३ ई० १७९३-९७

सन् १७९३ ई० में, तैमूरशाह की मृत्यु के पश्चात् काबुल के तख्त का वारिस हुआ शाह जमाँ; और ऐसा लगता है कि काबुल के इस सुल्तान के मस्तिष्क में भी भारत विजय तथा साम्राज्य-स्थापना के कीड़े कुलबुलाया करते थे। सन् १७९५ ई० के अन्त में वह काबुल से चलकर हसन अब्दाल तक आया, और वहीं से उसने एक सैन्य दल आगे भेज दिया, जिसने—कहा जाता है—रोहतास के किले पर पुनः अफ़गानों का झण्डा फहराया, परन्तु पश्चिम स्थित उसके क्षेत्रों की विद्रोहपूर्ण स्थिति ने उसे वापस लौटने के लिए विवश

१—पाण्डुलिपि में प्राप्त इतिहास व वृत्तान्त: देखिये फार्स्टर, 'ट्रवेल्स, '१:२८८; मरे, 'रणजीत सिंह' पृ० ४२, ४८, तथा मूर क्राफ्ट, ट्रवेल्स' १:१७० कन्हया मिसल के पतन तथा जस्सासिंह रामगढ़िया के पुनरुत्थान आदि के लिए सन् १७८२ ई० की तिथि की अपेक्षा सन् १७८५–८६ को अधिक मान्यता दी जाती है; १७८२ ई० की तिथि मरे द्वारा दी गयी कुछ तो इस आधार पर कि रुहेल खण्ड के विरुद्ध अभियान की घटना सन् १७८५ ई की है, जैसा कि फार्स्टर (ट्रवेल्स; १:३२६, नोट बताता है, यह भी माना जाता हैं कि जस्सासिंह उस समय निर्वासित था, और उसने भी इस अभिमान में भाग लिया था।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कर दिया, परन्तु उसकी इस साधारण सी प्रगति को उत्तरी भारत के राजाओं व सरदारों ने चिन्ता की दृष्टि से देखा, क्योंकि इस समय अंग्रेज और मराठे, दोनों ही दो ओर से उन्हें तंग कर रहे थे। इस दुर्रानी आक्रमण की अफ़वाह से प्रसन्न होकर रुहेलखण्ड का पराजित अपहरणकर्ता, गुलाम मुहम्मद ने सन् १७९५-९६ ई० में, अपनी साज़िश में दुर्रानी शाह का सहयोग पाने के ध्येय से पंजाब पार किया; उसके पीछे ही, अवध के वज़ीर आसफउद्दौला के भी आदमी चले; अंशतः इस ध्येय से कि वे शाह जमाँ को गुलाम मुहम्मद द्वारा प्रभावित होने से रोकें, परन्तु मुख्यतः काबुल के शाह को यह संदेश देने के लिए कि हिन्दुस्तान में इस्लाम के समस्त अनुयायी शाह का स्वागत मुक्तिदाता के रूप में करेंगे। शाह जमाँ कोई तीस हज़ार सैनिकों के साथ सन् १७९७ ई० के प्रारम्भ में ही लाहौर आ पहुँचा। उसने सिक्खों को अपनी ओर मिलाने, और उनको ऐसा मंत्र देने का प्रयास किया जिससे कि वे उसके द्वारा लादे गए गुलामी के बोझ को प्रसन्नता से सह लें। उसका यह प्रयास कुछ अंशों में सफल रहा, और कुछ सरदार उसके झण्डे तले आ गए परन्तु इसी बीच काबुल में उसके भाई महमूद की विद्रोही कार्यवाहियों ने उसे वापस लौटने के लिए विवश कर दिया। सम्भव था कि सिक्ख बिना संघर्ष के उसकी अधीनता स्वीकार कर लेते, परन्तु उसे इसका समय ही नहीं मिला कि वह देश की व्यवस्था के कार्य में कुछ प्रगति कर सके; उसके लौट जाने से सिक्खों को तो कम, परन्तु पराजित मराठों और पूर्ण सूचना प्राप्त न कर सकने वाले अंग्रेजों को बहुत आश्चर्य हुआ। अंग्रेजों तथा साथ ही अवध के वज़ीर को उन खतरों की चिन्ता सताने लगी जिनके लिए उनके अधिकार क्षेत्र के द्वार खुल गए थे।

अवध के वज़ीर तथा रुहेलों द्वारा आमंत्रण सन् १७९५-९६ ई० शाहजमाँ लाहौर में: सन् १७९७ ई०

शाह का द्वितीय लाहौर अभियान १७९८-९९ ई०

अंग्रेजों ने दोआब के अनूपशहर में एक सैनिक छावनी बनवाकर उसमें सेना की एक टुकड़ी रख दी, साथ ही शंका के वशीभूत होकर उन्होंने परशिया के शाह को अफ़गान क्षेत्रों पर हमले के लिए उत्तेजित करने के ध्येय से एक मिशन को तेहरान भी रवाना कर दिया। सन् १७९८ ई० में शाहज़माँ ने फिर हिन्दुस्तान की ओर क़दम बढ़ाए, अफ़गान सेना की ५००० सैनिकों की एक टुकड़ी पर,—जिसे आगे भेजा गया था, झेलम के पास आक्रमण कर दिया गया और वे बिखर गए, परन्तु शाहज़माँ

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ने बिना किसी विरोध के लाहौर में प्रवेश कर लिया, और फिर से सन्धि व धमकी का सम्मिलित चक्र चलाना प्रारम्भ कर दिया। उसका कसूर के एक पठान निजामुद्दीन खाँ से परिचय हुआ तो शाह जमाँ ने यह अनुभव किया कि वह एक बहुत ही योग्य नायक था, परन्तु उसकी स्वामिभक्ति सन्दिग्ध थी; इस पठान ने अब तक काफी प्रसिद्धि और सम्मान अर्जित कर लिया था। शाहजमाँ ने उसे ऐसे सिक्ख सरदारों पर नियन्त्रण रखने के लिए नियुक्त कर लिया जो प्रायः अलग अलग रहते थे, और ऐसे लोगों में युवक रणजीत सिंह भी सम्मिलित था। परन्तु निजामुद्दीन था नीतिकुशल व्यक्ति; उसे शाहजमाँ की शक्ति के स्थायित्व का विश्वास तो था ही नहीं, उसने सोचा कि सिक्खों के साथ भी सीमा से अधिक बिगाड़ कर लेना उचित नहीं होगा, क्योंकि अफ़गानों की अनुपस्थिति में सिक्खों का क्रोध उसी पर उतरेगा, अतः उसने स्वयम् को अति की सीमा तक जाने से सदैव रोका। कुछ छिटपुट लड़ाइयाँ जहाँ तहाँ हुई, जिनका होना न होना बराबर था; इस ओर शाहजमाँ कोई प्रगति कर पाता इसके पूर्व ही काबुल से खबर आई कि महमूद ने उसके विरुद्ध इरान के शाह की सहायता प्राप्त कर ली है, अतः इस अभागे शाह को पुनः पश्चिम की ओर लौटना पड़ा, और उसने सन् १७९९ ई० के प्रारम्भ में लाहौर छोड़ दिया। शाहजमाँ के इस द्वितीय आक्रमण के दौरान रणजीत सिंह के चरित्र का प्रभाव न केवल विभिन्न सिक्ख सरदारों पर बल्कि दुर्रानी शाह पर भी पड़ा। वह लाहौर पर अधिकार प्राप्त करना चाहता था जिसे शक्ति का केन्द्र समझा जाता था; झेलम बढ़ी हुई थी और दुर्रानी शाह अपने भारी तोपखाने को उस पार ले जाने में असमर्थ था, अतः उसने रणजीत सिंह को सन्देश भेजा कि उन तोपों को भिजवाने में मदद करने पर शाह उसकी इस सेवा को बहुत महत्व देगा, अत. रणजीत सिंह ने शाह के पीछे जितना सम्भव था, उतनी संख्या में तोपें भेज दी, और इसके बदले में रणजीत सिंह का इच्छित उद्देश्य पूर्ण हो गया, उसे पंजाब की राजधानी के सम्बन्ध में शाही प्रतिनिधि मान लिया गया। सिक्खों का इसके बाद का इतिहास उनके इस महान महाराजा के इर्द-गिर्द ही केन्द्रित है, परन्तु उत्तरी भारत में मराठा शक्ति का पुनरुत्थान, तथा रंगमंच पर सिक्खों का प्रकट होना, ये दोनों बातें इतना महत्व रखतीं हैं कि रणजीत सिंह की उपलब्धियों की कथा को कुछ देर तक रोक दिया जाना अनुचित न होगा।[1]

रणजीत सिंह प्रसिद्धि की राह पर

१—एलाफिन्सटन (काबुलः २:३०८) के अनुसार १७९५ ई० के अभियान के लिए शाहजमाँ को दिल्ली के एक भगोड़े, शरणागत शहाजादे ने आमंत्रित

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

महाद जी सिन्धिया की नेतृत्व-कुशलता के कारण उत्तर भारत में मराठों की शक्ति फिर से अपना महत्व स्थापित करने लगी, तथा उसके नियमित ब्रिगेडों ने उसके सैनिक प्रशासन को एक दृढ़ एवम् स्थायी आधार प्रदान किया। सन् १७८५ ई० में उसने आगरा पर अधिकार कर लिया और उसे मुग़ल सम्राट शाह आलम द्वारा मुग़ल साम्राज्य के सहायक संरक्षक के पद से सम्मानित किया गया। इसी समय उसने सिक्ख सरदारों के संघ से भी एक सन्धि की जिसमें यह निश्चय किया गया कि यमुना के दोनों ओर सिक्ख-मराठों की संयुक्त शक्ति से जिन क्षेत्रों को जीता जायगा, उनमें मराठे दो तिहाई लेंगे, तथा शेष पर खालसा का हक होगा[1]। उनकी यह संधि स्पष्टतः अवध राज्य के विरुद्ध थी जिसकी रक्षा के लिए सन्धि के आधार पर अंग्रेज विवश थे; इस सन्धि द्वारा सिक्ख व मराठे दिल्ली की शाही शक्ति पर भी प्रभाव डालकर उसे कुछ दृढ़ करना चाहते थे; परन्तु रुहेला सरदार गुलाम कादिर के कारण मराठों की योजना कुछ समय के लिए खटाई में पड़ गई। इस रुहेला सरदार ने सन् १७८५ ई० में अपने पिता ज़ाबित खाँ का वारिस बना; और एक वर्ष पश्चात् ही उसने मुग़ल बादशाह को व्यक्तिगतरूप से अपने अधिकार में रखने की चेष्टा आरम्भ की; वह बादशाह को एक न एक प्रकार से सताता रहा, और अन्त में सन् १७८८ ई० में उसने अपने अभागे बादशाह की आँखें

१७८५-९७

महादजी के नेतृत्व में उत्तरी भारत में मराठों की प्रभुता; सिक्ख मराठा सन्धि १७८५ ई०

गुलाम क़ादिर द्वारा शाह

किया था, टीपू सुल्तान ने प्रोत्साहित किया था। पराजित रुहेला सरदार गुलाम मुहम्मद तथा अवध के वज़ीर द्वारा सहायता की प्रार्थना का उल्लेख भवलपुर के पारिवारिक वृत्तान्तों में मिलता है; इसी स्त्रोत से यह भी पता लगता है कि शाहज़मां तथा सिन्धिया के बीच दूतों का आदान प्रदान भी हुआ था, और इन दूतों के आवागमन का मार्ग भवलपुर से होकर था। लखनऊ के आसफउद्दौला द्वारा भी दुर्रानी शाह से सहायता की प्रार्थना किए जाने के सन्देह को अंग्रेज़ी वृत्तान्तकारों ने लक्ष्य नहीं किया था, ऐसा प्रतीत होता है वो उन्हीं प्रयत्नों पर ज़ोर देते हैं जो उनके द्वारा संरक्षित आसफउद्दौला को उत्तरी आक्रामकों से बचाने के लिए अंग्रेज़ों द्वारा किए गये थे; जो भी हो, परन्तु भवलपुर के वृत्तान्त हर तरह से विश्वसनीय प्रतीत होते हैं।

१—ब्राउन, 'इण्डिया ट्रैक्ट्स' २:२९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आलम को अन्धा किया जाना १७८८ ई० दिल्ली पर सिन्धिया का अधिकार, व सिक्खों की उपेक्षा १७८८ ई०

निकाल ली; काल्पनिक खजाने की खोज में शाही महल को अच्छी तरह लूटा खसोटा, और अन्त में एक अज्ञात युवक को अकबर तथा औरंगजेब का उत्तराधिकारी घोषित किया। गुलाम कादिर के इन अन्याय पूर्ण कार्यों ने सिन्धिया की योजना के लिए सफलता की राह खोल दी, और जब वह विजेता के रूप में दिल्ली पहुँचा तो रुहेलों तथा अफ़गानों के अन्याय से पीड़ित दिल्ली ने उसका स्वागत ही किया। दिल्ली पर नियमित शासन के दौरान उसने सिक्खों को भी उपेक्षा की दृष्टि से देखना प्रारम्भ किया; सिक्खों को मराठों के सहयोगी के रूप में जो सम्मान अपेक्षित था, उससे वे वंचित ही रहे और सिक्खों ने अनुभव किया कि मराठे उन्हें अपना अधीनस्थ मानते थे तथा गुलामों से अधिक महत्व नहीं देते थे। जगाधरी के वृद्ध सरदार रायसिंह को कुछ समय के लिए दोआब के ज़िलों में कृषि भूमि देकर मराठों ने उसे अपना अनुगामी बना लिया, और दस ही वर्षों के बीच पटियाला, तथा सरहिन्द सूबे के अनेक राज्यों के विरुद्ध कर-वसूली के लिए तीन अभियान किए गए। पटियाला का प्रबन्ध एक अत्यन्त ही कुशल व्यक्ति, नानूमल के हाथ में था, जो मृत सरदार अमरसिंह का स्वामिभक्त हिन्दू दीवान था, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि पटियाला की रक्षा के लिए वह क्योरसिंहिया मिसल के सर्दार बघेल सिंह पर बहुत अधिक सीमा तक निर्भर था; इस समय बघेल सिंह के पास सवार सैनिकों की एक काफ़ी बड़ी सेना थी, जिसके व्यय के लिए वह दो संघर्षरत दलों का मध्यस्थ बन कर धन प्राप्त करता था या, पटियाला राज्यद्वारा निर्बल बिरादरों से कर वसूली के कार्य में सहायता पहुँचा कर अपना भाग लेता था। पटियाला व अन्य रियासतें मराठों तथा मुगलों द्वारा माँगे जाने वाले करों से विपत्ति में पड़ गई थीं, क्योंकि न तो वे धन देना चाहते थे, न उनसे संघर्ष ही करना चाहते थे।[1]

दौलतराव सिन्धिया के सबसे बड़े नियमित सैन्य दल का नेतृत्व डिब्वायन नामक एक फ्रान्सीसी हाथ में था, जिसके पश्चात् सन् १७९७ ई० में यह कार्यभार उसके ही देशवासी, जनरल पेरन ने संभाला। पद ग्रहण करने के कुछ ही समय पश्चात् उसे उत्तरी भारत में महाराजा सिंधिया के प्रतिनिधि रूप में नियुक्त कर दिया गया। उसकी महत्वाकांक्षाएँ उसके

उत्तरी भारत

१— पाण्डुलिपि—वृत्तान्त; देखिए फ्रैंकलिन 'शाहआलम', पृ० १७९-८५,

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

में पेरन सिंधिया का प्रतिनिधि सन् १७९७ ई.

शक्ति से कहीं अधिक ऊँची थीं, परन्तु उसके द्वारा निर्धारित योजनाएँ पूर्णतः क्रमबद्ध थी, यदि होलकर द्वारा सिन्धिया के प्रभाव को धक्का न दिया गया होता, तथा अंग्रेज साहसिक जार्ज टामस ने उसके मार्ग में टाँग अड़ा कर सफलता न प्राप्त कर ली होती तो वह अपनी या मराठों की सत्ता को लाहौर तक अवश्य विस्तृत कर देता।[1] इस साहसिक अंग्रेज जार्ज टामस का पालन पोषण समुद्र की छाती पर हुआ था, परन्तु अपनी साहसिक प्रवृत्ति तथा सदैव परिवर्तन की आकांक्षा से प्रेरित होकर वह सन् १७८१-८२ ई० में एक समुद्री युद्धक जलपोत से मद्रास के तट पर उतर गया और उस प्रेसिडेन्सी के छोटे मोटे राजाओं की सैनिक सेवा में प्रवेश कर गया। इसी प्रकार घूमते भटकते वह उत्तरी भारत जा पहुँचा, सन् १७८७ ई. में उसने विख्यात बेगम समरू[2]

सिन्धया व पेरन के मतों का होलकर व जार्ज टामस द्वारा विरोधः १७८७ ई७

१—[इस साहसिक की एक बहुत ही अच्छी जीवनी के लिए जी. फेर्स्टिग के 'स्टेंजर्ज विदिन द गेट्स' में ए फ्री लैन्स फ्राँम टिप्परेरी'—एडिनवरा व लन्दन, १९१४—देखिये—सम्पादक।]

२—[जन्म की दृष्टि से रहस्यमय, यह उल्लेखनीय स्त्री, कहा जाता है कि प्रारम्भ में दिल्ली में एक नर्तकी थी; उसने 'सोमरु' नामक एक यूरोपीय साहसिक से विवाह कर लिया जिसने बादशाह की सेवा द्वारा दिल्ली से कुछ ही मील दूर स्थित सरधना को जागीर के रूप में प्राप्त किया था। सोमरु'—जिसका वास्तविक नाम रेनहार्ड था—का पूर्व-जीवन अपराधों से पूर्ण था, और अन्य दुष्कृत्यों के अतिरिक्त सन् १७६३ ई० में पटना में अंग्रेज कैदियों की हत्या में मुख्यतः उसी का हाथ था। इस रेनहार्ड, या सोमरु की मृत्यु हो जाने के उपरान्त बेगम ने रियासत की बागडोर सँभाली, और उन कुख्यात हत्यारों के दल की मुखिया बनी जो रेनहार्ड की सेना के रूप में संगठित थी। असस्ये के युद्ध के पश्चात् बेगम ने अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार कर ली; सन् १७८१ में ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया, तथा दर्शकों ने आश्चर्य विस्फरित नेत्रों से उसे सार्वजनिक रूप से लार्ड लेक के आलिंगन पास में देखा। उसने अपने जीवन का अन्तिम समय पवित्रता से व्यतीत किया और मृत्यु के उपरान्त उसे सरधना के रोमन कैथलिक 'कैथेड्रल' में दफन किया गया जिसका निर्माण उसने ही कराया था। उस सम्बन्ध में देखिए वी. ए. स्मिथ, द्वारा सम्पादित तथा आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस द्वारा १९१५ में प्रकाशित स्लीमैन का 'टैम्बुल्स एण्ड रिकलेक्शन', अध्याय ७५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

की सेवा में प्रवेश किया और शीघ्र ही बेगम का कृपापात्र बन बैठा; परन्तु वहाँ छः वर्षों तक पड़े रहने के पश्चात् उसे कुछ असन्तोष हुआ और उसने अप्पा खण्डे राव की सेवा प्रवेश किया। अप्पा खण्डे राव सिन्धिया का एक सेना नायक था, और उसी के अधीन डिब्वायन ने पहले-पहले नियमित रेजिमेण्टों का संगठन किया था। सिन्धिया की ओर से ही उसने कर्नाल में सिक्खों के एक दल को पराजित किया, तथा मराठों की अन्य सेवायें भी कीं परन्तु देश की असंगठित, छिन्न भिन्न शक्तियों, तथा अराजकतापूर्ण स्थिति को देखकर उस जैसे साहसिक के हृदय में इस आकांक्षा का उत्पन्न होना अस्वाभाविक नहीं था कि वह किसी उपयुक्त स्थल पर अपनी व्यक्तिगत सत्ता स्थापित करे। उसकी दृष्टि ने हाँसी को सर्वाधिक उपयुक्त स्थल के रूप में ढूँढ निकाला; उसने कभी के महत्वपूर्ण, इस किले की ढहती हुई दीवारों की मरम्मत कराई, सैनिक एकत्रित किए, तोपें ढालीं, और तब निश्चित योजना के साथ वह अपने क्षेत्र विस्तार के लिये आगे बढ़ा। जनरल पेरन उसकी शक्ति और चालबाजी से पूरी तरह परिचित था, और सम्भवतः इसलिए भी उससे छेड़छाड़ नहीं करना चाहता था कि टामस को होलकर के प्रोत्साहन के साथ ही लकवा दादा तथा उन मराठों की सहायता भी प्राप्त थी जो इस सक्षम् और युद्ध कुशल फ्रान्सीसी सेनानायक के विरुद्ध अत्यधिक द्वेष भाव रखते थे।[1]

जार्ज टामस द्वारा हाँसी में स्वतन्त्र सत्ता-स्थापन, १७९८:

सन् १७९९ ई० में जार्ज टाँमस ने जीन्द के नगर को घेर लिया जो फूलकिया मिसल के भागसिंह के अधिकार में था। क्रोर सिंहिया सरदार बघेलसिंह तथा पटियाला के अशक्त राजा की वीरांगना अनुजा ने इस वृद्ध फूलकिया सरदार की सहायता करके नगर को बचा लिया, परन्तु जब उन्होंने हाँसी की ओर लौटते हुए जॉर्ज टाँमस पर आक्रमण किया तो उन्हें मुँह की खानी पड़ी। सन् १८०० ई० में टाँमस ने फतेहाबाद पर अधिकार कर लिया जो सन् १७८३ ई० के भयानक अकाल से ही वीरान पड़ा हुआ था, साथ ही उसने हरियाना क्षेत्र के लुटेरे भट्टियों को भी हराकर वहाँ कब्जा जमा लिया। पटियाला के राजा ने, जो भट्टियों को अपनी प्रजा समझता था—टाँमस के

सिक्खों के साथ संघर्ष : १७९९ ई०

१—फ्रैंकलिन 'लाइफ ऑव जार्ज टाँमस', पृ० १, ७९, १०७ आदि, तथा मेजर स्मिथ, 'एकाउण्ट ऑव रेगुलर कार्प्स इन द सरविस ऑव इण्डियन प्रिंसेज' पृ० ११८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विरुद्ध उन्हें सहायता भी दी, परन्तु उसका कुछ भी अहित न किया जा सका, और उसकी ख्याति बढ़ती गई। टॉमस की महत्वाकांक्षा का अगला लक्ष्य था पटियाला, जहाँ के राजा तथा उसकी बहन में कुछ अस्थायी मतभेद हो जाने से उसे पर्याप्त प्रोत्साहन मिला, परन्तु इसी समय डल्लेहवाला मिसल के वृद्ध नायक तारासिंह के बीच में कूद पड़ने से टॉमस को सतर्क होकर काम करना पड़ा, फिर भी उसे तारासिंह के ऊपर आंशिक सफलता प्राप्त हुई; मलेर कोटला के पठानों ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली, तथा रायकोट के मुसलमानों ने उसका स्वागत मुक्तिदाता के रूप में किया, ये मुसलमान कुछ समय से लुधियाना पर अपना अधिकार जमाए हुए थे मलेर कोटला के पठान तथा रायकोट के मुसलमान सिक्खों से बहुत ही द्वेष रखते थे, अतः टॉमस का नेतृत्व पाने पर वे फिर उत्साह से भर गए। इसी समय नानक जी की जाति के एक बेदी, साहिब सिंह ने ईश्वरीय प्रेरणा प्राप्त होने की घोषणा करके एक काफी बड़ी सेना एकत्रित की और लुधियाना पर आक्रमण करके जीतते हुए मलेर कोटला के नगर पर भी अधिकार कर लिया और स्वयम् को सिक्ख पैगम्बर का सच्चा प्रतिनिधि घोषित करते हुए उसने साहसिक अंग्रेज को अपना अनुगामी बनने का आदेश दिया, परन्तु साहिबसिंह अपने जातिभाइयों पर ही अधिक समय तक अपना प्रभाव बनाए न रख सका और उसे सतलज के पार जाने पर विवश होना पड़ा। साहिब सिंह बेदी के वहाँ से हट जाने पर भी जार्ज टॉमस की स्थिति में कोई महत्वपूर्ण सुधार न हो सका, क्योंकि उसकी आकांक्षा का आभास सभी सिक्ख सरदारों को मिल गया था, और उन्होंने उसके विरुद्ध एक संयुक्त मोर्चा बना लिया था। अपनी बची खुची शक्ति को बचाए रखने के लिए उसने वापस हाँसी लौट चलने का निर्णय किया और लुधियाना से रवाना हो गया। उसने एक बार पुनः शक्ति-विस्तार की इच्छा से हथियार सँभाले, और सफ़ीदोन नामक एक पुराने नगर पर हमला कर दिया जो जीन्द के सरदार के अधिकार में था; इस धावे में सफलता न मिल सकी और उसे पीछे हटना पड़ा परन्तु सिक्खों ने उस जर्जर स्थान को अरक्षणीय समझ कर खाली कर दिया, और जॉर्ज टॉमस ने उसे अपने अधिकार में ले लिया। उपलब्ध सूचनाओं के अनुसार इस समय उसके पास पूर्णतः प्रशिक्षित दस बटेलियन सेना तथा साठ तोपें थीं,

लुधियाना की ओर कूच : १८०० ई० साहिब सिंह बेदी द्वारा विरोध

टॉमस का हाँसी लौटना, तथा दिल्ली के निकट एफिटोन पर अधिकार करना :

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

और उसके अधिकार में जो क्षेत्र थे उनकी वार्षिक आय चार लाख पचास हजार रूपए थी; इन क्षेत्रों में से दो तिहाई को उसने युद्धों द्वारा प्राप्त किया था, तथा शेष एक तिहाई मराठों द्वारा दिया गया था। सिन्धिया के फ्रांसीसी कमाण्डर पेरन ने एकाधिक बार जॉर्ज टामस के पास शान्ति-प्रस्ताव भेजे, परन्तु उसे सन्दिग्ध दृष्टि से देखने वाले टॉमस ने मित्रतापूर्ण प्रस्तावों को स्वीकार नहीं किया। पेरन ने भी उसका सर कुचलने का दृढ़ निश्चय कर लिया। अब पेरन का सीधा सामना करने में असमर्थ टॉमस ने विवश होकर सिक्खों को अपने पक्ष में करने का प्रयास किया; उसने अपनी बातों से भी यह धारणा फैलाने का प्रयत्न किया कि पेरन के विरुद्ध उसने सिक्खों को अपनी ओर मिला लिया है, परन्तु सिक्ख वास्तव में उस व्यक्ति से छुटकारा पाना चाहते थे जो उनको नष्ट करने की या कम से कम उन्हें अपने अधीन करने की योजना बना रहा था। इधर पटियाला ने जब मराठों की सेवा में प्रवेश किया, तो फ्रेंच कमाण्डर पेरन की ओर से पटियाला के राजा को यह वचन भी दिया गया कि हरियाना में अमर सिंह ने जिन भागों पर अधिकार प्राप्त किया था, वे पटियाला को वापस कर दिए जायँगे। पेरन की ६० मील की दूरी पर स्थित सेनाओं को दो बार पराजित करने के पश्चात् अन्त में शक्ति क्षीण हो जाने पर टॉमस ने उसके समक्ष सन् १८०२ ई० में आत्मसमर्पण कर दिया, और स्वयम् ब्रिटिश प्रान्तों में चला गया, जहाँ उसी वर्ष उसकी मृत्यु भी हो गई।[1]

१८०१–०३

टॉमस-पेरन संघर्ष १८०१ ई०

पेरन को आत्म-समर्पण १८०२ ई०

सफलता पेरन के कदम चूमती जा रही थी। उसके एक लेफ्टिनेण्ट बोर्की ने सिन्धिया की ओर से कर वसूलने के लिए सिस-सतलज रियासतों की ओर

१—देखिये फ्रेंकालिन, 'जार्ज टॉमस' तथा मेजर स्मिथ, एकाउण्ट, 'पृ०२१; सिक्ख वृत्तान्त पटियाला के राजा की बहन के अनेक अभियानों का उल्लेख करते हैं; इनमें से एक अभियान उसने नाहन की पहाड़ी रियासत के विरुद्ध किया था; इसी रियासत से पटियाला ने पेरन के लेफ्टिनेण्ट बोर्की की सहायता से, भूलते हुए बागों से युक्त विजौर को छीना था।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रस्थान किया, और इधर पेरन भी अफ़गान पहाड़ियों तक विस्तृत एक राज्य का तथा सिन्धिया के नियन्त्रण से उसी प्रकार मुक्त होने का स्वप्न देखने लगा, जिस प्रकार की सिन्धिया मराठा संघ के प्रधान, पेशवा के अंकुश से मुक्त था।[1] इसी महत्वाकांक्षा के वशीभूत होकर उसने राजा रणजीत सिंह से सन्धिवार्ता चलाकर, सिन्ध की ओर एक संयुक्त अभियान करने, तथा लाहौर के दक्षिण स्थित क्षेत्रों को आपस में विभाजित कर लेने के प्रस्ताव रक्खे;[2] परन्तु उसकी योजनाएँ अधर में ही रह गईं क्योंकि उधर होलकर ने सिन्धिया की शक्ति को एक करारा धक्का दिया था; सिन्धिया होलकर की ओर से पहले ही सतर्क था, और पेरन को कई बार वापस लौट आने का आदेश भेजा था, पर पेरन टालता जा रहा था; जब अन्तिम आदेश पर भी पेरन हिचकिचाहट प्रकट करता रहा, तो अंग्रेजों से युद्ध रत सिन्धिया ने उसका दमन करके उसे दण्डित किया।

पेरन सरहिन्द में १८०२–३ ई० रणजीत सिंह से सन्धि

सिंधिया का पेरन पर अविश्वास

था तो उसमें सामर्थ्य ही नहीं थी, या उसने शक्तिशाली सैनिक कार्यवाहियों द्वारा अपने खोए अधिकार को प्राप्त करने का प्रयत्न ही नहीं किया; जो भी हो, परन्तु सिन्धिया द्वारा दण्डित किये जाने पर उसने संदेहग्रस्त मराठों की नजर बचाकर भागने में ही कुशल समझी और ब्रिटिश क्षेत्रों में चला गया। इस समय अंग्रेज़ मराठों से संघर्षरत थे; दिल्ली, लसवारी, असये तथा अरगाँव, इन चार केन्द्रों पर तलवारें चमक रहीं थीं और अंग्रेज़ों के विजय की ही आशा अधिक थी।[3]

१८०३

अंग्रेजों की ओर पेरन का पलायन् १८०३:

अठारहवीं सदी के प्रारम्भ में अंग्रेज़ी व्यापारियों की एक साधारण सी कम्पनी (टुकड़ी), बन्दा बैरागी के नेतृत्व में हुए आक्रमण के समय शाही दरबार में ही रोक ली गई, और उस व्यापारी वर्ग तथा उनकी शिशु-कम्पनी ने-जो कुछ

१—मालकम, (स्केच, पृ० १०६) का अनुमान है कि पेरन सरलता से सिक्खों को हराकर पंजाब का स्वामी बन सकता था।

२—इस सन्धि का उल्लेख सर डेविड आक्टरलोनी के नाम दिल्ली के रेज़िडेण्ट के ५ जुलाई १८१४ के पत्र में मिलता है।

३—देखिए मेजर स्मिथ, 'एकाउण्ट, 'पृ० ३१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सिक्खों से अंग्रेजों की प्रथम वार्ता:

व्यापारिक सुविधाओं के लिए प्रार्थना करने आये थे— सम्भवतः राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत उन 'सिंहों' उन खालसा के सिपाहियों को वीरतापूर्वक मृत्यु का आलिंगन करते हुए देखा था, परन्तु वे उस आन्तरिक प्रेरणा को शायद नहीं समझ पाए थे जिससे सिक्खों को जागृत करने का महान कार्य गुरु गोविन्द सिंह जी ने पूर्ण किया था, न वे कभी यही स्वप्न देख सके होंगे कि जिस धैर्य के साथ वे केवल थोड़ी सी व्यापारिक सुविधाओं की याचना कर रहे थे, वहीं एक विस्तृत व देशव्यापी साम्राज्य की स्थापना का आधार बन सकेगा।[1] इस घटना के लगभग चालीस वर्ष पश्चात्

२—देखिए ओर्मे, 'हिस्ट्री, '२:२२; तथा विल्सन द्वारा सम्पादित मिल, ३:३४। अंग्रेज़ व्यापारियों का यह मिशन दो वर्ष तक दिल्ली में रहा (१७१५ से १७१६ ई० तक); सच्चे देशभक्त तथा मिशन के सदस्य डा० हैमिल्टन के प्रयत्नों के फलस्वरूप इस व्यापारिक मिशन को मुग़ल दरबार की ओर से कलकत्ता के निकट तेईस गाँव तो मिले ही, उनके मालों को चुंगी से भी मुक्त कर दिया। इस दूसरी सुविधा ने भारत में अंग्रेजो इतिहास में एक निर्णायक मोड़ उत्पन्न किया क्योंकि इससे उनकी व्यापारिक भावनाओं को प्रोत्साहन मिला तथा ब्रिटिश प्रजा के महत्व में वृद्धि हुई। [यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि अंग्रेज़ व्यापारियों के समुद्री मार्ग से आने जाने वाले मालों की चुंगी के विषय में ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी तथा बंगाल के नबाब मीर कासिम के बीच सन् १७६३ ई० में खुला विरोध हो गया था; १७६४ई० के बूनर के युद्ध में मीर कासिम बुरी तरह पराजित हुआ था, तथा अगले वर्ष शान्ति के लिए जो सन्धि हुई थी, उसमें सम्राट शाहआलम ने बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा के दीवानी अधिकार ईस्ट इण्डिया कम्पनी को दे दिए थे, इसी वर्ष क्लाइव भी भारत लौटा था। इस दिवानी अधिकार के बदले में कम्पनी ने सम्राट को प्रतिवर्ष २६ लाख रुपया देने का वादा किया था, जब कि नवाब मीर कासिम के उत्तराधिकारी को सभी अधिकारों से वंचित करके पेंशन दे दी गयी थी—सम्पादक।]

गुरु गोबिन्द सिंह जी के 'ग्रंथ 'में यूरोपियनों का उल्लेख चार बार आता है और इनमें से अन्तिम उल्लेख एक अंग्रेज का है। पहला उल्लेख 'अकाल सूत 'में है जिसमें भारत में बसी जातियों में यूरोपियनों को भी सम्मिलित किया गया है; दूसरा और तीसरा उल्लेख चौबीस अवतारो के 'कल्कि' अध्यायों में है जिनमें यूरोपियनों के क्रमबद्ध तरीकों की प्रशंसा की गई है, तथा चौथा उल्लेख फारसी में लिखित 'हिकायतों' में है, जिसमें एक शाहज़ादी के हाथ के लिये एक

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अमीचन्द नामक व्यापारी ने उस क्रान्ति में महत्वपूर्ण भाग लिया जिसका समापन पलासी के युद्ध के रूप में हुआ; परन्तु साम्प्रदायिक सिक्ख-नानक जी का सांसारिक भक्त, जो धर्म को शरीर की बाहरी सज्जा के उपयोग में आने वाला वस्त्रमात्र मानता था, क्लाइव के झूठे वादों से ठगा गया। अंग्रेज़ विजेता की क्रूर तथा घृणापूर्ण मुस्कानों से बिंध जाने पर भी वह प्रार्थना करता रहा, और अन्त में उसे अपनी ही लोभवृत्ति के हाथों बलि चढ़ जाना पड़ा।[1] सन् १७८४ ई० में प्रगतिशील सिक्खों की प्रगति ने हेस्टिंग्ज़ को चौंका दिया, और उसने सम्भवतः यह विचार किया कि यदि दिल्ली के मुग़ल दरबार में कोई ब्रिटिश एजेन्ट रहे तो वह अवध के वजीर को सिक्खों से बचाए रखने में अवश्य सहायता पहुँचा सकता है;[2] परन्तु इस समय तक सिक्ख भय का कारण बनने के साथ ही दूसरी शक्तियों से भय खाना भी सीख चुके थे; कुछ समय पश्चात ही सिक्खों ने ब्रिटिश रेज़िडेण्ट को, मराठों के विरुद्ध, सुरक्षात्मक सन्धि में सम्मिलित होने का प्रस्ताव भेजा, साथ ही उन्होंने अपने तीस हज़ार सैनिकों की सेवाएँ स्वीकार करने का अनुरोध भी रेज़िडेण्ट से किया जो उस समय सिन्धिया की गतिविधियों पर नज़र रखने के लिए दिल्ली के निकट ही पड़े हुए थे।[3] उस समय तक अंग्रेज़ों को

क्लाइव और अमीचन्द १७५७ ई०

वारेन हेस्टिंग्ज द्वारा सिक्खों से अवध की रक्षा का प्रयास १७८४ ई०

मराठों के विरुद्ध सिक्खों द्वारा अंग्रेज़ों से सहायता-याचना १७८८ ई०

प्रारम्भ में सिक्खों के

यूरोपियन और एक अंग्रेज़ भी पहुँचते हैं, जिनके मुकाबले में कथा का नायक सफ़लता प्राप्त करता है।

१—अमीचन्द के सिक्ख होने की बात फार्स्टर ने लिखी है (ट्रवेल्स, १:३३७); वह दुःख और पश्चाताप से मर गया, ऐसा सन्देह प्रोफेसर विल्सन ने प्रकार किया है (मिल्स, 'इण्डिया, '३:१९२, नोट; १८४० में प्रकाशित)।

२—ब्राउन, 'टैक्ट्स, '२:२६, ३०; तथा फ्रैंकलिन, 'शाह आलम, 'पृ० ११५, ११६।

३—ग्रौबर, 'राइज़ एण्ड प्राग्रेस ऑव ब्रिटिश पावर इन इण्डिया', '२:२६, २७,। जिस सरदार ने यह सन्धिवार्ता चलाई थी, वह था यमुना पर स्थित रुदौर का डल्चा सिंह जो बाद में सिन्धिया की सेना में प्रविष्ट हो गया; देखिये फ्रेंकलीन, 'शाह आलम, 'पृ० ७८, नोट।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सम्बन्ध में अंग्रेजों के विचार

इस नयी तथा दूरस्थ जाति से बहुत हल्का सा परिचय था, और दो पीढ़ी पूर्व उन्होंने सिक्खों के जैसे वर्णन किए थे, उसे पढ़कर लाहौर के रक्षकों को हँसी आए बिना न रही होगी। कर्नल फ्रैंकलिन लिखता है, "क़द में सिक्ख लम्बे होते हैं···उनकी मुखमुद्रा भयानक तथा आँखें पैनी होती हैं··· वे फ़रात के अरबों से साम्य प्रकट करते हैं, परन्तु भाषा अफ़गानों की बोलते हैं उनकी कुल सैन्यसंख्या लगभग २,५०,००० है फिर भी एकता के अभाव के कारण उससे भयभीत नहीं होना चाहिए।"[1] पक्षपात रहित, तथा तीव्र निरीक्षण शक्ति से युक्त स्वतंत्र यात्री फार्स्टर ने उनकी सैनिक शक्ति के सम्बन्ध में कुछ ऐसे ही विचार प्रकट किए हैं, परन्तु उसके विवरण में विश्वास की मात्रा अधिक थी। उसने सिक्खों के वास्तविक चरित्र का जो विवरण प्रस्तुत किया, वह किसी भी पूर्ववर्ती अंग्रेज लेखक की अपेक्षा अधिक निश्चित तथा यथार्थ के अधिक निकट था। सन् १७८३ ई० में उसने कहा था कि कोई भी योग्य और कुशल सरदार इस असंगठित सिक्ख संघ के खण्डहरों का सर्वसत्ता सम्पन्न राजा बन सकता है, और अपने पड़ोसियों के लिए भय का कारण हो सकता है[2] और रणजीत सिंह के चरित्र तथा उसकी उपलब्धियों से उसका उक्त कथन पूर्णतः सिद्ध हो जाता है।

कर्नल फ्रैंकलिन

यात्री फार्स्टर

१—फ्रैंकलिन, 'शाह आलम, 'पृ०७५, ७७, ७८।

२—फार्स्टर, 'ट्रवेल्स' '२:३४०; तथा पृ०३२४ भी देखिये जहाँ वह कहता है कि सिक्खों ने पंजाब में धर्म के एक ठोस ढ़ाँचे का निर्माण किया था। इसके साथ ही अंग्रेज़ इतिहासकार रावर्टसन के कथन को भी उद्धृत करना आवश्यक प्रतीत होता है क्योंकि सन्

१८४८-४९ के सिक्ख अभियान में कर्तव्य परायणता के लिए सेना को धन्यवाद देते समय इंग्लैण्ड के हाउस ऑव कामन्स में उसके कथन को विशेष महत्व दिया गया था। राबर्टसन लिखता है कि अंगेजों की साहसपूर्ण व्यापारिक भावना तथा सिक्खों की स्वभावगत युद्ध-प्रियता इन दोनों में इतना विरोध है कि देर या सबेर वे एक दूसरे के विरुद्ध खुली शत्रुता से शायद ही बच सकते हैं। (डिसक्विज़िशन कन्सर्निंग ऐशेएट इण्डिया 'नोट ४, सेक्शन १, १७८९-९० में लिखित)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

दिल्ली का प्रसिद्ध युद्ध[1] ११ सितम्बर सन् १८०३ में लड़ा गया। इस युद्ध में मराठे पूरी तरह पराजित हुए और सिक्ख बिखर गए, परन्तु सिक्खों ने कुछ ही समय पश्चात ब्रिटिश कमाण्डर लार्ड लेक के पास, अंग्रेजों को अपनी सेवाएँ अर्पित करने, का प्रस्ताव भेजा। इस अवसर पर लेक ने जिन सरदारों की आकास्मिक सेवाओं को स्वीकार किया, या उनसे सहायक सन्धि की, उनमें से मुख्य थे—कैथल का भाईलाल सिंह, जिसने लार्ड लेक के युद्ध कौशल को अपनी आँखों से देखा था, तथा जीन्द का सरदार भाग सिंह, कुछ समय पश्चात् थानेसर का सरदार[2], भंगसिंह भी अंग्रेजों का सहायक हो गया। इसके दो माह के भीतर ही अंग्रेजों ने लसवारी के युद्ध में मराठों के विरुद्ध महत्वपूर्ण विजय प्राप्त की, और उत्तरी भारत में मराठा शक्ति का एक प्रकार से नामोनिशान ही मिट गया। अंग्रेजों ने अन्धे शाहआलम को अपनी विनम्रता तथा चापलूसी भरी बातों से प्रसन्न करके, उसके गर्व को अपने विनीत व्यवहार से सन्तुष्ट किया, और उसे शाही मर्यादा प्रदान की। चूँकि मुगल सम्राट के नाम का प्रभाव अब भी बहुत अधिक था, और अंग्रेजों की विनम्रता को देखते हुए जब सम्राट की ओर से अंग्रेज नायकों को महान तैमूरलंग के राज्य की तलवार का खिताब दिया गया तो उन स्वतंत्र परन्तु स्वामिभक्त सैनिकों की भावनाओं की काफी तुष्टि हो गई[3]।

दिल्ली में लार्ड लेक तथा सिक्खों में संघर्ष १८०३ सर-हिन्द के सिक्खों द्वारा अंग्रेजों की सहायता का प्रस्ताव

मराठों से शाह आलम की मुक्ति

दिल्ली के युद्ध में अंग्रजों के हाथों पराजित होने से मराठों की साख को जो धक्का पहुँचा था, उसके प्रतिकार के लिए इस समय तक सक्षम मराठा

१—[इस युद्ध की सही स्थिति के सम्बन्ध में जनरल ऑव द पंजाब हिस्टारिकल सोसाइटी, 'जिल्द ३ में सर एडवर्ड मैकलागन का लेख देखें; वैसे इस युद्ध का परिणाम यह हुआ कि अंग्रेज दिल्ली पर हावी हो गए, और उन्होंने शाह आलम की सुरक्षा का उत्तरदायित्व लिया-सम्मपादक।]

२—व्यक्तिगत खोज की स्मारिका-पाण्डुलिपि।

३—मिल, 'हिस्ट्री ऑव ब्रिटिश इण्डियाविल्सन,' द्वारा सम्पादित; ६:५१०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

होलकर के साथ अंग्रेजों के युद्ध, १८०४-५ ई०

नायक जसवन्त राव होलकर ने उत्तरी भारत पर आक्रमण करने का निश्चय कर लिया था; इसी समय कर्नल मॉन्सन की वापसी[1] ने उसे विजय तथा क्षेत्र विस्तार की आशाओं से भर दिया। उसने दिल्ली पर आक्रमण कर दिया तथा दोआब मराठा सैनिकों से भर उठा। मराठा सेना की इस घटा को देखकर अंग्रेजों के दिल दहल उठे, परन्तु सर डेविड आक्टरलोनी की प्रतिरक्षात्मक व्यवस्था इतनी दृढ़ थी कि मराठों को रञ्चमात्र भी सफलता न मिल सकी; और इसी समय एक अन्य सेनानायक कर्नल मान्सन द्वारा डीग नामक स्थान पर पीछे से किए गए आक्रमण ने इस दुर्जय मराठा नायक को राजपूताने की ओर भागने के लिए विवश कर दिया। जिस समय दिल्ली में अंग्रेज होलकर से लड़ रहे थे, ठीक उसी समय कर्नल बर्न के नेतृत्व में अंग्रेजी सेना की एक टुकड़ी सहारनपुर के निकट शामली में बुरी तरह से फँस गई थी, परन्तु अचानक कैथल के लाल सिंह और जीन्द के भागसिंह के सम्मिलित प्रयास से इस टुकड़ी को मुक्ति मिल गई[1]। इन्हीं दोनों सिक्ख सरदारों ने इकराव नामक एक मराठा नायक पर-जिसने दिल्ली तथा पानीपत के बीच, अपनी सत्ता जमा रक्खी थी—आक्रमण करके उसे मार डाला था जिसके लिए लॉर्ड लेक ने उन्हें हृदय से धन्यवाद दिया था; परन्तु सभी सिक्ख सरदारों ने अंग्रेजों का साथ दिया हो ऐसी बात भी नहीं थी। बूरिया के शेरसिंह

अधिकांश सिक्ख अंग्रेजों के साथ

४—[कर्नल मान्सन जुलाई १८०४ ई० में कर्नल मरे की टुकड़ियों से मिलने के लिए होलकर के क्षेत्र में जा धँसा था, परन्तु आवश्यक सामग्रियों की पूर्ति के अभाव में उसे लौटना पड़ा, और अपनी सेना का काफी बड़ा भाग खोते हुये अगस्त के अन्त तक आगरा पहुँचा; परन्तु उसने डीग में होलकर से आपना बदला ले लिया, क्योंकि दिल्ली में होलकर को पराजित करने का श्रेय उसी को मिला था – सम्पादक।]

१—पाण्डुलिपि स्मारिका; सन् १८०४ में इस सिक्ख सहायता, तथा १८०३ में दिल्ली में सिक्खों के विरोध को सम्भवतः अंग्रेजी पर्यवेक्षकों ने लक्ष्य नहीं किया था, या शायद अंग्रेज इतिहासकारों ने घटनाक्रम में इन घटनाओं को सम्मिलित करने के लायक नहीं समझा। (मिल, 'हिस्ट्री, '६।५०३, ५९२, प्रकाशन, १८४०ई०)

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ने कर्नल बर्न को घेर लिया था, और लाडवा के गुरदित्त सिंह के व्यवहार से तो ब्रिटिश जनरल इतना क्रुद्ध हो उठा था कि उसने उससे दोआब के सारे गाँव के साथ करनाल का नगर भी छीन लिया था[1]।

दिल्ली की बुरी पराजय के पश्चात होलकर तथा अमीर खाँ पुनः उत्तर की ओर बढ़े और यह अफवाह फैला दी कि वे सिक्खों के तथा सम्भवतः अफगानों के साथ भी, संयुक्त होने के लिए जा रहे थे; परन्तु जिस गति से लॉर्ड लेक ने उनका पीछा किया, उससे भयभीत होकर उन्हेंने अपना मार्ग बदल दिया, और पीछे की ओर लौट चले, या सम्भवतः भाग चले। वे दोनों कुछ समय तक पटियाला में अड़े रहे, और इस संक्षिप्त पड़ाव में, अपनी प्रवृत्ति के अनुसार वे पटियाला के अशक्त तथा असंतुलित मस्तिष्क वाले राजा, तथा उसकी पत्नी के बीच वर्तमान मतभेद से थोड़ा बहुत लाभ उठाने से नहीं चूके[2], परन्तु जब अंग्रेजी फौज करनाल के निकट तक आ पहुँची तो होलकर ने पुनः उत्तर की ओर हटना प्रारम्भ कर दिया, जहाँ सम्भव हो सका, उसने कर भी वसूला परन्तु सिस-सतलज क्षेत्र के किसी भी सिक्ख सरदार ने अंग्रेजों के विरुद्ध उसका साथ देना स्वीकार न किया। कुछ सूत्रों से ज्ञात होता है कि पंजाब में उसने कुछ सिक्खों को अपनी ओर मिलाने में अवश्य सफलता प्राप्त कर ली थी, परन्तु रणजीत सिंह ने स्वयम् को होलकर से दूर ही रक्खा। अन्त में होलकर ने जब स्वयम् अमृतसर में उससे मुलाकात की तो रणजीत सिंह ने अंग्रेजों के विरुद्ध उसकी सहायता करने का वचन इस शर्त पर दिया कि पहले कसूर के पठानों को दबाने में होलकर उसकी सहायता करे। अमीर खाँ चाहता था कि लोगों को यह विश्वास रहे कि वह दीन-ईमान के हिमायती मुसलमानों पर आक्रमण

होलकर का सतलज की ओर प्रयाण, सन् १८०५ ई० पटियाला में;

अमृतसर में रणजीतसिंह से वार्ता

१--कागज़ात तथा व्यक्तिगत खोजों की पाण्डुलिपि-स्मारिका।

२--अपने संस्मरणों में अमीर खाँ (मेम्वायस, 'पृ० २७६) कहता है कि राजा तथा रानी के मूर्खतापूर्ण मतभेदों के सम्बन्ध में होलकर ने उससे कहा था, "निश्चय ही ईश्वर ने इन दो कबूतरों को हमारे पास तोड़ने के लिये भेज दिया है; क्या तुम इनमें से एक का पक्ष लोगे, जब कि मैं दूसरे का पक्ष लेता हूँ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

करने में वह कोई भाग नहीं लेना चाहता था; अर्थात् पठानों के विरुद्ध वह खुलकर सामने नहीं आना चाहता था, ऐसी स्थिति में घबराए हुए जसवन्त राव होलकर के पास इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग ही नहीं रह गया कि वह शीघ्रता से पेशावर की ओर बढ़ने की बात करे, परन्तु लार्डलेक पूरी तैयारी से ब्यास नदी के तटों को घेरे खड़ा था; ब्रिटिश कमाण्डर की सन्धि की राजनैतिक शर्तें बहुत हल्की थीं, अतः होलकर ने भी सन्धि कर लेना ही उचित समझा और २४ सितम्बर सन् १८०५ ई० को शर्तनामा लिखा गया जिसके अनुसार होलकर को शान्तिपूर्वक मध्य भारत लौटने की अनुमति मिल गई[1]।

अंग्रेजों से सन्धि तथा दक्षिण की ओर गमन १८०५-०६ ई०

जिस समय लार्डलेक होलकर का पीछा करते हुए आगे बढ़ रहा था, लाल सिंह और भाग सिंह जिनके द्वारा की गई अंग्रेजों की सहायता का उल्लेख पीछे किया जा चुका है—उससे आ मिले, पटियाला में निर्बल और निष्क्रिय साहिब सिंह ने उसका स्वागत करते हुए अपने किले की सारी चाभियाँ उसके हवाले कर दिया तथा ब्रिटिश सरकार के प्रति पूर्ण भक्ति प्रकट की। भाग सिंह, रणजीत सिंह का मामा था, और इस दृष्टि से उसके द्वारा की गई अंग्रेजों की सेवाएँ कम महत्वपूर्ण नहीं थी कि उन्हीं के कारण अंग्रेजों ने उसके भांजे रणजीत सिंह के विरुद्ध उस समय कोई कार्यवाही न की और वह अंग्रेजों की अनुशासित बटेलियनों तथा प्रशिक्षित तोपखाने से संघर्ष में उलझने से बच गया। ऐसा विश्वास किया जाता है कि सिन्धिया और होलकर जैसे दुर्जय सेनानायकों को बुरी तरह पराजित करने वाले इस कुशल ब्रिटिश सेनानी की सैन्य सज्जा देखने के लिए रणजीत सिंह स्वयम् छद्मवेष में उसके कैम्प में गया था[2]। इस प्रकार वह दूरदर्शी सरदार यह भी अनुमान लगाना चाहता था कि उन लोगों के साथ अपने भाग्य की कड़ी जोड़ने में किसी स्थायी लाभ की सम्भावना थी अथवा नहीं, जो अंग्रेजों द्वारा भगोड़ों की स्थिति में पहुँचा दिए गए थे। जस्सा सिंह कलाल का वंशज फतेह सिंह अहलूवालिया जो भविष्य के महाराजा का अन्तरंग

सरहिन्द के सिक्खों के साथ अंग्रेजों के मित्रता पूर्ण सम्बन्ध १८०३-०८ ई०

१—देखिये अमीर खाँ, (मेम्वायर्स, पृ० २७५, २८५; तथा मरे, 'रणजीत सिंह, 'पृ० ५१।

—२मूर क्राफ्ट, 'ट्रवेल्स' १:१०२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

था—इस वार्ता का माध्यम बना। शीघ्र ही इन दोनों सरदारों – फतेह सिंह अहलूवालिया तथा रणजीत सिंह–ने आपसी वार्ता करके एक औपचारिक सम्बन्ध स्थापित किया जिसके द्वारा यह निश्चय किया गया कि जसवन्तराव होलकर को अमृतसर से वापस लौटने के लिए विवश किया जायगा और इसके बदले में जब तक इन दोनों सरदारों व अंग्रेजों के सम्बन्ध मित्रतापूर्ण रहेंगे तब तक ब्रिटिश सरकार कभी भी उनके क्षेत्रों पर किसी आक्रामक या अपहरण की कार्यवाही की योजना नहीं बनाएगी[1]। लॉर्डलेक ने कटोच के संसार चन्द के साथ भी मित्रतापूर्ण पत्रव्यवहार आरम्भ किया जो इस समय रणजीत सिंह की नीति का अनुकरण करते हुए पहाड़ी सरदारों को अधीनता में लाने के प्रयास में लगा हुआ था, परन्तु अंग्रेजों के साथ उसके किसी भी प्रकार के सम्बन्ध न बन सके और ब्रिटिश कमाण्डर अम्बाला तथा करनाल की सड़कों से होते हुए अपने प्रान्तों को लौट आया[2]।

रणजीत सिंह तथा फतेह सिंह में–औपचारिक सम्बन्ध १८०६ कटोच के संसार चन्द व अंग्रेजों में पत्र व्यवहार

सरहिन्द के सिक्ख सरदारों में से अनेक के साथ ब्रिटिश कमाण्डर लेक के सम्बन्ध अत्यन्त मित्रतापूर्ण थे, तथा समय समय पर उनके द्वारा की गई अंग्रेजों की सेवाएँ पर्याप्त महत्वपूर्ण सिद्ध हुईं थीं। दिल्ली के, होलकर के साथ लड़े गए महत्वपूर्ण युद्ध के तुरन्त पश्चात् ही जीन्द के भागसिंह को उसकी सेवाओं के पुरस्कार स्वरूप उसे दिल्ली नगर के उस इलाके को जागीर के रूप में सौंप दिया गया जिस पर उसका अधिकार पहले से ही था, और सन् १८०४ ई० में एक और जागीर उसे तथा उसके मित्र, कैथल के लालसिंह को संयुक्त रूप से दे दी गई। सन् १८०६ ई० में पुनः इन दोनों सरदारों को जीवन पर्यन्त के

१८०४ ई०

१—परिशिष्ट २३।

२—पब्लिक रिकार्डों से ज्ञात होता है कि कटोच में कुछ समय तक एक समाचार लेखक को रक्खा गया था, और संसारचन्द के साथ हुए पत्र व्यवहारों से आभास मिलता है कि रणजीतसिंह कटोच के राजा की मौलिक श्रेष्ठता को कभी भी नहीं भूल सकता था, और न अंग्रेज ही इस भावना से मुक्त थे कि कटोच लाहौर के नियंत्रण से मुक्त एवम् स्वतंत्र था।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

लार्ड लेक का सरहिन्द के सिक्ख सरदारों को अंग्रेजों के अधीन मानना: परन्तु सम्बन्ध अघोषित तथा अलिखित

के लिए ग्यारह हजार पौण्ड की वार्षिक आय का इलाका दिया गया और ऐसा भी सुना गया कि लॉर्डलेक उन्हीं शर्तों पर इन सरदारों को हाँसी और हिसार के जिलों को भी देने की इच्छा कर रहा था, परन्तु भागसिंह और लालसिंह ने इन रेगिस्तानी जिलों को लाभहीन समझ कर उन्हें लेना स्वीकार नहीं किया। अन्य छोटे मोटे सरदारों को भी उनकी सेवाओं के अनुसार पुरस्कार दिए गए, और उन सभी को यह आश्वासन दिया गया कि ब्रिटिश हस्तक्षेप के समय जो भूभाग उनके अधिकार में थे उन पर उनका स्वामित्व यथावत् बना रहेगा, और ऐसे क्षेत्रों के लिए उन्हें कोई भी कर नहीं देना पड़ेगा। ये घोषणाएँ तथा व्यवस्थाएँ उस समय की गई जब कि लार्ड वेलेजली की नीति पर खुली आलोचना की जा रही थी; अब नई व्यवस्थाओं के अनुसार अंग्रेजों के राज्य को यमुना के इसी पार तक सीमित रखने का निश्चय किया गया, जयपुर के साथ हुई औपचारिक सन्धि को भंग कर दिया गया; भारत की अंग्रेजी सरकार तथा भरतपुर के पारस्परिक सम्बन्धों को सन्दिग्धावस्था में ही छोड़ दिया गया, और यद्यपि सरहिन्द के सिक्ख सरदारों को इस सम्बन्ध में कोई आभास नहीं मिल पाया—परन्तु जहाँ तक सहायक सन्धि से प्राप्य लाभों का सम्बन्ध था, नई अंग्रेजी नीति के अनुसार अंग्रेजों ने सिक्खों से अपनी ओर से सारे सम्बन्ध समाप्त कर लिए।[1]

रणजीतसिंह का उदय

अब हमें पुनः रणजीत सिंह की ओर लौटना चाहिए जिसने धीरे धीरे प्रगति करते हुए सिक्ख सर्दारों व सिक्ख जनता में अपनी अच्छी खासी धाक जमा ली थी। रणजीतसिंह ने अपनी स्थिति को सुदृढ़तर बनाने के लिए सर्वप्रथम लक्ष्य बनाया- लाहौर पर अधिकार—जो इस समय भंगी सर्दारों के अधिकार में था और वे उसकी रक्षा करने में भी समर्थ नहीं थे। शाहजमाँ को वापस लौटे कुछ समय बीता, इसके पूर्व ही शक्ति और नीति के मिश्रित साधनों के प्रयोग द्वारा रणजीतसिंह लाहौर

१—जीन्द, कैथल तथा अन्य स्थानों के ग्राण्ट, तथा आश्वासन सम्बन्धी अनेक कागजात अब भी कई परिवारों में सुरक्षित रक्खे हुए हैं और विभिन्न अंग्रेजी कागजात से पता लगता है कि सर जान मॉलकम, लॉडलेक तथा सर डेविड आक्टरलोनी जीन्द के भागसिंह पर सदैव कृपादृष्टि रखते थे और उसके साथ उदारता व सज्जनता का व्यवहार करते थे।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

को अपने अधिकार में ले लिया जिसका उल्लेख हम पीछे ही कर चुके हैं। रणजीत सिंह ने लाहौर को ही अपनी राजधानी बनाया, और कन्हया मिसलवालों की सहायता प्राप्त करके उसने भंगियों को पूर्णत. अपने अधीन कर लिया, यद्यपि उन्हें कसूर के पठान सरदार निजामुद्दीन खाँ की भी सहायता प्राप्त थी। भंगियों की पतनोन्मुख शक्ति को छिन्न भिन्न करने के उपरान्त रणजीत सिंह ने उनके सहायक, कसूर के पठानों को दण्ड देने का निश्चय किया; सन् १८०१-२ ई० में उसके इस निश्चय की भनक पाने पर निजामुद्दीन खाँ अपने अदूरदर्शी कार्य पर पछताने लगा; यद्यपि उसके गढ़ काफी मजबूत थे और उन पर सरलता से अधिकार करना सम्भव नहीं था, परन्तु उसने रणजीत सिंह की अधीनता स्वीकार कर लेना ही उचित समझा, और उसने पठानों की एक चुनिन्दा टुकड़ी उसके पास भेज दी। इस विजय के पश्चात् रणजीत सिंह तरन तारन के पवित्र सरोवर में स्नान करने के लिए गया, जहाँ उसकी मुलाकात फतेसिंह अहलूवालिया से हुई, और रणजीत सिंह ने उसकी ओर मित्रता का हाथ बढ़ाया, जैसा कि पीछे भी कहा जा चुका है; उन दोनों ने भाई चारे की भावना को और दृढ़ करने के लिए उन्होंने अपनी पगड़ियाँ बदलीं।

१७९९-१८०४

कसूर के पठानों द्वारा अधीनता स्वीकार किया जाना; ८०१-२:

इस समय अमृतसर नगर भंगियों के ही एक मृत सरदार की विधवा के हाथ में था। इन दोनों मित्रों ने सन् १८०२ ई० मे इस नगर को अपने अधिकार में ले लिया, और उनके सम्मिलित प्रयत्न स्वरूप प्राप्त लाभों के विभाजन में यह नगर सिक्ख देश की दूसरी राजधानी-लाहौर-के स्वामी, रणजीत सिंह के हिस्से में पड़ा। सन् १८०३ ई० में कटोच के संसार चन्द ने, अपने अधिकार क्षेत्र को विस्तृत करने की योजना के कार्यान्वयन के रूप में जलन्धर के उर्वर दोआब के कुछ भागों पर अधिकार करने के लिए दो प्रयास किए, परन्तु रणजीत सिंह तथा फ़तहसिंह द्वारा उसके दोनों प्रयास विफल कर दिए गए। सन् १८०४ ई० में संसारचन्द ने पुनः अपनी पहाड़ियों से निकल कर होशियारपुर तथा बजवारा पर अधिकार कर लिया; परन्तु रणजीत सिंह के आगमन ने उसे पुनः पीछे लौटने पर विवश कर दिया। इसके कुछ ही समय

अमृतसर पर अधिकार सन् १८०२ ई०

संसार चन्द के विफल प्रयास १८०३-०४

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पश्चात् वह गुरखों से जा उलझा, जो एक नई जाति के रूप में हिमालय के पूरे क्षेत्र में अपने साम्राज्य की स्थापना का लक्ष्य लेकर उधर आ निकले थे।[1]

शाहज़माँ को पंजाब से वापस लौटे एक वर्ष से कुछ ही अधिक समय व्यतीत हुआ था कि उसके भाई शाह महमूद ने—जो एकाधिक बार शाहज़माँ के विरुद्ध बगावत करके असफल हो चुका था—उसे पदच्युत तो कर ही दिया, उसकी आँखें भी निकाल लीं, परन्तु महमूद भी टिक न पाया। सन् १८०३ ई० में तीसरे भाई शाहशुजा उसे पदच्युत करके स्वयम् गद्दी पर अधिकार जमा बैठा। इन अनवरत क्रान्तिकारी परिवर्तनों से अहमदशाह द्वारा स्थापित विशाल

१८०३-०५

शाह ज़मां, महमूद द्वारा

१—देखिए कैप्टन मरे, 'रणजीत सिंह', पृ० ५१, ५५।

कैप्टन मरे अम्बाला का, तथा कैप्टन वेड, लुधियाना का पॉलिटिकल एजेण्ट था। इन दोनों ने ही रणजीत सिंह के जीवन पर पुस्तकें लिखीं। मरे द्वारा लिखित जीवनी, कुछ संशोधनों तथा टिप्पणियों के साथ सन् १८३४ ई० में मि. थॉबी प्रिंसेप द्वारा प्रकाशित की गई जो उस समय भारत सरकार के सेक्रेटरी थे। प्रस्तुत इतिहास के लेखक ने कैप्टन वेड की रिपोर्ट या जीवन-गाथा को नहीं देखा है, परन्तु उसे विश्वास है कि वेड की रिपोर्ट में व्यक्तिगत संस्मरणों तथा जबानी सूचनाओं का, कैप्टेन मरे की अपेक्षा कहीं अधिक उपयोग किया गया है, इन दोनों ने ही तत्कालीन इंगलिश कागजात पर उचित ध्यान नहीं दिया है जब कि वे तत्कालीन मतों तथा घटनाओं का वास्तविक प्रतिनिधित्व करते हैं और जो विशेषतः सन् १८०३ ई० में पर्याप्त संख्या में उपलब्ध थे। ये दोनों ही जीवन-कथाएँ मुख्यतः आधारित हैं उन बुद्धिमान भारतीय विवरणों पर, जिन्हें विभिन्न ब्रिटिश संस्थाओं की आवश्यकतानुसार लिखा गया था, इनमें से मुख्य है बुता शाह नामक एक मुसलमान द्वारा लिखित वृतान्त, तथा सोहन लाल द्वारा लिखित वृत्तान्त। कैप्टन वेड ने काफी गहराई तक व्यक्तिगत जाँच की थी, और वह जनता तथा उन आफिसरों का ऋणी है जिन्होंने रणजीत सिंह के कार्यों की पूर्ण गाथा को अपने मस्तिष्क में सुरक्षित रख छोड़ा था।

प्रस्तुत अध्ययाय का अन्तिम भाग, तथा आगे अध्याय ६ तथा ७ लेखक द्वारा ब्रिटिश सरकार के लिये लिखे गए सिक्ख ब्रिटिश सम्बन्धों के वर्णन का अनुसरण करते हैं, और चूँकि वह वर्णन अप्रकाशित था, तथा, लेखक द्वारा ही लिखा गया था, अतः लेखक ने उसका उपयोग करने में कोई अनौचित्य नहीं देखा।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पदच्युत; दुर्रानी साम्राज्य की निर्बलता; दुर्रानी ज़िलों व सूबों के सूबेदारों के विरुद्ध शस्त्र परीक्षा में विलम्ब नहीं किया। साम्राज्य पतन की ओर तेज़ी से बढ़ने लगा। नीतिकुशल रणजीतसिंह सतर्क दृष्टि से काबुल की घटनाओं पर नज़र रक्खे हुए था; उचित अवसर देखते ही उसने

पंजाब के दक्षिण पश्चिम में रणजीत सिंह की प्रगति १८०५ ई०

सन् १८०४-५ ई० में उसने पश्चिम की ओर कूच कर दिया; झंग तथा साहीवाल के मुसलमानों ने, संघर्ष से बचने के लिए उसके पास अत्यन्त विनीत भाव से अनेक उपहार भेजे। मुल्तान के सूबेदार मुज़फ्फर खाँ ने भी उपहार स्वरूप काफ़ी क़ीमती वस्तुएँ भेजकर सिक्ख-आक्रमण से अपनी रक्षा की। रणजीत सिंह ने इस अभियान में अपने प्रभाव का अनुभव कर लिया, और वह संतुष्ट होकर लाहौर वापस लौट आया; राजधानी में बड़ी धूमधाम से होली का मादक पर्व मनाया गया, और वह गंगास्नान के ध्येय से हरद्वार की ओर चल पड़ा; इस यात्रा में उसका एक लक्ष्य और भी था—पंजाब के पूर्व में क्षेत्रविस्तार की सम्भावनाओं का व्यक्तिगत निरीक्षण करना। सन् १८०५ ई० में उसने पश्चिम क्षेत्र का एक बार फिर दौरा किया तथा झंग के मुसलमानों पर पहले से ही लगाए गए नियंत्रक बन्धनों को कुछ और कड़ा कर दिया;

होलकर के आगमन पर रणजीत सिंह की वापसी, सन् १८०५ ई०

परन्तु उसी समय होलकर तथा अमीर खाँ के सम्मिलित रूप से पंजाब की ओर बढ़ने का समाचार पाकर उसने पहले तो फतेहसिंह को पीछे भेजा, और फिर स्वयम् भी सिक्खों के पवित्र नगर-अमृतसर-लौट गया। ख़तरा सिर पर था, और उसे टालना सम्भव प्रतीत नहीं हो रहा था, क्योंकि प्रबल मराठों का एक ख्याति प्राप्त सेनानायक एक अफ़गान दल को कुचलने के लिए कृतसंकल्प था, साथ ही अंग्रेजों की एक पूर्णतः अनुशासित अमृतसर के निकट तक आ पहुँची थी जिसके लक्ष्य और संसाधन अज्ञात थे।[1]

ऊक्त परिस्थितियों की गम्भीरता तथा बचाव के लिए सिक्खों द्वारा एक वृहद गुरुमत या औपचारिक समिति का आयोजन किया गया, परन्तु सिक्खों

१—देखिए एलफिन्सटन लिखित, 'हिस्ट्री ऑव काबुल', २:३२५, तथा मेरे 'रणजीतसिंह' पृ० ५६, ५७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के लक्ष्य इतने व्यक्तिगत हो चले थे कि इस समिति में इने गिने सिक्ख सरदार ही उपस्थित हुए। गत वर्षों में किसानों तथा गड़ेरियों जैसे मूढ़ सिक्ख वर्गों तक को लक्ष्य की एकता तथा ईश्वर की कृपा के प्रति जिस विश्वास ने अत्याचारों का सामना करने के लिए प्रेरित किया था; जिस धार्मिक प्रेरणा से सिक्खों ने अहमदशाह अब्दाली जैसे दुर्दान्त शत्रु के दाँत खट्टे किए थे, वे सब भावनाएँ उनके वंशजों के हृदय से लुप्त सी हो गई थीं। सिक्खों की इस नई पीढ़ी ने अपने बल व प्रभाव में तो अवश्य वृद्धि की, परन्तु उनके पूर्ववर्ती आदर्शों ने उनका साथ छोड़ दिया, नव प्राप्त स्वतंत्रता ने उनके संगठन को दृढ़ता प्रदान करने के स्थान पर, निर्बल बनाने का प्रयास आरम्भ कर दिया। असभ्य तथा मूर्ख व्यक्तियों के समान कानून के बन्धनों का महत्व उन्होंने कभी स्वीकार ही नहीं किया; उच्छृंखलता बढ़ने लगी, और निजी स्वार्थों तथा हितों ने उन्हें आपस में ही लड़ाना प्रारम्भ कर दिया था। लक्ष्य की एकता से भ्रष्ट होकर उन्होंने व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं की प्राप्ति हेतु प्रयास करना प्रारम्भ कर दिया था, तथा

सिक्ख गुरुमत्त का आयोजन

१८०५

सांसारिक सुखों का भोग ही उनका अन्तिम लक्ष्य बन गया था। गुरु नानक जी द्वारा स्थापित तथा गोबिन्द सिंह जी द्वारा अनुप्राणित सिक्ख धर्म की सच्ची भावना सरदारों व सैनिकों के हृदय से लुप्त होकर पुनः किसानों की झोपड़ियों में पहुँच गई थी जहाँ उसे एक नया रूप दिया जा रहा था; एक इतने विस्तृत राज्य के लिए मिसलों के रूप में संघबद्धता तथा मिश्रित स्वतन्त्रता की अक्रमबद्ध नीति पूर्णतः अनुपयुक्त थी; ऐसी व्यवस्था के जो अधिकतम लक्ष्य हो सकते थे, उन्हें प्राप्त किया जा चुका था, और मिसल तो वास्तव में अब तक अस्तित्व हीन हो चले थे। जन समुदाय अपने अपने गाँवों की स्वतन्त्रता में ही सन्तुष्ट थे, न उनसे किसी प्रकार का कर लिया जाता था, न वे देश व जाति के प्रति स्वयम् को किसी कर्त्तव्य से बँधा हुआ अनुभव ही करते थे। छोटे-मोटे सरदार जिनके लिए धर्म का महत्व कुछ परम्परागत प्रथाओं तथा रीतियों तक ही सीमित रह गया था—लूट पाट की खुली स्वतन्त्रता तथा अपनी अस्थाई शक्ति में वृद्धि के लिए आपस में ही संघर्ष के पूरे हिमायती थे। उनमें से कुछ अंग्रेजों की ओर जा मिलने के इच्छुक थे, तो कुछ अन्य अपने भाग्य को मराठा-शक्ति के साथ जोड़ देना चाहते थे; परन्तु एक बात में इन सरदारों में से अधिकांश

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

रणजीत सिंह के प्रति सिक्खों में द्वेष:

की भावनाएँ एक सी थीं – प्रायः सबके सब रणजीत सिंह की बढ़ती हुई शक्ति से उसके प्रति द्वेष-भाव रखते थे, जब कि वही एक अकेला सिक्ख सर्दार था जो विदेशी आक्रमकों को मार भगाने की इच्छा रखता था; उसकी आकांक्षा थी एक सैनिक राजतन्त्र स्थापित करने की जिसके अधीन रह कर, तथा संगठित रूप में सिक्ख जाति अपनी विजय पताका दूर दूर तक फहराए, और उसकी इस आकांक्षा की पूर्ति में सबसे बड़े बाधक ये विदेशी ही थे। वास्तव में, रणजीत सिंह एक निश्चित योजना के अनुसार सिक्ख शक्ति के विकेन्द्रित कणों एवम् बिखरे हुए तत्वों को संगठित करने के लिए यथेष्ट परिश्रम कर रहा था। जिस प्रकार गुरु गोबिन्दसिंह जी ने क्षेत्र के लोगों को एक जाति का रूप दिया था, और गुरु नानक जी द्वारा स्थापित संस्थाओं को एक निश्चित लक्ष्य देकर अनुप्राणित किया था, उसी प्रकार रणजीत सिंह भी सिक्खों की बढ़ती हुई, परन्तु लक्ष्य-भ्रष्ट शक्ति की एक पूर्ण-व्यवस्थित राज्य या संघ के रूप में मोड़ने के लिए प्रयत्नशील था।[1]

होलकर बिना संघर्ष के वापस लौट गया, और जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, रणजीत सिंह ने अंग्रेजों के साथ एक अस्पष्ट, परन्तु मित्रतापूर्ण सन्धि की। इसी बर्ष के लगभग अन्त में नाभा के सरदार तथा पटियाला के राजा के बीच कुछ विवाद उठ खड़े हुए जिनके निपटारे के लिए रणजीत सिंह को आमंत्रित किया गया। इस विवाद के निपटारे के लिए प्रारम्भ में अंग्रेजों से मध्यस्थता के लिए प्रार्थना की गई थी, परन्तु उन्होंने उनके बीच में पड़ने से इनकार कर दिया था; सम्भवतः उनके इनकार का कारण यह था कि उन्हें ऊपर से, यमुना नदी के पार के क्षेत्रों के मामलों में हस्तक्षेप न करने के लिये पुनः सख्त आदेश प्राप्त हुए थे। रणजीत सिंह ने सतलज नदी को पार किया और उस पतनोन्मुख मुस्लिम परिवार से लुधियाना को छीन लिया जो अपनी रक्षा के लिए, गत पृष्ठों में उल्लिखित अंग्रेज साहसिक जार्ज टामस पर निर्भर थे। उसने लुधियाना का अधिकार अपने चाचा – जीन्द के भागसिंह—को सौंप दिया और चूँकि नाभा के सरदार

सरहिन्द के सिक्खों के कार्यों में रणजीत सिंह का हस्तक्षेप १८०६; लुधियाना पर अधिकार १८०६ ई,

१—मॉलकम ('स्केच', पृ० १०६, १०७) लार्ड लेक के अभियान के समय सिक्खों में व्याप्त अनैक्य भावना का उल्लेख करता है। देखिए, कैप्टेन मरे, 'रणजीत सिंह' पृ० ५७, ५८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जसवन्त सिंह—जिसकी सहायता के लिए वह गया था— तथा पटियाला के राजा साहिब सिंह—जिसको नियंत्रित करने का निश्चय उसने किया था— दोनों में ही आपसी वार्ता द्वारा रणजीत सिंह की युद्धात्मक प्रवृत्ति से मुक्ति पाने में प्रसन्नता प्रकट की थी, अतः उपहार स्वरूप पटियाला के राजा से एक तोप और कुछ धन पाकर वह वापस लौटा और अशंतः वह ज्वालामुखी के उद्गार के प्रति अन्धविश्वास पूर्ण भक्ति की भावना से, उसे अपनी श्रद्धा समर्पित करने के लिए काँगड़ा की ओर बढ़ गया[1], इस प्रकार इस अभियान में उसे लुधियाना की प्राप्ति के अतिरिक्त कुछ और हासिल न हो सका।

पटियाला से उपहार प्राप्ति

अपनी विस्तारवादी महत्वाकांक्षा के कारण इस समय कटोच के राजा संसार चन्द इस समय पहाड़ी गुरखों के साथ भयानक संघर्ष में उलझ गया था। गुरखे सभी पहाड़ी सरदारों के क्षेत्रों में उपद्रव मचाए हुए थे और गढ़वाल में तो वे कर भी वसूल रहे थे; संसार चन्द यदि नीति से काम लेता तो इस स्थिति का लाभ उठा कर सभी प्राचीन पहाड़ी सरदारों को इन उपद्रवकारी गुरखों के विरुद्ध संघबद्ध करने में सफलता प्राप्त कर सकता था, परन्तु सर्वोच्च शक्ति प्राप्त करने की आकांक्षा से उसने कहलूर या बिलासपुर के सरदार पर आक्रमण करके उसे इतना विवश कर दिया था कि उसे भागकर नेपाल के सेनानायक की शरण लेनी पड़ी। परिस्थिति की अनुकूलता को लक्ष्य कर अमरसिंह थापा प्रसन्नतापूर्वक संसारचन्द द्वारा अधिकृत क्षेत्र की ओर बढ़ा; संसारचन्द की आक्रामक कार्यवाहियों में उसके एकमात्र सहयोगी, नालागढ़ के नौजवान सरदार ने गुरखों की बाढ़ को रोकने का प्रयास किया, परन्तु वह असफल रहा, और

संसार चन्द तथा गुरखों में संघर्ष १८०५, संसारचन्द व उसके सहयोगी का सतलज के पार भागना १८०५, गुरखों द्वारा कांगडा पर घेरा

१—देखिये मरे, 'रणजीत सिंह,' पृ० ५९ ६०। सरकार को लिखे गये सर मेटकाफ़ के जून १७, १८०९ के पत्र से प्रकट होता है कि उस समय रणजीत सिंह मालवा-सिक्खों के विवाद हस्तक्षेप करने की सामर्थ्य नहीं रखता था; तथा सर डेविड आक्टरलोनी के १४ फरवरी व ७ मार्च सन् १८०९ ई०तथा ३० जुलाई १८११ के पत्रों से ज्ञात होता है कि जहाँ तक सुरक्षात्मक सन्धि के लाभों का प्रश्न था, सन् १८०५ ई० में पटियाला तथा अन्य सरदारों के साथ हुई सन्धियाँ वास्तव में अंग्रेज़ों की ओर से समाप्त की जा चुकी थीं।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गुरखे सन् १८०५ ई० के अन्त तक यमुना तथा सतलज नदियों के बीच अपनी सत्ता स्थापित करने में सफल हो गए। इसी वर्ष अमरसिंह थापा ने सतलज नदी को पार करके काँगड़ा पर भी घेरा डाल दिया। जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, महान सिक्ख सरदार रणजीत सिंह भी इस समय ज्वालामुखी के उद्गार के दर्शन हेतु कांगड़ा आया हुआ था; पहले तो गुरखों के घेरे को तोड़ने के लिए संसार चन्द ने रणजीतसिंह से सहायता की याचना करने का विचार किया, परन्तु बाद में किले की मजबूती तथा दुर्भेद्यता से हतोत्साह होकर उसने उस विचार को त्याग कर अपने ही साधनों व शक्ति पर विश्वास रखने का निश्चय किया, और इन नए शत्रुओं को कांगड़ा से मार भगाने के लिए कोई भी व्यवस्था न की जा सकी[1]।

सन् १८०७ ई० में प्रथम बार कसूर की ओर रणजीतसिंह का ध्यान आकर्षित हुआ जहाँ पुनः विद्रोह की लपटें उठने लगी थी; यद्यपि कसूर का प्रतिभाशाली सरदार निज़ामुद्दीन मर चुका था, फिर भी पठानों की यह स्वतंत्रता रणजीत सिंह को सदैव खटकती रही थी; कसूर से पठानों को निष्क्रमित करने की आकांक्षा का सम्भवतः एक धार्मिक कारण भी था—कसूर को पुराणों में लाहौर का प्राचीन प्रतिद्वन्दी माना गया है, और पठान तो विधर्मी थे ही; ऐसी स्थिति में पठानों की एक विस्तृत बस्ती पर अधिकार करके सम्भवतः अपने पुण्य और यश में वृद्धि करने की भावना ने भी रणजीतसिंह को प्रेरित किया था, और यह

१८०७

रणजीत सिंह द्वारा कसूर के पठानों को मार भगाया जाना, १८०७ ई०

२—मरे, 'रणजीत सिंह, 'पृ० ६०, तथा मूरक्राफ्ट, 'ट्रवेल्स, '१:१२७: ससार चन्द अपनी पराजय के दो कारण समझता था—अपनी पुरानी राजपूत सेना की बर्खास्तगी, तथा भगोड़े तथा शरणार्थी रुहेला सरदार गुलाम मुहम्मद की बात मानकर अफ़गानों को सेना में नौकरी देना।

गुरखों ने यमुना नदी को पार किया था नाहन के सरदार को उसकी प्रजा के विरुद्ध सहायता देने का बहाना लेकर, और फिर एक राजपूत राजकुमार के विरुद्ध दूसरे को सहायता देने के बहाने उन्होंने सतलज को भी पार कर लिया था; और ये बहाने इतिहास के प्रारम्भ से ही उभरती हुई तथा संगठित नई जातियों के मार्ग को सरल बनाते रहे हैं; पबलिक रिकार्डों से ज्ञात होता है कि सतलज नदी को सन् १८०५ ई० में पार किया गया था।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अस्वाभाविक भी नहीं था। इस स्थान पर घेरा डालने में रणजीतसिंह का साथ जोधसिंह रामगढ़िया ने भी दिया जो रणजीतसिंह के पिता के पुराने मित्र, जस्सा बढ़ई का पुत्र था। पठानों की शक्ति तो कम नहीं थी, परन्तु एकता के अभाव ने पठान सरदार कुतुबुद्दीन की प्रतिरोधात्मक शक्ति को निर्बल बना दिया, और एकमाह बीतते-बीतते उसने आत्मसमर्पण कर देने में ही अपनी कुशल समझी; और उसके निर्वाह के लिए सतलज के दूसरे किनारे की ओर एक भूभाग उसे दे दिया गया। कसूर लेने के पश्चात्

मुल्तान पर आंशिक सफलता

रणजीतसिंह मुल्तान की ओर बढ़ा, और दीवारों से घिरे उस नगर पर अधिकार करने में सफल हो गया, परन्तु किले में रणजीतसिंह को कड़े प्रतिरोध का सामना करना पड़ा, और उसके सभी प्रयास विफल होते रहे, और वह सम्भवतः बहुत प्रसन्न हुआ जब किले की ओर से उपहार में कुछ धन लेकर चले जाने की प्रार्थना द्वारा उसे इज्ज़त के साथ लौटने का अवसर प्राप्त हो गया, फिर भी वह अपनी असफलता को स्वीकार करने के लिए तैयार न था, और बहावलपुर के नबाब के साथ उस समय किए गए पत्रव्यवहार में अवसरों को सदैव अपने अनुकूल बनाने में तत्पर रणजीतसिंह ने उस को यही विश्वास दिलाने का प्रयास किया कि केवल नवाब के प्रति सम्मान की भावना से ही उसने उक्त अफ़गान सरदार— कुतुबुद्दीन को उसके किले का स्वामी बना रहने दिया था।[1]

इसी वर्ष, अर्थात् सन् १८०७ ई० में ही रणजीत सिंह ने एक योग्य क्षत्रिय को अपनी सेवा में नियुक्त किया जिसका नाम मोहकम चन्द था जिसने अपने प्रति किए गये विश्वास का प्रतिफल देने में सदैव तत्पर रहा। अपने दल में इस

मोहकम चन्द की नियुक्ति १८०७ दूसरी बार सतलज के पार

नए व्यक्ति को सम्मिलित करने के पश्चात् वह पटियाला के राजा तथा उसकी षड़यंत्रकारिणी पत्नी के मध्य पहले से ही वर्तमान विवादों में हस्तक्षेप करने के लिए पटियाला की ओर बढ़ा जिसमें उसे भी उतना ही लाभ दिखाई पड़ा जितना पहले मराठा सरदार होलकर और उसके सहयोगी सरदार अमीर खाँ को दिखाई पड़ा था।

१—मरे 'रणजीत सिंह' पृ० ६०, ६१; तथा बहावलपुर के नबाब-खानदान के पाण्डुलिपि के रूप में सुरक्षित संस्मरण।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पटियाला का राजा निर्बल था, और रानी अपने अवयस्क पुत्र के लिए एक पर्याप्त आय की जागीर की व्यवस्था के लिए शक्ति-प्रयोग पर भी उतारू थी। उसने रणजीतसिंह से अपने पक्ष के समर्थन की प्रार्थना की, और इसके बदले में ही उसने उसे हीरों का एक हार तथा ..... उपहार के रूप में देने का वचन दिया। रणजीतसिंह ने उसकी प्रार्थना स्वीकार करते हुए सतलज नदी को पार किया और पटियाला के राजा को इस बात के लिए विवश किया कि रानी के उस पुत्र के निर्वाह के लिए कम से कम पचास हज़ार रुपयों की वार्षिक आय की जागीर दी जाय। इस निर्णय के कार्यान्वयन के पश्चात् उसने अम्बाला तथा पहाड़ियों के मध्य स्थित नरायनगढ़ पर आक्रमण कर दिया जिस पर एक राजपूत परिवार के अधिकार में था। यहाँ रणजीत सिंह को राजपूतों के सबल प्रतिरोध के सामने, काफी, हानि उठाकर एक बार पीछे लौट जाने पर भी विवश होना पड़ा, परन्तु अन्त में उसे विजय प्राप्त हुई और गढ़ उसके हाथ में आ गया। उल्लेहवाला मिसल के वृद्ध सरदार तारा सिंह भी इस अवसर पर लाहौर की सेना का साथ दिया था, परन्तु नरायनगढ़ के युद्ध में उसकी मृत्यु हो गई, और जलन्धर दोआब में जो भूभाग तारा सिंह के अधिकार में थे, उन पर अपना स्वामित्व तथापि करने के ध्येय से रणजीत सिंह तीव्रगति से जलन्धर की ओर बढ़ा। वृद्ध उल्लेहवाला सरदार की विधवा, पटियाला के राजा की बहन के समान ही अटूट साहस व अप्रतिम सौर्य से युक्त एक वीर नारी थी; कहा जाता है कि अपनी भूमि व पति के सम्मान की रक्षा के लिए अपने वस्त्रों को समेट कर हाथ में तलवार लेकर राहोन के गढ़ की ध्वस्तप्राय प्राचीरों पर लड़ते हुए, उसने अपने शौर्य से रणजीत सिंह के सैनिकों को चकित कर दिया था।[1]

१८०८-९

नरायणगढ़ विजय उल्लेहवाला सरदार की मृत्यु, तथा उसके क्षेत्र पर अधिकार करने के लिए रणजीत सिंह की वापसी

१—देखिये मरे, रणजीत सिंह, पृ० ६१, ६३; पटियाला के विवाद में हस्तक्षेप के समय रानी की ओर से रणजीत सिंह को उपहार के रूप में जो तोप मिली थी, उसका नाम था करीं खाँ, और सन् १८४५-४६ के युद्ध में यह अंग्रेज़ों के हाथ लगी थी।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सन् १८०८ ई० के प्रारम्भ में उत्तरी पंजाब के अनेक स्थानों को उनके स्वतन्त्र सरदारों से ले लिया गया और उन्हें नवस्थापित लाहोर राज्य में मिला लिया गया, साथ ही सतलज नदी के बाँए तट के जिन भागों पर रणजीत सिंह अपना स्वामित्व स्थापित कर चुका था उनकी समुचित व्यवस्था के लिए रणजीत सिंह ने अपने कुशल क्षत्रिय अनुचर मोहकम चन्द को नियुक्त कर दिया परन्तु रणजीत सिंह की सरगर्मी तथा उसकी योजनाबद्ध आक्रामक कार्यवाहियों एवम् विजयों को देख-कर सरहिन्द के सिक्ख सरदारों में आतंक की एक लहर सी दौड़ गई और उनके कान खड़े हो गए। उन्होंने स्वयम् को भी सुरक्षित न समझते हुए एक प्रतिनिधि मण्डल को ब्रिटिश संरक्षण की प्राप्ति के लिए सन् १८०८ ई० के मार्च में दिल्ली रवाना कर दिया; उस योजना में भाग लेने वाले मुख्य लोग थे—जीन्द और कैथल के सरदार तथा पटियाला का दीवान। यद्यपि ब्रिटिश सरकार के विशेष आदेश के अनुसार अंग्रेजों ने सिक्ख-सतलज रियासतों के सरदारों के साथ की गई पूर्ववर्ती सन्धियों को रद कर दिया था, और आगे भी यमुना पार के मामलों में उन्हें हस्तक्षेप करने की अनुमति नहीं दी गई थी, परन्तु अंग्रेजों के साथ इस भूभाग के सरदारों के पारस्परिक सम्बन्ध अभी भी, पूर्णतः भंग नहीं हुए थे। अभी इसी वर्ष भारत के गवर्नर जनरल द्वारा करनाल के निकट स्थित कुञ्जपुर के मुसलमान खान, सरदार को यह आश्वासन दिया गया था कि अपनी पैतृक सम्पत्ति तथा उत्तराधिकार में प्राप्त अपने भूभाग की सुरक्षा के सम्बन्ध में उसे आशंकित होने की कोई आवश्यकता नहीं[1]। इसी समय सिकरी के एक सिक्ख सरदार ने अंग्रेजों की कुछ ऐसी सेवाएँ की थीं जिनके लिए उसे पेंशन का अधिकारी माना गया था[2], अस्तु; जब उक्त सिक्ख रियासतों के प्रतिनिधि, पूर्व-सम्बन्धों का सहारा लेकर दिल्ली पहुँचे तो उन्हें अंग्रेज अधि-कारियों की ओर से, आशा के विपरीत, कोई ठोस आश्वासन न मिल सके, यद्यपि उनको इन बात का विश्वास दिलाने का प्रयास किया गया कि यदि उन

सरहिन्द के सिक्खों की सत-र्कता, तथा ब्रिटिश संरक्षण की प्रार्थना-१८०८ ई० परन्तु पूर्ण आश्वासन न पाने पर रण-जीत सिंह के पक्ष में आना:

१—१८ जनवरी १८०८ के एक पत्रानुसार।

२—दिल्ली के एजेण्ट को अम्बाला के मि० क्लर्क द्वारा लिखा गया पत्र—१९ मई १८३७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पर संकट आया तो आवश्यकता पड़ने पर अंग्रेज उनकी सहायता करने का प्रयास करेंगे। प्रतिनिधि मण्डल के सदस्यों ने अनुभव किया कि अंग्रेजों का यह कोरा आश्वासन उन्हें होने वाली बरबादी से नहीं बचा सकेगा, इधर रणजीत सिंह ने भी दूत भेजकर उनके भय को दूर करने का प्रयत्न करते हुए उन्हें अपने खेमे में सम्मिलित होने के लिए आमान्त्रित किया था, अतः वे लाहौर के सर्वमान्य राजा के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने का अच्छा अवसर पाकर प्रसन्नतापूर्वक दिल्ली से चल पड़े।[1]

१८०८-९

सन् १८०५ ई० में[2] जिस गवर्नर जनरल ने यमुना पार के सरदारों व राजाओं से हुई सन्धियों को भंग या महत्वहीन कर दिया था तथा यमुना नदी को ही ब्रिटिश राज्य की पश्चिमोत्तर सीमा घोषित किया था उसे विभिन्न जन जातियों की उन आशाओं व भयपूर्ण आशंकाओं के सम्बन्ध में कोई व्यक्तिगत जानकारी नहीं थी जिनसे तीन चार वर्षों की अवधि में हुए दुर्रानी सुल्तान शाह जमाँ के आक्रमणों के फलस्वरूप लोगों के मन को एक न एक प्रकार की प्रेरणा व उत्तेजना मिलती रही थी, और यदि सरहिन्द के सिक्खों ने उस समय लॉर्ड कॉर्नवालिस से संरक्षण व सुरक्षा के लिए प्रार्थना की होती तो उसने बिना टालमटोल के सीधे इनकार कर दिया होता, परन्तु निकट भविष्य में ही जिन विदेशी खतरों के उत्पन्न होने का आभास अंग्रेजों को मिला उनका सामना करने की तैयारी के रूप में १८०८ ई० के प्रारम्भ में दिए गए निर्बल आश्वासनों को ठोस रूप दिए जाने की आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा। अबतक यह बात एक पक्की खबर के रूप में फैल चुकी थी कि फ्रांसीसी, तुर्की तथा ईरान के बादशाहों ने संयुक्त

भारत में अंग्रेजों के विरुद्ध फ्रेंच योजना के कारण सिक्खों के प्रति उदासीनता की नीतिका त्याग सन् १८०८-९ ई०

१—देखिये मरे, 'रणजीत सिंह, पृ० ६४,६५।

२—[सन् १८०५ में लॉर्ड कार्नवालिस को गवर्नर जनरल के रूप में भेजते समय डाइरेक्टरों ने उसे सख्त आदेश दिये थे कि वह शान्ति,तथा मितव्यायिता की नीति का पालन करे, क्योंकि पूर्ववर्ती गवर्नर जनरल—लार्ड वेलेज़ली के समय में लड़े गये युद्धों के व्यय ने उन्हें सतंक कर दिया था; परन्तु कार्नवालिस, भारत पहुँचने के दो माह पश्चात् ही मर गया, और सर जी बार्लो अस्थाई गवर्नर जनरल बना—सम्पादक]

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

रूप से भारत विजय का निश्चय किया था, और उनकी योजनाएँ प्रगति में थीं, अतः नए गवर्नर जनरल को केवल यमुना पार के ही नहीं, बल्कि सिन्ध पार के सरदारों को भी सहायक सन्धियों द्वारा ब्रिटिश शक्ति से आबद्ध करने का प्रयास करना पड़ा[1]। अंग्रेजों को ऐसा विश्वास हुआ कि फ्रांस के महान नायक, नेपोलियन की इच्छा अथवा योजना अफगानशाह के साथ सुरक्षात्मक, तथा सिक्खों के साथ नियोजक सन्धि करने की थी अतः मि० एलफिन्सटन को शाहशुजा के पास गवर्नर जनरल के प्रतिनिधि के रूप में भेजा गया और सितम्बर १८०८ ई० में उक्त शक्तियों के विरुद्ध एक संयुक्त मोर्चे की योजना में सिक्खों को भी सम्मिलित करने के ध्येय से मि० मेटकाफ़ को राजा रणजीत सिंह के दरबार में भेजा गया[2]। गवर्नर जनरल ने जीन्द, कैथल व पटियाला को भी यह आश्वासन दे दिया गया कि अब वे ब्रिटिश सरकार के अधीनस्थ राजाओं की श्रेणी में सम्मिलित कर लिए गए हैं और उनकी रक्षा का भार सरकार पर है, रणजीत सिंह की प्रगति के फलस्वरूप अंग्रेजो के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध रखनेवाली कुछ रियासतें जो रणजीत सिंह के सैनिक तन्त्र तथा अंग्रेजों के शान्तिपूर्ण शासन के मध्य स्थिति थीं[3], खतरा महसूस करने लगीं थीं अतः शान्ति बनाए रखने के लिए उनसे भी सन्धि करना आवश्यक एवम् नीतिपूर्ण समझा गया।

सरहिन्द के सिक्ख संरक्षित, रणजीत सिंह से सन्धि का प्रयास

रणजीत सिंह ने कसूर के नव-विजित नगर में गवर्नर जनरल के विशेष दूत मि० मेटकॉफ का स्वागत किया, परन्तु उन्होंने इस मुलाकात में जैसा भाव प्रकट

१—मि आँबर ('राइज़ एण्ड प्रॉग्रेस आँव द ब्रिटिश पावर इन इण्डिया '२:४६१) इस त्रिसूत्रीय सन्धि का उल्लेख करता है जिसके द्वारा सारे हिन्दुस्तान को विवश करने की योजना बनाई थी [गवर्नर जनरल के रूप में लॉर्ड मिन्टो सन् १८०७ ई० में भारत आया —सम्पादक।]

२—[उसी समय, और उसी लक्ष्य से कर्नल मॉलकम को भी ईरान भेजा गया था, जिसने १८०९ में ईरान के शाह से सन्धि की, जिससे उस क्षेत्र में फ्रान्सीसियों के हस्तक्षेप का भय जाता रहा—सम्पादक।]

३—भारत सरकार की ओर से सर डेविड, आक्टरलोनी को लिखा गया निर्देश-पत्र, १४ नवम्बर १८०८; देखिये मरे, 'रणजीत सिंह, 'पृ० ६५, ६६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

किया उससे यही आभास मिलता था कि वे स्वयम् को पूरी सिक्ख जाति का प्रतिनिधि समझते थे तथा लाहौर का अधिकारी होंने के नाते सरहिन्द पर अपने प्रभुत्व का अतिरिक्त दावा भी करते थे। रणजीत सिंह ने सम्भवतः यह लक्ष्य नहीं किया कि फ्रांसीसी आक्रमण स्वयम् उसके हितों के लिए भी हानिकारक सिद्ध हो सकता था;

१८०८-९

सन्धि प्रस्ताव के साथ मेटकाफ लाहौर में १८०८-९ में रणजीत सिंह द्वारा उपेक्षा, तथा सतलज के पार तृतीय अभियान:

सम्भाव्यः फ्रांसीसी आक्रमण की अपेक्षा, शायद वह अपनी सीमाओं को घेरे हुए पड़ोसी, किन्तु विदेशी शक्ति की ओर से अधिक आशंकित था; मेटकाँफ के सन्धि प्रस्ताव थी जिससे वह उत्तेजित हो गया।[1] उसने अचानक सन्धि-वार्ता को भंग कर दिया, और सतलज नदी के दक्षिण ओर अपना तीसरा अभियान किया। इस अभियान के दौरान रणजीत सिंह ने फरीदकोट पर अधिकार कर लिया, मालेर, कोटला तथा थानेसर से कर वसूल किया, तथा पटियाला के राजा के साथ भाई चारे का सम्बन्ध स्थापित करते हुए उससे सन्धि की। खुली शत्रुता के प्रतीक उसके इन कार्यों के प्रति गवर्नर जनरल के विशेष दूत ने अपना गम्भीर असन्तोष प्रकट किया, और सतलज के बाँए तट पर उस समय तक अड़ा रहा जब तक कि रणजीत सिंह ने पुनः नदी को पार नहीं कर लिया।[2]

ब्रिटिश सेनाओं का सतलज की ओर

लाहौर के राजा की इन कार्यवाहियों ने सम्भवतः अभी तक अनिश्चय की अवस्था में पड़े गवर्नर जनरल को, मि. मेटकाँफ की सन्धिवार्ता में सहायता पहुँचाने तथा रणजीत सिंह को बलपूर्वक सतलज के उत्तरी तट तक ही सीमित रखने के लिए, सतलज की ओर अंग्रेजी सेना की कुछ टुकड़ियों को भेजने का

१—मूरक्राफ्ट ('ट्रवेल्स, '१:९४) का कथन है कि उसकी स्वतंत्रता में अंग्रेजों द्वारा, अवरोध उत्पन्न करने वाली शर्त रणजीत सिंह को इतनी नागवार गुजरी कि उसने तलवार की नोक पर ही ऐसी निन्दनीय शर्त का बदला चुकाने का निश्चय कर लिया था। उसको खुले युद्ध से विरत करने वाले व्यक्तियों में विख्यात फकीर उज़ीजुदीन भी एक था।

२ मग्रे 'रणजीत सिंह, 'पृ० ६६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ओर प्रयाण १८०८–९ ई०

निश्चय करना पड़ा।[1] इन टुकड़ियों को सतलज की ओर भेजते समय यह आशा भी प्रकट की गई कि इससे भविष्य में होने वाली किन्हीं युद्धात्मक कार्यवाहियों में तो सहायता मिलेगी ही, साथ ही जिस ब्रिटिश सीमा पर एक सैनिक राज्य का अधिपति अपनी शत्रुतापूर्ण कार्यवाहियों के कारण चिन्ता का विषय बना हुआ है, वह सीमा ब्रिटिश सेना तथा सन्धिवद्ध सरदारों की संयुक्त शक्ति से पूर्णतः सुरक्षित हो जायगी। इस निश्चय के अनुसार सन् १८०९ ई० के जनवरी मास में सर डेविड आक्टरलोनी के सेनापतीत्व में अंग्रेजी टुकड़ियों के एक दल ने यमुना नदी को पार किया और आगे बढ़ी। जनरल आक्टरलोनी बूटिया तथा पटियाला के मार्ग से लुधियाना की ओर चल पड़ा; एक को छोड़ सरहिन्द के सभी सिक्ख सरदारों ने उसका हार्दिक स्वागत किया-अपवाद उपस्थित करने वाला यह व्यक्ति था जोध सिंह कलसिया क्रोर सिंहिया मिसल का नाम मात्र का नेता। आगे बढ़ते रहने के साथ सर आक्टरलोनी के मन में यह संशय भी बना रहा कि कहीं रणजीत सिंह ब्रिटिश सरकार से खुले युद्ध की घोषणा करके ब्रिटिश सेना पर अप्रत्याशित आक्रमण न कर दे। इस बीच रणजीत सिंह ने अपनी ओर से कई दूत ब्रिटिश जनरल के पास भेजे और दुहरी सन्धिवार्ता का रास्ता साफ करने का प्रयास किया; इन दूतों से

१८०८

मुलाकात करने के पश्चात् सर आक्टरलोनी ने थोड़ा पीछे हटकर पड़ाव मार दिया, कि यदि रणजीत सिंह आक्रमण कर ही दे, तो अंग्रेजी सेना आवश्यक युद्ध सामग्री व रसद के भण्डारों के निकट ही रहें, और किसी अभाव का सामना न करना पड़े।[2]

एक ब्रिटिश सेना के इतने निकट आ पहुँचने पर रणजीत सिंह को खुली लड़ाई की आशंका ने कुछ असमंजस में डाल दिया, परन्तु ब्रिटिश राजदूत मि.

१—सर डेविड आक्टरलोनी को सरकार के आदेशपत्र—१४ नवम्बर तथा २९ दिसम्बर सन् १८०८ ई०।

२—सरकार को लिखा गया सर डेविड आक्टरलोनी के २० जनवरी, तथा ४, ९, व १४ फरवरी सन् १८०९ ई० के पत्र, तथा सरकार द्वारा सर डेविड आक्टरलोनी को भेजा गया १३ मार्च सन् १८०९ का पत्र। सर डेविड आक्टरलोनी ने जो कार्य किए. उस पर सरकार ने अपनी स्वीकृति नहीं दी जिससे दुखित होकर उसने त्यागपत्र दे दिया था। (सर डेविड आक्टरलोनी द्वारा सरकार को भेजा गया १९ अप्रैल १८०९ का पत्र)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मेटकॉफ ने सन्धि की जो शर्तें उसके सामने प्रस्तुत की थीं, उन्हें स्वीकार करने में वह अब भी टालमटोल करता रहा; और इस टाल-मटोल की सफाई में उसने यह शिकायत की कि मेटकॉफ अनावश्यक रूप से सतलज के दक्षिण स्थित उन भागों के सम्बन्ध में चुप था जिन पर रणजीत सिंह का अधिकार था, जब कि इन भूभागों के सम्बन्ध में अंग्रेज सरकार ने केवल यही घोषणा की थी कि जिन क्षेत्रों पर रणजीत सिंह ने बाद में अधिकार किया था, वहाँ से यदि वह हट जाय, और अपनी सारी सेना को उन क्षेत्रों से हटाकर सतलज के उत्तरी तट तक ही सीमित रक्खे तो सन्धिवार्ता का उचित आधार बन सकता है।[1] परिस्थितियों के कोई अन्य मोड़ लेने के पूर्व ही योरोप की परिस्थितियों के विषय में प्राप्त समाचारों ने भारत के गवर्नर जनरल को पक्का विश्वास दिला दिया कि भारत के विरुद्ध नेपोलियन द्वारा बनाई गई योजनाएँ अब क्रियान्वित न हो सकेंगी, या कम से कम इतनी प्रबल नहीं होंगी कि उनके लिए कोई विशेष सुरक्षात्मक सतर्कता बरती जाय;[2] अतः अब यह

अंग्रेजों का दृष्टिकोण कुछ नरम; परन्तु रणजीत सिंह को सतलज के उत्तरी तट तक सीमित रखना आवश्यक:

१—सर डेविड आक्टरलोनी का सरकार को पत्र, १४ फरवरी १८०९ तथा सरकार का पत्र डेविड आक्टरलोनी के नाम ३० जुलाई १८०९। लेफ्टि, कर्नल लॉरेंस ('एडवेंचर्स इन द पंजाब' पृ० १३१, नोट 'जी') के अनुसार इस अवसर पर सर चार्ल्स मेटकाफ ने अन्य क्षेत्रों के विषय में रणजीत सिंह से स्पष्ट बातें की थीं, लॉरेन्स के अनुसार उसने महाराजा रणजीत सिंह को बता दिया था कि यदि वह अंग्रेजों की शर्तों पर सन्धि कर लेते हैं तो अंग्रेजों की ओर से अन्य क्षेत्रों में रणजीत सिंह की आक्रामक कार्यवाहियों पर अंग्रेज तटस्थ रहेंगे।

२—सर डेविड आक्टरलोनी के नाम सरकार का ३० जनवरी १८०९ का पत्र, [सम्भवतः इस विश्वास का मुख्य कारण था नेपोलियन तथा टर्की के बीच पूर्व स्थापित सम्बन्धों में परिवर्तन, मुस्तफा चतुर्थ के पश्चात् महमूद द्वितीय के राज्यारोहण—(जुलाई १८०८)—से ही फ्रांस व टर्की के बीच हुई सन् १८०७ ई० की सन्धि समाप्त हो गई; और इंग्लैंड तथा टर्की के पारस्परिक सम्बन्धों में सुधार हो जाने के कारण डार्डनेल (Dardanelles) की सन्धि पर दोनों ही देशों ने हस्ताक्षर कर दिये थे ये। हस्ताक्षर जनवरी १८०९ को हुये थे—सम्पादक।]

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

घोषित कर दिया गया कि अंग्रेजी सरकार का लक्ष्य, सतलज के दक्षिण स्थित क्षेत्रों को रणजीत सिंह के आक्रमणों से सुरक्षित रखने तक ही सीमित रह गया है; अब किसी यूरोपीय सेना के आक्रमण की सम्भावना तो नहीं रह गई थी; अतः अन्य आधारों पर ही दक्षिणी सिक्खों को संरक्षण देना बुद्धिमत्तापूर्ण समझा गया; परन्तु रणजीत सिंह के प्रति अंग्रेजों के दृष्टिकोण में केवल नाम-मात्र का अन्तर हुआ; शर्तें अब भी वही थीं अर्थात् वह अपनी सेना को हटा कर सतलज के दाहिने तट तक ही सीमित कर ले, और बाद में अधिकृत क्षेत्रों पर से अपना अधिकार हटा लें; जिन क्षेत्रों पर उसका अधिकार कुछ पहले से था, उनके विषय में उस पर कोई दबाव नहीं डाला गया।

१८०९ रणजीत सिंह अंग्रेजों की नियत पर आशंकित न हों, इसलिये यह भी कहा गया कि सर डेविड आक्टरलोनी के नेतृत्व में लुधियाना में पड़ी हुई सेना को वहाँ से हटाकर करनाल में स्थायी रूप से रख दिया जा सकता है।[1] परन्तु सरकार के इस बाद के प्रस्ताव के सम्बन्ध में सर डेविड आक्टरलोनी ने उस सेना को लुधियाना में ही रहने देने से सम्भावित लाभों का जिक्र करते हुए सेना को स्थानान्तरित न करने का अनुरोध किया। अंग्रेज सरकार ने सेनापति के इस परामर्श पर सहमति प्रकट की, और इस प्रकार लुधियाना बिना फैलो विरोध के सदा के लिए अंग्रेजी सेना की एक छावनी बन गया।[2]

सन्धि प्रस्ताव पर रणजीत सिंह की

सन् १८०९ ई० के फरवरी मास के प्रारम्भ में अंग्रेज कमाण्डर सर डेविड आक्टरलोनी ने एक घोषणा प्रसारित की थी जिसमें सभी सिस-सतलज रियासतों को अंग्रेजी राज्य द्वारा संरक्षित तथा राज्य के अधीन बताते हुए उन्हें इस बात की गारण्टी दी गई थी कि लाहौर के महाराजा के किसी भी आक्रमण का सशस्त्र प्रतिरोध किया जायगा[3]। रणजीत सिंह ने अब यह अनुभव किया कि अंग्रेजों ने वास्तव में उसके विरुद्ध कार्यवाही करने का दृढ़ निश्चय कर लिया

१—सरकार द्वारा सर डेविड आक्टरलोनी को लिखे गये पत्र—३० जनवरी, ६ फरवरी तथा १३ मार्च, सन् १८०९ ई०।

२—सर डेविड आक्टर लोनी का सरकार को पत्र—६ मई १८०९; तथा सरकार का, सर डेविड आक्टरलोनी को पत्र, १३ जून १८०९ ई०।

३—देखिये परिशिष्ट २४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

स्वीकृति २५ अप्रैल १८०९ ई० था; उसे सबसे अधिक भय इस बात का हुआ कि सिस सतलज के सिक्खों की भाँति कहीं, पंजाब के बचे खुचे स्वतन्त्र सरदार भी अंग्रेज सरकार का संरक्षण प्राप्त करने का प्रयास न करने लगें, और अंग्रेज इन स्वतन्त्र क्षेत्रों पर भी हावी न हो जाँय, ऐसा होने पर उसके द्वारा नियोजित एक विस्तृत साम्राज्य की स्थापना के स्वप्न के कभी भी पूर्ण न हो सकने की सम्भावना थी अतः उसने बिना विलम्ब किए बुद्धिमत्तापूर्वक अपना मार्ग निश्चित कर लिया; उसने अंग्रेजों के इच्छानुसार अपनी फौजों को हटा लिया, अपनी विजयों के फलस्वरूप प्राप्त क्षेत्रों का त्याग कर दिया और अमृतसर में सन् १८०९ ई० की २५ अप्रैल को लाहौर के इस सरदार ने एक सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर किया जिसके अनुसार वह सतलज के दक्षिण स्थित उन भागों का स्वामी बना रहा जिन पर उसका पहले से ही अधिकार था, परन्तु भविष्य के लिए उसकी महत्वाकांक्षाओं का क्षेत्र नदी के पश्चिमोत्तर भागों तक ही सीमित रह गया[४]।

हम पीछे ही देख चुके हैं कि सतलज तथा यमुना के मध्य स्थित भूभाग के सिक्ख सरदारों के साथ ही कुछ हिन्दू व मुस्लिम सरदारों को ब्रिटिश संरक्षण प्रदान किया गया; अब उन शर्तों का निर्धारण कर लेना भी आवश्यक समझा गया जिनके आधार पर विदेशी आक्रामकों से रक्षा की सरहिन्द में सिक्ख जानी थी। इस अवसर पर सर डेविड आक्टरलोनी ने अधीनता तथा अपना विचार प्रकट करते हुए कहा[५] कि जब सरहिन्द अंग्रेजी सत्ता की के सिक्ख पहले पहल संरक्षण की याचना लेकर आए थे शर्तें उस समय वे रणजीत सिंह की कार्यवाहियों से इतने भयभीत थे कि अंग्रेजो के प्रति द्वेष भाव रखते हुए भी सरदारों ने उन्हीं की शरण में आने का निश्चय किया था, और उस समय वे एक नियमित दर से कर देने के साथ ही किन्हीं भी अन्य शर्तों को स्वीकार कर सकते थे, परन्तु अंग्रेजों ने उस आवश्यकता की घड़ी में उन्हें संरक्षण देना अस्वीकार कर दिया था, और लाहौर को भेजे गए उनके मिशन ने उनको अपनी सुरक्षा को गौण लक्ष्य समझने की सीख देने के साथ ही यह भी सोचने के लिए आधार बनाया कि यूरोपीय आक्रमण की, अंग्रेजों की आशंका ने उन्हें

४—परिशिष्ट २५।—देखिये मरे का, 'रणजीत सिंह, पृ०, ६७, ६८।

५—सरकार को सर डेविड आक्टरलोनी का पत्र।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पंजाब के नीति कुशल व महत्वाकांक्षी सिक्ख सरदार के हाथ से बचा दिया था। अब सरहिन्द के सिक्ख सरदारों को संरक्षण में रहने के प्रश्न पर विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता तो रह नहीं गई थी; क्योंकि उनके सामने दो ही मार्ग थे या तो वे अंग्रेजों का संरक्षण स्वीकार करते, या फिर उनके साथ शत्रुवत् व्यवहार किया जाता[1]। सर डेविड आक्टरलोनी ने कहा था कि इतने पर भी सिक्ख यह समझते थे कि वे बहुत उदार संरक्षण के हकदार थे। अंग्रेज सरकार, द्वारा अपनी ओर से, अधीनता में आए हुए इन नए सरदारों के साथ उदारता का व्यवहार रखने का निश्चय किया गया था। अन्त में सन् १८०६ ई० की तीसरी मई को एक घोषणा जारी की गई जिसके अनुसार 'सरहिन्द तथा मालवा' के सरदारों को रणजीत सिंह की शक्ति के विरुद्ध गारण्टी दी गई, उन्हें करों से मुक्त कर दिया गया, उनके निजी अधिकृत क्षेत्रों में पूर्ण अधिकार दे दिए गए, और उन पर केवल यही बन्धन लगाया गया कि वे युद्ध के समय में सरकार की मदद करेंगे तथा कुछ अन्य साधारण बन्धन लगाए गए जिनको दुहराने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती[2]।

संरक्षित सरदारों के पारस्परिक सम्बन्ध

अभी तक सरहिन्द तथा सतलज पार के अन्य सरदार केवल रणजीत सिंह की विस्तारवादी नीति से ही त्रस्त थे, परन्तु ज्योंही वे उस सिक्ख सरदार के भय से मुक्त हुए, आपस में ही एक दूसरे को अपना शिकार बनाने लगे, या कमजोर पड़ोसी सरदारों के क्षेत्रों में घुसपैठ करने लगे। यद्यपि उदारवादी गवर्नर जनरल ने जिन शब्दों में उन्हें ब्रिटिश सरकार का संरक्षण प्रदान किया था, उनसे किसी भी प्रकार यह आभास नहीं मिलता था कि ये सरदार

१—देखिए सरकार का पत्र दिल्ली के रेजिडेण्ट को—२६ दिसम्बर १८०८। बैरन ह्यगेल ('ट्रवेल्स, पृ० ७६) के अनुसार सिक्खों के मामलों में अंग्रेजों के हस्तक्षेप का कुछ कारण ऊनका स्वार्थ भी था; उसके अनुसार अंग्रेजों का विचार था कि बिखरे हुये सिक्ख सरदारों को संरक्षण देकर उनके कुछ भूभागों को उत्तराधिकारी के अभाव में अधिकार में लिया जा सकता था, और सिक्खों के चरित्र को देखते हुए यह कार्य पर्याप्त तीव्रगति से हो सकता था। अपने अधिकार क्षेत्र को विस्तृत करने के लिये अंग्रेजों ने यह नीति बाद में अपनाई; सन् १८०६ में ब्रिटिश अधिकारियों की कार्यवाहियों के पीछे ऐसी कोई भी भावना नहीं थी।

२—देखिये परिष्टि २६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अंग्रेज सरकार के पूर्णत; अधीन थे[1], परन्तु मि० मेटकॉफ ने इंगित किया[2] कि जिस प्रकार रणजीत सिंह के विरुद्ध समस्त सरदारों को सुरक्षा की गारण्टी दी गई थी, उसी प्रकार उन्हें एक दूसरे के विरुद्ध भी गारण्टी दी जानी चाहिए, क्योंकि यदि उन्हें इस प्रकार की गारण्टी न दी गई तो निर्बल सरदारों के पास एक ही रास्ता बच रहेगा कि वे लाहौर के राजा रणजीत सिंह से जा मिलें। मेटकॉफ के इन विचारों में निहित दूरदर्शिता को सरकार द्वारा स्वीकार कर लिया गया और एक दूसरी घोषणा जारी करके इन सरदारों को अपहरण कारी कार्यवाहियों के विरुद्ध चेतावनी देते हुए उन्हें क्षेत्रीय स्वतंत्रता तथा रणजीत सिंह के आक्रमणों के विरुद्ध सुरक्षा का पुनः आश्वासन दिया गया[3], परन्तु इस चेतावनी का तात्कालिक प्रभाव नहीं हुआ और पारस्परिक घुसपैठ की कार्यवाहियाँ चलती रहीं, और पिछली बार सर डेविड आक्टरलोनी के अभियान में अन्य सिक्ख सरदारों के सहायक प्रयासों का अनुसरण न करने वाले सरदार जोध सिंह कलासिया की आक्रामक कार्यवाहियों पर अंकुश लगाने के लिए, तथा बलात् अधिकृत क्षेत्रों से उसे हटाने के लिए सन् १८१८ ई० में उसके विरुद्ध अंग्रेजी टुकड़ियों को भेजना पड़ा[4]।

यहाँ दक्षिणी, या मालवा के सिक्खों के इतिहास को चालू रखने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं प्रतीत होती, यद्यपि उनका इतिहास पाठकों की रूचि

१—सरकार का पत्र सर डेविड आक्टर लोनी के नाम—१० अप्रैल १८०६।

२—मि० मेटकॉफ का पत्र सरकार को—१७ जून १८०६।

३—देखिये परिशिष्ट २७।

४—दिल्ली के रेज़िडेण्ट का पत्र अम्बाला के एजेण्ट को, २७ अक्टूबर १८१८, जिसमें इस सैनिक कार्यवाही के व्यय के रूप में ६५००० रूपये वसूल करने का आदेश था। सरदार जोध सिंह अभी रणजीत सिंह के साथ, मुल्तान के विजय के पश्चात्, हाल ही में लौटा था, और उस पर महाराजा सदैव कृपादृष्टि रखते थे, और उत्तराधिकार के सम्बन्ध में, ब्रिटिश सरकार व अधीन सरदारों ने उसके विरुद्ध जैसा रवैया अपना रक्खा था, उसे देखते हुये जोधा सिंह के, पास असन्तुष्ट होने के अनेक कारण थे; वह क्रोर सिंहिया मिसल का सरदार होने तथा इसी नाते, इस मिसल के सभी सन्तानविहीन सरदारों का उत्तराधिकारी होने का दावा करता था, जब कि ब्रिटिश सरकार ऐसी रियासतों पर राज्याधिकार मानती थी।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

की अनेक बाते प्रस्तुत करता है, साथ ही विद्यार्थियों तथा भारत के प्रशासन-कार्य में व्यस्त लोगों के लिए भी वह उतना ही उपयोगी है। शीघ्र ही ब्रिटिश प्रशासनिक संस्थाएँ संरक्षित सरदारों के पारस्परिक हस्तक्षेप, तथा विभिन्न सरदारों तथा उनके अधीनस्थ नायकों सहायकों के बीच उत्पन्न मतभेदों के विषम जाल को सुलझाने के प्रयास में बुरी तरह उलझ गईं; उन्होंने उत्तराधिकार सम्बन्धी हिन्दू विधान को विभिन्न जातियों की उत्तराधिकार सम्बन्धी प्रथाओं तथा किसानों से अचानक राजा की हैसियत तक पहुँच जाने वाले सरदारों में प्रचलित रीतियों में समन्वय स्थापित करने के लिए बहुत अधिक श्रम किया, किसी सरदार की, बिना उत्तराधिकारी के, मृत्यु हो जाने पर कौन सी व्यवस्था अपनाई जाय, यह प्रश्न उन्हें परेशान किए हुए था, ब्रिटिश म्युनिसिपल कानूनों की श्रेष्ठता की भावना से प्रभावित होने के साथ ही इस भावना के भी कारण—कि दिए गए संरक्षण के बदले में, संरक्षण देने वाली सत्ता का, संरक्षितों की सम्पत्ति पर विशेष स्थितियों में कुछ न कुछ लाभ का दावा अवश्य होना चाहिए—उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि केवल उसी वंश का होने के कारण प्राप्त उत्तराधिकार का अधिकार वास्तविक उत्तराधिकारी की तुलना में सीमित होना चाहिए, और चूँकि संरक्षितों से बदले में कोई कर नहीं लिया जाता अतः यदि कोई सरदार या संरक्षित राजा बिना उत्तराधिकारी के मर जाता है तो ब्रिटिश राज्य को उनकी सम्पत्ति को जब्त कर लेने का पूरा अधिकार होना चाहिए। उन्हें सिक्ख रियासतों व ब्रिटिश सरकार के क्षेत्रों की सामान्य सीमाओं का निर्धारण करना था, और रणजीत सिंह की भाँति ही उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि किसी मुख्य नगर पर अधिकार हो जाने पर, उस नगर की स्थानीय सत्ता में कभी भी सम्मिलित समस्त गाँव भी विजेता के अधिकार में स्वयमेव आ जाते हैं; साथ ही यह भी कि सारी बेकार भूमि पर सर्वोच्च सत्ता का अधिकार होता है, भले ही संरक्षित राज्य ने ऐसी भूमि को कुछ समय से अपने अधिकार में ले लिया हो, और बीच में, उस पर खेती भी प्रारम्भ करा दी हो। इन संरक्षित सिक्ख रिसायतों पर ब्रिटिश अधिकारी अपनी सर्वोच्च म्युनिसिपल सत्ता स्थापित करना चाहते थे जिसके अन्तर्गत, अपराधियों के समर्पण, तथा ब्रिटिश सरकार की प्रजा की चुराई गराई गई सम्पत्ति के मुआवजे से सम्बद्ध

सत्ता सम्बन्धी अधिकारों तथा अन्तर्राष्ट्रीय नियमों को लागू करने के सम्बन्ध में सरकार की परेशानियाँ

१८०९-१८

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मामलों में जिन स्वेच्छाचारी निर्णयों या नज़ीरों के रूप में प्रयोग किया जाता रहा है उन्हें तक भी पूर्णरूपेण परिवर्तित नहीं किया गया है, परन्तु एक विशाल साम्राज्य की सरकार ऐसी कुव्यवस्थाओं का शिकार होने से शायद ही बच सकती है, और गलत निर्णय कर लेने वाले कर्मचारियों के कार्यों से भ्रामक व्यवस्था के लिए विवश हो जाती है जो सोचते हैं कि वे अन्य रियासतों की शक्ति को घटाने का प्रयास करके अपनी सरकार के उलझे हुए हितों की सर्वाधिक सेवा करते हैं, और जब वे अपनी सरकार के लिए लाभदायक प्रतीत होने वाला कोई कार्य करते हैं, तो इससे निश्चय ही उनके व्यक्तिगत लक्ष्यों की भी प्राप्ति का मार्ग भी कुछ सरल हो जाता है। ऐसे मामलों में सरकारी कर्मचारियों को भी पूरा दोष नहीं दिया जा सकता, आवश्यक तो यह था कि भारत की सारी आन्तरिक व्यवस्था को पुन. निर्धारित किया जाय जाता और एक ऐसा विधान लागू किया जाय जाता जो बुद्धिमत्तापूर्ण, उदार और व्यापक हो। सिक्ख रियासतों में अज्ञान ही अनेक भूलों व गलतफहमियों का कारण रहा है, और सन् १८१८ में सर डेविड आक्टरलोनी ने मारक्विस ऑव हेस्टिंग्ज[1] के समक्ष खुले दिल से स्वीकार किया था कि सन् १८०९ में उसके द्वारा की गई घोषणा भ्रामक विचारों पर आधारित थी। उसने सोचा था कि सतलज यमुना के मध्य कुछ इने गिने सरदारों की ही रियासतें थीं, और उन्हें सरलता से व्यवस्थित व नियंत्रित किया जा सकता था, परन्तु बाद में उसने देखा कि मिसलों के विधान से अहमदशाह के काल की ही भाँति प्रत्येक सिक्ख, एक स्वतंत्र सरदार बन बैठने का प्रयास करने लगा। सिक्ख सरदारों के पारस्परिक सम्बन्धों तथा ब्रिटिश सरकार से उनके सामूहिक सम्बन्ध, इन दोनों पर विचार करते समय सिक्ख जाति की विशिष्ट परिस्थितियों पर बहुत कम ध्यान दिया गया। वे अपने ही स्तर के अन्य बर्बर जातियों में सबसे प्रगतिशील थे जब कि प्रबल ब्रिटिश शक्ति ने उन्हें पराभूत कर दिया, और ऐसे लोगों से राजनैतिक शिष्टाचार तथा सद्व्यवहार, एवम् नैतिकता की आशा की,
१८०९-१८ जो न तो निरंकुश नियंत्रण का अर्थ समझते थे, न व्यवस्थित स्वतंत्रता का।[2]

१—एक व्यक्ति पत्र, १७ मई १८१८।

२—ब्रिटिश सरकार इस दृष्टिकोण से काफी समय तक भाग्य शाली रही

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कि सतलज के दोनों तटों पर स्थित सिक्ख रियासतों में, उसका प्रतिनिधित्व कैप्टेन मरे, मि० क्लर्क, सर डेविड आक्टरलोनी तथा लेफ्टिनेएट कर्नल बेड जैसे सुयोग्य व्यक्तियों द्वारा किया जाता रहा, जो एक दूसरे से बहुत भिन्न थे फिर भी ब्रिटिश शक्ति के सामान्य लक्ष्य को दृष्टि से समान रूप से उपयोगी थे। अपने व्यक्तिगत चरित्र एवम् प्रभाव से इन व्यक्तियों ने अपने देश के गौरव में वृद्धि की, साथ ही उन्होंने एक विदेशी व सम्य सत्ता की कठोर व सहानुभूति विहीन प्रकृति को ग्राह्य शक्ति व लचीले पन की विशेषतायें प्रदान कीं। उत्तरी भारत के लोगों द्वारा महानतम, विजेता अंग्रेजी नायकों में से एक के रूप में सर डेविड आक्टरलोनी का नाम काफ़ी समय तक स्मरण किया जाता रहेगा; वह उन अन्तिम ब्रिटिश नेताओं में से एक था जिसने अपनी अधीनस्थ सेना, तथा ब्रिटिश जाति की अजेय शक्ति के आगे सिर झुकाने वाले राजाओं का प्रेम व सम्मान प्राप्त किया।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अध्याय ६

रणजीत सिंह की सत्ता-स्थापना से मुल्तान, कश्मीर और पेशावर से अधिकार खोने तक:

१८०६–१८२३-२४

धीरे-धीरे रणजीतसिंह तथा अंग्रेजों में व्याप्त पारस्परिक अविश्वास की भावना का दूर होना—रणजीत सिंह और गुरखे—रणजीत सिंह तथा काबुल के पूर्ववर्ती सुल्तान – रणजीत सिंह तथा काबुल का वज़ीर फतेह खाँ कश्मीर के विरुद्ध रणजीत सिंह तथा शाहशुजा, दोनों की असफलता फतेह खाँ को मृत्यु दण्ड—रणजीत सिंह द्वारा मुल्तान पर अधिकार किया जाना, पेशावर का रौंदा जाना, कश्मीर पर अधिकार तथा सिन्धस्थित डेरा जाट को अपने राज्य, में मिलाना,—अफ़गानों की पराजय—पेशावर से नियमित कर की व्यवस्था—काबुल के मुहम्मद अज़ीम खाँ तथा कटोच के संसारचन्द की मृत्यु—रणजीतसिंह की एकबद्ध शक्ति— शाहशुजा का त्रिवर्षीय अभियान—(१८१८-२१)—नागपुर का अप्पा साहब - यात्री मूरक्राफ्ट—रणजीतसिंह की सरकार—सिक्ख सेना—सिक्ख, तथा अन्य युद्ध प्रिय जातियाँ—फ्रांसीसी अफ़सर—रणजीत सिंह का परिवार – रणजीत सिंह की असफलताएँ तथा सिक्खों में व्याप्त दोष—रणजीत सिंह के व्यक्तिगत कृपापात्र तथा विश्वस्त सेवक।

इस प्रकार अंग्रेजों तथा राजा रणजीतसिंह ने शान्ति और मित्रता के लिए
१८०९ एक सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर किए, परन्तु विश्वास का पौधा बहुत धीरे-धीरे विकसित होता है, और औपचारिक वार्ताओं तथा सन्धियों में अविश्वास तथा शंकाओं को अविलम्ब निर्मूल कर देने की सामर्थ्य नहीं होती। जिस समय अंग्रेज़ सरकार तथा

१—दिल्ली के रेज़िडेण्ट का पत्र सर डेविड आक्टर लोनी को–२८ जून १८०९ ई०

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

संयुक्त सन्धि के पश्चात् भी रणजीत सिंह के प्रति अविश्वास

महाराजा रणजीतसिंह के बीच वार्ता चल रही थी उस समय भी ब्रिटिश सरकार को पूर्ण विश्वास था कि उन्होंने सिन्धिया के साथ भी वार्ता प्रारम्भ कर रक्खी थी—लाहौर में वर्षों तक ग्वालियर, होलकर तथा अमीर खाँ[1] के दूत दिखाई पड़ते रहे, और उक्त सरदार—सिन्धिया होलकर अमीर खाँ आदि—एक लम्बे अरसे तक इस आशा में रहे कि सम्भवत: अब भी विदेशी विजेताओं को देश से बाहर निकालने के लिए दक्षिण भारत तथा पंजाब की शक्तियाँ उनके साथ संगठित हो जाँय। भारत के अंग्रेजी शासकों के मन में यह विश्वास भी दृढ़ हो चला था कि रणजीत सिंह सरहिन्द के ब्रिटिश-संरक्षित सिक्ख सर्दारों को अंग्रेजों के विरुद्ध भड़काने, तथा पूर्ण स्वतंत्रता के लिए उन्हें स्वयम् अपने तथा मराठा नायक होलकर की संयुक्त शक्ति में आ मिलने के लिए प्रयत्न कर रहे थे।[2] इस प्रकार के अन्य निराधार सन्देहों का भी उल्लेख किया जा सकता है, जिनके कारण सन्धि के बावजूद भी अंग्रेज अधिकारी महाराजा रणजीत सिंह पर विश्वास नहीं कर पा रहे थे; और यही कारण था कि सर डेविड-आक्टरलोनी ने सेना की आवश्यक सामग्रियों की पूर्ति की युद्धोचित व्यवस्था तथा लुधियाना में एक सुदृढ़ मोर्चा बनाने पर इतना जोर दे रहा था।[3] रणजीत सिंह का हृदय भी शंकाओं से मुक्त न था, परन्तु उन्होने इन सन्देहों की अभिव्यक्ति अस्पष्ट शब्दों में की; अंग्रेजों को उनके सन्देहों का आभास उनके साथ हुई वार्ताओं से न लग सका, न महाराजा ने कोई उत्तेजना ही प्रदर्शित की; अंग्रेजों को जो कुछ आभास मिला, वह महाराजा के कार्यों व पत्रव्यवहारों से, अथवा उनकी सैनिक तैयारियों से। धीरे धीरे इन दोनों सरकारों में एक दूसरे के प्रति व्याप्त सन्देह और अविश्वास की भावना समाप्त होने लगी, और जहाँ एक ओर

१८०९-११

अंग्रेजों के प्रति रणजीत सिंह का अविश्वास कम होना : धीरे-धीरे पारस्परिक अविश्वास की समाप्ति

१—सर डेविड आक्टरलोनी के पत्र सरकार को—१५ अक्टूबर १८०९, ५, ६, व ७ दिसम्बर १८०९, ५ व ३० जनवरी तथा २२ अगस्त, १८१०ई०।

२—डेविड आक्टरलोनी का पत्र सरकार को, ५ जनवरी, १८१०।

३—,, ,, ,, ,, ,, —३१ दिसम्बर १८०९, तथा ७ दिसम्बर १८१०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

महाराजा को यह विश्वास हो गया कि वे सतलज के परे अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए स्वतन्त्र प्रयास कर सकते हैं, वहीं दूसरी ओर अंग्रेज भी यह सोचकर निश्चित हो गए कि जब तक रणजीतसिंह अन्य क्षेत्रों पर अधिकार करने के प्रयास में उलझे रहेंगे तब तक वे सतलज के पार के ब्रिटिश संरक्षित सरदारों को अस्त व्यस्त करने की इच्छा नहीं करेंगे। सन् १८११ ई० में गवर्नर जनरल तथा महाराजा के मध्य उपहारों का आदान प्रदान हुआ,[1] तथा अगले वर्ष, उनके पुत्र, खड़क सिंह के विवाह में महाराजा ने सर डेविड आक्टरलोनी को निमंत्रित किया,[2] और उस समय से लेकर गत युद्ध तक की अवधि में सिक्ख आक्रमणों की अफ़वाहें काहिलों की महफ़िलों में मनोरंजन की तथा विश्वास करने वालों के लिए सवर्कता की सामग्री बनी रहीं, और ब्रिटिश वाइसराय को उन पर चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं पड़ी।

काँगड़ा पर अधिकार, गुरखों की शक्ति सतलज के बाँए तट तक सीमित १८०६ ई०

मि० मेटकाँफ़ के लौट जाने के पश्चात् महाराजा रणजीतसिंह ने सर्वप्रथम लुधियाना के विपरीत स्थित फिल्लौर की चौकी तथा अमृतसर में स्थित गोबिन्दगढ़ को मज़बूत बनाने पर ध्यान दिया, जिस समय उसने सिक्ख जाति की धार्मिक राजधानी को अधिकार में लिया था उसी समय उक्त दोनों गढ़ों की नीव डाली गई थी।[3] उधर काँगड़ा में गुरखे अब भी प्रबल पड़ रहे थे; कटोच के राजपूत राजा संसार चन्द ने कभी यमुना से झेलम तक अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित करने का स्वप्न देखा था, परन्तु गुरखों के दृढ़ घेरे ने उसके स्वप्न को मिट्टी में मिला दिया था; अन्त में संसार चन्द ने गुरखों के प्रतिकार के लिए महाराजा रणजीतसिंह से सहायता की याचना की, तथा इस सहायता के मूल्य के रूप में काँगड़ा का किला सिक्ख राजा को देने का वादा किया, परन्तु उनके पहुँचने से पूर्व ही संसारचन्द ने गुरखों को रणजीतसिंह की अजेय शक्ति की धाक से

१—दिल्ली के रज़िडेण्ड का पत्र सर डेविड आक्टर लोनी को—२५ फरवरी १८११, तथा सर डेविड आक्टर लोनी का पत्र सरकार को—१५ नवम्बर १८११।

२—सर डेविड आक्टर लोनी का पत्र सरकार को, १८ जुलाई १८११ तथा २३ जनवरी १८११।

३—मरे: 'रणजीत सिंह,' पृ० ७३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आतंकित करके दुर्ग में प्रवेश पा लिया, साथ ही उसने
१८०९ नेपाली सेनापति अमर सिंह थापा से यह वादा भी किया कि यदि उसके परिवार को सकुशल वापस ले जाने की अनुमति उसे मिल जाय तो वह किला गुरखों को समर्पित कर देगा। महाराजा रणजीत सिंह जैसे कूटनीतिज्ञ व्यक्ति की तीखी दृष्टि ने संसारचन्द की योजनाओं को भाँप लिया, और अपने पूर्ववर्ती सहयोगी के पुत्र को बन्दी बना लिया। तत्पश्चात् महाराजा ने काठमाण्डू के सेनापति को फुसलाना शुरू किया; अमर सिंह थापा शीघ्र ही उनके बहकावे में आ गया; उसने प्रस्ताव रक्खा कि वे दोनों पर्वतीय राजपूत रियासतों पर संयुक्त रूप से आक्रमण करें, तथा इन कार्यवाहियों के पश्चात् या बीच में ही काँगड़ा को लूट के माल के अपने हिस्से के रूप में महाराजा अपने अधिकार में ले लें, प्रत्याशित सहायकों के रूप में अचानक दुर्ग में प्रवेश कर लेने पर सिक्खों ने उस स्थान पर अधिकार कर लिया। संसार चन्द के प्रयासों को विफल कर दिया गया, और गुरखा सेनापति अमरसिंह थापा बुरी तरह छले जाने की दुहाई देते हुए सतलज के पार चला गया।[1] सक्रिय नेपाली सेनापति ने शीघ्र ही उन उपद्रवों को शान्त कर दिया जो उसके पृष्ठ भाग में उत्पन्न हो गये थे, परन्तु काँगड़ा के सम्बन्ध में महाराजा की नीति कुशलता से उसे जो असफलता प्राप्त हुई थी, उससे उसके हृदय में जैसे आग लगी हुई थी, अत. उसने काँगड़ा के विरुद्ध पुनः अभियान करने का दृढ़ निश्चय किया और तैयारियाँ शुरू हो गईं।

पंजाब विजय के लिए गुरखों का अंग्रेजों को प्रेरित करने का प्रयास १८०९:

उसने सर डेविड आक्टरलोनी से सिन्ध की ओर संयुक्त अभियान तथा मैदानों एवम् पर्वतीय भागों के अलग अलग स्वायत्तीकरण का प्रस्ताव रक्खा[2]। इधर सन्धि के प्रति अंग्रेजों की दृढ़ता तथा अन्तर्राष्ट्रीय नियमों से अभिज्ञ महाराजा रणजीत सिंह के मन में यह सन्देह

१--मरे, 'रणजीत सिंह पृ० ७६ ७७, महाराजा ने कैप्टेन वेड से कहा था कि गुरखे उनके (महाराजा के) साथ कश्मीर को बाँट लेना चाहते थे, परन्तु उन्होंने गुरखों को पंजाब से एक दम से ही निकाल भगाने को श्रेयस्कर समझा था – (कैप्टेन वेड का पत्र सरकार को–२५ मई १८३१)।

२--सर डेविड आक्टरलोनी का पत्र सरकार को–१६ तथा ३० दिसम्बर, १८०९।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हुआ कि कहीं गुरखों की सहायता के रूप में अंग्रेज उनके (अर्थात् महाराजा के) विरुद्ध अभियान के लिए एक बहाना न प्राप्त कर लें, जब कि महाराजा ने पूर्ण अनिच्छा से, अंग्रेज़ों का ही कहना मानकर अपनी महत्वाकांक्षाओं का क्षेत्र सीमित कर लिया था, अतः महाराजा ने अपनी इस इच्छा की अभिव्यक्ति में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं दिखाई कि उस समय अमरसिंह थापा जहाँ भी थे, वे वहीं उसपर आक्रमण करना चाहते थे, और उनकी इस इच्छा के अनुरूप ही जब गवर्नर जनरल ने कहा कि वे आक्रामक गुरखों को पहाड़ों तक खदेड़ देने के लिए वे न केवल सतलज को पार कर सकते हैं, बल्कि यदि गुरखों ने सरहिन्द के मैदानी भाग में प्रवेश किया तो महाराजा को उनके विरुद्ध ब्रिटिश सहायता भी प्राप्त हो सकती है, तो महाराजा को इस बात का एक अन्य प्रमाण प्राप्त हो गया कि सन्धि रूपी नदी एक अलंघनीय बाँध है जिसमें गुरखों या अन्य किसी की भी शक्ति साधारण सी दरार भी पैदा नहीं कर सकती। वे जो आश्वासन चाहते थे, वह उन्हें प्राप्त हो चुका था अतः उन्होंने अपने सवारों को पर्वतीय भागों की ओर भेजने के विषय में फिर कोई बात नहीं की[1]। उधर अमर सिंह थापा काफ़ी समय तक अपनी अपमानपूर्ण वापसी पर चिन्ता करता रहा तथा पंजाब पर आक्रमण करने के लिए अनेक तरीकों से ब्रिटिश अधिकारियों को अपने पक्ष में खीचने के प्रयास में लगा रहा। उसने ब्रिटिश अधिकारियों के समक्ष प्रस्ताव रक्खा कि यदि सिक्खों के विरुद्ध उसे अंग्रेजी सहायता मिली तो आगे से दोनों सरकारों--नेपाल और अंग्रेज में से एक का दोस्त या दुश्मन दूसरे का भी दोस्त या दुश्मन माना जायगा; उसने कहा कि रणजीत सिंह ने केवल शरारतवश कचोट में गुरखा अधिकृत क्षेत्रों पर आक्रमण किया था; इसके अतिरिक्त उसने अंग्रेजों को इस तर्क द्वारा भी उभाड़ने का प्रयास किया कि यदि अंग्रेज सतलज के उस पार नहीं बढ़ना चाहते थे, तो वे किसलिए सतलज

रणजीत सिंह द्वारा गुरखों के दमन के लिए सतलज पार करने की इच्छा की अभिव्यक्ति

१८११ ई० महाराजा के विरुद्ध अंग्रेजी सहायता प्राप्त करने के लिए गुरखों का दूसरा प्रयास १८१३ ई०:

१८११-१५

१--,, ,, ,, –१२ सितम्बर १८११, तथा सरकार का पत्र आक्टर लोनी को, ४ अक्टूबर व २२ नवम्बर; १८११ ई०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के इस तट पर जमे बैठे थे[1] और अन्त में उसने कहा कि उस समय बिना हिचक के आगे बढ़ना ही नीति कुशलता थी। इस समय, अर्थात् १८१४ ई० में नेपाल युद्ध का सूत्रपात हुआ; और केवल पहाड़ों में ही नहीं, बल्कि मैदानों में भी अंग्रेजों ने सिक्खों के साथ पूरा पूरा सहयोग किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि कश्मीर पर अधिकार करने के स्थान पर गुरखा सैनिक भय से काँपते हुए शीघ्रातिशीघ्र काठमाण्डू पहुँचने के लिए आतुर हो उठे। इस अवसर पर महाराजा रणजीत सिंह से सहायता के लिए नहीं कहा गया, परन्तु गुरखों व उनके सहायकों पर आक्रमण करने के लिए शीघ्रतावश संसार चन्द को बुला भेजा गया जिस पर महाराजा ने क्षोभ प्रकट किया तथा सर डेविड आक्टरलोनी ने उन्हें विश्वास दिलाया कि उनकी सत्ता पर गुरखों की कार्यवाहियों द्वारा कोई सीधा प्रभाव न पड़ने की आशा से ही ऐसा किया गया था; जब कि अनुभवी हिन्दू राजा संसार चन्द, वादा अधिक तथा काम कम करके अंग्रेजों या महाराजा में से किसी की भी कृपा प्राप्त करने का निश्चय कर चुका था।[2]

अंग्रेज व गुरखों में युद्ध १८१४-१५ ई. कटोच का संसार चन्द, रणजीत सिंह व अंग्रेज:

१--सर डेविड आक्टरलोनी का पत्र सरकार को, २० दिसम्बर १८१३ ई।

२--सरकार का पत्र डेविड आक्टरलोनी को-१ तथा २० अक्टूबर, १८१४ ई०; दिल्ली के रेजिडेण्ट का पत्र सर आक्टरलोनी को, ११ अक्टूबर १८१४, तथा सर डेविड का पत्र महाराजा रणजीत सिंह को-२९ नवम्बर-१८१४।

सन् १८१४ ई० के गुरखा युद्ध में सर डेविड आक्टरलोनी कभी कभी सफलता के प्रति निराश हो उठता था, और ऐसी ही अवस्था में एक बार उसने कहा था कि जिस प्रकार का युद्ध हो रहा था, उस प्रकार के पर्वतीय युद्ध में भारतीय सेना के सिपाही अप्रतिम थे। (सरकार को लिखा गया पत्र, २२ दिसम्बर १८१४)। इस युद्ध में अंग्रेजों का सर्वाधिक सक्रिय एवम् उपयोगी व्यक्ति था राजा रामशरण, जो गुरु गोबिन्द जी द्वारा मारे गये हरीचन्द का वंशज तथा हिन्दूर (नालागढ़) का राजा था। रामशरण स्वयम् भी कई अभियानों में संसारचन्द का सहयोगी रह चुका था। यह राजा सन् १८६४ ई० में भी जीवित था, और प्रायः सर डेविड आक्टरलोनी तथा उसकी 'अठारह पाउण्ड' वाली तोपों की प्रशंसा किया करता था, जिनको हिमालय की खड़ी चढ़ाइयों व ढलानों तक पहुँचाने में उसने स्वयम् प्रशंसनीय कुशलता प्रदर्शित की थी।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गुरखों व अंग्रेज के मध्य में हुए युद्ध की अवधि में महाराजा रणजीत सिंह ऊपरी सतलज पर निश्चिन्त पड़े रहे, परन्तु सन् १८ ०९ ई० में उन्हें पश्चिम की ओर से एक नए खतरे का आभास मिला, जिससे आशंकित होकर उन्हें पुनः ब्रिटिश नीति की तह में जाने की आवश्यकता पड़ गई।

शाहशुजा अफगानिस्तान से निष्कासित १८०९-१०:

ईरान तथा फ्रांस के विरुद्ध काबुल, काबुल के शाहशुजा से मि० एलफिंस्टन के माध्यम से हुई सन्धि के अधिक समय बीतने से पूर्व ही शाहशुजा द्वारा पदच्युत भाई ने ही उसका तख्त पलट दिया; शाहशुजा को पूरब की ओर भागना पड़ा, और उसके भाई ने शासन कार्य की पूर्ण व्यवस्था योग्य व कुशल वजीर फतेह खाँ के हाथ में सौंप दी। उस समय महाराजा रणजीत सिंह वजीरा बाद में एक मृत सिक्ख सरदार[1] के परिवार के अधिकार से उस स्थान को लेने का प्रयास कर रहा था; अचानक उसने समाचार पाया कि काबुल में पदच्युत किया जाकर शाहशुजा किसी

१८०९-१०

न किसी शक्ति की सहायता की प्राप्त करने की आशा से पूरब की ओर भागा आ रहा था। काबुल के गत सुल्तान शाहजमाँ द्वारा प्राप्त लाहौर की ग्राण्ट का जैसा उपयोग रणजीत सिंह ने किया था, वह उन्हें याद था, अतः उसे भया था कि कहीं कुछ अंग्रेजी बटेलियनों के बदले में उसी प्रकार पूरा पंजाब ही अंग्रेजों के हत्थे न

रणजीत सिंह की योजनाएँ और शंकाएँ

चढ़ जाय, अतः उसने काबुल के शाही परिवार के एक प्रतिनिधि को अपने ही हाथ में रखने का निश्चय किया ताकि वह विस्तारवादी अंग्रेजों के हाथ का खिलौना न बन जाय।[2] महाराजा ने शाहशुजा को यथोचित सम्मान से स्वागत सन्देश भेजा, मुल्तान तथा कश्मीर पर पुनः अधिकार करने में पदच्युत सुल्तान को पूरा सहयोग देने का वचन दिया तथा यह भी कहलवा दिया कि सुल्तान को हिन्दुस्तान तक आने का कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि वे स्वयम् ही आगे आकर सुल्तान से मुलाकात कर लेंगे।[3] इसी व्यवस्था

१—[वज़ीराबाद के इस सरदार का का नाम था जोधसिंह (देखिए, ग्रासबोर्न, 'रणजीत सिंह, पृ० १२, नोट)-अनुवादक।]

२—सर डेविड आक्टरलोनी का पत्र सरकार को, १० तथा ३० दिसम्बर १८०९।

३— ,, ,, ,, ७, १०, १७, तथा ३० दिसम्बर १८०९, तथा ३० जनवरी १८१०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के अनुसार महाराजा रणजीत सिंह तथा शाहशुजा की भेंट साहीवाल में हुई; परन्तु इस समय तक शाहशुजा को काबुल की ओर से, या किसी अन्य शक्ति की ओर से, पुनः अधिकार प्राप्ति की आशा हो चली थी, साथ ही रणजीत सिंह पर भी विश्वास न करने के लिए उसके पास अनेक कारण मौजूद थे,[1] अतः उसी की अनिच्छा के कारण उन दोनों के बीच कोई व्यवस्था निर्धारित न हो सकी। इन्हीं परिस्थितियों में दोनों के बीच होने वाली वार्ताएँ अचानक भंग हो गईं; परन्तु सन्धि की थोड़ी बहुत आशा होने पर भी महाराजा रणजीत सिंह तेजी से मुल्तान की ओर बढ़े, और शाहशुजा के नाम पर वहाँ के सूबेदार को आत्मसमर्पण कर देने के लिए कहा, और उसके इनकार कर देने पर मुल्तान के किले की सुदृढ़ प्राचीरों पर गोलाबारी करने के लिए लाहौर से 'जमजम'[2] या भंगी तोप, के नाम से विख्यात तोप मँगाई गई, परन्तु सारे प्रयत्नों के परिणाम में असफलता ही हाथ लगी, और अपने अपमानित दम्भ की सन्तुष्टि के रूप में एक लाख अस्सी हजार रुपये की भेंट लेकर अप्रैल माह में उन्हें विवशतः लाहौर लौटना पड़ा। महाराजा रणजीत सिंह के धावे को विफल कर उन्हें लौटा देने के पश्चात् भी मुल्तान का सूबेदार मुजफ्फर खाँ निश्चित होकर न बैठ सका; वह कलकत्ता स्थित ब्रिटिश वाइसराय से पत्र व्यवहार करने लगा, और रणजीत सिंह यह सोचकर शंकित हुए कि मुल्तान को कहीं अंग्रेजों की सहायता न प्राप्त हो जाय, और परिस्थितियों को देखते हुए सम्भव था कि मुल्तानी सूबेदार के ऐसे किसी प्रस्ताव को अंग्रेज तुरन्त स्वीकार कर लें[3], अतः स्वयम् महाराजा ने

शाहशुजा से महाराजा की भेंट; कोई समझौता नहीं १८१०: रणजीत सिंह का मुल्तान पर असफल धावा फरवरी-अप्रैल १८१०:

मुल्तान के विरुद्ध अंग्रेजों से संयुक्त अभियान का प्रस्ताव

३—शाह शुजा की आटो बायोग्राफी, 'अध्याय २२; 'कलकत्ता मन्थली जर्नल; १८३६ में प्रकाशित; मूल आत्मकथा यदि स्वयम् शाह द्वारा नहीं लिखी गई थी, तो उसके द्वारा संशोधित अवश्य की गई थी।

४—[इस तोप को सारा विश्व 'किम की तोप' के नाम से जानता है, और इस समय यह लाहौर म्यूजियम के बाहरी भाग में पड़ी—सम्पादक]

५—सर डेविड आक्टरलोनी का पत्र सरकार को—२६ मार्च तथा २३

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सर डेविड आक्टरलोनी के समक्ष यह प्रस्ताव रक्खा कि दोनों 'सन्धिबद्ध शक्तियाँ मुल्तान के विरुद्ध अभियान कर दें तथा विजय से प्राप्त लाभों को बराबर बराबर बाँट लें।[1] ऐसा अनुमान लगाया कि वे मुल्तान पर घेरा डालने के लिए अंग्रेजों से आवश्यक सामग्रियाँ प्राप्त करना चाहते थे। महाराजा के इन प्रयासों के उत्तर में अंग्रेजों ने उदासीनता मिश्रित असन्तुष्टि से उन्हें बताया कि वे किसी पर भी अकारण आक्रमण करने की नीति को अनुचित समझते थे, परन्तु इस सम्बन्ध में दोनों के बीच जिन पत्रों का आदान प्रदान हुआ और उनसे जो आभास मिला, उससे महाराजा को यह विश्वास कर लेने में कोई कठिनाई नहीं हुई कि मुल्तान के विरुद्ध उनकी कार्यवाहियों में अंग्रेजों की ओर से कोई हस्तक्षेप नहीं किया जायगा।[2]

१८१०-१२

साहीवाल में महाराजा रणजीत सिंह से मुलाकात करने के पश्चात् शाह शुजा अटक की ओर बढा, और इसी बीच कश्मीर के सूबेदार के विद्रोही भाई से कुछ सहायता प्राप्त हो जाने पर उसने सिन्ध नदी को पार कर लिया, और मार्च सन् १८१० ई० में उसने पेशावर पर अधिकार कर लिया। पेशावर पर उसका अधिकार लगभग छ माह तक बना रहा, जिसके पश्चात् वज़ीर के भाई मुहम्मद अज़ीम खाँ ने उसे वहाँ से पीछे हटने के लिए विवश होना पड़ा। उसने मुल्तान के सूबेदार से भी वार्ता करने का प्रयास किया, परन्तु सूबेदार ने उसे किले के भीतर आने की अनुमति ही नहीं दी, और जब उसने किले से कुछ दूर पर पड़ाव डाला, तब भी सूबेदार की ओर से उसके प्रति कोई अच्छा व्यवहार नहीं किया गया। यहाँ से शाहशुजा पुनः उत्तर की ओर बढ़ा, और चुँकि उसे पदच्युत करने

शाह शुजा का मुल्तान का पेशावर अभियान, तथा उसका कश्मीर में कैद किया जाना १८१०-१२ ई०

मई १८१० ई०; २३ मई के पत्र में २५०००० रूपयों की अदायगी का ज़िक्र है, और १, ८०, ००० रूपए का उल्लेख मेरे द्वारा किया गया है (लाइफ ऑव रणजीत सिंह, पृ० ८१)।

१ सर डेविड आक्टरलोनी का पत्र सरकार को, २३ जुलाई व १३ अगस्त १८१०।

२ — ,, ,, ,, २९ मार्च व १७ सितम्बर १८१०, और गवर्नमेण्ट का पत्र सर आक्टरलोनी को, २५ सितम्बर १८४० (देखिये मेरे लिखित 'रणजीत सिंह' पृ० ८०, ८१।)

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वाले शाह महमूद के शत्रुओं की कमी नहीं थी, अतः वह पेशावर पर अधिकार करने में उसने फिर एक असफल धावे के पश्चात् सफलता प्राप्त कर ली; परन्तु जिन लोगों ने इन अभियानों में उसकी सहायता की थी, उन्हें अब यह सन्देह होने लगा कि वह वज़ीर फतेह खाँ से गुप्त वार्ता कर रहा था, या यह भी सम्भव है कि महाराजा रणजीत सिंह की ही भाँति उन्होंने भी शाहशुजा को अपने अधिकार में रखने की अभिसन्धि कर रक्खी हो; जो भी हो, सन् १८१२ ई० में अटक के सूबेदार जहाँदार खाँ ने उसे कैद कर लिया, और कुछ समय तक अटक में ही रखने के पश्चात् उसे कश्मीर पहुँचा दिया जहाँ वह बारह महीनों से अधिक समय तक के लिए कैद रहा।[1]

मुल्तान से असफल होकर लौटने के पश्चात् महाराजा रणजीत सिंह तथा उनके मंत्री मोहकमचन्द अपनी सारी शक्ति से मैदानी भागों में स्थित विभिन्न सिक्ख व मुस्लिम सरदारों तथा मिम्बर, राजौरी तथा अन्य पर्वतीय क्षेत्रों के राजाओं को अधीन बनाने में लग गए। सन् १८११ ई० के फरवरी माह में महाराजा झेलम तथा सिन्ध नदियों के मध्य स्थित नमक की खानों तक पहुँच चुके थे, परन्तु इसी समय यह सुनकर, कि काबुल के शाह महमूद ने सिन्ध नदी को पार कर लिया है, वह ससैन्य रावलपिण्डी की ओर बढ़ गया, और शाह का उद्देश्य जानने के लिए दूत भेज-दिए। शाह महमूद ने पहले से ही कुछ एजेण्टों को यह बताने के लिए नियुक्त कर दिया था कि उसका इरादा कश्मीर के सूबेदार को दण्ड देना या आतंकित करना था जिसने उसके भाई शाहशुजा का पक्ष ग्रहण किया था। शाहशुजा स्वयम् भी मुल्तान के आस पास ही था। एक दूसरे की नीयत के प्रति आश्वस्त हो लेने पर दोनों राजाओं में मुलाकात हुई और इस खुशी में एक समारोह करने के पश्चात् उन

१८११-१२

१—सर डेविड आक्टरलोनी का पत्र सरकार को, १० जनवरी व २६ फरवरी व २७ अप्रैल १८१२; शाहशुजा की 'आटो बायोग्राफी, 'अध्याय २३-२५, १८३६ का 'कलकत्ता मन्थली जर्नल, 'पृ० ७६, ८७ व ६२। मुल्तान पर सन् १८१०-११ में शाहशुजा के दूसरे धावे की बात मुख्यतः कैप्टेन मरे की पुस्तक पर आधारित है; शाह की आत्मकथा में इस घटना का उल्लेख नहीं है, यद्यपि यह स्वीकार किया गया है वह सिन्ध क्षेत्र स्थित डेराजाट में चला गया था।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

रणजीत सिंह को शाह महमूद से भेंट; १८११ ई०:

अनेक छोटे मोटे सरदारों की ज़मीनों को एक में मिलाने के लिए महाराजा स्वयम् लाहौर की ओर बढ़ गये जिन्होंने उस समय स्वतंत्रता या प्रभुसत्ता प्राप्त कर ली थी जब कि हिन्दुस्तान में कोई केन्द्रिय नियंत्रक शक्ति नहीं थी; और अब उन सरदारों व राजाओं को इस नौजवान महाराजा की क्रमबद्ध सक्रियता तथा दुर्जय शक्ति का सामना करना पड़ रहा था।[1]

अन्धे शाह ज़माँ का लाहौर आगमन १८११ ई० शाहशुजा का परिवार लाहौर में: १८१२:

सन् १८११ ई० में अन्धे शाहज़माँ ने पंजाब को पार किया; और महाराजा रणजीत सिंह ने आगे बढ़कर मार्ग में ही उससे भेंट की। शाहज़माँ कुछ समय तक लाहौर में टिका रहा और अपने पुत्र यूनुस को लुधियाना भेज दिया जहाँ सर सेविड आक्टरलोनी ने ध्यान से–उसकी बातें सुनीं; परन्तु चुँकि शाहज़ादे यूनुस को महसूस हुआ कि लाहौर में उन्हें यथोचित सम्मान नहीं मिल रहा था, अतः उसके पिता ने महाराजा के नगर से प्रयाण कर दिया और काफ़ी समय तक मध्य एशिया में भटकता रहा।[2] अगले वर्ष के दौरान कावुल के दोनों भूत पूर्व सुल्तानों–शाहज़माँ व शाहशुजा -के परिवारों ने लाहौर को

१—मरे, 'रणजीत सिंह' 'पृ० ८३। इस समय जिन सरदारों के क्षेत्र अपहृत हुए थे, उनमें मुख्य था सिंहपुरिया या फीजुलपुरिया मिसल का बूध सिंह।–देखिए सर आक्टरलोनी का पत्र सरकार को, १५ अक्टूबर १८११ ई०।

२—मरे, 'रणजीत सिंह' पृ० ८७। शहज़ादे यूनुस की लुधियाना यात्रा महाराजा के लिए चिन्ता का विषय वन गई थी क्योंकि इस प्रकार शाहशुजा भी अंग्रेज़ों के पास जा सकता था, और १८०९ की सन्धि के आधार पर उनकी सहायता प्राप्त करने का दावा कर सकता था; परन्तु शाहशुजा के ऐसे प्रयासों के उत्तर में अंग्रेज़ों की ओर से खेदपूर्वक कहा गया कि सन्धि में फ्रांसीसी आक्रमण से सुरक्षा की बात थी, एक भाई के विरुद्ध सहायता देने की कोई शर्त उस सन्धि में नहीं थी; शाहज़ादे के स्वागत के लिए भी उदार हृदय सर आक्टरलोनी को सरकार की फटकार सुननी पड़ी थी। सरकार का पत्र सर आक्टरलोनी को, १९ जनवरी १८११ तथा दिसम्बर १८१०, व जनवरी १८११ ई० में हुआ पूरा पत्र व्यवहार।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अपना आवास बनाया और चूँकि महाराजा इस समय, पूरी कश्मीर घाटी को अपने अधिकार में लेने के ध्येय से कश्मीर के दक्षिण स्थित पहाड़ी सरदारों को पराजित करने के लिए जोर शोर से तैयारियाँ कर रहे थे, और चूँकि प्रारम्भ से ही उनकी यह नीति रही थी कि वे स्वयम् को दूसरों की सहायता में व्यस्त प्रदर्शित करते हुए वे अपनी सफलता को अधिकाधिक सरल एवम् पूर्ण बनाना चाहते थे; अतः

१८१२–१३

इस बार भी कश्मीर विजय के लिए योजना बनाते समय उन्होंने शाहशुजा की बेगम से कहा कि वे शाह को मुक्त कराकर कश्मीर को पुनः शाह के हाथ सौंप देंगे, परन्तु साथ ही, इस वीरतापूर्ण कार्य के पुरस्कारस्वरूप-महाराजा–रणजीतसिंह को यह आशा थी कि सफलतापूर्वक ताजपोशी हो जाने के उपरान्त विपत्तिग्रस्त शाह बेगम कृतज्ञतापूर्वक विश्वप्रसिद्ध हीरा, कोहिनूर-उनको भेंट कर देंगी। जैसा कि हम पीछे भी देख चुके हैं, उनका मुख्य उद्देश्य था शाह शुजा को व्यक्तिगत रूप से अपने अधिकार में रखना। कुछ पहाड़ी सरदारों को महाराजा ने इस बीच पराजित किया, साथ ही उनके हाल ही में विवाहित पुत्र खड़क सिंह ने जम्मू पर अधिकार कर लिया; सन् १८१२ ई० के अन्त में उन्हें समाचार मिला कि काबुल के वजीर फतेह खाँ ने कश्मीर-विजय के उद्देश्य से सिन्ध नदी को पार कर लिया था; महाराजा ने उससे मुलाकात की इच्छा प्रकट

व्यक्तिगत लक्ष्यों के लिए महाराजा द्वारा शाह के नाम का प्रयोग : काबुल के वजीर फतेह खाँ से भेंट १८१२ : कश्मीर पर संयुक्त धावे का निश्चय

की और कहा कि वे न केवल उन विद्रोहियों के दमन में सहायता देंगे जिन्होंने शाहमहमूद के भाई को बलात् रोक रक्खा था, बल्कि मुल्तान के सूबेदार को भी दण्डित करने में सहयोग करेंगे जिसने शाहमहमूद की आज्ञाओं का पालन करने से इनकार किया था। फतेह खाँ भी महाराजा से भेंट करना आवश्यक समझता था, क्योंकि उसे ज्ञात था कि यदि रणजीतसिंह ने उसका विरोध किया तो वह कश्मीर पर अधिकार नहीं कर सकता था, अतः अपने लक्ष्य की प्राप्ति के मार्ग को सरल बनाने के लिए वह कोई भी वादा करने के लिए तैयार था। इस प्रकार महाराजा तथा वजीर, दोनों ही अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए एक दूसरे को साधनमात्र बनाना चाहते थे, अन्ततः परिणाम यह हुआ कि दो में से एक को भी पूर्ण सफलता प्राप्त न हो सकी। वजीर के साथ मोहकमचन्द के नेतृत्व में महाराजा की सेना भी चली; कश्मीर पर सन् १८१३ के फरवरी माह

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

में अधिकार हो गया, परन्तु इस धावे में फतेह खाँ ने मोहकम चन्द को पीछे छोड़ दिया था और अकेले ही कश्मीर में प्रवेश किया था, अतः उसने दावा किया कि कश्मीर में महाराजा को अपना हिस्सा माँगने का कोई हक नहीं था। इस अभियान से महाराजा को केवल एक लाभ प्राप्त हुआ, और वह था शाहशुजा को प्राप्त करना, क्योंकि कश्मीर पर अधिकार कर लेने के पश्चात् वजीर फतेह खाँ ने उस अभागे, पदच्युत सुल्तान को मुक्त कर के उसे इच्छानुसार कहीं भी जाने की अनुमति दे दी, शुजा ने सिक्ख सेना में ही सम्मिलित होना श्रेयस्कर समझा, और सिक्खों के साथ ही लाहौर चला आया। इधर महाराजा रणजीतसिंह अपनी पूर्वनिर्धारित योजनाओं में पूर्णतः असफल नहीं हुए, और जब कि शाहमहमूद के वजीर फतेह खाँ की कश्मीर विजय से अटक का विद्रोही सूबेदार चिन्ता में पड़ा हुआ था, महाराजा ने उसे बड़ी सरलता से किले को समर्पित करने के लिए तैयार कर लिया। अटक महाराजा की इस अप्रत्याशित सफलता से फतेह खाँ बुरी तरह कुढ़ गया, और उसने उन पर खुले विश्वासघात का आरोप लगाया, साथ ही शाहशुजा से गुप्तवार्ता करने की अफवाह फैलाकर उसने उन्हें आतंकित करने का प्रयास किया, परन्तु महाराजा को अपनी शक्ति पर पूर्ण विश्वास था; अन्ततः सन् १८१३ ई० की १३ वीं जुलाई को अटक के निकट काबुल व लाहौर की सेनाओं में भयंकर युद्ध हुआ, जिसमें काबुल खाँ के वजीर फतेह खाँ तथा उसके भाई दोस्त मुहम्मद को मोहकमचन्द के हाथों करारी हार मिली थी।[1]

फतेह खाँ का कश्मीर पर अकेले अधिकार १८१३ :

१८१३-१४

शाहशुजा रणजीतसिंह के हाथ में; अटक पर महाराजा का अधिकार :

मोहकमचन्द के हाथों फतेह खाँ की पराजय :

महाराजा रणजीत सिंह शाहशुजा को लाहौर में ही रोके रहना चाहते थे, साथ ही उनकी दृष्टि विश्वविख्यात कोहिनूर हीरे पर भी थी जो किसी समय मुगलों के सिंहासन की शोभा बढ़ाया करता था[2]। पहिले तो शाहशुजा ने

१—मरे, 'रणजीत सिंह, पृ० ९५, १००; सर डेविड आक्टरलोनी का पत्र सरकार को, १ जुलाई १८१३।

२—[डेढ़ इंच लम्बा तथा एक इंच चौड़ा यह हीरा शाहजहाँ के 'तख्त—

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कोहिनूर की प्राप्ति १८१३-१४ ई०

महाराजा की माँग को पूरा करने में टालमटोल की, और उस हीरे के बदले में धन लेने के प्रस्ताव को भी उसने एक बार अस्वीकार कर दिया, परन्तु अन्त में महाराजा ने व्यक्तिगत रूप से शाहशुजा से भेंट की; पारस्परिक मित्रता की घोषणा की गई, दोनों ने पगड़ियाँ बदलीं, हीरा महाराजा को दे दिया गया[1], और शाहशुजा को निर्वाह के लिए पंजाब में एक जागीर के अधिकार पत्र तथा काबुल पर पुनः अधिकार करने में सहायता देने के वचन दिए गए। तत्पश्चात् महाराजा रणजीत सिंह फतेह खाँ की गति विधियों पर दृष्टि रखने के लिए सिन्ध की ओर बढ़ा जो धीरे-धीरे शाह महमूद की सत्ता को सुदृढ़ एवम् संगठित करता जा रहा था; इस यात्रा में महाराजा ने शाहशुजा को भी साथ ले लिया, सम्भवतः वे शाहशुजा के नाम से कश्मीर-प्राप्ति का पुनर्प्रयास करना चाहते थे, परन्तु वजीर फतेह खाँ भी अपनी ओर से सचेष्ट था। महाराजा अचानक लाहौर लौट आए, शाहशुजा भी पीछे-पीछे, कुछ मन्द गति से आ रहा था कि डाकुओं के एक दल ने धावा करके उसके अनेक मूल्यवान वस्तुओं को लूट लिया, सिक्खों के अनुसार ये साधारण पेशावर डाकू थे, परन्तु शाहशुजा का विश्वास था कि इस डाकाजनी में सिक्खों का ही हाथ था। यह माना जा सकता है कि रणजीत सिंह के निम्नस्तरीय एजेण्ट इस मामले में पूर्णतः निर्दोष न रहें हों, परन्तु

सिन्ध की ओर प्रयाण शाहशूजा की दुर्दशा १८१३-१४

ए-ताऊस' में लगाया गया था; नादिर शाह अपने साथ लूट की अन्य सामग्रियों के साथ इसे भी ले आया था; उसकी मृत्यु के बाद नादिरशाह के शिविर से लूट के माल के रूप में यह अहमदशाह के हाथ, और फिर उसके बेटे शाहशुजा के हाथ लगा-; इस हीरे के लिए रणजीत सिंह को शाहशुजा के साथ कितनी सख्तियाँ करनी पड़ी, इसका विवरण आसबोर्न लिखित 'रणजीत सिंह' पृ० १३-१४ में मिलता है-देखिये सुशील गुप्ता (इण्डिया) लिमिटेड, कलकत्ता द्वारा १९५२ में प्रकाशित संस्करण-अनुवादक]

१--मरे 'रणजीत सिंह' पृ० ९६; शाहशुजा, आटोबायोग्राफी, अध्याय २५; सर आक्टरलोनी के पत्र सरकार को, १६ तथा २१ अप्रैल १८१३, तथा दिल्ली के रेजिडेण्ट को, १५ अक्टूबर १८१३; शाहशुजा १ लाख रूपए की जागीर चाहता था और ५०००० रूपये का वादा किया गया था जिसे न तो पूरा किया गया, न वैसी आशा ही थी।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

शाहशुजा के खास लोगों में भी स्वामिघात व विश्वासघात की भावनाएँ व्याप्त थीं, उसने अपने जिस उच्चअधिकारी को मि० एलफिन्सटन को पेशावर तक पहुँचाने के लिए भेजा था, उसने जब शाहशुजा के संकटों का समाचार पाया, तो शाह की अधिकांश सम्पत्ति को हथिया कर बैठ गया था। मीर अब्दुलहसन नामक इसी गद्दार सरदार ने महाराजा को सूचना दी थी कि शाहशुजा के पास कोहिनूर के अतिरिक्त अन्य भी अनेक मूल्यवान वस्तुएँ अब भी सुरक्षित पड़ी थीं, जब अब्दुलहसन लाहौर में था तो उसने अपनी बातों से कुछ ऐसी गलतफहमी फैलाई कि शाहशुजा, कश्मीर के सूबेदार से कोई गुप्त अभिसन्धि कर रहा था, और जब शाहशुजा के परिवार ने लाहौर से निकल भागने की ठानी, तो उसने उनकी राह में अनेक कठिनाइयाँ खड़ी कर दी।

शाहशुजा के परिवार का भाग कर लुधियाना पहुँचना १८१४ और स्वयम् शाहशुजा का किश्तवार पहुँचना कश्मीर पर असफल धावा व लुधियाना पहुँचना १८१६

अन्त में, सन् १८१४ ई० के दिसम्बर माह में शाहशुजा की बेगम भाग कर लुधियाना पहुँचने में सफल हो गईं; शाहशुजा अब यह समझ चुका था कि महाराजा उसे बन्दी बनाकर रोक रखना तथा उसके नाम पर अपने स्वार्थों की पूर्ति करना चाहते थे। कुछ माह पश्चात् शाहशुजा स्वयम् भी पहाड़ियों की ओर भाग गया, इसी समय कुछ सिक्ख भी उससे आ मिले जो महाराजा रणजीत सिंह से असन्तुष्ट थे। कश्मीर पर आक्रमण करने में किश्तवार के सरदार ने भी उसकी सहायता की। शाहशुजा घाटी में कुछ दूर तक धँस गया, परन्तु शीघ्र ही उसे वापस लौटना पड़ा, और तब वह अपने इस साधारण, परन्तु उत्साही सहयोगी के यहाँ कुछ समय तक आतिथ्य ग्रहण करने के उपरान्त वह कुलू होते हुए आगे बढ़ा और सतलज को पार करता हुआ लुधियाना स्थिति अपने परिवार से सन् १८१६ ई० में जा मिला[1]। ब्रिटिश और महाराजा की सरहद पर इस प्रकार उसका आ उपस्थित होना ब्रिटिश सरकार के लिए चिन्ता का विषय बन गया, ब्रिटिश सरकार की ओर से यह इच्छा प्रकट की गई कि वह करनाल या सहारनपुर चला जाय, और सर डेविड आक्टरलोनी को, महाराजा रणजीत सिंह को यह बताने का निर्देश दिया गया कि ब्रिटिश सरकार हिन्दुस्तान की

१—मरे, 'रणजीत सिंह, 'पृ० १०२, १०३ शाहशुजा का 'आटो बायो—ग्राफ़ी' अध्याय २५, २६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सीमा में काबुल के पदच्युत सुल्तान को सम्माननीय अतिथि नहीं समझती, फिर भी उसके परिवार के निर्वाह के लिए १८००० रुपये वार्षिक की जो पेंशन निर्धारित की गई थी, शाहशुजा के भी आ जाने पर उसमें वृद्धि करके ५०,००० रुपया कर दिया गया, और व्यक्तिगत रूप से उसके साथ यथोचित सम्मान एवम् उदारता का व्यवहार किया गया[1]।

कश्मीर पर रणजीत सिंह का असफल धावा १८१४

इस प्रकार शाहशुजा, लाख कोशिशों के बाद भी महाराजा रणजीत सिंह के चंगुल से निकल ही गया, और अब कश्मीर पर किए जाने वाले आक्रमणों में उसके नाम का उपयोग नहीं किया जा सकता था, फिर भी सदैव की तरह रणजीत सिंह की कश्मीर घाटी के हथियाने की आकांक्षा में कोई कमी नहीं हुई, यद्यपि इसी बीच कश्मीर के सूबेदार ने अंग्रेजों से वार्ता प्रारम्भ कर दिया था[2]। इस समय तक महाराजा रणजीत सिंह पीर पंजाल के दक्षिण में स्थित सरदारों को अपने अधीन बना चुके थे; सन् १८१४ ई० के लगभग मध्य में, पुनः सैनिक कार्यवाहियाँ आरम्भ की गई। अस्वस्थ होने के कारण अनुभवी मोहकम चन्द इस अवसर पर राजधानी में ही रह गया, फिर भी उसने महाराजा को चेतावनी दे दी कि वर्षा के प्रारम्भ होते ही उनके मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती हैं, यहाँ तक कि उसने महाराजा से इस अभियान की योजना को कुछ समय तक के लिए स्थगित कर देने का अनुरोध किया, परन्तु इस समय तक अभियान की आवश्यक तैयारियाँ पूर्ण की जा चुकी थीं। महाराजा की सेना दो भागों में आगे बढ़ी, आगे वाला सैन्य दल ऊँचे बाँध पर चढ़ जाने में सफल हुआ, और अफगान सेना की एक टुकड़ी को पीछे हटा कर सुपैन नामक नगर पर धावा बोल दिया गया, परन्तु यह आक्रमण असफल सिद्ध हुआ, और सिक्ख सैनिक पहाड़ी दर्रों की ओर

१—सरकार का पत्र सर डेविड आक्टरलोनी को, २ तथा २० अगस्त १८१५ तथा १४, २१ व २८ सितम्बर १८१६। फ़ा बेगम को पहले ही बता दिया गया था कि शाह के परिवार को ब्रिटिश सरकार सुरक्षा की गारण्टी के लिये ब्रिटिश सरकार बाध्य नहीं थी (सरकार का पत्र दिल्ली के रेज़िडेण्ट को, १९ दिसम्बर १८१२, तथा १ जुलाई १८१३)

२—सरकार का पत्र सर डेविड आक्टरलोनी को, २९ अक्टूबर व २३ नवम्बर १८१३ ई०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

लौट गए, इसी समय सूबेदार मुहम्मद अजीम खाँ ने महाराजा की मुख्य सेना पर अचानक हमला बोल दिया जो घाटी के छोर पर एक अरसे से दिखाई पड़ रहे थे, और महाराजा को काफी हानि उठाकर पीछे की ओर लौटने के लिए बाध्य होना पड़ा। इस समय तक वर्षा अच्छी तरह प्रारम्भ हो चुकी थी, सिक्ख सेना असंगठित हो गई, मिठसिंह बेहरानिया नामक एक वीर सरदार मारा गया, और अगस्त के मध्य में महाराजा रणजीत सिंह लगभग अकेले अपनी राजधानी पहुँचे। जिस अगली टुकड़ी ने बाँध पार कर सुपैन पर हमला किया था, उसे मुहम्मद अजीम खाँ ने मोहकम चन्द के प्रति सम्मान प्रकट करते हुए सुरक्षित रूप से वापस लौट जाने दिया, क्योंकि इस टुकड़ी का सेनापति मोहकम चन्द का पौत्र था। उस समय अफगानों में शक्ति के लिए जो संघर्ष चल रहा था, वजीर फतेह खाँ का यह महत्वाकांक्षी भाई उससे लाभ उठाने के लिए सम्भवतः स्वयम् भी योजनाएँ बना रहा था, और ऐसी स्थिति में आकास्मिक शत्रुओं के साथ उदारता का व्यवहार करके, अपने सम्मान में वृद्धि के प्रत्येक अवसर से पूर्ण लाभ उठाना नीतिपूर्ण ही था[1]।

विभिन्न पर्वतीय सरदारों व सिन्ध-क्षेत्रों के विभिन्न स्थानों पर अधिकार— १८१५-१६ ई०

कश्मीर अभियान के समय महाराजा को काफी तैयारी करनी पड़ी थी जिसका अधिकांश नष्ट ही हो गया था, अतः उन्हें अपने साधनों के पुर्नसंगठन में कुछ समय लगाना पड़ा। सन् १८१५ ई० के लगभग मध्य में मुल्तान के निकटस्थ क्षेत्रों से कर वसूलने के लिए उन्होंने कुछ टुकड़ियों को भेज दिया, परन्तु वह आन्तरिक व्यवस्थाओं के लिए स्वयम् अदीनानगर में ही रह गया; इस समय अंग्रेजों तथा ब्रिटिश सेनाओं में ज़ोरों से युद्ध चल रहा था, और छः माह की अवधि में जैसा युद्ध हुआ उसे अंग्रेजों के शौर्य के अनुकूल नहीं कहा जा सकता था; महाराजा के अदीना नगर में ही रह जाने का एक कारण सम्भवतः इस युद्ध से उत्पन्न स्थिति से, इस सम्बन्ध में आगे की नीति निर्धारित करना भी था। इसी वर्ष के अन्त में कश्मीर के दक्षिण पूर्व स्थित मुसलमान जन जातियों का पुर्नदमन किया गया जिन्होंने

१—मरे, 'रणजीत सिंह,' पृ० १०४, १०८; तथा सर आक्टरलोनी का पत्र सरकार को, १३ अगस्त १८१४। महाराजा की वापसी के कुछ ही समय पश्चात् दीवान मोहकमचन्द की मृत्यु हो गयी थी।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सिक्खों के लौटते ही स्वयम् को स्वतंत्र समझ लिया था। सन् १८१६ ई० के प्रारम्भ में नूरपूर के विद्रोही पर्वतीय राजा ने आत्मसमर्पण करके सिक्खों से निर्वाह के लिए जागीर स्वीकार करने के स्थान पर ब्रिटिश क्षेत्रों में शरण लीं। इसके पश्चात् झंग के मुसलमान शासक को पराजित किया गया और डेरा इस्माइल खाँ के अधीनस्थ लेह से कर वसूला गया। चिनाब पर स्थित उच में सैयदों की बस्ती थी जिस पर फतेह सिंह अहलूवालिया ने अस्थायी रूप से अधिकार कर लिया और हाल ही में मृत, रामगढ़िया सरदार जोध सिंह तथा जस्सा बढ़ई (महाराजा के पिता का सहयोगी) के पुत्र के अधिकृत क्षेत्रों पर अधिकार कर के उन्हें लाहौर सरकार के राज्य क्षेत्र में मिला लिया गया। महाराज रणजीत सिंह ने संसार चन्द से व्यक्तिगत रूप से भेंट करके उसे सम्मानित व सावधान किया तथा सन् १८१६ के अन्त तक वे इस अभियान से पूर्ण सन्तुष्ट होकर वे अमृतसर लौट आए[1]।

१८१६-१६

रणजीतसिंह की मुल्तान विजय १८१८ ई०

पंजाब के उत्तरी मैदानों तथा निचली पहाड़ियों में महाराजा रणजीत की प्रभुसत्ता भलीभाँति स्थापित की जा चुकी थी, और वहाँ शासन कार्य व्यवस्थित रूप से चल रहा था, तथा दक्षिण एवम् पश्चिम में महाराजा के राज्य क्षेत्र की सीमा काबुल के नाममात्र के अथवा वास्तविक अधीनस्थ क्षेत्रों से मिली हुई थी, उन पर भी आक्रमण करने की योजना महाराजा ने बना रक्खी थी, परन्तु उनके अस्वस्थ होने के कारण यह योजना एक वर्ष के लिए स्थगित कर दी गई। उनका प्रथम लक्ष्य था मुल्तान, और सन् १८१८ ई के प्रारम्भ में एक सेना ने उस ओर कूच किया जिसका सेनापतित्व जम्मू के विजेता युवराज खड़क सिंह को दिया गया। मुल्तान पर आक्रमण करने के लिए महाराजा के पास कौन से कारण थे, यह प्रश्न कोई महत्व नहीं रखता क्योंकि महाराजा यह मानते थे कि जो कुछ भी प्राप्य हो, उसे पाने का प्रयत्न करना अफ़गानों के समान ही सिक्खों का भी अधिकार था, इसके अतिरिक्त मुल्तान के सूबेदार ने अहमदशाह के उत्तराधिकारियों के प्रति स्वामिभक्ति प्रदर्शित करने के स्थान पर स्वयम् को स्वतंत्र शासक मान लिया था। सिक्खों ने सूबेदार से एक लम्बी रकम की माँग की जिसे देने से उसने इनकार कर दिया। फरवरी माह के दौरान नगर तो सिक्खों

१—देखिए, मरे, 'रणजीत सिंह,' पृ० १०८, १११।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के हाथ आ गया, परन्तु जून माह के प्रारम्भ तक मुल्तान का किला अडिग और सुरक्षित रहा, और इस पर अधिकार करने में संयोग ने ही सिक्खों क सफलता दी। साधू सिंह नामक एक अकाली ने 'खालसा' का नारा बुलन्द करते हुए किले पर धावा कर दिया और उसके छोटे से दल के धावे की अचानकता ने सिक्खों को सफलता के द्वार तक पहुँचा दिया। जब सिक्खों ने इन मुट्ठी भर अकालियों के युद्धोन्माद को देखा तो वे जोश से भर उठे; वे दीवालों पर चढ़ने की सामग्रियों के साथ किले के निकट जा पहुँचे और चार माह की गोलाबारी से जर्जर प्रायः दीवालों में बन गए दर्रों से सरलतापूर्वक किले में प्रवेश कर गए। सूबेदार मुज़फ्फर खाँ तथा उसके दो पुत्र किले के अन्दर की लड़ाई में मारे गए, तथा दो अन्य पुत्रों को बन्दी बना लिया गया।[1] लूट के माल का अधिकांश सैनिकों के भाग में पड़ा, परन्तु जब

१८१८ इस विजय के उपरान्त सिक्ख सेना लाहौर पहुँची तो महाराजा ने निर्देश दिया कि लूट का सारा माल सैनिकों द्वारा वापस कर दिया जाना चाहिए; उन्होंने इसमें गर्व का अनुभव किया होगा कि उनकी आज्ञाओं के पालन में उनके सैनिक अधिक असावधानी नहीं दिखाते थे, परन्तु इस अवसर पर उन्होंने शिकायत की उनकी उक्त आज्ञा का परिणाम उतना लाभजनक नहीं हुआ जितनी उन्हें आशा थी।[2]

२—[देखिये आसबोर्न ('रणजीत सिंह, 'कलकत्ता संस्करण, १९५२, पृ० ५५) जिसके अनुसार साधूसिंह के इस साहसिक कार्य से प्रेरित सिक्खों के प्रबल आक्रमण में मुज़फ्फर खाँ के साथ उसके चार पुत्र मारे गये थे अनुवादक]

१—उस विजय की तिथि २ जून १८१८; देखिये मरे, 'रणजीत सिंह पृ० ११४। महाराजा ने मि० मूर क्राफ्ट को बताया था कि इस प्रकार लूट के माल की वापसी के आदेश से जो धन वापस हुआ वह कुल लूट का साधारण सा ही अंश था (मूरक्राफ्ट, 'ट्रबेल्स' १।१०२)। सन् १७७९ ई० में जब भंगी मिसलवालों को निष्कासित किया गया था, उसी समय से मुल्तान सूबेदार मुज़फ्फर खाँ के ही अधिकार में था। सन् १८०७ ई० में वह हज़ करने के लिए मक्का गया था, और दो वर्षों तक शासन भार उसके पुत्र सरफराज़ खाँ के हाथ में रहा। रणजीत सिंह के अन्तिम अभियान के समय, बहावलपुर वृत्तान्त के अनुसार, वृद्ध सूबेदार ने अपने परिवार को सतलज पार भेजने का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया था, ऐसा उसने आत्मविश्वास के कारण किया था या निराश हो कर, यह नहीं कहा जा सकता।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इसी वर्ष अर्थात् सन् १८१८ के दौरान शाह महमूद के पुत्र, तथा नाममात्र के शासक के हाथों काबुल के वज़ीर, फतेह खाँ का वध कर दिया गया। घटना इस प्रकार है। ईरानियों के एक हमले का प्रतिरोध करने के लिए वज़ीर फ़तेह खाँ को हेरात भेजा गया था। दोस्त मुहम्मद के सहयोगियों में जयसिंह अटारीवाला नामक एक सिक्ख सरदार था जिसने महाराजा से असन्तुष्ट होकर पंजाब छोड़ दिया था; ईरानियों का सर कुचलने में सफलता प्राप्त करके वज़ीर फतेह खाँ सर्वत्र प्रशंसा का पात्र बना उस समय हेरात अहमदशाह के परिवार के एक सदस्य के हाथ में था, परन्तु वजीर की आन्तरिक इच्छा हेरात को अपने व्यक्तिगत अधिकार में रखने की थी, जिसकी पूर्ति के लिए उसने दोस्त मुहम्मद तथा उसके सिक्ख मित्र जयसिंह को वहाँ के शाहजादा-सूबेदार के विरुद्ध आतंकपूर्ण कार्यवाहियों का कार्य सौंपा। दोस्त मुहम्मद ने अपना कार्य अत्यन्त असभ्य ढंग से पूरा किया, और उसके बन्दूकचियों ने जवाहरातों के लोभ में शाही परिवार की एक महिला को हाथ लगा दिया। शाहजादा सूबेदार कामरान ने रिश्ते में बहन लगने वाली उक्त महिला के अपमान को उस व्यक्ति से मुक्ति पाने का बहाना बना लिया, जो प्रारम्भ से ही उसके परिवार पर अत्याचार करता आ रहा था। पहले फतेह खाँ को अन्धा कर दिया गया और फिर उसका वध कर डाला गया। कामरान के इस अपराध से हेरात तो अवश्य अहमदशाह के वारिसों के हाथ में बना रह गया परन्तु वे कुछ समय के लिए, तथा अब सदैव के लिए अपने पूर्व पुरुषों द्वारा विजित अन्य क्षेत्रों से वंचित हो गए। इन घटनाओं का समाचार पाकर कश्मीर के अफ़गान सूबेदार मुरम्मद अजीम खाँ ने कश्मीर का शासन-भार अपने ही एक भाई, जब्बार खाँ के ऊपर छोड़ा, तथा स्वयम् तीव्रगति से काबुल की ओर बढ़ा। प्रारम्भ में तो उसने शाहशुजा को ही काबुल की सल्तनत में पुनर्प्रतिष्ठत करने का इरादा किया, परन्तु अन्त में उसने अपना विचार परिवर्तित कर दिया, शाह अयूब को काबुल का शाह घोषित किया और कुछ ही महीनों में वह पेशावर व गजनी तथा काबुल व कन्दहार का स्वामी बन बैठा। काबुल की सल्तनत में हुए इन परिवर्तनों ने रणजीतसिंह के विचारों के प्रति अनुकूलता प्रकट की

काबुल के वज़ीर फ़तेह खाँ का वध १८१८

१८१८-१९

मुहम्मद अज़ीम द्वारा शाह अयूब का सुल्तान घोषित किया

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जाना रणजीत सिंह द्वारा पेशावर की ओर कूच

और सन् १८१८ ई० के लगभग अन्त में सिन्ध नदी को पार करते हुए पेशावर में प्रवेश करने पर महाराजा को नगर खाली मिला, परन्तु उनकी योजनाओं की दृष्टि से इस जिले पर अधिकार बनाए रखने में कोई औचित्य नहीं था; भविष्य की कार्यवाहियों तथा मार्ग पर नियंत्रण रखने के लिए उन्होंने नदी के दाहिने तट पर स्थित खैराबाद को सैनिक दृष्टि से सुदृढ़ बनाया; उन्होंने अटक के अपने पुराने सहयोगी, जहाँदाद खाँ को पेशावर का शासन, भार सौंप कर उससे कहा कि वह अपने ही साधनों के बल पर पेशावर को अपने अधिकार में रख सके तो रक्खे, और स्वयम् वापस लौट गए। रणजीतसिंह के पीठ फेरते ही पेशावर का भागा हुआ बारकज़ई सूबेदार यार मुहम्मद खाँ वापस लौट आया, और शक्तिहीन जहाँदाद खाँ ने बिना किसी विरोध के प्रयास के उपहार स्वरूप प्राप्त पेशावर को चुपचाप सूबेदार को सौंप दिया।[1]

कश्मीर पर रणजीत सिंह की दृष्टि परन्तु अंग्रेजों से विवाद के कारण विलम्ब - मार्च १८१९:

अब रणजीत सिंह ने पुनः अपनी दृष्टि कश्मीर विजय पर केन्द्रित की जिसके विरुद्ध वे पहले भी अनेक प्रयास कर चुके थे : मुहम्मद अजीम खाँ अनेक अच्छी टुकड़ियों को अपने साथ काबुल की ओर लेता गया था, अतः कश्मीर की रक्षक सेना कुछ निर्बल पड़ गई थी, परन्तु इसी समय देसासिंह मजीठिया तथा संसार चन्द की गतिविधियों ने कुछ ऐसा रूप धारण कर लिया था कि महाराजा को दूसरों पर हमला करने के स्थान पर स्वयम् आत्मरक्षा की चिन्ता करनी पड़ी। महाराजा की ओर से उक्त दोनों सरदारों को पर्वतीय क्षेत्रों से बकाया कर वसूलने के लिए नियुक्त किया गया गया था, और सतलज के दोनों तटों पर स्थित कुछ क्षेत्रों के स्वामी, कहलूर के राजा ने कर देने से इनकार कर देने का दुस्साहस किया। कहलूर के राजा ने संसार चन्द के विरुद्ध एक समय गुरखों की सहायता की थी, अतः संसारचन्द को इस पुराने शत्रु से बदला लेने का अच्छा अवसर मिल गया। संसार चन्द तथा देसा सिंह ने सतलज पार कर

१८१८-२०

१—देखिए, मरे, 'रणजीत सिंह' 'पृ० ११७, १२०; शाहशुजा, 'आटोबायोग्राफी, 'अध्याय २७, तथा मुन्शी मोहन लाल, 'लाइफ आव दोस्त मुहम्मद, '१:९९, १०४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

लिया, परन्तु ब्रिटिश अधिकारी भी सन्नद्ध थे; दोनों पक्षों की सेनाएँ आमने-सामने डट गईं; महाराजा ने यह समाचार पाते ही सिक्ख सैनिकों को अविलम्ब पीछे लौटने का आदेश भेजा, साथ ही उन्होंने सरदार देसा सिंह को ब्रिटिश एजेण्ट से, व्यक्तिगत रूप से जाकर क्षमा प्रार्थना करने के लिए कहा।[1] इस विवाद से मुक्त हो जाने के पश्चात् महाराजा ने कश्मीर के विरुद्ध अपनी तैयारियों को आगे बढ़ाया; इस बीच कश्मीर स्थित रक्षासेना की सहायता के लिए काबुल से कुछ और टुकड़ियाँ आ गईं थीं। मुल्तान विजय में सारी कार्यवाहियों का वास्तविक नियामक, ब्राह्मण दीवानचन्द ने सेना का अग्रभाग सँभाला, राजकुमार खड़क सिंह को एक सहायक टुकड़ी का नेतृत्व दिया गया तथा एक सुरक्षित सेना के साथ अगली टुकड़ियों को आवश्यकता पड़ने पर आवश्यक युद्ध सामग्री व अन्य सहायता पहुँचाने के ध्येय से महाराजा रणजीत सिंह पीछे रह गए। अश्वारोही टुकड़ी के चुने सुए वीर, पैदल सेना के साथ ही पैदल ही श्रेणियों की चढ़ाइयों पर चल पड़े और अपने साथ कुछ हल्की तोपें भी खींचते चले; ५ जुलाई सन् १८१९ को वे दर्रों तक पहुँच गए, परन्तु जब्बार खाँ उनका सामना करने के लिए तैयार खड़ा था। अफगानों ने आक्रामक सिक्खों को पहले ही धक्के में पीछे लौटने पर विवश कर दिया, साथ ही उनकी दो तोपों पर भी अधिकार कर लिया; परन्तु इस सफलता से वे कोई लाभ न उठा सके; सिक्खों ने एक बड़ी संख्या में उन पर फिर आक्रमण कर दिया और लगभग बिना रक्तपात किए ही विजय प्राप्त की।[2]

कश्मीर विजय १८१९:

कश्मीर को लाहौर के राज्यक्षेत्र में मिला लेने के कुछ माह पश्चात् स्वयम् महाराजा रणजीत सिंह पंजाब के दक्षिण स्थित क्षेत्रों की ओर बढ़े, और विजयी सिक्खों ने सिन्ध पर स्थित डेरागाजी नामक एक अन्य स्थान पर अधिकार कर लिया जो अब तक काबुल के राज्य में सम्मिलित था। सिन्ध और चिनाब नदियों के बीच स्थित क्षेत्र पर बहावलपुर के नवाब का अधिकार था, जो स्वयम् महाराजा के आधीन रहकर शासन कार्य चलाता था। नवाब ने दो वर्ष पूर्व डेरागाजी खाँ के दुर्रानी

डेराजाट का लाहौर राज्य में मिलाया जाना १८१९-२०:

१—देखिए, मरे, 'रणजीत सिंह, 'पृ० १२१, १२२, तथा मूरक्राफ्ट 'ट्रवेल्स, '११०।

२—देखिए मरे, 'रणजीत सिंह' 'पृ० १२२, २४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सरदार पर एक सफल आक्रमण किया था, और उस पर उसका अधिकार अभी तक स्थित था; यद्यपि सिस-सतलज क्षेत्र में उसके द्वारा अधिकृत भूभाग औपचारिक नहीं, बल्कि वास्तविक रूप से ब्रिटिश संरक्षण में ले लिया गया था, और इस प्रकार नवाब एक तरह से महाराजा के प्रभाव से मुक्त हो चुका था।[1]

१८१८-२१

सन् १८२० ई० के दौरान कश्मीर के दक्षिण पश्चिम में उपद्रवी मुस्लिम जन जातियों का दमन करने के लिए आंशिक प्रयत्न किए गए तथा सन् १८२१ ई० में महाराजा मध्य सिन्ध क्षेत्र में अपनी विजयों को पूर्ण करने के लिए डेरा इस्माइल खां की ओर बढ़े। मनकेरा का सुदृढ़ दुर्ग-जो पंजाब की सबसे पश्चिम में बहने वाली दो नदियों के बीच स्थित था—इधर कुछ समय से हाफिज अहमद खाँ के अधिकारों में था; वह उस सूबेदार का पिता था जो काबुल की सत्ता को नाममात्र के लिए भी स्वीकार नहीं करता था। वर्ष के अन्त तक सम्माननीय शर्तों के वादे पर हाफिज अहमद खाँ ने महाराजा के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया, तथा डेरा इस्माइल खाँ सहित सिन्ध के दाहिने तट पर स्थित क्षेत्र उसे देकर उसे लाहौर दरबार के अधीन घोषित किया गया।[2]

फतेह खाँ की मृत्यु के पश्चात् काबुल की वजारत मुहम्मद अजीम खाँ ने प्राप्त कर ली थी। वह महाराजा रणजीत सिंह को सिन्ध के बाएँ तट ही सीमित रखने की आकांक्षा रखता था, और इसी इच्छा से उसने सन् १८२२ ई० में पेशावर की ओर कूच कर दिया, इस अभियान में उसके साथ भगोड़ा सिक्ख सरदार जयसिंह भी था। मुहम्मद अजीम खाँ का सर्व प्रथम लक्ष्य था, अटक के विपरीत स्थित खैराबाद पर आक्रमण करना, परन्तु इसी

पेशावर पर अधिकार करने का इच्छुक

१—सरकार का पत्र अम्बाला के सुपरिण्टेण्डेण्ट को, १५ जनवरी १८१५, तथा सर आक्टरलोनी का पत्र सरकार को २३ जुलाई १८१५—देखिए मरे, 'रणजीत सिंह' 'पृ० १२४। बहावलपुर संस्मरणों से ज्ञात होता है कि बहावलपुर पर अधिकार करने के ध्येय से महाराजा सतलज क्षेत्र में पाक पत्तन तक पहुँच गये थे, परन्तु कुछ विरोध का आभास, साथ ही कुछ भेंट पाकर वे पश्चिम की ओर बढ़ गये थे।

२—मरे, 'रणजीत सिंह' 'पृ० १२९, १३०, तथा सर ए० बर्नेस, 'काबुल' 'पृ० ९२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मुहम्मद अजीम खाँ १८१८-२१

रणजीत सिंह द्वारा पेशावर से कर वसूलना १८२२

बीच कुछ अन्य विवादों के कारण उसे तेजी से पीछे लौटना पड़ा, इधर उसके अभियान का समाचार पाकर महाराजा रणजीत सिंह पश्चिम की ओर बढ़े और पेशावर के सूबेदार यार मुहम्मद खाँ से खिराज की माँग की। यार मुहम्मद खाँ जितना महाराजा से भयभीत रहता था, उतना ही अपने भाई मुहम्मद अजीम खाँ के कुचक्रों से भी डरता था, अतः उसने कुछ कीमती घोड़े उपहार में देकर रणजीत सिंह को सन्तुष्ट किया[1]। उन्होंने यार मुहम्मद को और परेशान करके पीछे लौटने का निश्चय किया क्योंकि ह्वदनी नामक एक स्थान के अधिकार के सम्बन्ध में ब्रिटिश अधिकारियों के समक्ष कुछ विवाद आ उपस्थित हुआ था; यह स्थान सतलज के दक्षिण में स्थित था जिसका अधिकार महाराजा ने सन् १८०८ ई० में अपनी महत्वाकांक्षिणी सास सदाकौर के नाम परिवर्तित कर दिया था। चूँकि यह स्थान अंग्रेजों की सीमा की ओर था और ब्रिटिश एजेण्ट इस महिला को सिक्खों के कन्हया मिसल के हितों का स्वतन्त्र प्रतिनिधि मानते थे, अतः उनके अनुसार इस स्थान को ब्रिटिश संरक्षण प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त था; परन्तु रणजीत सिंह ने अपनी कुचक्रप्रिया सास से झगड़ा करके उसे कैद कर लिया था और ह्वदनी के गढ़ को अपने अधिकार में ले लिया था। इस गढ़ से उन्हें बलात् बाहर निकालने का निश्चय किया गया; लुधियाना से ब्रिटिश सेना की एक टुकड़ी ने कूच किया और बन्दी विधवा सदाकौर को उसका खोया हुआ अधिकार वापस दिलाया। महाराजा रणजीत सिंह ने ब्रिटिश एजेण्ट के उक्त प्रयास का प्रतिरोध करना उचित न समझा; वे इस बात को भली भाँति समझते थे ह्वदनी पर उनके द्वारा अधिकार किए जाने के कार्य से अंग्रेजों की ओर से सन्धि की शर्तों को भंग करने का आरोप लगाया जा सकता था, अतः वे चुपचाप केवल सुरक्षात्मक तैयारियाँ करते रहे। इसी समय दिल्ली से उच्च अधिकारियों द्वारा भेजे गए एक मित्रतापूर्ण पत्र ने उन्हें आशंकाओं से मुक्त करते हुए यह आश्वसन भी दिया कि भविष्य में उनके द्वारा पेशावर के विरुद्ध किए गए प्रयत्नों में ब्रिटिश सरकार द्वारा कोई हस्तक्षेप नहीं किया जायगा।[2]

१८२२-२३

३—मरे, 'रणजीत सिंह' पृ० १३४, ७।

१—देखिये मरे, 'रणजीत सिंह, पृ० १३४; जहाँ इन गति विधियों का

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जब मुहम्मद अजीम खाँ ने पेशावर के सूबेदार यार मुहम्मद खाँ द्वारा महाराजा को भेंट में घोड़े दिए जाने का समाचार पाया तो उसे बहुत बुरा लगा और सन् १८२३ ई० के जनवरी मास तक वह पेशावर आ पहुँचा। यार मुहम्मद, अपने भाई के आने की खबर पाकर उससे मुलाकात करने का साहस न कर सका और उसुफजई की पहाड़ियों की ओर भाग गया।

पेशावर अभियान १८२३:

उधर सिक्ख महाराजा पेशावर पर अपने समान अधिकार अथवा शक्ति की श्रेष्ठता के दावो के साथ सर पर आ पहुँचा था। सन् १८२३ ई० की १३ वीं मार्च को सिक्ख सेना ने सिन्ध नदी को पार किया, और तोपों को हाथियों द्वारा लाया गया। नदी के पार ही स्थित खट्टकों द्वारा अधिकृत भूभाग पर अधिकार कर लिया गया और अकोए पहुँचने पर जयसिंह अटारीवाला ने उनसे भेंट करके क्षमा प्रार्थना की, जिसे महाराजा ने उदारतापूर्वक क्षमा कर दिया। मौलवी-मुल्लाओं ने खट्टक व उसुफजई जनजातियों के लगभग बीस हजार जवानों को एकत्रित किया और इन काफिर आक्रमकों से इस्लाम को बचाने के लिये उन्होंने उन जवानों को धर्म-युद्ध या जेहाद के लिए उत्तेजित किया। मुस्लिम जवानों के इस दल को नोशहरा के निकट और आसपास के भाग की ऊँचाइयों

उल्लेख अत्यन्त संक्षेप में है, और जिसकी सत्यता सन्दिग्ध है–कैप्टेन मरे व कैप्टेन रास द्वारा दिल्ली के रेज़िडेण्ट को लिखे गए पत्र (फरवरी–सितम्बर, १८२२), इस सम्बन्ध में विस्तृत विवरण देते हैं; इस सम्बन्ध में अन्य सूचनायें निम्न पत्रों में मिलती हैं–सर डी० आक्टरलोनी के पत्र, कैप्टेन रास को–७ नवम्बर १८२१; गवर्नर जनरल के दिल्ली के एजेण्ट का पत्र कैप्टेन मरे को २२ जून, तथा सरकार को, २३ अगस्त १८२२; सरकार के पत्र गवर्नर जनरल के एजेण्ट को, २४ अप्रैल, १३ जुलाई व १८ अक्टूबर १८२२। इस अवसर पर अकाली फूलसिंह ने, कैप्टेन मरे की रिपोर्ट के अनुसार, अकेले ही ह्वदनी पर पुनः अधिकार कर लेने का दावा किया था, और रणजीत सिंह ने उसे एक हज़ार अकालियों की टुकड़ी बना लेने का निर्देश दिया था। सर क्लाड वेड ('नैरेटिव आंव पर्सनल सर्विसेज़, 'पृ० १०, नोट) के अनुसार सर चार्ल्स मेट कॉफ़ ह्वदनी के सम्बन्ध में अंग्रेज़ों की कार्यवाहियों को अनुचित मानते हुए कहा था कि महाराजा की घरेलू समस्याओं को अंग्रेज़ों द्वारा राजनैतिक समस्या का रूप नहीं दिया जाना चाहिये था।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पर तैनात कर दिया गया; ये जवान काबुल नदी के केवल बाएँ तट तक ही सीमित थे; परन्तु इन स्वतंत्र सैन्य दलों के ऊपर अपने प्रभाव के प्रति सन्दिग्ध होने, तथा अपने भाइयों की विश्वासघातपूर्ण प्रवृत्ति से आशंकित मुहम्मद अजीज खाँ नदी के दाहिने तट पर, काफी ऊँचाई पर स्वयम् भी सन्नद्ध था।

नोशहरा का युद्ध १४ मार्च १८२३:

वजीर को नियन्त्रण में रखने के लिए महाराजा ने एक टुकड़ी को अलग कर दिया, तथा सशस्त्र जनजातियों पर आक्रमण करने के ध्येय से नदी को पार किया। दीवाने सिक्ख अकालियों ने मुसलमान 'गाजियों' पर एकदम से धावा बोल दिया, परन्तु अमृतसर के अकालियों का दुस्साहसी व दुर्धर्ष सरदार फूलसिंह, पहली ही चपेट में मारा गया और उसके सवार पैदल मुस्लिम सैनिकों को कोई भी हानि नहीं पहुँचा सके जो पहले से ही सुरक्षित मोर्चों पर तैनात थे। इसके पश्चात् अफगान सैनिकों ने उमड़ती हुई पहाड़ी नदी की भाँति आगे बढ़कर महाराजा के प्रशिक्षित पदाति सैन्य को अस्त-व्यस्त कर दिया। इस बीच सिक्ख अपनी तोपों को विपरीत तट के कगार पर खींच ले गये थे; जिनकी सधी हुई गोलाबारी तथा पिछली बटेलियनों की बन्दूकों की गोलियों की बाढ़ ने अफगानों की गति को अवरुद्ध कर दिया, और अन्त में अश्वारोही सैन्य के साथ महाराजा के व्यक्तिगत शौर्य ने इस अवरोध को विजय में परिवर्तित कर दिया। पाँव उखड़ जाने के पश्चात् भी वीर और धर्मोत्साही मुस्लिम जवान पुनः एकत्रितहुए, और अगले दिन वे अपने 'पीरजादा' मुहम्मद अकबर के नेतृत्व में युद्ध करने की इच्छा प्रकट कर रहे थे, परन्तु काबुल का वजीर भाग खड़ा हुआ था, और उनका साहस टूट गया। पेशावर सिक्खो के हाथ आ गया और वहाँ से खैबर दर्रे तक के पूरे क्षेत्र में जमकर लूटपाट की गई; परन्तु पेशावर की जनता की विद्रोही प्रवृत्ति के कारण सूबे पर अधिक समय तक अधिकार बनाए रखना अत्यन्त कठिन एवम् हानिप्रद कार्य था, और इसे महसूस करते हुए महाराजा ने यारमुहम्मद द्वारा प्रस्तुत अधीनता के प्रस्ताव को प्रसन्नता से स्वीकार कर लिया। इस घटना के कुछ

१८२३-२४

ही समय पश्चात् मुहम्मद अज़ीम खाँ की मृत्यु हो गई, और उसकी मृत्यु के साथ ही उसके भाईयों के दलों में परिलक्षित ऊपरी एकता भी समाप्त हो गई जो पेशावर, काबुल और कन्दहार की राजधानियों के स्वामी बन बैठे थे जब कि शाह

यार मुहम्मद को पेशावर का सूबेदार बनाना मुह-

मुहम्मद और उसका पुत्र कामरान, हेरात में अपनी जर्जर सत्ता सम्भाले रहे, तथा शाह अयूब—जिसे मुहम्मद अज़ीम खाँ अफ़गानिस्तान का सुल्तान घोषित

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मुहम्मद अज़ीम खाँ की मृत्यु १८२३: कर चुका था—अपने ही राज्य के मुख्य नगर में शून्य बन कर रह गया था[1]।

रणजीत सिंह का सिन्धकी ओर प्रयाण १८२३-२४: सन् १८२३ ई० के लगभग अन्त में महाराजा रणजीत सिंह ने, विद्रोह की प्रवृत्ति प्रकट करने वाले मुसलमान जागीरदारों का दमन करने के ध्येय से अपने राज्य क्षेत्र के दक्षिणी पश्चिमी पार्श्व की ओर प्रयाण किया। इसी दौर में वे अपनी शक्ति की धाक सिन्ध की सरहदी इलाकों में भी जमाना चाहते थे, जहाँ के अमीरों से कर वसूलने के लिए वे पहले भी कुछ दावे पेश कर चुके थे[2]। वे शिकारपुर को भी तालपुर राजवंश से अपहृत क्षेत्र मानकर उसे भी अपना लक्ष्य बनाए हुए थे, परन्तु उनकी योजनायें अभी परिपक्व नहीं थीं; इसी समय संसार चन्द की मृत्यु का समाचार पाकर वे अपनी राजधानी को लौट आए।

१८२४ के अन्त में संसारचन्द की मृत्यु एक समय जिस राजा की शक्ति उनसे भी अधिक थी, उसी संसारचन्द के पुत्र के राज्य रोहण के लिए उन्होंने अपनी सहमति प्रकट की, और उनके अधिनस्थ कटोच

१—देखिये मरे, 'रणजीत सिंह, पृ० १३७; मूर क्राफ्ट, 'ट्रवेल्स, २;३३३ ३३४; तथा मेसन, 'जरनीज़. ,३:५८, ६०। रणजीत सिंह ने कैप्टेन वेड को बताया था कि उनकी अनुशासित टुकड़ियों में केवल गुरखे ही ऐसे थे जो मुसलमानों की तीव्र बाढ़ में दृढ़ता पूर्वक अड़े रहे थे (कैप्टेन वेड का पत्र दिल्ली के रेज़िडेण्ट को, ३ अप्रैल १८३६)।

अकाली फूला सिंह कुछ बर्बर प्रकृति का व्यक्ति था। उसने सन् १८०६ ई० में सर चार्ल्स मेटकॉफ के कैम्प पर तथा कुछ समय बाद सिस-सतलज रियासतों का सर्वे करने वाले एक ब्रिटिश अफ़सर के दल पर आक्रमण किया था। सन् १८१४, १५ ई० में जब फ़ीरोज़पुर व भटनेर के मध्य स्थित अबोहर अंग्रेज़ों को मिल गया था तब वह वहाँ मोर्चा बनाकर अड़ गया था (कैप्टेन मरे का पत्र दिल्ली के एजेण्ट को, १५ मई १८२३', और सन् १८२० ई० में उसने मि० मूरक्राफ्ट से कहा था कि वह रणजीतसिंह से असन्तुष्ट था, अंग्रेजों की सेवा में आने के लिए तैयार था और उनके कहने पर कहीं भी तलवार व आग के जोहर दिखा सकता था ('ट्रवेल्स', १:११०)।

२—कैप्टेन मरे का पत्र गवर्नर जनरल के दिल्ली के एजेण्ट, १५ दिसम्बर १८२५, तथा कैप्टेन वेड का पत्र दिल्ली के एजेण्ट को, ७ अगस्त १८२३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उत्तराधिकारी के साथ युवराज खड़क सिंह ने अपनी पगड़ी बदल कर भाई चारे की भावना प्रदर्शित की[1]।

रणजीत सिंह द्वारा अर्जित शक्ति पर एक दृष्टि

इस समय तक महाराजा रणजीतसिंह के अधिकार में पूर्वतः मुसलमानों द्वारा शासित तीन सूबे आ चुके थे—कश्मीर, मुल्तान तथा तेशावर; मुख्य पंजाब के मैदानी व पहाड़ी भागों में उनकी प्रभुसत्ता पूर्णतः स्थापित हो चुकी थी; उनके राज्य क्षेत्र का अधिकांश भाग स्वयम उनके अप्रतिय शौर्य द्वारा अर्जित की गई थी ; अब भी वे लदाख तथा सिन्ध अभियान की योजनाएँ बना रहे थे फिर भी उनके कार्यों की गाथा को कुछ समय के लिये स्थगित करके हमें कुछ अन्य ऐसे मामलात को भी लेना चाहिए जिनकी जानकारी उनके चरित्र को सही सही समझ सकने के लिए आवश्यक है, साथ ही देश के सामान्य इतिहास पर जिनका गहरा प्रभाव पड़ा है।

विभिन्न मामले- शिकारपुर व पेशावर के विरुद्ध शाह शुजा का अभियान- १८१८-२१:

जैसा कि पीछे लिखा जा चुका है, सन् १८१६ ई० में शाहशुजा लुधियाना पहुँच कर सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिए अंग्रेजों द्वारा ५०००० रूपये वार्षिक की पेंशन पा गया, परन्तु उसके विचार अभी भी काबुल व कन्दहार पर ही केन्द्रित थे। अंग्रेज उसे दया का पात्र समझते थे, और उसके साथ ऐसा ही व्यवहार भी करते थे, परन्तु शाहशुजा उनकी इस मनोवृत्ति को नापसन्द करता था; वह चाहता था कि उसे एक विपत्ति ग्रस्त बादशाह समझा जाय वह अपने खोये हुए राज्य को पुनः प्राप्त करने के लिए सहायता प्राप्त करने के प्रयास में भटक रहा था। सिन्ध के अमीरों ने सहायता का आश्वासन देकर उसे कुछ आशा दिलाई थी, परन्तु सम्भवतः इसलिये कि फतेह खाँ उन्हें आतांकित किए हुए था; इन अमीरों के भरोसे पर ही शाहशुजा ने सोचा था कि दक्षिण की ओर से अफ़गानिस्तान पर आक्रमण करने से सफलता की पर्याप्त सम्भावना हो सकती थी। उसने इस कार्य में सहायता देने के लिए अंग्रेजों को अनेक प्रलोभन दिये, परन्तु उन्होंने उसे साफ़ जवाब दे दिया था कि वे दूसरे के मामलों में हस्तक्षेप करने की नीति

१—मरे, 'रणजीतसिंह' पृ० १४ ; संसारचन्द, उसके परिवार, और उसके देश के रोचक विवरण के लिए देखिए मूरक्रॉफ्ट, 'ट्रवेल्स' १:१२६-४६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पसन्द नहीं करते, साथ ही उसे यह परामर्श भी दिया गया था कि यह अपने अन्य पड़ोसी सरदारों के साथ मिलजुल कर शेष जीवन शान्ति से व्यतीत करे। वह इसी प्रकार सहायता के लिये उद्योग कर रहा था कि उसी समय फतेह खाँ की मृत्यु हो गई; मुहम्मद अजीम खाँ ने उसके पास, सहायता देने का सन्देश भेजा, और उसने तुरन्त लुधियाना छोड़ने का निश्चय कर लिया। अक्टूबर सन् १८१८ ई० में वह वहाँ से रवाना हो गया; उसे सबसे पहली सहायता मिली बहावलपुर के नवाब की, जिससे उसने डेरा गाजी खाँ पर अधिकार किया। उसने अपने बेटे तैमूर को शिकारपुर पर आक्रमण करने के लिए भेज दिया और स्वयम् इस विश्वास के साथ पेशावर की ओर बढ़ा कि वहाँ उसे दुर्रानियों का सुल्तान मान लिया जायगा; परन्तु इस बीच मुहम्मद अजीम खाँ ने अपना निश्चय बदल दिया था और शाह अयूब को सुल्तान बनाकर स्वयम् को उसका वजीर घोषित कर चुका था। इस अप्रत्याशित धक्के से मर्माहत होकर शाहशुजा ने खैबर दर्रे में स्थित कुछ मित्रतापूर्ण जातियों का आश्रय ग्रहण किया। लगभग दो माह पश्चात् ही उसे वहाँ से भी पलायन करना पड़ा, और अभी वह मुश्किल से शिकारपुर पहुँच पाया था कि पीछा करते हुए वजीर मुहम्मद अजीम खाँ आ धमका और उसे वहाँ से भी भागना पड़ा। वह वहाँ से भाग कर पहले खैरपुर और फिर हैदराबाद पहुँचा जहाँ सिन्धियों से आर्थिक सहायता प्राप्त करके वह पुनः वापस लौटा, शिकारपुर पर अधिकार कर लिया और एक वर्ष तक वहीं रहा, परन्तु मुहम्मद अजीम फिर आ पहुँचा और शाहशुजा को आर्थिक सहायता देने वाले हैदराबाद के सरदारों ने इस बार अजीम खाँ का पक्ष ग्रहण करते हुए उसे बताया कि शाहशुजा अंग्रेजों की सहायता प्राप्त करने का प्रयास कर रहा था; उन्होंने इस बार मुहम्मद अजीम खाँ को धन दिया जिसका उपयोग शाहशुजा को मार भगाने के लिये किया गया। भूतपूर्व दुर्रानी सुल्तान शाहशुजा ने स्वयम् को असहाय पाकर राजपूताना होते हुए दिल्ली का मार्ग पकड़ा और सन् १८२१ ई० के जून माह में वह पुनः लुधियाना पहुँचा और अपने परिवार से मिला। उसका भाई, अन्धा शाह जमाँ ईरान तथा सम्भवतः अरब की भी यात्रा करके लगभग उसी समय, और लगभग उसी मार्ग से लुधियाना आ पहुँचा। ब्रिटिश सरकार द्वारा शाहशुजा को पेंशन के रूप में स्वीकृत ५०,००० रुपया उसकी अनुपस्थिति में भी उसके परिवार को प्रतिवर्ष मिलता रहा था जिसका प्रतिनिधित्व वफा बेगम

१८२१-२२

शाहशुजा वापस लुधियाना को १८२१; शाहजमां का भी वहीं पहुँचना

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अत्यंत योग्यता व वफादारी के साथ करती रहीं थीं। अब शाहजमाँ के आ पहुँचने और ब्रिटिश सरकार से सहायता की प्रार्थना पर उसके निर्वाह के लिए भी पहले १८०००, और फिर २४००० रूपये वार्षिक की पेंशन स्वीकृत की गई[1]।

१८२०-२१

नागपुर का पदच्युत राजा अप्पा साहब- १८२०-२२: रणजीत सिंह की सहायता प्राप्त करने का असफल प्रयासः शाहज़माँ के पुत्र हैदर के साथ उसकी मर्खता पूर्ण अभिसन्धियाँ: पुन्ततः जोधपुर में; मृत्यु सन् १८४० ई०

सन् १८२० ई० में नागपुर के मराठा राज्य का पदच्युत राधा अप्पा साहब, ब्रिटिश अधिकारियों की नज़र बन्दी से भाग निकला और अमृतसर जा पहुँचा। ऐसा लगता है कि उसके पास उस समय काफ़ी धन था, उसने महाराजा रणजीत सिंह को अपने पक्ष में लाने का प्रयास किया, परन्तु महाराजा को पहले ही यह बल दिया गया था कि नागपुर का भगोड़ा मराठा राजा उनके मित्र, अंग्रेज़ों का भयंकर शत्रु था, अतः उन्होंने उसे अपने राज्य की सीमा से अविलम्ब निकल जाने का आदेश दिया। वहाँ से भागकर अप्पा साहब, कटोच के राजा संसारचन्द के राज्यक्षेत्र में कुछ समय तक रहा, और इस बीच वह शाह ज़माँ के एक पुत्र शाहजादा हैदर के साथ सतलज के दक्षिण व पूर्व स्थित शेष भारत की विजय के हवाई किले बनाता रहा। उनकी बेसिर पैर की अभिसन्धियों की रूप रेखा के अनुसार दुर्रानी शाहज़ादा स्वयम् तो दिल्ली से कुमारी अन्तरीप तक के समस्त भूभाग का सम्राट होता और अप्पा साहब बनता दुर्रानी साम्राज्य का वज़ीर तथा अधीनस्थ राजा के रूप में दक्षिण भारत का राजा था। उनकी इस हवाई योजना में पंजाब को सम्मिलित नहीं किया गया था

१—देखिए शाहशुजा' 'आटोबायोग्राफी' अध्याय २७,२८,२९ तथा बहावल पुर फेमिली अनल्स' (पाण्डुलिपि); कैप्टेन मरे ('रणजीतसिंह,' पृ०१–१०१) केवल इतना ही कहता है कि शाहशुजा ने सिंहासन की पुनः प्राप्ति के लिए एक असफल प्रयास किया, परन्तु ऊपर लिखित विवरण के प्रमाण के रूप में निम्न पत्रों का उल्लेख किया जा सकता है—सरकार के पत्र रेजिडेण्ट, दिल्ली, को, १० मई व ७ जून १८१७; कैप्टेन मरे के पत्र रेजिडेण्ट दिल्ली को २२ दिसम्बर व १० अक्टूबर, १८१८ तथा १ अप्रैल, १८२५; कैप्टेन मरे के पत्र सर आक्टरलोनी को २९ अप्रैल, ३० जून व २७ अगस्त १८२१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

परन्तु उनकी इस बचकाना अभिसन्धि में संसारचन्द, महाराजा रणजीत सिंह अथवा दोनों पदच्युत दुर्रानी बादशाहों में से कोई भी सम्मिलित नहीं था, और ज्योंही उनकी योजना फूटी, संसारचन्द ने अपने अतिथि को कटोच के राज्य क्षेत्र से बाहर चले जाने के लिए विवश किया। सन् १८२२ में अप्पा साहब मण्डी पहुँचा जो कांगड़ा तथा सतलज के मध्य में स्थित है, सन् १८२८ ई० में उसने पुनः अमृतसर का भ्रमण किया और अगले वर्ष पंजाब छोड़कर शेष जीवन व्यतीत करने के लिए जोधपुर के राजा की शरण में चला गया। जोधपुर राज्य अंग्रेज़ों की अधीनता में था; अंग्रेज़ों ने वहाँ के राजा को, अप्पा साहब को सौंप देने को कहा, परन्तु राजपूतों द्वारा इस प्रस्ताव पर कड़ा विरोध प्रकट किए जाने पर ब्रिटिश सरकार ने राजा जोधपुर के इस वादे पर ही सन्तोष कर लिया कि उस पर कड़ी नज़र रक्खी जायगी। इसके पश्चात्

१८१६-२०

अप्पा साहब के विषय में इसके अतिरिक्त और कुछ भी ज्ञात नहीं हुआ कि सन् १८४० ई० में उसकी मृत्यु हो गई।[1]

रणजीत सिंह का एक अन्य साधारण शत्रु नूर पुर का पदच्युत राजा अंग्रेजों की शरण में :

जैसा हम पीछे देख चुके है, पर्वतीय भाग में स्थित एक छोटी सी रियासत के राजा वीरसिंह को सन् १८१६ में पदच्युत कर दिया गया था। वह सिंहासन खोने के पश्चात् आश्रय की खोज में सतलज के दक्षिण चला गया, और पहुँचते ही उसने शाहशुजा को—जो अभी हाल ही में विपत्तियों का मारा, लुधियाना पहुँचा था—महाराजा रणजीत सिंह के विरुद्ध अपनी योजना में सम्मिलित करने का प्रयास अविलम्ब प्रारम्भ कर दिया। जब महाराजा ने शाहशुजा को लाहौर में बन्दी-अतिथि बना रक्खा था, उस समय अनेक असन्तुष्ट सरदारों ने उनसे भी दुर्रानी के विरुद्ध सहायता की प्रार्थना की थी, और अपनी ओर से उन्हें ऐसे प्रस्तावों के प्रति कोई घृणा नहीं थी; उन्हें शाहशुजा और अंग्रेजों के मध्य हुई सन्धि का स्मरण था और वे जानते थे कि

१—देखिए मरे रणजीतसिंह, पृ० १२६; मूरक्राफ्ट, 'ट्रवेल्स,' १:१०६, 'बंगाल एण्ड आगरा गजेटियर'—१८४१ (जोधपुर व नागपुर पर लेख); कैप्टेन मरे के पत्र दिल्ली के रेजिडेण्ट को, २४ नवम्बर व २२ दिसम्बर १८२१, १३ जनवरी १८२२, तथा १६ जून १८२४; कैप्टेनवेड का पत्र रेजिडेण्ट दिल्ली को, १५, मार्च १८२८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

किसी भी महत्वाकांक्षी द्वारा सिंहासनच्युत राजाओं के माध्यम से कितना अधिक लाभ उठाया जा सकता था। नूरपुर के पदच्युत राजा के सम्बन्ध में अंग्रेजों की नीति क्या थी, यह महाराजा निश्चित रूप से जानना चाहते थे, परन्तु केवल नूरपुर के राजा की गतिविधियों के प्रति आशंका प्रकट करके वे अंग्रेजों के प्रति अपने सन्देह को छिपा ले गए। उन्होंने कहा कि मुल्तान के आसपास के क्षेत्र से उस समय उनकी सेना अनुपस्थित थी, और ऐसे में बीरसिंह सतलज पार करके उनके राज्य-क्षेत्र में अशान्ति व आतंक उत्पन्न कर सकता था। शाहशुजा द्वारा वीरसिंह के दूतों के स्वागत; लुधियाना में निष्कासित राजा के निवास स्थान व उसकी गतिविधियों के प्रति पूर्ण उपेक्षा प्रदर्शित की गई; परन्तु रणजीत सिंह को यह बता दिया गया कि बीरसिंह द्वारा खोए हुए राज्य की पुनः प्राप्ति के लिए प्रयत्न करने के अधिकार को मान लिया गया था, यद्यपि उसे यह अनुमति नहीं दी गई थी कि वह ब्रिटिश राज्य क्षेत्र में रहकर उक्त लक्ष्य के लिए योजनाएँ बनाए या शक्ति-संग्रह करे। महाराजा भी यह सोचकर सन्तुष्ट से प्रतीत हुए कि जब वे दक्षिण या पश्चिम में रहेंगे तो लाहौर सुरक्षित रहेगा, और उन्होंने इस विषय में अंग्रेजों से कोई और बात नहीं की[1]।

यात्री मूरक्राफ्ट पंजाब में-१८२०:

सन् १८१९ ई० में योग्य और साहसी अंग्रेज यात्री मूरक्राफ्ट ने यारकन्द व बुखारा पहुँचने की आशा में भारत के उत्तरी मैदान से विदा हुआ। पंजाब की पहाड़ियों में उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, और अन्ततः वह लाहौर दरबार में उपथित होने के लिए विवश हो गया। महाराजा ने उसका हार्दिक स्वागत किया, और यदि उनके हृदय में स्वयम् उसके, या उसकी सरकार के प्रति कोई सन्देह की भावना थी भी तो उसका शीघ्र ही निराकरण हो गया। महाराजा ने उसके व्यक्तिगत अनुभवों को जानने समझने की उन्मुक्त जिज्ञासा प्रकट की; उन्होंने उस यात्री को अपने अश्वारोहियों के दल व पैदल बटेलियनें दिखाईं,

---

१—यह विवरण अधिकांशतः सन् १८१६–१७ ई० के सरकारी पत्र व्यवहार, विशेषतः सरकार की ओर से दिल्ली के रेजिडेण्ट को लिखे गए ११ अप्रैल १८१७ के पत्र पर आधारित है। सन् १८२६ ई० में बीरसिंह ने अपने खोए अधिकार की प्राप्ति के लिए एक और प्रयास किया परन्तु इस बार उसे बन्दी बना लिया गया (मरे, 'रणजीतसिंह', पृ० १४५, तथा कैप्टेन मरे का पत्र दिल्ली के रेजिडेण्ट को, २५ फरवरी, १८१७); बाद में उसे मुक्त कर दिया गया था, और वह सन् १८४४ में जीवित था।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

और उसे अनुमति दी कि वह बिना किसी असमंजस या आशंका के, अपनी सुविधा व इच्छा के अनुसार राजधानी में किसी भी स्थान पर जा सकता है। मि० मूरक्राफ्ट ने चिकित्साशास्त्र में चातुर्य, सामान्यज्ञान, सभ्य व सज्जनोचित तौर तरीकों तथा व्यक्तिगत सक्रियता से न केवल अपने लिए, बल्कि अपने देशवासियों के लिये भी लाहौर में एक अनुकूल तथा लाभदायक वातावरण बना डाला, परन्तु उसके द्वारा रक्खे गये इस प्रस्ताव, की एक चुंगी की निश्चित दर पर ब्रिटिश व्यापार सामग्रियों को पंजाब में ले आने की अनुमति दी जाय, के प्रति उदासीनता प्रदर्शित की गई, महाराजा ने स्पष्टतः इनकार तो नहीं किया, परन्तु उन्होंने टालने के ध्येय से कहा कि इस विषय पर वे जिन अधिकारियों से परामर्श करते थे, उन्हें दूर के अभियानों पर भेज दिया गया था और उनकी अनुपस्थिति में इस सम्बन्ध में कोई निर्णय नहीं किया जा सकता था, विशेष रूप से इसलिए, कि ऐसी अनुमति का असर राज्य के राजस्व पर पड़ सकता था। मूरक्रॉफ्ट की यात्रा के लिए उसे प्रत्येक सम्भव सुविधा दी गई, और ऐसी व्यवस्था कर दी गई कि यदि वह तिब्बत से होते हुए यारकन्द न पहुँच सके तो वह कश्मीर से होते हुए काबुल व बुखारा पहुँच जाय। मूरक्रॉफ्ट सुरक्षित रूप से लद्दाख पहुँच गया और सन् १८२१ ई० में उसके अधिकार में रूसी मन्त्री प्रिंस नेसेल रोड का एक पत्र आया जिसके द्वारा उसने महाराजा रणजीत सिंह से एक रूसी व्यापारी के लिए सिफारिश की थी साथ ही आश्वासन भी दिया था कि पंजाब के व्यापारियों को रूसी राज्य में हर सम्भव सुविधा दी जायगी, क्योंकि रूस का सम्राट स्वयम् एक उदारशासक था, वह अन्य देशों की समृद्धि की इच्छा रखता था, और वह विशेष रूप से उस देश का शुभाकांक्षी था जो सिक्खों के राजा द्वारा शासित था। जिस व्यापारी को यह सिफारिशी पत्र दिया गया था वह रूस से कुछ दूर दक्षिण में, मार्ग में ही मर गया था, इस पत्र से ऐसा प्रकट होता था कि छः वर्ष पूर्व से ही लाहौर के महाराजा तथा लद्दाख के राजा के लिए उक्त व्यापारी रूस से इस प्रकार के पत्र लाया करता था[1]।

१८२१

अब रणजीत सिंह का राज्यक्षेत्र पर्याप्त विस्तार पा चुका था, और उसके जैसी स्थिति में कोई प्रशिक्षित शासक एक सुसंगठित शासन प्रणाली के निर्धारण

---

१ – मूर क्राफ्ट, 'ट्रवेल्स,' १:९९,१०३; रणजीतसिंह के लिए कुछ पहले लिखे गए एक अन्य पत्र के लिए देखिए 'ट्रवेल्स,' ३८३,३८७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तथा विखरे हुए प्रान्तों को एक संगठित साम्राज्य में परिवर्तित करने के ऐसे अच्छे अवसर का पूरा उपयोग करने का प्रयास करता परन्तु इस प्रकार का कार्य न तो महाराजा की प्रतिभा के और न सिक्खों की जातिगत प्रकृति के ही अनुकूल था, और सम्भवतः किसी भी राजनैतिक समुदाय के लिए ऐसी स्थिति अनुकूल सिद्ध नहीं होती कि उसकी सीमाएँ निश्चित कर दी जाँय या एक जाति की प्रबलता की भावना स्थिरता ग्रहण कर ले, जब तक कि इसकी विकासोन्मुख शक्ति नष्ट नहीं हो जाती, और परिवर्तन तथा विनाश के पथ पर चलने के लिए तत्पर नहीं हो जाती। महाराजा रणजीत सिंह ने गुरु नानक जी तथा गोबिन्द सिंह जी के सद्वचनों की अधिक व्यवहारिक विशिष्टताओं को ग्रहण किया, उन्होंने उनके उपदेशों में निति का सम्मिश्रण करके उन्हें अपनी सांसारिक महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के साधन के रूप में परिवर्तित कर लिया, और इस प्रकार वे गुरुवचनों पर श्रद्धा रखने वाले तथा आज्ञापालन में तत्पर सिक्ख जाति के निरंकुश सम्राट बन गये, परन्तु वे जानते थे कि उन्होंने उस शक्ति की अभिव्यक्ति का एक निश्चित मार्ग दे दिया जिसे वे न नष्ट कर सकते थे न नियन्त्रण में ही रख सकते थे[1], वे इस बात का अनुभव कर चुके थे कि सिक्खों को परस्पर कट मरने से रोकने के लिए उन्हें सैनिक अभियानों व दूर देशों में आक्रामक कार्यवाहियों में उलझा देना अत्यन्त आवश्यक था, ऐसा न करने पर यह भी सम्भव था कि वे स्वयम् ही उनकी द्वेषपूर्ण हिंसात्मक प्रवृत्ति के शिकार हो जाते। उभरते हुए सिक्खों की प्रथम राजनैतिक प्रणाली, अंशतः स्वयम् अपने आन्तरिक दोषों के कारण, अंशतः एक सुव्यवस्थित तथा सभ्य सरकार के निकट सम्पर्क के कारण तथा अंशतः एक श्रेष्ठतर मस्तिष्क की प्रबलता के परिणाम स्वरूप, टुकड़ी-टुकड़ी हो गई थी।

महाराजा रणजीत सिंह की सामान्य शासन प्रणाली; सिक्ख सेना के रूप में उसके साधन एवम् अधिकार

१८२१

१—[देखिए आसबोर्न, 'रणजीतसिंह,' पृ० ५४ जहाँ वह लिखता है कि किस प्रकार अकाली सिक्खों की उच्छृंखल व उद्धत प्रकृति को एक सही मार्ग पर लगाने के लिए उन्होंने अकालियों की अनियमित टुकड़ियाँ बनाई थीं; वह लिखता है, "वे उन्हें हमेशा किसी खतरनाक मुहिम पर तैनात करते हैं; और चूँकि वे दैत्यों की भाँति लड़ते हैं, अतः वे (महाराजा) उन्हें सदैव उपयोगी कार्यों में उलझाए रखते हैं"—अनुवादक]

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मिसलों का अस्तित्व समाप्त हो चला था, या उनका प्रतिनिधित्व करने वाले केवल दो ही मिसल रह गए थे--अहलूवालिया तथा पटियाला (या फुलकिया) जिनमें से एक का सरदार महाराजा रणजीत सिंह से व्यक्तिगत मित्रता पर निर्भर था तथा दूसरे का अधिकार क्षेत्र अलग अलग भागों में अंग्रेजों द्वारा अधिकृत था, परन्तु रणजीत सिंह ने यह कभी नहीं सोचा कि उनकी या सिक्खों की प्रभुसत्ता को केवल पंजाब तक ही सीमित रहना था, उनकी आकांक्षा सिक्ख सेना को उतनी दूर तक ले जाने की थी जहाँ तक कि खालसा के प्रति भक्ति तथा स्वयम् उनके (महाराजा के) रणकौशल के प्रति विश्वास से प्रेरित श्रद्धालु सिक्ख वीर जा सकें। प्रशासन की सैद्धान्तिक अथवा व्यवहारिक श्रेष्ठता के प्रति उन्होंनेकभी भी चिन्ता करने का कष्ट नहीं उठाया। वे अपने राज्य में एक प्रान्त को मिला लेना अपने निकटस्थ अंग्रेजी पड़ोसियों से यह आश्वासन प्राप्त करने की अपेक्षा अधिक अच्छा समझते थे कि व्यापारिक मामलों के सम्बन्ध में उनका विधान बुद्धिमत्ता पूर्ण था, अथवा यह कि उन्होंने अपने अर्धसभ्य व धर्मोन्मादी देशवासियों को सफलता पूर्वक एक सूत्र में आबद्ध कर दिया था। वे भूमि से अधिक से अधिक राजस्व प्राप्त करते थे जो सरलता से मिल सकता था, इसी प्रकार वे व्यापारियों से वह अधिकतम राशि लेते थे जिसे देकर भी व्यापारी स्वयम् को अन्याय से पीड़ित न महसूस करता, उन्होंने खुली लूटपाट को एकदम से समाप्त कर दिया था, सिक्ख किसानों को बहुत साधारण सा कर देना पड़ता था, किसी भी स्थानीय अधिकारी में खालसा के किसी सदस्य को सताने का साहस नहीं था। वे साधारणतया उन आदमियों को कोई दण्ड नहीं देते थे जो अपने प्रति किए गए अन्याय या अपमान का प्रतिकार स्वयम् कर लेते थे, यद्यपि महाराजा के अधीनस्थ कर्मचारी यथाशक्ति सुव्यवस्था बनाए रखने में तत्पर रहते थे, और प्रजा के जान माल की रक्षा का यथासम्भव प्रबन्ध करते थे। सिक्खों की समस्त सम्पत्ति तथा शक्तियों का उपयोग युद्ध की तैयारियों में, सैनिक साधनों व साजसज्जा के लिए किया जाया था। इस प्रकार पंजाब में भी वही प्रणाली प्रचलित्त थी जो अन्य सामन्तवादी शासनों में होती हैं, ऐसी प्रणाली व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं के लिए पर्याप्त अवसर एवम् क्षेत्र प्रदान करती है और चारित्र्य स्वतंत्रता उत्पन्न करने की प्रवृत्ति रखती है। ऐसी प्रणाली सिक्ख समाज की सामान्य प्रवृत्तियों के पूर्णतः अनुकूल था, उनके लिए नौकरी का अभाव नहीं था; युद्ध उनका स्वाभाविक व्यवसाय बन गया था, वे युद्ध से प्रेम करते थे और उन्हें इस बात से पर्याप्त प्रसन्नता होती थी कि खालसा के राज्य में जिले पर जिले

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मिलते जा रहे थे, साथ ही सिक्ख सैनिक व सरदार भी अपनी परिवारिक सम्पत्ति में वृद्धि करने का पूर्ण अवसर पाते रहने के कारण सन्तुष्ट रहते थे, परन्तु महाराजा रणजीत सिंह ने स्वयम् को कभी भी एक निर्रंकुश शासक के पद, या शक्तियों से विभूषित नहीं किया; धर्म के प्रति वे पूर्ण श्रद्धा एवम् भक्ति प्रदर्शित करते थे; प्रसिद्ध सन्तों का यथोचित सम्मान करते थे और धार्मिक समारोहों में व्यक्तिगत रूप से सम्मिलित होकर, दान के रूप में पर्याप्त धन-राशि वितरित करते थे; वे अपनी प्रत्येक विजय का श्रेय सर्व शक्तिमान ईश्वर की कृपा को देते थे और अपने सहित पूरे सिक्ख समाज को सामूहिक रूप से 'खालसा' के नाम से सम्बोधित करते थे। चाहे वे अपने सम्मानित गुरुओं के किसी सच्चे प्रतिनिधि के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए नंगे पाँव चलते होते या सिक्ख धर्म के प्रतीक, लम्बी दाढ़ी से युक्त किसी सैनिक को पुरस्कार देते; या धर्मोन्मादी अकालियों के सीमा से आगे बढ़ जाने पर उन्हें दण्ड देते[1] या किसी शत्रु सेना को पराजित करते या कोई नया सूबा जीतते-सारांश में, वे जो कुछ कभी उचित अनुचित करते थे, उसमें उनका अपना नाम और लक्ष्य परदे के पीछे रह जाता था; प्रत्येक कार्य गुरु के लिए खालसा की श्रीवृद्धि के लिए, और ईश्वर के नाम से किया जाता था।[2]

सन् ८२२ ई० में दो फ्रान्सीसी जनरल-वेण्टुरा तथा अलर्ड, ईरान् व अफगानिस्तान होते हुए लाहौर पहुँचे, थोड़ा सा असमंजस प्रकट करने के पश्चात्

१—देखिए आसबोर्न, 'रणजीत सिंह' '१८ जून १८३८ का संस्मरण, जहाँ वह अकालियों को भारत का सर्वाधिक उद्धत तथा अनुपयोगी' वर्ग बताता है; वह उनकी वीरता की प्रशंसा करता है परन्तु उनके उच्छृंखल व्यवहार के विषय में कहता है कि सैनिक रेजिमेण्ट के रूप में परेड करते समय भी ,महाराजा रणजीत सिंह को 'गालियाँ देते हैं, हर तरह से उनका अपमान करने का प्रयत्न करते हैं, और प्रायः उन्हें जान से मार देने की भी धमकी देते हैं,—एक ऐसी धमकी जिसे पूरा करने के वे कई प्रयत्न कर चुके हैं। महाराजा यह सब पूर्ण शान्ति से सहन करते हैं·· ···(और) जब वे डाका, हत्या या ऐसे ही किसी जुर्म में रंगे हाथ पकड़े जाते हैं, तो वे (महाराजा) कोई दया नहीं दिखाते, और ऐसे अपराधी अविलम्ब; अपने अपराधों की गम्भीरता के अनुसार नाक, कान या पैर से वंचित हो जाते हैं ."

२ - महाराजा राजकीय पत्र व्यवहार तथा वार्ता में सदैव 'खालसा' शब्द का प्रयोग करते थे। सामान्य सिक्ख परम्परा के अनुसार वे अपनी मुहर पर अपने नाम के साथ 'अकाल सहाय' लिखते थे।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

महाराजा ने उन्हें नियुक्त कर लिया और उच्च पद प्रदान किया।[1] प्रायः सिक्ख सेना की श्रेष्ठता का श्रेय इन दोनों फ्रान्सीसी

सिक्ख सेना: फ्रांसीसी अफसर-१८२२

अफसरों तथा उनके दो अन्य परवर्ती सहायकों-जनरल कोर्ट तथा एविटेबिल -- के परिश्रमों को दिया जाता रहा है, परन्तु वास्तव में सैनिकों के रूप में सिक्खों की श्रेष्ठता

अन्य सरकारों के समान ही सिक्ख सरकार की उपादेयता, व्यावहारिक क्षमता व भावनात्मक क्षेष्ठता के सम्बन्ध में पर्याप्त मत-वैभिन्य हैं; यह कथन अर्थहीन नहीं है कि सिक्खों की शासन व्यवस्था उनकी जातिगत प्रवृत्तियों के सर्वथा अनुकूल थी, और इस प्रकार की अनुकूलता प्राप्त करना, शासकीय वर्गों की सरकारों के लक्ष्यों में से एक माना जाता है। सिक्खों की व्यक्तिगत विशेषताओं पर विचार करते समय तत्कालीन सभ्यता की विशेषताओं का भी स्मरण किया जाना चाहिए, पंजाब की वर्तमान दशा उभरते हुऐ मध्यकालीन यूरोप तथा पतनोन्मुख बाइजेन्टाइन साम्राज्य के मिश्रित रूप का प्रतिनिधित्व करती है—अर्ध-बर्बर, परन्तु उत्साह तथा साहस से भरपूर, तथा उन कलाओं में से अनेक के बाहरी ज्ञान से युक्त, जो समाज के प्रगतिशील सोपानों में जनजीवन को विभूषित करती हैं।

फिर यह तथ्य—कि अमृतसर जैसे नगर का निर्माण सिक्खों द्वारा किया गया है, उनके अत्याचार या दोषपूर्ण प्रशासन से सम्बन्धित आरोपों का खण्डन करता है; कर्नल फ्रेंकालिन ('लाइफ ऑव शाह आलम' 'पृ० ७७) जब यह कहता है कि सिक्ख शासन में कृषि कार्य अत्यन्त परिश्रम से किया जाता था, तो वह तत्कालीन सामान्य मत को दुहराता भर है; मेसन ('जरनीज', १:३०, ३६८) को मुलतान में सिक्ख शासन के विरुद्ध कोई शिकायत नहीं सुनाई पड़ी थी, यद्यपि मूरक्राफ्ट कश्मीरियों की गिरी हुई दशा का अनुभव करता है (ट्रवेल्स '१:१२३) परन्तु उसे कुछ ही समय पूर्व पड़े भयंकर अकाल का चिन्ह भी नहीं दिखाई पड़ा जिसके कारण हज़ारों कश्मीरी गंगा के मैदान की ओर भाग गये थे; उसे तो यह भी मालूम नहीं हुआ कि कुछ ही समय पूर्व वहाँ, अत्याचार के लिए कुख्यात, अफ़गानों का शासन था। कश्मीरी ब्राह्मणों के अनेक परिवार अफ़गानों के कारण ही दिल्ली में आ बसे थे, और यह उल्लेखनीय है कि महाराजा के शासन के सुदृढ़ हो जाने पर ये ब्राह्मण पंजाब आ गये थे, जहाँ से अनेक परिवार अपनी मातृभूमि को भी लौट गए थे; यह बात भी सिक्ख शासन के उज्वल पक्ष का ही प्रमाण देती है।

१—मरे, 'रणजीत सिंह', पृ० १३१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

का श्रेय है उनकी चरित्रगत कठोरता, तथा कठिनाइयों को सहन करने की सामर्थ्य को; ग्राह्यता की उस भावना को, जो प्रत्येक नई जाति की स्वाभाविक विशेषता होती है; एक सामान्य लक्ष्य, हित और भाग्य की उस भावना को जिसे उनके महान गुरुओं ने उनके हृदयों में भर दिया था। राजपूतों एवम् पठानों को वीर तथा लड़ाकू जाति होने का सम्मान प्राप्त है; परन्तु उनको गर्व, साहस और शौर्य व्यक्तिगत होता है, और उनके सैनिकों के रूप में लिए इन गुणों का महत्व केवल इसलिए है कि वे प्राचीन राजपूत पठान मराठे एवम् उच्च परिवारों से सम्बन्ध रखते हैं। वे ऐसा कोई कार्य नहीं करेंगे जिससे उनके वंश पर कलंक लगे; परन्तु वे अपनी जाति व देश की राजनैतिक प्रगति की ओर से सर्वथा उदासीन होते हैं। एक विदेशी शासन के जुए को कन्धों से उतार फेंकने का जो प्रयत्न मराठों ने किया था, उसमें वे किसी निश्चित लक्ष्य या आशा द्वारा अनुप्राणित व प्रेरित नहीं हुए थे। जातिगत वीरता तथा सामूहिक प्रयास के बल पर वे स्वतन्त्र तो अवश्य हो गए, परन्तु उन्हें यह ज्ञात नहीं था कि स्वतन्त्रता को स्थायी कैसे बनाया जाता है; परिणाम यह हुआ कि स्वार्थपूर्ण कूटनीति में कुशल एक ब्राह्मण[1] ने अवसर पाकर उनके लक्ष्यहीन उत्साह को अपने स्वार्थों के अनुकूल मोड़ लिया और अशिक्षित मराठा सरदारों की सैनिक उपलब्धियों

१—[यहाँ लेखक का तात्पर्य नाना फड़नवीस से है जिसे सन् १७७५ ई० में पेशवा का दीवान नियुक्त किया गया था और जो २५ वर्षों तक मराठा राजनीति पर छाए रहने के पश्चात् सन् १८०० में मर गया। 'वह अंगेजों की—राजनैतिक प्रगति का पक्का विरोधी था, और वह किसी भी दशा में विदेशी सैनिकों की नियुक्ति पर आपत्ति करता था; परन्तु वह अपने राजनैतिक सम्बन्धों, सन्धियों आदि का पूरा ध्यान रखता था, और उसके लिए उसके समस्त समकालीनों के हृदय में जो आदर भाव था, उससे प्रकट होता है कि वह अपने राष्ट्र के सम्मान को बनाए रखने के लिए कितना प्रयत्नशील रहता था। उसके जीवन के अन्तिम चरण में उसे ऐसे विश्वासघाती तत्वों का सामना करना पड़ा कि उसे आत्मरक्षा के लिए कुचक्रों व दुरभिसन्धियों में लिप्त होना पड़ा, (मीडोज—टेलर)। उसकी मृत्यु के अवसर पर पूना के इंगलिश रेजिडेण्ट ने लिखा था, 'उसके साथ ही मराठा सरकार की सारी बुद्धि भी विदा हो गई" देखिए ग्राण्ट डफ हिस्ट्री आव द मराठाज़, '१८२६ का संस्करण पृ० १८८—सम्पादक]

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पेशसेवाओं की सत्ता स्थापित की। महत्वाकांक्षी सैनिकों ने शिवाजी द्वारा अनुप्राणित स्वातंत्र्य-भावना से भरपूर लाभ उठाया, पर, चूँकि इस वीर मराठा जननायक के कार्यों के पीछे कोई प्रबल धार्मिक कार्य-भावना नहीं थी, अतः आगे की कुछ पीढ़ियों ने मराठों को मुसलमानों की पतनोन्मुख शक्ति के आगे घुटने टेकते देखा; और आज शासकों के रूप में मराठों का जो अस्तित्व दिखाई पड़ता है उसका श्रेय यूरोपीय विदेशियों के हस्तक्षेप को दिया जाना चाहिए; सच पूछा जाय तो शिवाजी के काल का वीर मराठा अब शायद ही अस्तित्व में रह गया था, और पिछली सदी के तलवार तथा भाला चलाने वाले दो लाख मराठों ने पुनः गड़ेरियों तथा किसानों का जीवन व्यतीत करना आरम्भ कर दिया था। ठीक यही बात गुरखों पर भी लागू हो सकती है, जो भारत की एक अन्य ऐसी जाति है जो अपनी ही आन्तरिक प्रेरणा-शक्ति से महानता की ओर बढ़ी थी, तथा जिसके प्रयत्नों की पृष्ठभूमि में कोई भी धार्मिक भावना नहीं थी। उन्होंने अपनी सत्ता तो अवश्य स्थापित की परन्तु उनके विचार किसी विशेष संस्था को जन्म न दे सके, और मूल प्रेरक-शक्ति की प्रबलता एक मूर्खतापूर्ण धार्मिक परम्परा के अन्धविश्वासों तथा सामन्तवादी उपद्रवों के आगे निर्बल पड़ती जा रही है। भारत की उक्त चार लड़ाकू जातियों तथा इस पाँचवीं जाति-सिक्खों-के मध्य जो अन्तर है, वह एक ही नजर में स्पष्ट हो उठता है। सिक्ख केवल अपने आगे देखता है; उसकी युवाबुद्धि का लचीलापन, अत्यन्त उपयोगी प्रभावों को अविलम्ब ग्रहण करता है, या सर्वाधिक लाभदायक रूप धारणा करता है; उसका धर्म व विश्वास किसी भी विपत्ति में उसे सहारा देता है, और उसे विजय का आश्वासन देता रहता है।

राजपूत और पठान अब भी वैसे ही लड़ेंगे जैसे पृथ्वीराज लड़ा था, जैसे चंगेज खाँ लड़ा था, वे पूर्ण शस्त्र सज्जा के साथ घोड़ों पर सवार हो लेंगे, व्यक्तिगत रूप से वे युद्धक्षेत्र में तलवार व भाले के ऐसे हाथ दिखाएँगे कि आप दाँतों तले उँगली दबाएँगे, परन्तु इनमें से किसी भी जाति के अश्वारोही नियमित कतारों में खड़े होने तथा पैदल सैनिकों की बन्दूक का प्रयोग करने में अपना अपमान समझेंगे, यद्यपि मुसलमान, भारी तोपों को चलाने में सदैव ही वीरता, कुशलता एवम् क्षमता का प्रदर्शन करते रहे हैं। मराठा सैनिक भी यूरोपीय युद्ध प्रणाली के प्रति वैसा ही उपेक्षा भाव प्रदर्शित करता है, केवल गुरखों में ही पैदल सैनिकों की बटेलियनों का निर्माण करने की शक्ति है, जो एक सक्रिय अश्वारोही सैन्यदल या प्रशिक्षित तोपखाने की सहायता बिना ही

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अडिग रह सकती हैं। सिक्खों की प्रारम्भिक सेना मुख्यतः अश्वारोही थी, परन्तु प्रत्येक राष्ट्र की प्राचीन युद्ध प्रणाली के अवशेष धनुषबाण व भाले के स्थान पर सिक्ख सवारों ने कुछ ही समय पूर्व आविष्कृत, नई बन्दूकों (मैचलाक) को चलाने में कुशलता प्राप्त की।

प्रारम्भिक सिक्ख सेना मुख्यतः अश्वारोही: कुछ अंग्रेजों के मत:

सिक्खों की इस विशेषता, तथा अनियोजित व बिखरे हुए युद्धों में, इससे प्राप्य लाभों का जिक्र मि० फार्स्टर ने १७८३ ई० में किया[1]। सन् १८०५ ई० में सर जान माँलकम ने मराठा सवारों को सिक्ख सवारों से श्रेष्ठतर व अधिक युद्ध कुशल बताया[2]। परन्तु सन् १८१० ई० में सर डेविड आक्टरलोनी ने इस सम्बन्ध में अपना विचार प्रकट करते हुए कहा कि अपरीक्षित शक्ति के विश्वास पर देशगत साहस से युक्त एक सिक्ख सैनिक, सिन्धिया या होलकर के किसी अनुयायी की तुलना में अधिक प्रबल सिद्ध होगा, और उसी विश्वास के बल पर सिक्ख सैनिक एक प्रशिक्षित तथा सुसंचालित तोपखाने की बौछार का सामना करने का साहस कर सकता है[3]। गत शती के परस्पर संघर्ष में उलझे राष्ट्रों के विशिष्ट शस्त्र, कहावतों का रूप धारण कर चुके हैं और अब भी प्रायः सामान्य वार्ताओं में मराठी भाला, अफगानी तलवार, सिक्ख बन्दूक तथा अंग्रेजी तोप जैसे शब्दों का प्रयोग सुनाई पड़ता है। दूर दूर के युद्धों में ब्रिटिश सेनाओं की सिक्ख बटेलियनों ने अंग्रेजों की शक्ति का जो डंका बजाया उसका श्रेय भारत के वर्तमान शासक अपने समृद्ध तोपखाने की कार्यक्षमता को भले ही दे लें परन्तु वास्तविकता कुछ और ही है, यद्यपि अंग्रेजों के गर्व को इससे धक्का पहुँचता है, फिर भी यदि देखा जाय तो ज्ञात होगा कि यह सिक्खों का दुर्जय, व दृढ़ साहस ही था जिसके बल पर उन पैदल बटेलियनों ने दूर देशों में विजय प्राप्त कर अंग्रेजों के गौरव में वृद्धि की, फिर भी इस कथन को यथार्थ से परे, या अतिरंजित नहीं समझा जाना चाहिए कि अंग्रेजों के तोपखाने को प्रतिद्वन्दी शक्तियाँ ईर्ष्या की दृष्टि से देखती, और यह आकांक्षा प्रकट करती रही हैं कि काश, उनके पास भी ऐसा ही तोपखाना होता। सिन्धिया के अधीन डिब्वायन द्वारा संगठित नियमित बटे-

विभिन्न जातियों के विशिष्ट शस्त्रास्त्र :

१—फार्स्टर, 'ट्रवेल्स' '१:३३२।

२—माँलकम, 'स्केच' 'पृ० १५० १५१।

३—सर डेविड आक्टरलोनी का पत्र सरकार को—१ दिसम्बर १८१० ई०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

लियनों का, उनके तोपखाने से अलग कोई अस्तित्व नहीं था; और आज भी ब्रिटिश सिपाही तोपखाने के प्रति दृढ़ विश्वास के बल पर ही किसी भी, और कैसे भी अभियान के लिए तैयार रहता है[1]।

रणजीतसिंह ने एक बार स्वयम् कहा था कि सन् १८०५ ई० में वे लॉर्ड लेक की सेना का क्रम व अनुशासन देखने के लिए गये थे[2], और यह भी एक ज्ञात तथ्य है कि सन् १८०९ ई० में उन्होंने मि० मेटकाफ के साथ रक्षकों के रूप में आई छोटी सी ब्रिटिश टुकड़ी के अनुशासन की बड़ी प्रशंसा की थी जिसने क्रुद्ध अकालियों के एक अचानक धावे को विफल कर दिया था[3]। उसी समय से उन्होंने नियमित पद-सेना के संगठन पर ध्यान देना प्रारम्भ कर दिया था, और सन् १८१२ ई० में सर डेविड आक्टरलोनी ने हिन्दुस्तानियों सेना को अनुशासित की अनेक रेजिमेण्टों के साथ दो सिक्ख रेजिमेंटों को भी करने के लिए रण- देखा जिनकी ड्रिल ऐसे नायक करा रहे थे जिन्होंने

१—इस भावना से वे सभी लोग परिचित हैं जिन्हें भारतीय सैनिकों के सम्बन्ध में साधारण सा भी अनुभव है; एक तोपची (गनर) स्वयम् को एक बन्दूकची (मस्केटिय' से उच्चतर समझता है; जब बटेलियने विद्रोह पर उतारू हो जाती हैं तो वे अजनबियों को अपनी तोपों के पास नहीं जाने देतीं, और उन्हें पीछे छोड़कर, बिना उनकी आड़ के अच्छी तरह मोर्चाबन्द रेजिमेण्टें भी आगे नहीं बढ़ती ; इस प्रकार के एक युद्ध का उदाहरण पेरन ने जॉर्ज टामस से युद्ध करते समय प्रस्तुत किया था (मेजर स्मिथ, 'रेगुलर काप्स इन इण्डियन इम्पलॉय, 'पृ० २४)।

भारत की ब्रिटिश सेना में अधिकांश राजपूत और पठान हैं, कुछ ब्राह्मण भी हैं परन्तु वे लगभग सबके सब ऊपरी गंगा क्षेत्र के निवासी हैं जो पूर्णतः विजित होने तथा निरन्तर विदेशियों के सम्पर्क में रहने से चारित्रिक दृष्टि से कुछ परिष्कृत हो गए हैं; उनमें थोड़े बहुत जातिगत गुण अवश्य बचे रह गए हैं, परन्तु सैनिक दृष्टि से वे केवल पैसा कमाने के लिये सेना में हैं उनमें वह युद्ध प्रियता नहीं है जो क्षत्रियों व अफ़गानों का विशेष गुण है।

२—मूरक्राफ्ट, 'ट्रवेल्स '१:१०२ (इस तथ्य का उल्लेख सोहनलाल की डायरी में भी है जो रणजीत सिंह का कोर्ट वकील था—सम्पादक)।

३—मरे, 'रणजीत सिंह 'पृ० ६८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जीतसिंह के प्रयास : ब्रिटिश सेना को छोड़ दिया था[1]। अगले वर्ष ने २५ बटेलियनों के संगठन का निश्चय प्रकट किया[2] और गुरखों द्वारा ब्रिटिश सैन्यदलों के दृढ़ प्रतिरोध को देखकर अनुशासन की शक्ति के प्रति उनके विश्वास को और बल मिला। उसने गुरखों को अपनी सेना में नियुक्त करना प्रारम्भ किया[3], परन्तु उसने स्वयम् अपने ही देशवासियों को ऐसा प्रशिक्षण देने की ओर अधिक ध्यान दिया, और सन् १८२० ई० में मूरक्राफ्ट ने पैदल सिक्ख सैनिक को प्रशंसा की दृष्टि से देखा[4]। अपने देशवासियों को उनके परम्परागत शस्त्रों व युद्ध प्रणाली के मोह से मुक्त करने के लिए महाराजा को कम कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा था। उन्हें नवीन प्रणाली के प्रति प्रोत्साहित करने के लिए अच्छा वेतन देना तथा उनकी सज्जा व अभ्यास की ओर व्यक्तिगत रूप से ध्यान देने के अतिरिक्त महाराजा ने स्वयम् उनके लिए निर्धारित वर्दी पहनी और ड्रिल के विभिन्न अभ्यासों को स्वयम् करके दिखाया[5]। पुराने सरदारों ने इस नवीन प्रणाली के प्रति अपनी नापसन्दगी प्रकट की और वर्तमान प्रसिद्ध यंत्रशिल्पी और अनुशासन-विशेषज्ञ लहनासिंह के पिता देसासिंह मजीठिया ने मि० मूरक्राफ्ट के साथियों को विश्वास दिलाया था कि पेशवार, मुल्तान व कश्मीर को अनियमित सिक्ख अश्वारोहियों ने

---

१ व २ सर आक्टरलोनी का पत्र सरकार को क्रमशः २७ फरवरी १८१२ व ४ मार्च १८१३।

३—[आसबोर्न, 'रणजीत सिंह', १ जून सन् १८३८ का संस्मरण, मैंने उनकी (महाराजा की) गुरखा रेजिमेण्टों के विषय में कुछ प्रश्न पूछे, और यह भी कि वे उन्हें नियुक्त करने के लिए कैसे प्रबन्ध करते थे, क्योंकि नेपालियों की हमारे प्रति ईर्ष्या के कारण हम अपनी ही दो रेजिमेण्टों की संख्या पूरी नहीं रख पाते थे। उन्होंने उत्तर दिया कि उन्हें भी ऐसी कठिनाई का सामना करना पड़ता था परन्तु अधिक वेतन देकर वे अपनी रेजिमेण्ट को सँभाले रहते थे, यह बात मुझे बाद में ज्ञात हुआ कि बीस में एक से अधिक सच्चा गुरखा नहीं है, बल्कि वे मुख्यतः कश्मीर से आये थे, और चूँकि वे कद में छोटे और चुस्त होते हैं, अतः वे पहाड़ी युद्धों में उतने ही उपयोगी सिद्ध होते हैं।

४—मूरक्राफ्ट, 'ट्रवेल्स' १:९८, लाहौर की सेना में आज की तरह उस समय भी गुरखे थे।

५—लेखक को यह बात मुंशी शाहमत अली से ज्ञात हुई थी जिन्हें लोग सिक्खों अफ़गानों पर लिखी उनकी पुस्तक के माध्यम से अच्छी तरह जानते हैं।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ही जीता था[1], परन्तु सिक्खों की इस नापसन्दगी के बावजूद भी महाराजा के सतत प्रयत्न से धीरे-धीरे लोग अनुशासित पैदल सेना को पसन्द करने लगे, और अपनी मृत्यु के पूर्व रणजीतसिंह ने देखा कि सिक्खों ने इस नई प्रणाली को पूर्णतः अपना लिया था। बन्दूक तो उन्होंने पहले से ही अपना रक्खी थी, अब वे पैदल सैनिकों के रूप में सीधी कतारों में अनुशासित ढंग से खड़े होने के साथ ही तोपों पर काम करने में बहुत अधिक उत्साह प्रकट करने लगे थे।

जिस समय जनरल एलर्ड और वेण्टुरा ने महाराजा की सेवा में प्रवेश किया उस समय सिक्ख सेना परिवर्तनों की इस अवस्था से गुजर रही थी, और महाराजा के विचार भी ऐसे ही थे। ये फ्रांसीसी जनरल इस दृष्टि से भाग्यवान थे कि उन्हें कार्यारम्भ के लिए पहले से ही तैयार किया गया अनुकूल वातावरण मिल गया था, और कुशल अफसरों की भाँति उन्होंने

फ्रान्सीसी अफसरों के आगमन के पूर्व पंजाब में यूरोपीय सैनिक अनुशासन का प्रारम्भ :

उपलब्ध साधनों व अवसरों का भरपूर उपयोग किया। उन्होंने पहले से आरम्भ एक प्रणाली को सन्तोषजनक पूर्णता प्रदान की; परन्तु उनके परिश्रम का अधिकांश फ्रांसीसी 'वर्ड्स ऑव कमाण्ड', तथा सैनिकों को तीन कतारों में प्रशिक्षित करने में व्यय हुआ और ये सिक्खों में उत्कट साहस, सक्रिय आज्ञापालन, श्रम सहिष्णुता,

---

१—मूरक्राफ्ट, 'ट्रवेल्स', १:९८। अपने अधीनस्थ सरदारों द्वारा, आवश्यकता पड़ने पर सैनिक सहायता अर्पित किए जाने के सम्बन्ध में महाराजा ने साधारणतः यह नियम निर्धारित कर रक्खा था; ऐसे सरदारों के लिए, उनके द्वारा अधिकृत भूमि से होनेवाली आय के अनुसार प्रति ५०० रुपए की आय पर एक अश्वारोही देना आवश्यक था, साथ ही संकटकाल में अतिरिक्त सैनिक-सहायता के लिए तैयार रहने की आशा भी उनसे की जाती थी। इस अनुपात से जागीरदार अपनी कुल आय के आधे भाग का ही उपभोग कर पाता था, क्योंकि एक कुशल अश्वारोही की कीमत लगभग २५० रुपया प्रतिवर्ष होती है। तुर्कों में (रैन्के, 'ओटोमन इम्पायर', १८४३ का संस्करण, भूमिका, पृ० ५) में प्रथम तीन हज़ार 'अस्पर' (५० डालर या १२५ रुपया) की आय पर एक अश्वारोही, और इसके पश्चात् प्रति ५००० 'अस्पर' (२०८ रु०) की अतिरिक्त आय पर एक अतिरिक्त अश्वारोही लिया जाता था। इंग्लैण्ड में सत्रहवीं शती में सामन्तों की आय के प्रत्येक पाँच सौ पौण्ड पर उनसे एक अश्वारोही लिया जाता था (मैकाले, 'हिस्ट्री ऑव इंग्लैण्ड', १:२९१)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तथा अधिक समय तक थकावट न महसूस करने के गुणों के विकास पर उतना ध्यान नहीं दिया गया; यद्यपि अपने इन्हीं गुणों के बल पर सिक्ख साठ वर्ष पूर्व पर्याप्त यश अर्जित कर चुके थे, और इन्हीं विशेषताओं के कारण आज भी पैदल सिक्ख सैनिक, भारत के अन्य भागों से आए सैनिकों की तुलना में विशिष्ट नजर से देखे जाते हैं[1]। सच कहा जाय तो इन यूरोपीय अफसरों वेण्टुरा, एलर्ड, कोर्ट तथा एविटेबिल ने मिलकर जो कुछ किया, उससे उन्हें अनुशासित सिक्ख सेना का निर्माता होने का श्रेय नहीं दिया जा सकता, यह सम्भव है कि उनकी चारित्रिक स्वतंत्रता तथा योग्यता से सिक्खों को यूरोपीयों की श्रेष्ठता का विश्वास हो गया हो, परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि उनके द्वारा दिए गए सारे प्रशिक्षण के परिणाम स्वरूप सिक्ख सैनिकों की वास्तविक क्षमता में कोई विशेष वृद्धि हुई।

जैसा कि पीछे लिखा जा चुका है, बचपन में भी रणजीत सिंह की मँगनी कन्हया (या घनी) मिसल के युवा उत्तराधिकारी, सरदार गुरबख्श सिंह की

१—सिक्खों की इस श्रम सहिष्णुता के कुछ दृष्टान्तों के लिए देखिए फास्टर, 'ट्रवेल्स', १:३३२,३३३, मालकम, 'स्केच', पृ० १४१, मेसन, 'जरनीज़', १:४३३; कर्नल स्टीनबैक, 'पंजाब', पृ ६३,६४।

एक साधारण सिक्ख रेजिमेण्ट में एक कमाण्डर तथा एडजुटेण्ट, व प्रत्येक कम्पनी का एक अधीन अफ़सर होता था; सैनिकों का वेतन वख्शी के सहकारियों द्वारा वितरित किया जाता था, और हाज़िरी 'मुतसद्दियों' द्वारा ली जाती थी। हर रेजिमेण्ट के साथ एक 'ग्रन्थी' रहता था, जो सरकार से वेतन न पाने पर सैनिकों द्वारा निर्वाह के लिए सहायता पाता था। 'ग्रंथ' प्रायः रेजिमेण्ट के झण्डे के पास रहता था, और झण्डे का स्थान ही रेजिमेण्ट का हेड क्वार्टर होता था। प्रत्येक बटालियन के पास हल्के शिविरों व भारवाहक पशुओं की एक निश्चित संख्या रहती थी; प्रत्येक कम्पनी के लिए दो बावर्ची राज्य की ओर से दिए जाते थे। छावनियों में सिक्ख सैनिक अधिकांशतः बैरकों में रहते थे। [अब पंजाब की सेना के लिए बैरकों का पूर्ण प्रबन्ध हो गया है। रणजीतसिंह के अधीन सिक्ख सेना का पूरा संगठन रुचि की पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत करता है। कुछ ही समय पूर्व रणजीतसिंह की सेना के सम्बन्ध में शोध-कार्य प्रारम्भ किया गया है, और लाहौर सचिवालय के सिक्ख रिकार्डों के आधार पर यह शोधकार्य अभी चल ही रहा है; इस खोज के परिणाम के सम्बन्धमें देखें परिशिष्ट १९—सम्पादक]

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पुत्री मेहताब कौर से हो गई थी जिसने अपने पिता महान सिंह से ही युद्ध किया था। मेहताब कौर की माँ सदाकौर एक उच्च भावना से युक्त, महत्वाकांक्षिणी स्त्री थी, और लगभग १७९३ ई० में कन्हया मिसल का सरदार जयसिंह की मृत्यु हो जाने पर मिसल की कार्यवाहियों के संचालन पर उसका ही प्रभाव प्रबल था। उसने अपने युवा जामाता को प्रोत्साहित किया कि वह अपनी विधवा माँ को अधिकार च्युत करके इलाके की बागडोर अपने हाथ में लेले, और कहा जाता है कि केवल सत्रह वर्ष की आयु में न केवल अपने पिता द्वारा अधिकृत भूभाग का प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया; बल्कि अपनी माँ को चरित्रहीना घोषित कर उसे मार भी डाला। उनके राजनैतिक जीवन के प्रथम चरण में सदाकौर की सहायता अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई और कन्हया मिसल के सक्रिय सहयोग से ही वे लाहौर व अमृतसर के स्वामी बनने में सफल हुए। सम्भवतः इन सारी कार्यवाहियों के पीछे सदाकौर की यह आशा रही होगी कि रणजीत सिंह के उत्तराधिकारी की नानी तथा कन्हया मिसल की सरदारनी की हैसियत से वह सिक्खों की कार्यवाहियों पर प्रबल प्रभाव डालने में समर्थ हो सकेगी; परन्तु उसकी पुत्री मेहताब कौर सन्तान विहीन थी, और रणजीत सिंह स्वयम् इतने योग्य व नीतिकुशल थे कि उसे अपनी दाल गलती न दिखाई दी। सन् १८०७ ई० में ऐसा समझा गया कि मेहताब कौर गर्भवती थी, और ऐसा विश्वास किया जाता है उसने मेहताब के कथित वास्तव में एक पुत्री को जन्म दिया था[1] परन्तु जब पुत्र शेरसिंह व तारा- महाराजा एक दूर के अभियान से वापस लौटे तो सिंह रणजीत सिंह सदाकौर ने दो नवजात बालकों को मेहताब के जुड़वाँ

रणजीत सिंह का परिवार

१--[आसबोर्न, 'रणजीतसिंह', के २८ मई १८३८ के संस्मरण के दौरान शेरसिंह का परिचय देते हुए टिप्पणी में लिखता है, "वह रणजीतसिंह की एक पत्नी, मेहताब कुँवर के जुड़वाँ बच्चों में से एक है जिसने सन् १८०७ ई० में (कुछ समय की अनुपस्थिति के पश्चात् रणजीतसिंह के लाहौर लौटने पर) उसे दो पुत्र, शेर व तारासिंह सौंपे। इस महिला के चरित्र पर पहले से ही सन्देह किया जाता था, और उसके पति ने उन पुत्रों को अपनाने से इनकार कर दिया; उसने बाद में, शेरसिंह को तो कुछ सीमा तक स्वीकार कर लिया, जैसा कि उसे दिए गए सम्मान से प्रकट होता है, परन्तु तारासिंह पूर्णत उपेक्षित रह गया --अनुवादक]

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

द्वारा अमान्य १८०७ बेटे बताकर उनकी गोद में डाल दिया। महाराजा को सन्देह हो गया; और सम्भवतः वे आजीवन इसी बात पर विश्वास करते रहे कि शेरसिंह एक बढ़ई का पुत्र था तथा तारा-सिंह एक जुलाहे का, फिर भी सदाकौर इन दोनों बालकों का पालन पोषण यह मानकर करती रही कि रणजीत सिंह ने उन्हें अपना पुत्र मान लिया है, परन्तु सदाकौर ने शीघ्र ही यह अनुभव कर लिया कि इन दोनों बच्चों के नाम पर वह कोई भी शक्ति पाने में सफल न हो सकती थी,

सदाकौर के शत्रुता- और निराश विधवा ने सन् १८१० ई० में अंग्रेजों
पूर्ण विचार; १८१०: की शरण लेते हुए उन्हें बताया कि उसके जमाता ने उसके अधिकारों का अपहरण कर लिया है, साथ ही वह अपने नए मित्रों अंग्रेजों से युद्ध करने का संकल्प कर चुका है। उसकी इस प्रकार की वार्ताओं ने अंग्रेजों का ध्यान तो अवश्य आकृष्ट किया परन्तु महाराजा के विरुद्ध किसी युद्धात्मक कार्यवाही का संगठन करने में वह असफल रही, और अन्ततः वह एक प्रकार से दिल मसोस कर चुप हो रही। सन् १८२० ई० में महाराजा ने शेरसिंह को पुत्रवत् ग्रहण कर लिया जिससे कि सदाकौर की शक्ति को कुछ सीमा तक समाप्त किया जा सके। सदाकौर से कहा गया कि शेरसिंह के निर्वाह के लिए वह कन्हया मिसल के आधे भाग का अधिकार शेरसिंह को सौंप दे, परन्तु उसके इनकार कर देने पर महाराजा ने उसे पकड़ कर कारागार में डाल दिया और उसका समाप्त इलाका लाहौर राज्य में मिला लिया, परन्तु अन्त में, जैसा कि पीछे लिखा जा चुका है, अंग्रेजों के हस्तक्षेप से सतलज के दक्षिण स्थित ह्वदनी का छोटा इलाका उसे लौटा दिया गया।[1]

वचपन में ही रणजीत सिंह की सगाई नक्कई मिसल के एक सरदार, खजान सिंह की पुत्री से भी हुई थी, और सन् १८०२ ई० में महाराजा की इस पत्नी ने खड़क सिंह को जन्म दिया था जिसका पालन पोषण एक अन्य पत्नी से युवराज के रूप में किया जा रहा था। लगभग १० खड़क सिंह का जन्म वर्ष की अवस्था में, अर्थात् सन् १८१२ ई० में खड़क सिंह १८०१ खड़क सिंह का विवाह एक कन्हया सरदार की पुत्री से हुआ; जिसमें के पुत्र नौनिहाल सिंह बहुत धूमधाम की गई तथा प्रसन्नता प्रकट करने के का जन्म, १८२१: लिये अनेक जलसे किए गए। सन् १८१६ ई० में

१—मरे, 'रणजीतसिंह', पृ० ४६-५१,६३,१२७,१२८,१३४,१३५; सर डेविड आक्टरलोनी के पत्र सरकार को, १ व १० दिसम्बर १८१०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

महाराजा ने खड़क सिंह की माँ पर कुछ नियन्त्रण लगाए, क्योंकि उनके विचार से, राजकुमार के पालन पोषण के लिए उसकी माँ को जो जागीर दी गई थी, उसकी व्यवस्था में कुछ गड़बड़ी दिखाई पड़ने लगी थी; साथ ही उन्होंने भावी महाराजा में वीरोचित गुणों, श्रम तथा साहसिकता-को विकसित करने की ओर ध्यान दिया, परन्तु उन्हें इस प्रयास में विशेष सफलता न मिल सकी क्योंकि खड़क सिंह प्रकृति से ही निर्बल एवम् आराम पसन्द था। सन् १८२१ ई० में खड़क सिंह की पत्नी ने एक पुत्र को जन्म दिया और शीघ्र ही इस बालक नौनिहाल सिंह को महाराजा का उत्तराधिकारी समझा जाने लगा।[1]

रणजीत सिंह का व्यक्तिगत चरित्र

अभी हमने महाराजा रणजीत सिंह के पारिवारिक सम्बन्धों को देखा, उनके चरित्र के विषय में विभिन्न प्रामाणिक सूत्रों से प्राप्त सूचनाओं के अनुसार सिक्ख जाति पर आरोपित हर प्रकार की अनैतिकता में उनका भी समान भाग था, वे स्वयम् किसी भी प्रकार के अनैतिक कार्य से घृणा नहीं करते ते, वे शराब बहुत अधिक, तथा बहुत कड़ी किस्म की पीते थे, और जब तब गहरे नशे में सुन्दरियों से घिरे हुए वे अपनी प्रजा के सम्मुख भी उपस्थित हो जाते थे[2]। उनकी युवावस्था में, उनके ऊपर ऐसी ही एक स्त्री मोहरा का बहुत अधिक प्रभाव था, और सन् १८११ ई० में ऐसे सिक्के भी ढाले गए थे जिन पर उसका नाम अंकित था, परन्तु यह समझलेना भी गलत होगा कि वे एक आदती पियक्कड़ थे, या सदैव ऐन्द्रिक सुखों में ही डूबे रहते थे, इसी प्रकार इस बात पर भी विश्वास कर लेना अनुचित है कि अधिकांश सिक्ख लज्जा को तिलांजलि दे चुके हैं, और उन समस्त दुष्कर्मों में लिप्त हैं जो मानवता के मुख पर कालिख पोतते हैं। यह एक निर्विवाद तथ्य है कि शिक्षित व सभ्य जातियों की अपेक्षा असंस्कृत तथा असभ्यों में किसी भी काल में व्यक्तिगत सम्मान तथा स्त्रियों की पवित्रता की भावनाएँ अपेक्षाकृत कम महत्व रखती हैं, और जब किसी देश की खेतीबारी करनेवाली अशिक्षित जनता अचानक शक्ति व सम्पत्ति प्राप्त कर ले, और समाज के अनेक नियन्त्रणों व निषेधों से मुक्ति पा जाँय तो यह पूर्णतः स्वाभाविक है कि उनमें से कुछ प्रतिशत लोग अपनी

१—मरे 'रणजीत सिंह', पृ० ४८,५३,६०,६१,११२,१२६।
२— ,, ,, ,, पृ० ८५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इन्द्रियों को तुष्ट करने में लिप्त हो जायँगे, और अपनी सर्वाधिक दूषित इच्छाओं की पूर्ति में जरा भी हिचकिचाहट नहीं दिखाएँगे, परन्तु इस प्रकार के घृणित और निन्द्य व्यवहारों को कभी भी सार्वजनिक मान्यता नहीं प्राप्त हो सकती, वे लोग जो एक ओर तो सिक्खों के चारित्रिक दोषों की आलोचना करते हैं, तथा दूसरी ओर उनके लम्बे व तेज सैनिक अभियानों का वर्णन करते हैं, उन्हें इस विरोधाभास का स्मरण करते हुए यह समझ लेना चाहिए कि हमारी सामान्य बुद्धि और हमारी प्रकृति की उच्चतर भावनाएँ जिन कार्य-व्यवहारों को सदा निन्द्य समझती रही हैं, वे कभी भी किसी भी राष्ट्र में सार्वजनिक अभ्यास का रूप नहीं ले सकती। किसी देश के थोड़े से सशस्त्र रक्षकों की नैतिकता को उस देश की शान्तिप्रिय, निश्चित निवास स्थल, तथा एक दूसरे के नैतिक दोषों पर सदैव आँख गड़ाए रहने वाली जनता के स्तर पर नहीं रक्खा जा सकता, और कुछ चरित्रहीन सरदारों तथा कामुक सैनिकों के चरित्र के आधार पर हजारों लाखों, कठिन परिश्रम करने वाले कृषकों, शिल्पियों व अन्य वर्गों के चरित्र के सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय दे देना पूर्णतः अतार्किक है[1]। उत्तरी भारत के अन्य प्रान्तों की भाँति सिक्ख-कृषकों का लक्ष्य बाजरे या गेहूँ की रोटी और कुएँ के जल तक ही सीमित है, सैनिक की आकांक्षा भी इससे विशेष आगे नहीं है, और विशेष आनन्दपूर्ण समारोहों के अतिरिक्त वह शराब में डूबने का अवसर शायद ही कभी पाता हो। उच्चपदस्थ या धनी वर्ग या उनसे भी अधिक काहिल, अकालियों का वर्ग शराब या अन्य नशों द्वारा अपने मस्तिष्क की रिक्तता को भरता दिखाई पड़ सकता है, परन्तु भोजन पर अधिक

---

१ – कर्नल स्टीनबैक, (पंजाब, पृ० ७६,७७) उनके भोजन की सामान्य सादगी का उल्लेख करता है, परन्तु अनेक गन्दी आदतों को सारी जाति पर थोपता है; कैप्टेन मरे, ('रणजीतसिंह' पृ० ८५) तथा मेसन ('जर्नीज़', १:४३५) भी कुछ निन्दा की ही प्रवृत्ति प्रदर्शित करते हैं; यहाँ तक कि एलफिंसटन ('इण्डिया', २:५६५) भी ऐन्द्रिक सुखों के प्रति आसक्ति को सार्वजनिकता की सीमा तक पहुँचा देता है; लम्पट्वा के कुछ ही दृष्टान्तों के आधार पर किसी जाति के तौर तरीकों व नैतिकता का निर्णय नहीं कर लेना चाहिए; परन्तु भारतीय भी यूरोपियनों के सम्बन्ध में ऐसी ही अतिरंजित धारणा बनाते हैं और चित्रों या हास्यपूर्ण मूक अभिनयों में वे अंग्रेजों को चरित्रहीन स्त्रियों में बैठकर शराब पीते, कसमें खाते, और किसी कारणवश या अकारण हथियार उठाते हुए प्रदर्शित करते हैं।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

व्यय हिन्दुओं की नहीं, बल्कि मुसलमानों की विशेषता है। जो भी हो, परन्तु महाराजा रणजीत सिंह अपनी इन्द्रियों की तृप्ति में कभी कभी अशोभनीयता की सीमा तक पहुँच जाते थे, साथ ही अन्य निरंकुश व एकछत्र राजाओं के समान वे भी अत्यधिक पक्षपात के दोषी थे, कुछ अंशों में उनकी कुछ प्रवृत्तियाँ सारी सिक्ख जाति की परम्पराओं के विरुद्ध थी, गुरु गोविन्द सिंह जी के स्वतंत्र अनुयायी-अकाली-खालसा के किसी भी समपदीय सदस्य के अधीन होना सहन नहीं कर सकते थे, जब कि महाराजा विदेशियों को कृपापात्र बनाने की प्रवृत्ति रखते थे, जिनमें ईमानदारी उतनी नहीं होती थी जितनी चापलूसी, और ऐसे ही लोगों पर वे विश्वास भी रखते थे। इस प्रकार के लोगो में सर्वप्रथम जिस व्यक्ति को महाराजा का विश्वास पाने का सम्मान मिला, वह सहारनपुर की ओर से आया हुआ एक ब्राह्मण था; इस व्यक्ति का नाम खुशाल सिंह था, जो सर्वप्रथम प्रारम्भ में संगठित रेजिमेण्ट में दाखिल हुआ था, और कुछ ही समय बाद महाराजा के निवास पर तैनात कर दिया गया था। शीघ्र ही उसने महाराजा का ध्यान आकृष्ट कर लिया, और सन् १८११ ई० के लगभग उसे देवनी या प्रवेशद्वार का जमादार बना दिया गया, बीच में उसे कुछ ऐसी आशंका हुई कि उसका भाई कहीं उसका पद न हथिया ले, पर उसके द्वारा, सिक्ख बनने से इन्कार कर दिए जाने पर खुशाल की जमादारी बची रह गई, परन्तु कुछ वर्ष बाद जाम्मू के एक राजपूत परिवार के आगे दोनों ही भाइयों का प्रभाव धूमिल पड़ गई, इस परिवार के तीन पुत्रों में ज्येष्ठ था गुलाब सिंह जो यह दावा करता था कि उसके पितामह, सुप्रसिद्ध रणजीत देव के भाई थे, परन्तु यह परिवार सम्भवतः नाजायज सम्बन्धों से अस्तित्व में आया था, और अब गरीब हो गया था, अस्तु गुलाब सिंह ने जमादार खुशाल चन्द के अधीन एक टुकड़ी में अश्वारोही सैनिक की हैसियत से नियुक्ति प्राप्त की। उसने अपने दूसरे भाई ध्यान सिंह को भी वहीं बुला लिया, और तब महाराजा के प्रथम कृपापात्र की भाँति ही ये दोनों भाई भी महाराजा की आँखों के सामने ही रहने लगे। इन दोनों भाइयों की सम्मिलित सेवा तथा ध्यान सिंह के शारीरिक सौन्दर्य ने महाराजा का ध्यान आकृष्ट कर लिया और ध्यान ने सिंहपर्याप्त तीव्र गति से ब्राह्मण कृपात्रात्र खुशालसिंह का स्थान ले लिया, परन्तु इससे खुशाल उपेक्षित नहीं हुआ, और एक सामन्त के रूप में

रणजीत सिंह के कृपा पात्र

खुशाल सिंह १८११–२०

जम्मू के राजपूत १८२०

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उसकी जागीर पर उसका अधिकार बना रहा । गुलाबसिंह को भी एक छोटी सी टुकड़ी का सरदार बना दिया गया, तथा राजौरी के उपद्रवी मुसलमान सरदार को पकड़ कर उसने ख्याति प्राप्त की जिसके पश्चात् जम्मू, एक जागीर के रूप में उसके परिवार को दे दिया गया, और एक के बाद एक करके गुलाबसिंह, ध्यानसिंह तथा साथ ही सबसे छोटे भाई सुचेतसिंह को भी राजा की उपाधि दे दी गई, और महाराजा के विशेष परामर्श दाताओं के रूप में उनका प्रभाव तेजी से बढता गया; केवल अंग्रेजों से सम्बन्धित मामलों में महाराज किसी से भी परामर्श नहीं लेते थे जिसके महत्व को देखते हुए उनका निजी, संतुलित, तथा किसी भी बाहरी प्रभाव से मुक्त मत अपेक्षित था, और वे ऐसा ही करते भी थे । सीधा सादा दिखाई देने वाला, परन्तु वास्तव में नीतिकुशल गुलाबसिंह स्वयम् प्रायः पहाड़ी क्षेत्रों में ही रहता था और सिक्ख-साधनों के बल पर अपने भाई राजपूतों पर, तथा लदाख क्षेत्र में अपनी शक्ति का विस्तार करने में व्यस्त रहता था । अपेक्षाकृत कम योग्य, परन्तु अधिक व्यवहार कुशल व चमकदमक[1] वाला ध्यानसिंह निरन्तर महाराजा की व्यक्तिगत सेवा में ही रहता था, और सदैव इसी में तत्पर रहता था कि महाराजा की इच्छाओं को तुरन्त समझकर उनकी पूर्ति करें, जब कि सबसे छोटा भाई सुचेतसिंह हँसमुख स्वभाव का वीर सैनिक था जो दरबार की रौनक था; उसे न तो शक्ति की आकांक्षा थी, न शत्रुओं की संख्या बढ़ाने का चाव था । नाम मात्र का फकीर, अजीजुद्दीन कभी भी महाराजा का विशेष कृपापात्र न बन सका, परन्तु चूँकि वह बहुत पहले से उनके निकट सम्पर्क में रहता आया था अतः दरबार में उसका काफी सम्मान किया जाता था, और महाराजा उसे काफी बुद्धिमान व विश्वस्त समझते थे; जिस समय खुशालसिंह और गुलाबसिंह का

रणजीतसिंह के विश्वस्त सेवक : फकीर अजीजुद्दीन

१—[महाराजा रणजीतसिंह स्वयम् तो कुरूप ही थे, परन्तु सुन्दर स्त्रियाँ व सुन्दर पुरुष उन्हें समान रूप से आकृष्ट करते थे और वे ऐसे लोगों से घिरा रहना पसन्द करते थे—देखिए अलबोर्न, 'द कोर्ट एण्ड कैम्प ऑव रणजीतसिंह', २९ मई १८३८ का संस्मरण—"स्वयम् सुन्दरता की सीमा से काफी दूर होते हुए भी सुन्दर चेहरों से घिरा होने में रणजीत काफी गर्व का अनुभव करता प्रतीत होता है, और मेरा विश्वास है कि यूरोप या पूरब में शायद ही कुछ दरबार मुख्य सिक्ख सरदारों के समान सुन्दर पुरुषों के समूह को प्रस्तुत कर सकते हैं"—अनुवादक]

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रभाव बढ़ा चढ़ा था, उस समय भी महाराजा उसके परामर्श का काफी महत्व देते थे; अंग्रेज अधिकारियों के साथ होने वाली सारी वार्ताओं का माध्यम वही था। लाहौर दरबार में महाराजा के उक्त कृपापात्रों का का प्रभाव बहुत अधिक था, परन्तु उसने कुछ अन्य लोगों पर भी विशेष कृपा प्रदर्शित की थी; व्यक्तिगत प्रसन्नता के परिणामस्वरूप ही उन्होने सावनमल को मुल्तान का दीवान बना दिया था यद्यपि वह शासन कार्य में अत्यन्त दक्ष था, और रणजीतसिंह की मृत्यु के पश्चात् उसने राजपरिवार की यथाशक्ति सेवा की थी; इसी प्रकार हरी सिंह नलवा की सैनिक दक्षता व योग्यता के पुरस्कारस्वरूप उसे एक सेना का सरदार बना कर पेशावर की सीमा पर भेज दिया, जब कि उनका पुराना मित्र फतेह सिंह अहलूवालिया, निरन्तर बढ़ती हुई सम्पत्ति के साथ प्रारम्भिक मिसलों के एकमात्र प्रतिनिधि के रूप में अभी तक विद्यमान था और देसा सिंह मजीठिया अमृतसर व जलन्धर दोआब के सूबेदार के रूप में सदा महाराजा के विश्वास एवम् सम्मान का पात्र बना रहा।[1]

दीवान सावनमल; हरी सिंह नलवा फतेह सिंह अहलू वालिया, देसा सिंह मजीठिया

१— देखिए मरे, 'रणजीतसिंह', पृ० ८४,११३,१२५,१४७; मुंशी शाहमत अली, सिक्ख एण्ड अफ़गान्स', अध्याय ४ व ७; अजीजुद्दीन व देसासिंह के सम्बन्ध में देखिए, ट्रवेल्स'; १:९४,९८,११० आदि, लेफ्टिनेण्ट कर्नल लॉरेन्स, ('द ऐडवेचरर इन द पंजाब') तथा कैप्टेन आसबोर्न, ('कोर्ट एण्ड कैम्प ऑव रणजीतसिंह') भी महाराजा के सरदारों तथा कृपापात्रों का रोचक विवरण देते हैं, मोहकमचन्द का उल्लेख पीछे ही किया जा चुका है; ऐसे लोगों में ब्राह्मण-दीवान चन्द का नाम भी उल्लेखनीय है, मुल्तान पर अधिकार करने वाली सिक्ख सेना का वास्तविक नायक वही था, और कश्मीर पर हुए अन्तिम सफल अभियान का नेतृत्व भी उसी ने किया था। सच्चे सिक्खों में, एक बहादुर और उदार सैनिक के रूप में मिट्ठासिंह वेहरानिया ने भी काफ़ी ख्याति प्राप्त की थी।

— — —

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अध्याय ७

मुल्तान, कश्मीर व पेशावर की प्राप्ति से महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु तक

[१८२४—३९]

अंग्रेजों व सिक्खों के परिवर्तित सम्बन्ध—विभिन्न कार्यवाहियाँ—सिक्खों के लिए पोलिटिकल एजेण्ट के पद पर कैप्टेन वेड की नियुक्ति—जम्मू के राजा—पेशावर पर सैयद अहमदशाह का घेरा—रणजीत सिंह की ख्याति—रूपड़ में लॉर्ड विलियम बेण्टिक व रणजीत सिंह में भेंट—सिन्ध के सम्बन्ध में रणजीत सिंह के विचार, और सिन्ध में नौसैनिक व्यवस्था की अंग्रेजों की योजना—शाहशुजा का १८३३-३५ का अभियान—लदाख पर राजा गुलाब सिंह का अधिकार—शिकारपुर पर रणजीत सिंह का दावा व सिन्ध पर अधिकार की योजना—अंग्रेजों की व्यापारिक नीति द्वारा उपस्थित व्यवधान—अफगानिस्तान के बारकजइयों से अंग्रेजों का सम्बन्ध—रणजीत सिंह के आगे दोस्त मुहम्मद की वापसी अफगानों के विरुद्ध सिक्खों की पराजय—नौनिहाल सिंह का विवाह—सरहेनरी फ्रेन—अंग्रेज, दोस्त मुहम्मद, और रूस शाहशुजा पुनः सिंहासन पर—अंग्रेजों के प्रति रणजीत सिंह का असन्तोष—रणजीत सिंह की मृत्यु

महाराजा रणजीत सिंह ने पेशावर को अपने अधिकार में अवश्य कर लिया था, परन्तु उस सूबे पर पूर्ण अधिकार करने के लिए उन्हें अभी कई वर्षों तक कड़ा संघर्ष करना था। वे पूरे पंजाब के स्वामी बन चुके, और अभी तक उन्हें अंग्रेजों के हस्तक्षेप का सामना नहीं करना पड़ा था; परन्तु जिस समय अंग्रेजों ने नैपोलियन की सेनाओं के विरुद्ध सिक्खों की सहायता माँगी थी, उसकी तुलना में अब उनके विचारों व स्थिति में पर्याप्त अन्तर आ गया था। अब उनके साम्राज्य की सीमाएँ पूर्व-घोषणा के अनुसार यमुना नदी व बम्बई के तट तक ही सीमित नहीं रह गई थीं; नर्वदा नदी को पार किया जा चुका था, राजपूताना की रिया-

सन् १८२३ के बाद अंग्रेजों के प्रति सिक्खों की स्थिति में परिवर्तन:

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सतों से कर लिया जाने लगा था और व्यापारिक धन के विस्तार और दूर-दूर के प्रान्तों के व्यापार को दृढ़ तथा उपयोगी बन्धनों द्वारा जोड़ डालने की प्रशंसनीय योजनाएँ बनाई जाने लगी थीं; वे अब शीघ्र ही जल यातायात तथा व्यापार भी करने वाले थे, और इन्हीं कारणों से अब उन्हें सिक्खों के महाराजा की महत्वाकांक्षाओं को सीमित करना आवश्यक प्रतीत होने लगा, और वे निश्चित यद्यपि पहले से न देखे जा सकने वाले कदमों से महाराजा के राज्य को ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाने तथा सांसारिक शासन के ठण्डे अननुभव्य हाथों से उस सामाजिक परिवर्तन तथा धार्मिक सुधार की उत्साहपूर्ण भावना को अपने उपयोग में लाने में प्रवृत्त हुए जिसे गुरु नानक जी तथा गोबिन्द सिंह जी ने जागृत किया था।

विभिन्न कार्यवाहियाँ १८२४-२५: पेशावर, नैपाल, सिन्ध व भरत पुर:

सन् १८२४ ई० में सिन्ध नदी के दोनों तटों पर अटक के ऊपर बसी हुई मुसलमान जनजातियों ने विद्रोह का झण्डा ऊँचा कर दिया और सिक्ख सेनापति हरी सिंह को एक प्रबल अवरोध का सामना करना पड़ा। समाचार पाते ही पड़ाव पर पड़ाव मारते महाराजा पूर्ण तीव्रता के साथ आ पहुँचे और सिन्ध का सारा कंकरीला इलाका सिक्ख सैनिकों के घेरे में आ गया, परन्तु उनके पहुँचते ही पहाड़ियों में छिपे हुए विद्रोही बिखर गए, और उनके इस सारे शक्ति-प्रदर्शन से केवल इतना ही लाभ हुआ कि यार मुहम्मद खाँ ने पुनः उनके प्रति निष्ठा की शपथ ली।[1] सन् १८२५ ई० में गुरखों द्वारा की जाने वाली सन्धि वर्ताओं ने उसका ध्यान आकृष्ट किया जिन्होंने अंग्रेजों की निरन्तर वर्द्धमान शक्ति से चिन्तित होकर सिक्ख-महाराजा से अपनी पुरानी प्रतिद्वन्दिता को भूल जाना ही उचित समझा था; परन्तु नैपोलियन का वास्तविक लक्ष्य क्या था, यह स्पष्ट न हो सका, और अपनी बेकार न बैठने वाली मनोवृत्ति से विवश महाराजा शिकारपुर पर अधिकार करने के ध्येय से चिनाब की ओर बढ़ गए[2], परन्तु सम्भवतः भरतपुर[3] के विरुद्ध अंग्रेजों की शत्रुतापूर्ण तैयारियों की अफवाह वर्ष के अन्त

१—कैप्टेन मरे, 'रणजीतसिंह' पृ० १४१, १४२।

२—दिल्ली के एजेण्ट का पत्र कैप्टेन मरे को, १८ मार्च १८२५, और मरे का उत्तर, २८ मार्च; देखिए मरे, 'रणजीतसिंह' पृ० १४४।

३—[अंग्रेजो सेना में (२०००० सैनिक व १०० तोपों) ने इस प्रसिद्ध गढ़

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के पूर्व ही उन्हें वापस राजधानी में खींच लाई। यमुना के जाट अपहरणकर्ता ने जिसने अंग्रेजों की अनुशासित सेना तथा भयंकर तोपखाने के आक्रमण को सफलतापूर्वक अवरुद्ध कर दिया था।[1] अपने, रावी के जाट भाई के पास सहायता देने का सन्देश भेजा, परन्तु महाराजा ने सन्देशवाहकों के प्रति उपेक्षा व उदासीनता के भाव का प्रदर्शन करते हुए, उस सुदृढ़ गढ़ के स्वामी को सहयोग न प्रदान करके ब्रिटिश अधिकारियों को सन्तुष्ट किया, इसी समय महाराजा उन सरदारों के प्रति आशंकित हो गए जो गढ़ों के अधिकारी थे;

अहलूवालिया सरदार फतेह सिंह

और उनकी ऐसी ही आशंकाओं के परिणाम स्वरूप एक गढ़ के निर्माण में व्यस्त फतेह सिंह अहलूवालिया, उस गढ़ को अधूरा ही छोड़ने के लिए विवश कर दिया गया, और फतेह सिंह, काल्पनिक भयों के कारण सतलज के दक्षिण ओर पलायन कर गया। उसके सरहिन्द स्थित पुश्तैनी इलाके के लिए अंग्रेजों की ओर उसे संरक्षण का वचन दिया गया, परन्तु सम्भवतः लॉर्ड लेक से हुई सम्मिलित सन्धि का स्मरण करके महाराजा ने अपने पुराने सहयोगी की व्यर्थ की शंकाओं को दूर करने का पूरा प्रयास किया। वे एक ऐसे प्रबल सरदार को अंग्रेजों के हाथ में नहीं छोड़ सकते थे, और उसे वापस बुला लेना उनके अपने ही हित के लिए अत्यन्त आवश्यक था। अन्ततः सन् १८२७ ई० में फतेह सिंह अहलूवालिया वापस लाहौर लौटा; महाराजा ने पर्याप्त सम्मान के साथ उसका स्वागत किया, और उसके लगभग सारे इलाकों पर उसे पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित कर दिया गया।[2]

पर १० दिसम्बर १८२५ की घेरा डाला था, पर १८ जनवरी १८२६ के पूर्व इस पर अधिकार न किया जा सका, जिसके पश्चात् ब्रिटिश सेना की शक्ति की बड़ी धाक जम गई क्योंकि अभी तक इस गढ़ को अजेय समझा जाता था; इस घेरे में ब्रिटिश सेना का नेतृत्व स्वयम् कमाण्डर-इन चीफ़ लॉर्ड कॉम्बरमेयर कर रहे थे—सम्पादक]

१—कैप्टेन मरे के पत्र दिल्ली के रेजिडेण्ट को, १ तथा ३ अक्टूबर, सन् १८२५ ई० तथा कैप्टेन वेड का पत्र कैप्टेन मरे को, ५ अक्टूबर, सन् १८२५ई०, 'नैरेटिव ऑव हिज़ सरविसेज़' पृ० ७ में कैप्टेन वेड महाराजा के रवैये पर अपना विचार प्रकट करते हुए लिखता है कि वे, अंग्रेजों के विपत्ति में पड़ जाने पर, उस स्थिति से लाभ उठाने की प्रतीक्षा में शान्त बैठे थे।

२—दिल्ली के रेज़िडेण्ट का पत्र कैप्टेन मरे को, १३ जनवरी १८२६,

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सन् १८२६ ई० के लगभग अन्त में महाराजा अस्वस्थ हो गए तथा उन्होंने अंग्रेजी चिकित्सा-विज्ञान की शरण ली। भारतीय ब्रिटिश सेना के अनुभवी सर्जन डा० मरे को उनकी परिचर्या के लिए भेज दिया गया, और वह कुछ समय तक लाहौर में ही बना रहा यद्यपि महाराजा अपरिचित औषधियों और आधुनिक चिकित्सा की अपेक्षा समय तथा परहेज, या स्वयम् अपने वैद्यों व हकीमों की दवाओं पर अधिक विश्वास रखते थे[1], फिर भी वे अपने इस विदेशी औषधि सम्बन्धी परामर्शदाता को सदैव अपने निकट रखना पसन्द करते थे, क्योंकि उससे उन्हें अनेक सूचनाएँ प्राप्त हो सकती थीं तथा उसे प्रसन्न रखना उनके लिए लाभदायक सिद्ध हो सकता था। वे लार्ड आर्महर्स्ट, गवर्नर जनरल के आगमन की प्रतीक्षा में व्यग्र प्रतीत होते थे जिन्होंने उत्तरी प्रान्तों के दौरे का प्रस्ताव भेजा था। वे प्रायः बर्मी सेना के गुणों के सम्बन्ध में पूछा करते थे[2], और इस सम्बन्ध

रणजीत सिंह की बीमारी, अंग्रेजी सर्जन द्वारा परिचर्या १८२६

तथा कैप्टेन मरे, 'रणजीतसिंह' पृ० १४४। वृद्ध अहलूवालिया सरदार अपने इस 'पगड़ी बदल' भाई से इतना भयभीत था कि उसने सन् १८११ में ही वह स्वयं को अंग्रेजों से सम्बन्ध प्रदर्शित करने का इच्छुक था [सरकार का पत्र सर आक्टरलोनी को, ४ अक्टूबर, १८११)।

सिस-सतलज क्षेत्र के ममदोत का, तथा पूर्वतः कसूर का, मुसलमान सरदार भी लगभग उसी समय, और उन्हीं कारणों से, और स्वयम् को ब्रिटिश सरकार द्वारा संरक्षित प्रदर्शित करने की इच्छा प्रकट करने के बाद भाग आया था, और फिर वापस लौट आया (सरकार का पत्र दिल्ली के रेजिडेण्ट को, २८ अप्रैल, १८२७; मरे, 'रणजीतसिंह' पृ० १४५)।

१—सन् १८१८ के बिगड़े सम्बन्धों के फल स्वरूप ४ फरवरी सन् १८२४ को बर्मी युद्ध प्रारम्भ हुआ था; यह युद्ध ठीक दो वर्षों तक चल कर समाप्त हुआ जब कि यन्दूब द्वारा बर्मा की सरकार ने तेनसेरिम, अराकान और आसाम के प्रान्त तथा १०'लाख स्टर्लिंग की धनराशि अंग्रेजों को दिया—सम्पादक]

२—[महाराजा के औषधि सम्बन्धित अविश्वास पर आसबोर्न एक रोचक संस्मरण देते हुए लिखता है, "वे औषधियों के किसी भी जानकार से मिलने पर उसका परामर्श अवश्य लेते हैं; और उनके परामर्शों की अवहेलना भी उतने ही आवश्यक रूप से करते हैं। ऐसे लोगों से प्राप्त औषधियाँ सदैव कुछ सरदारों को

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

में भी जिज्ञासा प्रकट किया करते थे कि बर्मा के लोगों से हो रहे युद्ध की समाप्ति पर अंग्रेज विजेताओं ने उनसे कितने धन की माँग की थी। वे बैरकपुर में हुए सिपाही विद्रोह के विषय में पूछताछ किया करते थे, और यह जानने की इच्छा प्रकट करते थे कि उस विद्रोह को कुचलने के लिए देशी सैनिकों को तैनात किया गया था या नहीं[1]। सन् १८२७ ई०में लार्ड आर्महर्स्ट के शिमला पहुँचने पर मित्रतापूर्ण सन्देशों का आदान प्रदान आवश्यक था; उनके स्वागत आदि के लिए सिक्खों का एक दल शिमला पहुँचा, जिसके बदले में ब्रिटिश सीमा अधिकारी मि० वेड के नेतृत्व में एक मिशन महाराजा के दरबार में भेजा गया[2]। अगले वर्ष के दौरान अंग्रेजी सेनाओं का प्रधान सेनापति (कमाण्डर इन चीफ), लार्ड काम्बरमेयर, लुधियाना आया, और उनके प्रति शुभकामना प्रकट करने के लिए उसके पास अपना एक विशेष, राजकीय दूत भेजा, परन्तु भरतपुर के विजेता को पंजाब के दुर्गों को देखने का इच्छित व प्रस्तावित आमन्त्रण नहीं भेजा गया[3]।

को दे दी जातीं हैं, जिन्हें उनकी उपस्थिति में ही उन दवाओं को निगलने का आदेश दिया जाता है, और तब उन्हें रोक रक्खा जाता है ताकि वे (महाराजा) उन दवाओं का प्रभाव जान सकें।" ('रणजीतसिंह' ३ जून १८३८ का संस्मरण)—अनुवादक]

१—कैप्टेन वेड के पत्र दिल्ली के रेजिडेण्ट को, २४ सितम्बर व ३० नवम्बर १८२६, तथा १ जनवरी १८२७ देखिए, मरे, 'रणजीतसिंह' पृ० १४५, [बर्मा जाने के लिए अनिच्छुक सिपाहियों को वहाँ जाने के लिए विवश किए जाने पर बैरकपुर में यह सिपाही विद्रोह हुआ था। बैरकपुर में देशी सिपाहियों की तीन रेजिमेण्टें थीं

२६वीं ४७वीं तथा ६२वीं—और इन तीनों में ही असन्तोष की आग फैल गई थी; सन् १८२४ की पहली नवम्बर को उन्होंने खुला विद्रोह कर दिया। उनको दबाने के लिए अंग्रेजी टुकड़ियाँ भेजी गईं; तोपखाने द्वारा ४७वीं रेजिमेण्ट ग्रस्त ध्वस्त कर दी गई, और उसे सेना से बहिष्कृत कर दिया गया, अन्य दो रेजिमेण्टों को कोई विशेष दण्ड नहीं दिया गया—सम्पादक]

२—सरकार का पत्र कैप्टेन वेड को, २ मई १८२७ ई०।

३—मरे, 'रणजीतसिंह' पृ० १४७। इस समय तक उत्साही जिज्ञासु व विद्वान जोमार्डि कोरोस की अध्ययन के ध्येय से की गई यात्राओं तथा शिमला में ब्रिटिश चौकी स्थापित हो जाने से तिब्बत के चीनियों ने भी महाराजा

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ब्रिटिश एवम् सिक्ख सरकारों से सम्बद्ध मामलों की व्यवस्था का कार्य दिल्ली के रजिडेण्ट को सौंप दिया गया जिसने कैप्टेन मरे को इस सम्बन्ध में अपने निर्देश भेजे। कैप्टेन मरे उस समय अम्बाला का पोलिटिकल एजेण्ट था, और उसका सहायक, कैप्टेन वेड लुधियाना का एजेण्ट था, कैप्टेन मरे ने लुधियाना की रक्षक सेना की कार्यवाहियों के सम्बन्ध में

लाहौर के एजेण्ट के पद पर कैप्टेन वेड की नियुक्ति १८२७

कैप्टेन वेड को अपने आदेश दिए। जिस समय कैप्टेन वेड लाहौर में था, महाराजा ने यह इच्छा प्रकट की कि आवश्यक पत्र व्यवहार के लिए, उनके सिक्ख सतलज क्षेत्र में स्थित इलाकों की एजेन्सी, दिल्ली के रेज़िडेण्ट के अधीन लुधियाना के अफसर को सौंप दी जाय जिसमें वह अम्बाला के अफसर के हस्तक्षेप से स्वतन्त्र रहे[1]। उनकी इस इच्छा के अनुरूप ही व्यवस्था करने का आश्वासन दिया गया[2], परन्तु जब सम्बन्धित क्षेत्रों के विस्तार को निश्चित करने का प्रयास किया जाने लगा तो

रणजीतसिंह की भाँति, परन्तु एक अन्य तरीके से, अंग्रेजों के प्रति दिलचस्पी दिखाना शुरू किया था। ऐसा ज्ञात होता है कि गारो के अधिकारियों ने अंग्रेज़ों के अधीन स्थित रियासत, बिस्सेहिर के अधिकारियों ने पत्रव्यवहार करते हुए उन्हें लिखा था "कि प्राचीन समय में फिलिघां' (अर्थात् फिरंगी या फ्रेंक्स) की बुरी, और छोटी जाति का कोई जिक्र ही नहीं था, जब कि अब उस जाति के अनेक लोग ऊपरी क्षेत्रों का भ्रमण करते थे और बिस्सेहिर के शासक को उनकी गति विधियों के लिए तैयारियाँ करनी पड़ती थीं। बड़े लामा (दलाई लामा) इससे अप्रसन्न हो गये और सेना को सतर्क रहने का आदेश दे दिया गया। अंग्रेज़ों से कहा जाना चाहिए कि वे अपनी सीमा में ही बने रहें, या यदि वे मित्रतापूर्ण सन्धि के लिए इच्छुक हों तो वे समुद्र मार्ग द्वारा पेकिंग जा सकते है। बिस्सेहिर के लोगों को अंग्रेज़ों के धन तथा युद्ध-कौशल के बलपर आश्वस्त नहीं रहना चाहिए, सम्राट उनसे ३० पक्तसत (१२० मील) ऊपर है वह चार तत्वों पर शासन करता है. एक युद्ध एशिया के सभी छः राष्ट्रों को विपत्ति में डाल देगा, अंग्रेज़ों को अपनी ही सीमा में रहना चाहिए"। (सबाथू के पॉलिटिकल एजेण्ट का पत्र दिल्ली के रेज़िडेन्ट को, २६ मार्च १८२७)।

१—कैप्टे वेड का पत्र दिल्ली क रेज़िडेण्ट को, २० जून, १८२७।

२—सरकार का पत्र दिल्ली के रेज़िडेण्ट को, ४ अक्टूबर, १८२७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पाया गया कि उसमें अनेक सन्दिग्ध बातें थीं जिनका निपटारा करना आवश्यक था। महाराजा चमकौर और आनन्दपुर मखोवल तथा अन्य अनेक स्थानों पर अपनी प्रभुसत्ता का दावा करते थे जो परम्परागत रूप से सोधियों या गुरुगोबिन्द सिंह जी के प्रतिनिधियों के अधिकार में थे, उन्होंने ह्वदनी पर भी अपने अधिकार का दावा किया जिसे कुछ वर्ष पूर्व उनसे इस तर्क पर ले लिया गया था कि उसपर उनकी सास, सदाकौर का अधिकार था। उन्होंने फीरोजपुर पर भी अपना दावा जताया था जो एक सन्तानहीन विधवा के अधिकार में था, और अहलूवालियों के सभी जिलों को भी उन्होंने अपने सत्ता के अधीन बताया था[1]। फीरोज़पुर, तथा फतेह सिंह अहलूवालिया के इलाकों पर किए गए महाराजा के दावे, को अस्वीकार कर दिया गया, परन्तु यह अनुभव किया गया कि ह्वदनी पर ब्रिटिश सत्ता को बनाए रखना हानिकारक ही सिद्ध होगा। लाहौर से लेकर चमकौर व आनन्दपुर तक के क्षेत्रों पर महाराजा के अधिकार को बिना किसी विवाद के स्वीकार कर लिया गया, क्योंकि उन इलाकों पर ब्रिटिश अधिकार बनाए रखना सम्भव प्रतीत नहीं हो रहा था, साथ ही यह भी अनुभव किया गया कि सिक्खों के धार्मिक वर्ग के मामलों की उचित व्यवस्था उनके ही धर्म के शासक के राज्य में सम्भव थी[2]। महाराजा रणजीत सिंह को यह पसन्द नहीं था कि फीरोजपुर उनके हाथ से निकल जाय जब कि अंग्रेज अधिकारी फीरोज़पुर के सैनिक महत्व को देखते हुए उसे अपने ही अधिकार में रखना

सतजल के दक्षिण स्थित जिलों आनन्दपुर, ह्वदनी, फीरोजपुर आदि के अधिकार के सम्बन्ध में विवाद

१८२७-२८

१—दिल्ली के रेजिडेण्ट को कैप्टेन वेड का पत्र, २० जनवरी १८२८, और कैप्टेन मरे का पत्र, १९ फरवरी १८२८। फ़ीरोज़पुर के सम्बन्ध में सरकार ने निश्चय किया (दिल्ली के एजेन्ट को पत्र, २४ नवम्बर १८२८) कि कुछ, वंश से सम्बन्ध-मात्र उत्तराधिकारियों का (जिन्होंने अपने दावे किए थे) दावा नहीं माना जा सकता था क्योंकि हिन्दू विधान और सिक्ख परम्परा के अनुसार विभाजन के पश्चात् वंशगत अधिकार का अस्तित्व नहीं रह जाता था। इस सम्बन्ध में अंग्रेज़ों का व्यवहार इतना अनिश्चित है कि फ़ीरोज़पुर के दावेदारों से सम्बद्ध अनेक नजीरें, सिक्ख रियासतों सम्बद्ध मामलों को अपनी सीमा में ले सकतीं थीं।

१—सरकार का पत्र दिल्ली के रेजिडेन्ट को, १४ नवम्बर १८२८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

लाभदायक समझते थे[1], जो भी हो, परन्तु इस दृष्टिकोण से यह व्यवस्था सराहनीय थी कि इससे निकट भविष्य में दोनों सरकारों में मतभेद या संघर्ष की सम्भावनाएँ बहुत कम हो गई थीं।

ध्यानसिंह, उनके भाइयों तथा पुत्र का क्रमिक उत्थान १८२०-२८ संसारचन्द के परिवार में हीरासिंह के विवाह का प्रस्ताव १८२८

इस प्रकार अंग्रेजों से महाराजा रणजीत सिंह का सम्बन्ध घनिष्ठ से घनिष्ठतर होता रहा, और लगभग उसी समय महाराजा ने जम्मू के अपने नए कृपापात्रों के विचारों पर अनेक दृष्टान्तों में, पूर्णतः सहमत होने की प्रवृत्ति दिखाई। ध्यानसिंह के पुत्र हीरासिंह की उभरती हुई प्रतिभा में महाराजा ने दिलचस्पी लेना शुरू कर दिया। उन्होंने उसे शीघ्र ही राजा की उपाधि दे दी और भारतीय भावना के अनुसार ही उसका पिता, अपने वंश की मर्यादा को ऊँचा उठाने के लिए अपने पुत्र का विवाह किसी ऐसे राज-परिवार में करना चाहता था जिसका वंश निष्कलंक हो सन् १८२८ ई० में कांगड़ा के स्वर्गीय राजा संसारचन्द की एक कन्या को हीरासिंह से ब्याह देने का प्रस्ताव भेजा गया, और जब फतेहसिंह अहलूवालिया के पुत्र के विवाह समारोह में भाग लेने के उद्देश्य से, नया राजा अनिरुद्ध चन्द अपनी बहनों के साथ लाहौर आया हुआ था तो ध्यानसिंह ने उसे कुछ इस तरह अपने वश में कर लिया कि न चाहते हुए भी, उसे इस प्रस्ताव को स्वीकार करना पड़ा। एक साधारण कुल के युवक से उसकी कन्या के विवाह के निम्न स्तरीय प्रस्ताव से संसारचन्द्र की विधवा, परिवार के स्वामी की अपेक्षा कहीं अधिक क्षुब्ध अधिक मर्माहत एवम् कुपित हुई, और अपने बच्चों के साथ सतलज के दक्षिण ओर भाग आई। अनिरुद्ध चन्द को मजबूर किया गया कि वह उन्हें ढूँढ़ कर प्रस्तुत करे, परन्तु वह भी अवसर पाकर भाग निकला और उसका इलाका लाहौर में मिला लिया गया दुःख और अपमान की आग से पीड़ित विधवा रानी मर गई, अंग्रेजों की सहायता लेकर सैनिक शक्ति से अपने इलाके को स्वतन्त्र करने के विचार को कार्य रूप में परिणत करने के व्यर्थ प्रयास में निराश पुत्र ने

संसार चन्द की विधवा, व पुत्र का पलायन—: राजा हीरा सिंह का विवाह १८२९:

१—सन् १८२३ ई० में कैप्टेन मरे के अनुसार रणजीतसिंह ने फीरोजपुर के 'सुदृढ़ व महत्वपूर्ण दुर्ग को पुनः प्राप्त कर लिया था।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भी अपनी माँ का अनुसरण किया । संसारचन्द की कुछ जारज सन्तानें भी थीं; सन् १८२६ ई० में निराशा से खीझ कर महाराजा ने इनमें दो लड़कियों से तो स्वयम् विवाह कर लिया, और एक लड़के को राजा की उपाधि देकर संसारचन्द के कुल क्षेत्र के एक भाग का स्वामी बना दिया। इसी वर्ष, एक उसकी ही कीसी हैसियत वाले एक परिवार की लड़की से हीरा सिंह का विवाह भी बड़ी धूमधाम से किया गया, और रणजीत सिंह के नाम की महानता के प्रभाव से ब्रिटिश संरक्षण में रहने वाले सरदारों तक ने इस अवसर पर उपहार और बधाई के सन्देश भेजे ।[1]

पेशावर पर सैयद अहमदशाह का घेरा-१८२७: सैयद का इतिहास

इसी बीच पेशावर के निकट, अभी तक के इतिहास में अज्ञात एक व्यक्ति ने अत्यधिक अप्रत्याशित रूप से जबर्दस्त घेरे का संगठन किया; यह व्यक्ति एक मुसलमान था—अहमद शाह गाजी, जो उत्तरी भारत के बरेली जिले के एक सैयद खानदान से सम्बद्ध था । पहले वह विख्यात व्यापारिक सरदार, अमीर खाँ का अनुयायी था, परन्तु उसके सरदार की टुकड़ी के, मराठों तथा पिण्डारियों के विरुद्ध किए गए अभियान की सफलतापूर्ण समाप्ति पर, बिखर जाने के फलस्वरूप वह बेकार हो गया, और इसके कुछ पूर्व ही अंग्रेजों ने अमीर खाँ को स्वतन्त्र शासक मान लिया था। सैयद दिल्ली चला गया और उस नगर के एक मौलवी, अब्दुल अजीज ने स्वयम् को अहमद के नेक विचारों से बहुत अधिक प्रभावित महसूस किया जो उस समय प्रचलित इबादत के तरीके की निन्दा किया करता था, और केवल कोरान के सिद्धान्तों पर अमल करने का पक्षपाती था; धीरे धीरे उसकी ख्याति बढ़ती गई, और ज्ञान में कुछ दखल रखने वाले परन्तु डाँवाडोल विचार के दो मौलवियों-इस्माइल, और अब्दुलहई ने सैयद को अपना उस्ताद या गुरु मानकर, निष्ठावान अनुयायियों के रूप में उसके पास रहना प्रारम्भ किया ।[2]

१—मरे, 'रणजोतसिंह' पृ० १४७, १४८, और दिल्ली के रेजिडेन्ट का पत्र सरकार को, २८ अक्टूबर १८२८ ई०।

२—सयद अहमद शाह के दृष्टिकोण व विचारों के प्रसार के लिए मौलवी इस्माइल ने उर्दू में एक ग्रंथ की रचना की 'तकविया उल-इमान', जो कलकत्ता में प्रकाशित हुई । यह पुस्तक दो भागों में विभाजित है, जिसमें प्रथम भाग ही इस्माइल द्वारा लिखित समझा जाता है; द्वितीय भाग कुछ निम्नस्तर का है और किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा लिखा गया है ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भविष्य की सारी कार्यवाहियों के शुभ आरम्भ के लिए एक बार हज कर आने का उपदेश दिया गया और सन् १८२२ ई० में हज करने के ध्येय से अहमद-शाह की कलकत्ता यात्रा काफी सफल सिद्ध हुई, यद्यपि उसकी गतिविधियों पर उस समय तक विशेष ध्यान नहीं दिया गया जब तक कि एक बड़े नगर में उसकी

इसकी भूमिका में इस कथन का विरोध किया गया है कि "केवल बुद्धिमान व विद्वान व्यक्ति ही ईश्वर की बात सुन व समझ सकते हैं। ईश्वर ने स्वयम् कहा है कि असभ्य और अभिज्ञ लोगों को ज्ञान देने के लिए उनमें ही एक पैगम्बर उत्पन्न किया गया था, और इस प्रकार ईश्वर ने अपनी इबादत का रास्ता एक दम सरल बना दिया था। इस मत के अनुसार एक ईश्वर भक्त के लिए दो बातें अवश्य हैं–ईश्वर की एकता में विश्वास, तथा पैगम्बर के सम्बन्ध में जानकारी। बहुत से लोग सन्तों के वचनों को अपना पथ-प्रदर्शक मानते हैं, वरन्तु सेवा व भक्ति केवल ईश्वर की की जानी चाहिए, यद्यपि स्तर ऊँचा उठाने के लिए सन्तों की रचनाओं का भी अध्ययन किया जाना चाहिए जो धर्मगन्थों से सहमति प्रकट करते हैं"

प्रथम अध्याय में ईश्वर की एकता पर विचार किया गया है, और इसमें लेखक सन्तों पैगम्बरों व देवदूतों के भेजे जाने की धारणा को नापाक बताता है। वह ऐसी इबादत के लिए दिये जाने वाले तर्कों को व्यर्थ, और ईश्वर के वचनों के प्रति अज्ञान से उत्पन्न बताता है, "प्राचीन मूर्तिपूजक भी इसी प्रकार कहते थे कि वे प्राकृतिक शक्तियों व दैवी अस्तित्वों के प्रति मात्र सम्मान प्रकट करते थे और उन्हें ईश्वर के समान नहीं समझते थे, परन्तु ईश्वर ने स्वयम् इन अविश्वासियों को अपना जबाब दिया था; इसी प्रकार मृत सन्तों व पादरियों को ईश्वर के समान सम्मान देने वाले ईसाइयों को भी ईश्वरीय जवाब मिला था। ईश्वर एक हैं, और उसका कोई सहयोगी नहीं है श्रद्धा और भक्ति का हकदार एक वही है, दूसरा कोई नहीं; 'लेखक इसी स्वर में अपनी बात कहता जाता है, परन्तु बीच में कुछ सन्दिग्ध स्थितियाँ आ जाती हैं, जैसे कि हजरत मुहम्मद साहब कहते हैं –ईश्वर एक हैं और मनुष्य अपने पैदा होने की बात अपने माँ बाप के जरिए जानता है; वह अपनी माता का विश्वास करता हैं, और फिर भी वह उस बात का अविश्वास करता है या यह कि खुदा पर इमान लाने वाला बुरे से बुरे कर्म करने वाला इन्सान अत्यन्त पवित्र मूर्तिपूजक से कहीं अधिक अच्छा होता है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उपस्थित ने उसकी लोक प्रियता का उत्घोष न कर दिया। उसने मक्का और मदीना के लिए समुद्री यात्रा प्रारम्भ की, और यद्यपि इसका कोई प्रमाण नहीं मिला, फिर भी ऐसा विश्वास किया गया कि उसने इस यात्रा के दौरान कुस्तुन्तुनिया का भ्रमण भी किया था। लगभग चार वर्ष की अनुपस्थिति के पश्चात् वह दिल्ली लौटा, और उसने अपने अनुयायियों को काफिरों के विरुद्ध युद्ध करने के लिए प्रोत्साहित करना आरम्भ किया। उसकी कार्यवाहियों व व्यवहार से ज्ञात होता था कि वह केवल सिक्खों को ही अविश्वासियों या काफिरों की श्रेणी में गिनता था, परन्तु वास्तव में उसके उद्देश्य क्या थे, यह पूर्णतः अज्ञात है। वह अंग्रेजों को असन्तुष्ट न करने का पूरा ध्यान रखता था, परन्तु एक लम्बे चौड़े और विशाल जनसंख्या वाले एक देश पर एक इतने दूर के राष्ट्र की प्रभुसत्ता ने उसे ऐसे अवसर अवश्य प्रदान किये कि वह अलक्षित रूप से अपनी युद्धात्मक तैयारियाँ करता रहा। सन् १८२६ ई० में लगभग पाँच सौ आदमियों के साथ वह दिल्ली से रवाना हुआ और यह निश्चय किया गया कि इसी प्रकार विभिन्न नेताओं के के साथ छोटे छोटे दलों में शेष लोग भी असन्दिग्ध रूप से चले आयें। अहमद शाह, कुछ समय तक टोंक में ठहरा जहाँ उसके पुराने स्वामी अमीर खाँ का निवास स्थान था, और अमीर खाँ के बेटे को भी इस नए सन्त के मत में दीक्षित कर लिया गया। अपने इस नए और उत्साही शिष्य से, कम से कम, धन की पर्याप्त सहायता मिली, और वह रेगिस्तान में से होते हुए सिन्ध स्थित खैरपुर जा पहुँचा जहाँ मीर रुस्तम खाँ ने उसका काफी स्वागत सत्कार किया; इसी स्थान पर रुककर उसने 'गाजियों' या धर्म के लिए लड़ने वाले उन छोटे छोटे दलों के आ मिलने की प्रतीक्षा भी की जो दिल्ली से एक के बाद एक रवाना हुये थे। अब वह कन्दहार की ओर बढ़ा, परन्तु उसकी योजनाओं को सन्दिग्ध दृष्टि से देखने वाले बारकज़ाई बिरादरों ने उसे कोई प्रोत्साहन नहीं दिया; अहमद शाह रुका नहीं; अब उसने गिलज़ई देश की ओर रूख किया; और सन् १८२७ ई० के प्रारम्भ में काबुल नदी को पार कर लिया और पेशावर तथा सिन्ध के लगभग मध्य में, उसुफजई की पहाड़ियों में स्थित पंजतार पहुँच कर दम लिया।[1]

हजयात्रा

राजपूताना और सिन्ध होते हुए कन्दहार व पेशावर की यात्रा :

उसुफजइयों को जेहाद के लिए उकसाना :

१—कर्नल मरे, 'रणजीत सिंह' पृ. १४५, १४६—लेखक ने अहमदशाह

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

युद्धप्रिय उसुफजइयों में पंजतार परिवार अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है, और चूँकि यह जन-जाति यार मुहम्मद खाँ की योजनाओं से आशंकित थी जो रणजीतसिंह के अधीन होने के कारण काबुल की ओर से, किसी संकट से सुरक्षित था, अतः उन्होंने सैयद और उसके 'गाजियो' का, मुक्तिदाता के रूप में स्वागत किया, और अहमद की सत्ता या सर्वोच्चता को सामान्य मान्यता प्राप्त हो गई। गाजियों के पास न तो अच्छी युद्ध-सामग्री थी न विशेष सैनिक अनुभव, और इसी अक्षय दल को लेकर सैयद अहमद ने सिक्खों की एक टुकड़ी पर धावा बोल दिया जो आगे बढ़कर अटक से ५ मील ऊपर अकोरातक आ गई थी; इस टुकड़ी का नायक था सरदार बुधसिंह सिन्धनवाल, जो महाराजा के ही वंश का था। सिक्ख सरदार ने खाइयाँ खोदकर मोर्चा बना लिया और पहाड़ी हमलावरों के शोरगुल से भरे धावे को सँभालकर, उन्हें काफी हानि पहुँचाते हुए खदेड़ दिया, परन्तु चूँकि वह अपनी इस संक्षिप्त विजय के पश्चात् चुप बैठ रहा अतः सैयद की ख्याति एवम् शक्ति में वृद्धि होती रही, और यारमुहम्मद को इसी में बुद्धिमानी दिखाई पड़ी कि वह उसुफजइयों से सन्धि करके उनके क्षेत्र की सीमाओं का सम्मान करने का वचन दे दें। पेशावर के सूबेदार पर यह सन्देह किया गया कि उसने अहमद को विष देकर समाप्त कर देने की कुचेष्टा की थी, और सन् १८२९ ई० में इस तथ्य या आरोप को बहाना बनाते हुए सैयद ने पेशावर पर आक्रमण कर दिया[1]। यार मुहम्मद खाँ पराजित हुआ और घातक रूपसे

सिक्खों के विरुद्ध सैयद की अकोरा में असफलता १८२७ :

के सम्बन्ध में अधिकांश जानकारी, उसी के एक रिश्तेदार, और एक सम्मानित मौलवी से प्राप्त की है, जिनमें से दोनों टोंक के शासक की सेवा में अच्छे पदों पर हैं; मुन्शी शाहमत अली, और कसूर के एक ब्रिटिश सेवी पठान; पीर इब्राहीम खाँ ने भी कुछ बातें बताई, और इस पठान ने अहमद के सिद्धान्तों को ठीक बताया। अधिकांश शिक्षित मुसलमान उसके मत के औचित्य का समर्थन करते है, साधारण जनसमुदाय में सैयद की बहुत इज्जत थी, और कहा जाता है कि उसकी वाणी में इतनी शक्ति थी कि दिल्ली के दर्जी उसके कहने पर कटे हुए कपड़े उनके मालिकों को वापस करने तक के लिए तैयार हो गये थे।

१—देखिये मरे, 'रणजीत सिंह', पृ. १४६, १४९; सैयद अहमद के अनुयायियों का विश्वास था कि उसे विष दिया गया था जिससे वह काफी पीड़ित हुआ था।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भी घायल हो गया परन्तु राजकुमार शेरसिंह तथा महाराजा के इटालियन जनरल वेण्टुरा के अधीन उपस्थित एक सिक्ख सैन्यदल ने पेशावर को बचा लिया और उसके भाई को सूबेदार बनाया, यह सैन्यदल महाराजा के लिए पहले से ही वादा किए गए, एक बढ़िया नस्ल के लैला नामक प्रसिद्ध घोड़ी को लाने के बहाने से पेशावर की ओर गया था; इसी के समान क़हर नामक एक प्रसिद्ध घोड़ा महाराजा के पास पहले ही से था जिसे बारकज़ई भाइयों से प्राप्त करके उन्होंने गर्व का अनुभव किया था, और उसी का जोड़ा लगाने के लिए वे लैला को पाना चाहते थे[1]।

यार मुहम्मद की पराजय व मृत्यु-१८२९

यार मुहम्मद खाँ के भाई सुल्तान मुहम्मद और उसके भाइयों को, उनकी जागीर की चाहे जैसे भी रक्षा करने के लिए छोड़ते हुए सिक्ख सेना सिन्ध की ओर लौट आई, और ऐसा भी प्रतीत होता है कि रणजीत सिंह को यह आशा थी कि सुल्तान मुहम्मत खाँ व उसके भाइयों के आगे पड़ने वाली कठिनाइयों तथा उस सूबे की असुरक्षित स्थिति को देखते हुए यदि उसपर पूर्ण अधिकार कर

सैयद अहमदशाह द्वारा सिन्ध पार

१—जनरल वेण्टुरा लैला के नाम पर एक घोड़ा पाने में सफल हो गया था, परन्तु यह वही घोड़ी थी इसमें सन्देह है, एक बार तो न देने का यह बहाना भी किया गया था कि वह मर गयी है (कैप्टेन वेड का पत्र दिल्ली के रेजिडेएट को, १७ मई १८२९।

[आसबोर्न के अनुसार इस घोड़े को प्राप्त करने के लिए महाराजा को तीस हजार पौण्ड से भी अधिक धनव्यय करना पड़ा था; इसके लिए उन्हें जिस प्रकार खुले डाकू का रूप लेना पड़ा, इसका जिक्र करते हुए वह लिखता है—"लीली (अर्थात् लैला) को प्राप्त करने के लिए वह इतना कृत संकल्प था कि जिसके पास यह घोड़ा था, उसके बारह वर्षीय पुत्र को उन्होंने अपने दर्बार में कड़े पहरे में कर दिया उसे व्यर्थ ही यह कहकर आश्वस्त करने का प्रयास किया गया कि घोड़ा मर गया है, उसने उत्तर दिया, तुम यहीं रहोगे जब तक कि घोड़ा नहीं मिल जाता; उसने अपनी बात रक्खी, और लड़के को उस समय तक जाने की अनुमति नहीं दी गई; जब तक कि घोड़ा उन्हें सौंप नहीं दिया गया।' ('कोर्ट एण्ड कैम्प आव रणजीत सिंह' ३० मई १८३८ का संस्मरण)—अनुवादक]

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

किया जाना १८३० लिया गया तो इसे उचित ही माना जायगा[1]। परन्तु सैयद अहमद का यश एवम् प्रभाव कश्मीर तक पहुँच गया था और सिन्ध तथा कश्मीर घाटी के मध्य बसी हुई पर्वतीय जनजातियाँ विद्रोह के मार्ग पर बढ़ने के लक्षण प्रकट करने लगीं। सन् १८३० ई० के जून माह में अहमद ने सिन्ध नदी को पार कर लिया और हरीसिंह नलवा तथा जनरल एलार्ड के नेतृत्व में स्थित एक सिक्ख सेना पर आक्रमण कर देने की योजना बनाई,

परन्तु पराजित होकर भागना, व पेशावर पर अधिकार १८३० परन्तु सिक्खों ने उसके पाँव उखाड़ दिए और उसे नदी के पश्चिम ओर लौटने पर बाध्य किया। कुछ ही महीनों के अन्दर उसने पुनः शक्ति संग्रह कर लिया और सुल्तान मुहम्मद पर हमला कर दिया। बारकजई सूबेदार पराजित हुआ और पेशावर परसैयद तथा उसके गाजियों का अधिकार हो गया। उसकी सफलता के साथ साथ उसकी ख्याति भी बढ़ती रही और परम्परा के अनुसार, अपनी प्रगति के प्रयत्नों में व्यस्त रहते हुए, उसने स्वयम् को 'खलीफा' घोषित किया और एक सिक्का चलाया जिसपर अंकित था, 'नेक धर्मरक्षक अहमद, जिसकी तलवार की चमक काफिरों पर बरबादी बिखेरती है।' पेशावर की पराजय से लाहौर दरबार के कान खड़े हुए, सिन्ध के पास स्थित सिक्ख सेना को और बलशाली बनाया गया, और राजकुमार शेरसिंह को उसका सेनापति बना दिया गया। वे छोटे मोटे मुस्लिम सरदार, जिनका निजी स्वार्थ धर्म पर हावी हो गया था, सामान्यतः इस भारतीय मुस्लिम साहसिक की सत्ता को पसन्द नहीं करते थे, और इसी समय सैयद अहमद के अदूरदर्शी कृत्यों ने उसके उसुफज़ई अनुयायियों में असन्तोष उत्पन्न कर दिया। उसने किसानों से उनके उत्पादन का एक भाग अपने

सैयद के प्रभाव में ह्रास लिए वसूल किया था, और इस कार्य से उसके अनुयायियों व समर्थकों को कोई विशेष असन्तोष नहीं हुआ, क्योंकि वे मानते थे कि उनकी जायदाद में धर्मोपदेशकों का भी

१—कैप्टेन वेड का पत्र दिल्ली के रेजिडेण्ट को, १३ सितम्बर सन् १८३०, महाराजा ने बारक जइयों के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए एक बहाना सुरक्षित रख छोड़ा था। बारकजइयों ने खट्टकों की जाति को अपने अधीन कर लिया था, और महाराजा का कहना था कि वजीर फतेह खाँ ने उस जाति को स्वतन्त्र छोड़ देने की बात पर सहमति प्रकट की थी कैप्टेन वेड का पत्र सरकार को ९ दिसम्बर १८३१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भाग था, परन्तु जब उसने यह व्यवस्था दी कि सभी युवा लड़कियों का विवाह अविलम्ब कर दिया जाना चाहिए, तो इससे अफ़ग़ान माँ बापों के लाभ में बाधा पड़ने की सम्भावना उत्पन्न हो गई जो इस अर्थ में लोभी होते थे, तथा साम्मान्यतः अपनी लड़की—समृद्धतम उम्मीदवार को ही दिया करते थे। इसी असन्तोषपूर्ण स्थिति में जब सैयद अहमद पर यह आरोप लगाया गया कि वह धीरे-धीरे अफ़ग़ान लड़कियों का विवाह अपने भारतीय अनुयायियों से करता जा रहा है, तो लोगों को उसके उद्देश्य के प्रति भी सन्देह होने लगा, और उनका असन्तोष जोर पकड़ने लगा। सन् १८३० ई० के नवम्बर के प्रारम्भ में ही उस पर ज़ोर डाला गया कि एक निश्चित कर के बदले में पेशावर सुल्तान मुहम्मद को वापस कर दिया जाय; और अहमदशाह गाज़ी, स्वयम् सिक्खों से युद्ध करने के ध्येय से सिन्ध के बाँए तट की ओर बढ़ चला। सैयद मुख्यतः उन गाजियों के बल पर था जो हिन्दुस्तान से ही अपना भाग्य उसे सौंप कर उसका साथ देते आ रहे थे; मुजफ्फराबाद के तथा अन्य युद्धप्रिय सरदार भी उसे कुछ प्रोत्साहन दे रहे थे, जब कि उसके उसुफ़ज़ई अनुयायियों की संख्या बहुत कम हो गई थी इधर शेरसिंह तथा कश्मीर के सूबेदार के प्रयत्नों से पहाड़ियों के 'खानों' को वश में किया जा चुका था, फिर भी अहमद की सक्रिय चेष्टाएँ कम नहीं हुई और ऊबड़ खाबड़ पर्वतीय इलाके में हुए एक संक्षिप्त से युद्ध में सफलता ने कुछ हद तक उसका साथ दिया परन्तु सिक्खों के प्रायः होते रहने वाले धावों के दौरान सन् १८३१ के मई माह में बालाकोट नामक एक स्थान के निकट वह पराजित हुआ और मार डाला गया। उसुफ़ज़इयों ने उसके द्वारा नियुक्त प्रतिनिधियों को अविलम्ब निकाल बाहर किया; गाजी लोग छद्मवेष में इधर-उधर बिखर गए और सैयद का परिवार, अहमद के मित्र, टोंक के नवाब के यहाँ आश्रय ग्रहण करने के ध्येय से तीव्रतापूर्वक हिन्दुस्तान की ओर रवाना हो गया[1]।

पेशावर से हटना १८३०

कश्मीर की ओर वापसी, युद्धतथा मृत्यु, १८३१

---

१ – कैप्टेन वेड का पत्र दिल्ली के रेज़िडेण्ट को, २१ मार्च १८३१, तथा इसी एवम् पिछले वर्ष के कुछ अन्य पत्र। देखिये मरे, 'रणजीतसिंह', पृ० १५०। सैयद के अनुयायी इन सभी तथ्यों को गलत बताते हैं। कि उसने स्वयम् को 'खलीफ़' घोषित किया था, अपने नाम का सिक्का चलाया था तथा उसुफ़ज़ई कुमारियों को अपने हिन्दुस्तानी अनुयायियों के हवाले कर दिया था।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इस समय महाराजा रणजीत सिंह अपनी शक्ति एवम् प्रभाव के उच्चतम शिखर पर थे, और दूर दूर के राज्य उनसे मित्रता पूर्ण सम्बन्ध स्थापित रखने का प्रयास कर रहे थे। सन् १८२९ ई० में बलूचिस्तान की ओर से उनके लिए उपहार के रूप में कुछ बढ़िया नसल के घोड़े भेज कर आशा प्रकट की। सिन्ध के पश्चिम स्थित हर्रन्द तथा दाजल की सीमा वर्ती चौकियाँ, जिन पर बलूचिस्तान के खान के अधीनस्थ, बहावल पुर के नवाब ने बलात् अधिकार कर लिया था - खान को वापस लौटा दी जायेंगी।[1] हेरात के शाह महमूद से भी महाराजा का का पत्र व्यवहार चल रहा था,[2] और सन् १८३० ई० में ग्वालियर की बैजा बाई ने उन्हें बालक सिन्धिया के विवाह संस्कार समारोह में सम्मिलित होकर सिन्धिया को कृतार्थ करने के लिए आमंत्रित किया।[3] उस समय अंग्रेजों के मन में यह शंका भी घुसी थी कि महाराजा रूस से भी पत्र-व्यवहार कर रहे थे,[4] अतः वे स्वयम् भी महाराजा की लगभग खुशामद ही कर रहे थे, क्योंकि उनके प्रभाव क्षेत्र, तथा लाभदायक व्यापार के प्रसार के लिए महाराजा का सहयोग नितान्त आवश्यक था।

त्रिभिन्न राज्यों द्वारा रणजीत सिंह की मित्रता प्राप्त करने का प्रयास — बलूची, शाह महमूद, ग्वालियर, रूसी, व अंग्रेज:

१—कैप्टेन वेड के पत्र दिल्ली के रेज़िडेण्ट को, ३ मई १८२९, तथा २९ अप्रैल १८३०, हर्रन्द एक समय काफ़ी प्रसिद्ध स्थान था (देखिए मुंशी मोहन लाल, 'जनरल' की ३ मार्च १८२६ की तारीख़ में) ; बहावलपुर वृत्तान्त से ज्ञात होता है कि इसे प्राप्त करने में नवाब को कुछ अन्य लोगों के विश्वास घात से सहयोग मिला था। जैसा कि जनरल वेण्टुरा से ज्ञात हुआ, जब बहावलखाँ को सतलज के पश्चिम स्थित इलाकों से वंच्चित कर दिया गया तो वेण्टुरा ने पुनः इस स्थान पर अधिकार कर लिया था।

२—कैप्टेन वेड के पत्र दिल्ली के रेज़िडेण्ट को, २१ जनवरी १८२९, और ३ दिसम्बर १८१०।

३—कैप्टेन वेड का पत्र दिल्ली के रेज़िडेण्ट को, ७ अप्रैल १८३०, महाराजा ने यह कह कर इस आमत्रंण को अस्वीकार कर दिया था कि उनके पुत्र के विवाह में सिन्धियाँ लाहोर नहीं आया था।

४—कैप्टेन वेड का पत्र, दिल्ली के रेज़िडेण्ट को, २४ अगस्त १८२०।

५—सरकार का पत्र कैप्टेन वेड को, २८ अप्रैल, १८३१, तथा मरे, 'रणजीतसिंह' पृ० १६२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सन् १८३१ ई० के प्रारम्भ में भारत के गवर्नर जनरल, लार्ड विलियम बैण्टिंग शिमला पहुँचे, और एक सिक्खों के एक शिष्ट दल ने महाराजा की ओर से, गवर्नर जनरल तथा उनकी सरकार की समृद्धि के लिए शुभ कामनाएँ प्रकट कीं। मौसम की बढ़ती हुई गर्मी के कारण उसक

गवर्नर जनरल, लार्ड बेण्टिक शिमला में—१८३१

बदले में एक औपचारिक मिशन को लाहौर दरबार में न भेजा जा सका, परन्तु लुधियाना के पालिटिकल एजेण्ट मि० वेड को गवर्नर जनरल के एक पत्र का वाहक बना कर महाराजा के पास भेजा गया जिसमें उनकी शुभकामनाओं के लिए धन्यवाद दिया गया था। इस एजेन्ट को यह जानकारी प्राप्त करने के लिए निर्देशित किया गया था कि क्या महाराजा को गवर्नर जनरल से भेंट करने की इच्छा है अथवा नहीं, और यदि है तो वे अपनी ओर से ऐसा प्रस्ताव भेज सकते हैं, अथवा नहीं, क्योंकि यह एक ऐसा मामला था जिसमें गवर्नर जनरल अपनी ओर से पहल नहीं कर सकते थे[1]। लार्ड बेण्टिक अपने इस कार्य द्वारा दुनियाँ को यह जता देना चाहते थे कि इन दोनों राज्यों में पूर्ण मतैक्य तथा समभाव था, परन्तु महाराजा अपनी ही सत्ता को प्रबल बनाना तथा सिक्खों को यह विश्वास दिला देना चाहते थे कि शक्तिशाली अंग्रेज शासकों ने उनके वंश को 'खालसा' के न्याय प्रधान के रूप में स्वीकार कर लिया था। लाहौर दरबार का एक योग्य सरदार हरीसिंह उन लोगों में से एक था जो राजकुमार खड़क सिंह के अधिकार को मान्यता दिए जाने के विरुद्ध वे, और युवराज भी सम्भवतः स्वयम् अपने विषय में सिक्खों के मत से परिचित था, क्योंकि अभी पिछले ही वर्ष उसने बम्बई के गवर्नर से पत्र व्यवहार करके सम्भवतः

१—पत्रों के इस आदान-प्रदान के सम्बन्ध में देखिए, पर्शियन सेक्रेटरी का पत्र दिल्ली के पौलिटिकल सेक्रेटरी, बम्बई को ६ जुलाई १८३०।

इसकी कोई सम्भावना नहीं दिखाई देती कि व्यक्तिगत रूप से महाराजा हरीसिंह से द्वेष रखते थे, या हरीसिंह अपने जीवित स्वामी के प्रति विश्वासघाती था, परन्तु हरीसिंह एक धर्मोत्साही सिक्ख था, और खड़क सिंह अपने उत्तराधिकार व अपने जीवन के प्रति भी, सदैव आशंकित रहता था। रूपड़ में हुई भेंट के लिए महाराजा की व्यग्रता का विवरण मरे की 'रणजीतसिंह' पृ. १६२ में मिलता है। कर्नलवेड ने लेखक को सूचित किया है कि सभी सिक्ख सरदार इस बात के विरुद्ध थे कि महाराज, गवर्नर जनरल से भेंट करें।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सहानुभूति पूर्ण पत्र के अस्पष्ट शब्दों से आशा प्राप्त करने की चेष्टा की थी[1]।

रूपड़ में महाराजा व गवर्नर जनरल की भेंट-१७ जुलाई १८३१, ३१ अक्टूबर १८३१,

रणजीत सिंह ने प्रसन्नतापूर्वक भेंट करने का प्रस्ताव भेजा, और उनकी एक मुलाकात सतलज के तट पर स्थित रूपड़ में, अक्टूबर (१८३१) में हुई। इस बीच महाराजा के लिए इंगलैण्ड के सम्राट द्वारा उपहार-स्वरूप भेजे गए कुछ घोड़े लेफ्टिनेण्ट बर्नेस के संरक्षण में सिन्ध व रावी पार करते हुए लाहौर पहुँच गए थे, और प्रायः होती रहनेवाली मुलाकातों में से एक में महाराजा ने गवर्नर जनरल से निरन्तर व स्थायी मित्रता का लिखित आश्वासन प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की थी जिसे पूरा कर दिया गया था। यह भावना दूर-दूर तक प्रसारित हो गई थी कि उनके परिवार को अंग्रेज सरकार का पूर्ण समर्थन व सहयोग प्राप्त था, और ऐसा प्रतीत हुआ कि महाराजा ने अपने लक्ष्यों को पूर्णतः प्राप्त कर लिया है, परन्तु सिन्ध के सम्बन्ध में उनका मस्तिष्क अशान्त था जहाँ के सम्बन्ध में कुछ कुचक्रों की रचना के अस्पष्ट से समाचार उन्हें प्राप्त हो रहे थे। उन्होंने सिन्ध के विषय में अपनी योजनाओं का स्पष्ट संकेत किया, और कहा कि वहाँ के अमीरों के पास सक्षम सेना का अभाव था, वे अंग्रेजों के प्रति मित्रतापूर्ण भावना भी नहीं रखते थे, और लेफ्टिनेण्ट बर्न्स की यात्रा में भी उन्होंने बाधा पहुँचाने का यत्न किया था[2], परन्तु गवर्नर जनरल ने अपने इस उत्सुक अतिथि व मित्र को उन प्रस्तावों के विषय में कुछ भी नहीं बताया जो सिन्ध के अमीरों के पास भेजे गए थे और अभी मार्ग ही में थे, क्योंकि गवर्नर जनरल को यह भय था कि यह सूचना पाकर कहीं महाराजा की शान्तिपूर्ण एवम् लाभदायक मनोवृत्ति परिवर्तित न हो जाय[3]। रणजीत सिंह को यह आभास मिला हो या न मिला हो कि उन

सिन्ध के सम्बन्ध में महाराजा की चिन्ता

१—मरे 'रणजीतसिंह' पृ. १६६।

२—मरे 'रणजीतसिंह', पृ० १६७ : सिन्धियों की सेना के सम्बन्ध में महाराजा के विचार दाबो व मियानी के विजेताओं को शायद न जँचे, परन्तु महाराजा ने उनके शाहस की नहीं, बल्कि अनुशासन व युद्ध सामग्री की आलोचना की थी। शाहशुजा के १८३४ के अभियान ने महाराजा के इस निष्कर्ष को सही सिद्ध किया।

३—मरे 'रणजीतसिंह', पृ. १६७, १६८, रूपड़ की मुलाकात के साथ

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पर अविश्वास किया जा रहा था, परन्तु चूँकि सिन्ध नदी में जल यातायात की योजना में महाराजा भी एक पार्टी थे, और योजना परिपक्व हो गई थी, अतः यदि गवर्नर जनरल ने उनसे कोई छिपाव दुराव न करने का प्रयत्न किया होता तो वह ब्रिटिश सरकार की स्थिति व चरित्र की दृष्टि से अधिक उचित व अनुकूल होता।

सिन्ध नदी मार्ग से व्यापार की योजना

यात्री मूरक्राफ्ट ने इस बात को अच्छी तरह महसूस किया था कि सिन्ध नदी का प्रयोग ब्रिटिश व्यापार के एक मार्ग के रूप में किया जाना अत्यन्त लाभजनक सिद्ध होगा[1], सिन्ध तथा उसकी सहायक नदियों में जल यातायात की योजना को ब्रिटिश भारत सरकार द्वारा तथा भौतिक उपयोगितावाद के समर्थ को द्वारा अविलम्ब स्वीकार कर लिया गया। इंगलैण्ड के राजा विलियम द्वारा उपहार स्वरूप दिए गए घोड़ों को जलमार्ग से भेजने का एक कारण, इस विख्यात नदी के व्यापारिक महत्व का अनुमान लगाना भी था[2], और लेफ्टिनेण्ट बर्न्स द्वारा प्राप्त विवरण से गवर्नर जनरल को दृढ़ विश्वास हो गया था कि यह नदी, यातायात की दृष्टि से, गंगा से कहीं अधिक उपयोगी थी। लार्ड बेन्टिक के अनुसार इस बात को मानने के लिए अनेक कारण थे कि एक समय पश्चिमी घाटी की जनसंख्या भी उतनी ही सघन थी जितनी कि अब पूर्वी घाटी की है; यह भी सोचा गया कि ब्रिटिश सरकार की प्रबल सत्ता के दृढ़ प्रयोग से उन राजनैतिक अवरोधों को समाप्त किया जा सकता था जिन्होंने अलेक्जेण्डर की नदियों के क्षेत्र से वाणिज्य को निष्कासित कर दिया था[3], अतः यह निश्चय किया गया कि सिन्ध नदी को जल मार्ग के रूप में सारे विश्व के लिए खोल दिया जायगा।

रणजीत सिंह से भेंट करने के पूर्व ही गवर्नर जनरल ने कर्नल पाटिंगर को इस निर्देश के साथ हैदराबाद भेज दिया था कि वह सिन्ध के अमीरों से इस सम्बन्ध में वार्ता करे कि वे एक निश्चित रकम लेकर नदी के निचले भाग

कैप्टेन मरे की पुस्तक का १०वाँ अध्याय पूरा का पूरा, मि० प्रिन्सेप द्वारा लिखा समझा जा सकता है जो गवर्नर जनरल के साथ, सरकार के सेक्रेटरी थे।

१—मूर क्राफ्ट 'ट्रवेल्स' '२:३३८।

२—सरकार का पत्र कर्नल पाटिंगर को २२ अक्टूबर, १८३१ और मरे 'रणजीत सिंह' 'पृ० १५१।

३—[बाद में सर एच. ई० पाटिंगर, हाँगकाँग के प्रथम गवर्नर—सम्पादक]

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

को सभी नौकाओं के आवागमन के लिए खोल दे[1], और इसके लगभग दो माह पश्चात्, अर्थात् १८३१ के लगभग अन्त में लॉर्ड बेण्टिक ने महाराजा को लिखा कि उन्होंने जो स्टीमबोट देखने की इच्छा प्रकट की थी, वह उनकी उच्च बुद्धि का एक प्रमाण था, और उस इच्छा की पूर्ति शीघ्र ही की जाने वाली थी, क्योंकि ब्रिटिश सरकार दोनों राज्यों के व्यापारिक सम्बन्धों को सुदृढ़ बनाने की इच्छा कर रही थी। कैप्टन वेड को भी इसी समय इस उद्देश्य से लाहौर भेजा गया कि वह महाराजा से व्यक्तिगत रूप से मुलाकात कर उन्हें बताए कि कर्नल पाटिंगर के साथ जो मिशन सिन्ध भेजा गया था, उसका उद्देश्य था निचले सिन्ध के साथ सतलज में भी स्वतन्त्र यतायात का प्रस्ताव रखना; तथा उन्हें आश्वस्त करना कि ब्रिटिश व्यापार के प्रसार से ब्रिटिश शक्ति के प्रसार का अर्थ न लगाया जाना चाहिए[2] परन्तु रणजीत सिंह के मन में भी इस सम्बन्ध में अनेक विचार एवम् सन्देह जन्म ले रहे थे।[3] उसने डेरा गाजी खाँ तक के क्षेत्र की व्यवस्था बहावलपुर के नवाब को सौंप दी थी जो कर आदि देने में उतना नियमित नहीं था जितना उसे होना चाहिए था; और उसे पंजाब की मुख्य भूमि से निकाल बाहर करना महाराजा के लिए लाभदायक तो था ही, साथ ही, यदि अंग्रेज तटस्थ रहते, तो ऐसा करने में कोई खतरा भी नहीं था: कठिनाई यही थी कि बहावल खाँ अपने, सतलज के बाँएँ तट पर स्थित इलाकों के लिए अंग्रेजों द्वारा संरक्षित था, और लेफ्टिनेण्ट बर्न्स सिन्ध के ऊपरी भाग में ही था। अंग्रेजों से सर्वदा आशंकित महाराजा ने विचार

सिन्धियों व सिक्खों से किए गए प्रस्ताव: १९ दिसम्बर १८३१

रणजीत सिंह के विचार व आशंकाएँ

१—मरे 'रणजीतसिंह' 'पृ० १६८।

२—सरकार का पत्र कैप्टेन वेड को, १९ दिसम्बर, १८३१; ऐसा स्वीकार किया जाता है, कि यह मिशन वह उसकी योजनाएँ रूस की गति विधियों व योजनाओं से भी कुछ सम्बन्ध रखती थीं, परन्तु गवर्नर जनरल ने महाराजा को इस लक्ष्य से अवगत नहीं कराया था (मरे' 'रणजीतसिंह' 'पृ० १६८)।

३—रणजीतसिंह का ध्यान मुख्यतः सिन्ध की ओर आकृष्ट था और किसी ईरानी शाह ज़ादी से सिन्ध के किसी अमीर या उसके पुत्र के वैवाहिक सम्बन्ध की अफवाह को सुनकर वह कुछ चिन्तित हो गया था (कैप्टेन वेड का पत्र सरकार को, ५ अगस्त १८३१)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

किया कि लेफ्टिनेण्ट बर्न्स द्वारा निरीक्षित राजनैतिक स्थिति की रिपोर्ट ही ब्रिटिश सरकार के समक्ष प्रस्तुत की जायगी, और ब्रिटिश सरकार उसी को वास्तविक व स्थायी मानेगी[1] और इसीलिए जब बर्न्स ने सिन्ध की मुख्य धारा को छोड़ा, तो उसने तत्सम्बन्धित कार्यवाहियों के रुख में परिवर्तन का आभास पाया, और रूपड़ की मुलाकात से पूर्व ही जनरल वेण्टुरा ने बहावल खाँ को उसके लाहौर स्थित कृषि क्षेत्रों व सतलज के दाहिने तट पर स्थित इलाकों के अधिकार से वांचित कर दिया था।[2] शिकारपुर भी अब कल्होरों अथवा तालपुरियों के सिन्ध का अंग नहीं रह गया था;

दाऊद पुत्रों का निचले पंजाब से निष्कासन १८३१: शिकार पुर पर दावे की घोषणा:

नाममात्र के सुल्तान, शाह अयूब के वजीर मुहम्मद अजीम खाँ की मृत्यु के पश्चात् तालपुरियों ने शिकारपुर का अपहरण कर लिया था, जो कुछ समय से खैरपुर, मीरपुर व हैदराबाद के अमीरों की सम्मिलित सम्पत्ति मानी जाती थी। रणजीत सिंह ने विचार किया कि सिन्ध के बारकजई चूँकि उनकी अधीनता में थे, अतः दक्षिणी पूर्वी सिन्ध के अमीरों की तुलना में शिकार पुर पर उनका दावा कहीं अधिक था, अतः उन्होंने इसे अपने राज्य में मिलाने का दृढ़ संकल्प प्रकट किया।[3]

अंग्रेजों की माँग के आगे महाराजा का झुकना १८३२

जिस समय ब्रिटिश व्यापारियों के लिए सतलज के जल मार्ग को मुक्त कर देने का प्रस्ताव लेकर कैप्टेन वेड ने महाराजा से मुलाकात की, उस समय उनका मस्तिष्क उक्त मामलों में ही उलझा हुआ था। महाराजा ने प्रत्यक्ष में इस प्रस्ताव के प्रति अपनी प्रसन्नता प्रकट की, परन्तु उन्होंने सम्भवतः यह आशा की थी कि अंग्रेजों ने सिन्ध से बलात् मार्ग पाने की तैयारी की थी; उन्होंने कैप्टेन वेड से पूछा कि कर्नल पाटिंगर के पास कितनी रेजिमेण्टें थीं; साथ ही उसने अमीरों को नियंत्रित करने के लिए अंग्रेजों के कहने पर स्वयम् भी कूच करने की इच्छा प्रकट की[4]। आगे यह भी निश्चित रूप से ज्ञात हुआ

१—कैप्टेन वेड को यह बाद में ज्ञात हुआ कि महाराजा इस विचार से प्रभावित थे, देखिये उसका पत्र सरकार को २८ अक्टूबर, १८३६।

२—कैप्टेन वेड का पत्र सरकार को, ५ नवम्बर १८३१।

३—रणजीतसिंह ने इस तर्क का प्रयोग बार बार किया था; उदाहरण के लिए देखिए कैप्टेन वेड का पत्र सरकार को, १५ जनवरी १८३७।

४—कैप्टेन वेड के पत्र सरकार को, १ व १३ फरवरी, १८३२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कि महाराजा ने मीरपुर के मीर अली मुराद के पास, डेरागाज़ी खाँ में उसके द्वारा कृषि-कार्य किए जाने का प्रस्ताव भेजा था जिससे कि तालपुरियों में भेद पैदा हो जाय और लाहौर के मित्रों की संख्या में वृद्धि हो सके, जब कि कर्नल पाटिंगर अंग्रेजों के लिए सिन्धी अमीरों की मित्रता प्राप्त करने में चेष्टारत था[1]। गवर्नर जनरल ने अपना कार्यक्रम निश्चित कर लिया था, और इस बात पर अपनी सहमति प्रकट कर दी थी कि सतलज और सिन्ध का उपयोग जलमार्गों के रूप में किया जाय तथा उसकी देखरेख के लिए मिठनकोट में एक ब्रिटिश आफिसर के निवास की व्यवस्था की जाय[2]। महाराजा ने अनेकों वर्षों के अपने अंग्रेज़ मित्रों से खुला विरोध प्रकट करने को इच्छा नहीं की, परन्तु जब उन्होंने ने शिकार पुर पर हमला करने के निश्चय को कुछ समय के लिए टाल दिया, तो उन्होंने कैप्टेन वेड से स्पष्ट शब्दों में कहा कि अंग्रेजों के व्यापारिक प्रयासों ने वास्तव में लाहौर की शक्ति को सीमित कर दिया था[3]।

रणजीत सिंह की नाराज़गी

शाहशुजा की पुनर्प्राप्त आशा से सिन्ध की रियासतों के साथ अंग्रेज़ों के सम्बन्धों के अभी और उलझने की सम्भावनाएँ दिखाई पड़ रहीं थी। उस अभागे सुल्तान ने—जैसा कि पीछे लिखा जा चुका है—सन् १८२१ ई० में लुधियाना को अपना आवास बनाया, और इस विश्राम-काल में वह निरन्तर खोरासान को पुनः अपने अधिकार में लाने की योजनाएँ बनाता रहता था। सन् १८२६ ई० में उसने महाराजा रणजीतसिंह से पत्र व्यवहार प्रारम्भ किया जिन्हें

शाहशुजा का द्वितीय अफ़गानिस्तान अभि-

१—कैप्टेन वेड का पत्र सरकार को, २१ दिसम्बर, १८३१, तथा कर्नल पाटिंगर का पत्र सरकार को, २३ सितम्बर १८३७।

२—देखिए परिशिष्ट २८ व २९; पहले माल के अनुसार महसूल देने के विषय में बात हुई थी, पर बाद में नावों के हिसाब से महसूल देना बेहतर समझा गया। हिमालय से समुद्र तक का कुल कर ७५० रूपया निश्चित किया गया था जिसमें से लाहौर सरकार को सतलज के दाहिने तट के क्षेत्रों के कर के रूप में १५५ रू० ४ आना, तथा बाँएँ तट के लिए ३९ रू० ५ आना १ पाई मिलता था (सरकार का पत्र कैप्टेन वेड को, ९ जून १८३४, तथा कैप्टेन वेड का पत्र सरकार को, १३ दिसम्बर १८३५)।

३—कैप्टेन वेड का पत्र सरकार को, १३ फरवरी १८३२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

यान १८३३-३५ शाह की अंग्रेज़ों से वार्ता,

अब तक इस बात का दुख था कि शाहशुजा उनके आतिथ्य या कैद से मुक्त हो गया था। सन् १८२७ ई० में उसने ब्रिटिश सरकार से भी वार्ता प्रारम्भ की, और उसे स्पष्ट बता दिया गया कि सरकार इस बात से प्रसन्न होगी यदि शाह, महाराजा रणजीतसिंह या सिन्ध के अमीरों की सहायता से अपना खोया हुआ राज्य वापस पा सके, परन्तु उसके असफल होने पर, सम्भव है, ब्रिटिश सरकार उसे पुन. आश्रय न दे सके[1]। सन् १८२९ ई० में सैयद अहमद के उत्कर्ष के फलस्वरूप पेशावर की डाँवाडोल स्थिति से प्रेरित होकर शाहशुजा ने महाराजा के पास प्रस्ताव भेजा कि यदि वे चाहें तो सिक्खों की सहायता से वह पेशावर पर अधिकार करके एक बार पुनः स्वतंत्र शासक बन सकता है। महाराजा उसे झूठी आशाएँ देकर बहलाते रहे, परन्तु अंग्रेजों ने अपनी चेतावनी को पुनः दुहराया, और शाहशुजा पुनः निराश होकर बैठ रहा[2]।

सिन्धियों, व पुनः रणजीत सिंह से वार्ता, सन् १८३१

सन् १८३१ ई० में उसकी आशालता पुनः पल्लवित हुई, क्योंकि तालपुर के अमीरों ने ब्रिटिश राजदूतों की कूटनीतिक यात्रा को पसन्द नहीं किया था और वे अपने नाममात्र के बादशाह को प्रोत्साहित करने लगे थे[3]। उसने रणजीतसिंह से पुनः वार्ता प्रारम्भ की जो स्वयम् भी सिन्ध के मामले में अंग्रेजों से नाराज थे, साथ ही वे शाहशुजा को, उसके खोए हुए राज्य की पुनर्प्राप्ति के प्रयासों में सहायता देने के लिए अनिच्छुक भी नहीं थे,

सोमनाथ के मुख्य द्वार तथा गोवध का प्रश्न

परन्तु इस सम्बन्ध में सिक्खों के विचार की भनक फारस की सीमाओं तथा समुद्र-तटीय क्षेत्रों तक पहुँच गई थी, अतः शाह को टालने के लिए महाराजा ने सहायता के लिए ये दो शर्तें-प्रस्तावित की—कि सफल हो जाने पर उसे पूरे अफगानिस्तान में गोवध का निषेध करा देना होगा और पवित्र सोमनाथ के मुख्य द्वार को, जिसे गजनी का महमूद उठा ले गया था, उस मन्दिर के अधिकारियों के हवाले कर देना पड़ेगा। शाह इन दोनों ही शर्तों को मानने के लिए तैयार न था, अतः टालने के लिए उसने महाराजा को स्मरण कराया

१—दिल्ली के रेजिडेण्ट का पत्र कैप्टेन वेड को, २५ जुलाई १८२७।
२—सरकार का पत्र दिल्ली के रेजिडेण्ट को १२ जून १८२९।
३—कैप्टेन वेड का पत्र सरकार को, ९ सितम्बर १८३१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कि उसके प्रिय मित्र, अंग्रेज भी पूर्ण स्वतंत्रता के साथ गोवध करते थे, और साथ ही एक भविष्यवाणी का भी उल्लेख किया जिसमें कहा गया था कि जिस दिन गज़नी से सोमनाथ का मुख्य द्वार हटाया जायगा, उसी दिन से सिक्ख साम्राज्य का पतन प्रारम्भ हो जायगा[1]।

सन् १८३२ ई० में हेरात के विरुद्ध ईरानियों के अभियान की अफवाह ने शाहशुजा की योजनाओं को और अधिक प्रोत्साहन दिया[2]। आतंकित व घबराए हुए सिन्धी अमीरों ने उसके पास प्रस्ताव भेजा कि यदि वह सफल होने पर सिन्ध पर से अपना अधिपत्य त्यागने का वचन दे तो वे उसकी सहायता के लिए तैयार हैं, और शाह ने उनकी इस बात को मानने का वादा किया[3]। शाह ने महाराजा रणजीतसिंह से धन जन की सहायता प्राप्त करने के लिए, वादा किया कि बदले में वह पेशावर तथा सिन्ध के इस पार के अन्य जिलों को सिक्खों के लिए छोड़ देगा, और कोहिनूर के लिए भी कभी दावा न करेगा। महाराजा तय नहीं कर पा रहे थे कि क्या करें; वे पेशावर के लिए एक अतिरिक्त दावा प्राप्त कर लेना चाहते थे, परन्तु वे अभियान की सफलता के पश्चात् शाहशुजा कैसी योजनाएँ बनाता, यह भली भाँति जानते थे[4]। वे इस सम्बन्ध में अंग्रेजों का दृष्टिकोण भी समझ लेना चाहते थे, और इसीलिए

सिक्खों व सिन्धियों से पुनः वार्ता १८३२ :

१—कैप्टेन वेड का पत्र सरकार को २१ नवम्बर, १८३१—जब अंग्रेजों ने इन द्वारों को गजनी से हटा दिया तो अफ़गानों ने बड़ा शोरगुल मचाया; जिस पर विचार करने पर इस कार्य की योजना बनाने वालों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि वास्तव में ये द्वार कुछ स्थानीय महत्व रखते थे, जब सन् १८४५ ई० में लेखक बहावलपुर में था तो कुछ अफ़गान व्यापारी उसके पास यह पूछने के लिए आए कि उन फाटकों को वापस लाया जाना सम्भव हो सकता था अथवा नहीं, क्योंकि उनके हटाये जाने के साथ ही एक स्थानीय मजार की ख्याति, और उसके पीर की आमदनी में बहुत कमी हो गई थी; उन्होंने कहा कि अनुमति मिल जाने पर वे बड़ी सहूलियत से उसे ले आएँगे; उन्होंने यह भी कहा कि हिन्दू उन द्वारों का प्रयोग कर नहीं सकते थे, और ईसाइयों के लिए तो उसका कोई भी महत्व नहीं था।

२—सरकार का पत्र कैप्टेन वेड को, १९ अक्टूबर १८३२।
३—कैप्टेन वेड का पत्र सरकार को, १५ सितम्बर १८३२।
४—,, ,, ,, १३ दिसम्बर १८३२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उन्होंने अंग्रेजों के समक्ष यह प्रस्ताव रक्खा, कि चूँकि उन्हें अफगानों पर उनका विश्वास नहीं था, अतः शाहशुजा, की योजनाओं में अंग्रेज भी उनके साथ एक पार्टी बन जाते तो अच्छा होता[1]। इन तीनों दलों—शाहशुजा, महाराजा व अमीरों—में से प्रत्येक के अपने स्पष्ट, परन्तु एक दूसरे से भिन्न लक्ष्य थे। महाराजा रणजीतसिंह अंग्रेजों की व्यापारिक योजनाओं से छुटकारा पाना चाहते थे जिनके कारण सिन्ध के अमीरों में आशंका फैलती जा रही थी; अफगानों का पदच्युतशाह सोच रहा था कि महाराजा वास्तव में उसे अपने वश में करना चाहते थे, और सिन्ध के विभाजन की योजना मिट्टी में मिल गई थी।[2] इधर तालपुर के अमीरों का विचार था कि वे शाह को सहायता पहुँचा कर शिकारपुर को सिक्खों के हाथ में जाने से बचा लेंगे, और इसीलिए उन्होंने शाहशुजा तथा सिक्ख नरेश के मिलाप को रोकने के प्रयास में प्रवृत्त हुए[3]।

अंग्रेज शाह के प्रयत्नों के प्रति उदासीन

शाहशुजा, महाराजा रणजीत सिंह से वार्ता करके कोई सन्तोषजनक व्यवस्था कर पाने में सफल न हो सका, परन्तु चूंकि महाराजा की तटस्थता विशेषतः शिकारपुर के सम्बन्ध में अत्यन्त आवश्यक थी, अतः महाराजा से एक मित्रतापूर्ण सन्धि की गई जिसके अनुसार सिन्ध के परे के उन इलाकों को—जिन पर सिक्खों का अधिकार था—औपचारिक रूप से स्थायी रूप से महाराजा को दे दिया गया[4]। अंग्रेज भी अब शाहशुजा द्वारा किए जाने वाले प्रयासों के उतने विरुद्ध नहीं थे, और उसे आश्वासन दिया गया था कि उसके निर्वाह के लिए स्वीकृत धनराशि उसके परिवार को दी जाती रहेगी, इस बार उसे पहले की तरह यह चेतावनी भी नहीं दी गई कि असफल होकर लौटने पर सरकार उसे आश्रय देने के लिए विवश न होगी[5]। उसके वार्षिक प्राप्य का एक तिहाई भाग उसे अग्रिम भी दे दिया गया, परन्तु

१—कैप्टेन वेड का पत्र सरकार को ३१ दिसम्बर १८३२।

२—,, ,, ,, १ अप्रैल १८३३।

३—,, ,, ,, २७ मार्च १८३३।

४—यह सन्धि पत्र मार्च सन् १८३३ ई० में लिखा गया था, और उसी वर्ष के अगस्त माह में उस पर अन्तिम स्वीकृति दी गई थी (कैप्टेन वेड का पत्र सरकार को)।

५—सरकार का पत्र कैप्टेन वेड को, १९ दिसम्बर १८३२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

साथ ही पालिटिकल एजेण्ट को यह स्पष्ट निर्देश दिया गया कि वह सभी लोगों को यह जता दे कि शाह की गतिविधियों से ब्रिटिश सरकार को कोई रुचि नहीं है, उसकी नीति पूर्ण तटस्थता की है; दोस्त मुहम्मद द्वारा भेजे गए एक पत्र के उत्तर में उसे भी अंग्रेजों की तटस्थता की नीति से

आशंकित दोस्त मुहम्मद

आश्वस्त होने का परामर्श दिया गया[1]। मुहम्मद अजीम खाँ की मृत्यु के कुछ ही समय बाद दोस्त मुहम्मद काबुल का स्वामी बन बैठा था, और अंग्रेजों से सदैव आशंकित रहता था। सन् १८३२ ई० में उसने सिन्ध के अमीरों को सावधान किया कि वे शिकारपुर में अंग्रेजों को व्यापारिक फैक्टरी बनाने की अनुमति न दें, क्योंकि ऐसा होने पर शाहशुजा निश्चय ही इस फैक्टरी की रक्षा के बहाने सिन्ध पर आ धमकेगा[2]। उसके पश्चात् उसने सदैव की तरह हिन्दुस्तान के विभिन्न नरेशों से पत्र व्यवहार करके उनका हृदय टटोलने का प्रयास भी किया।

सन् १८३३ ई० के फरवरी के लगभग मध्य में शाहशुजा पूरी तैयारी के साथ लुधियाना से रवाना हुआ। इस समय उसके पास लगभग ३,००० सैनिक तथा कोष में लगभग दो लाख रुपए थे।[3] बहावल खाँ से उसे एक तोप के साथ कुछ ऊँट भी प्राप्त हुए। मई माह के लगभग मध्य में उसने सिन्ध नदी को पार किया और बिना किसी विरोध के शिकारपुर में प्रवेश किया। सिन्धियों ने उसका विरोध तो नहीं किया, परन्तु उसे कोई सहायता भी न दी, परन्तु अन्त में उन्होंने निश्चय किया कि अपने ही विनाश के लिए अपने साधनों को उसके हवाले कर देने की अपेक्षा, उसका विरोध करना ही अधिक नीति-

शाह का अभियान प्रारम्भ फरवरी १८३३: सिन्धियों की पराजय ९ जनवरी १८३४: कन्दहार में पराजित

१—सरकार के पत्र ऐक्टिंग पॉलिटिकल एजेण्ट, कैप्टेन फेथफुल को, १३ दिसम्बर १८३२ तथा कैप्टेन वेड को ५ व ९ मार्च, १८३३।

२—वहावलपुर संस्मरणों के अनुसार इस बात के लिए दोस्त मुहम्मद ने अमीरों पर काफी दबाव डाला था; अंग्रेजों की कोठियों से छावनियों में परिवर्तन के क्रम की कुख्याति काबुल तक पहुँच चुकी थी; दोस्त मुहम्मद का मुख्य लक्ष्य था शाहशुजा को दूर रखना, और प्रतीत होता है कि जब तक लाहौर अजेय था, तब तक वह स्वयम् को अंग्रेजों से पूर्णतः सुरक्षित समझता था।

३—कैप्टेन वेड का पत्र सरकार को—९ अप्रैल १८३३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

होकर लुधियाना पूर्ण होगा;[1] परन्तु सन् १८३४ ई० की ९ वीं जनवरी को वापसी १८३५: को वे शिकारपुर के निकट आंशंकि रूप से पराजित हुए और उन्होंने स्वेच्छा से शाह को ५०,००० रुपया नकद तो दिया ही, विजेता की उपस्थित से मुक्ति पाने के लिए शिकारपुर के लिए कर देने का वादा भी किया।[2] अब शाह कन्दहार की ओर बढ़ा और उस शहर के निकट ही पड़ाव मार कर कुछ महीनों तक पड़ा रहा, परन्तु पहली जुलाई को दोस्त मुहम्मद खाँ तथा उसके भाइयों ने उसे युद्ध के लिए विवश किया जिसमें शाहशुजा बुरी तरह पराजित हुआ।[3] काफी समय तक भटकने, इरान के सुल्तान तथा हेरात के शाह कामरान से सहायता की प्रार्थना करने तथा शिकारपुर पर पुनः अधिकार करने[4] के असफल प्रयासो के पश्चात् सन् १८३५ ई० के मार्च माह में, नकद तथा मूल्यवान सामग्रियों के रूप में लगभग २५०,००० रुपये के साथ शाहशुजा पुनः लुधियाना पहुँचा।[5]

रणजीतसिंह, शाह शुजा से आशंकित पेशावर का लाहौर में मिलाया जाना १८३४ ई०

इधर महाराजा को यह आशंका हुई कि कहीं शाहशुजा गत सन्धि के शर्तों की उपेक्षा न करे, अतः उन्होंने, शाहशुजा की सम्भाव्य सफलता के परिणाम स्वरूप भविष्य में उत्पन्न होने वाले किसी खतरे से सुरक्षित होने के लिए तैयारी करने तथा पेशावर द्वारा काबुल को सहायता दी जाने[6] की सम्भावना को जड़ से ही समाप्त करने का निश्चय किया। एक बड़ी सिक्ख सेना ने सिन्ध को पार किया जिसका नेतृत्व नाममात्र के लिए महाराजा के पौत्र नौनिहाल सिंह के हाथ में था, परन्तु वास्तव में उसका सेनापति था सरदार हरी सिंह पेशावर, के सूबेदार से कर के रूप में पूर्व निश्चित् संख्या से अधिक घोड़ों की माँग

---

१ – कैप्टेन वेड का पत्र सरकार को २५ अगस्त १८३३, तथा बहावल पुर संस्मरण।

२— ,, ,, ,, ३० जनवरी १८३४।

३— ,, ,, ,, २५ जुलाई १८३४।

४— ,, ,, २१ अक्टूबर २९ दिसम्बर १८३४, तथा ६ फरवरी, १८४५।

५— ,, ,, ,, १९ मार्च १८३५।

६— ,, ,, ', १७ जून १८३४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

की गई, और तर्क यह दिया गया कि राजकुमार नौनिहाल सिंह सेनापति के रूप में प्रथम बार पेशावर आए थे, और उनकी नजर के रूप में यह अतिरिक्त कर माँगा जा रहा था। सम्भव था कि सिक्खों की इस माँग को पूरा कर दिया जाता, परन्तु सिक्खो ने बिना प्रतीक्षा किए ही पेशावर के किले पर आक्रमण करके ६ मई १८३४ को उस पर अधिकार कर लिया।[1] सुल्तान मुहम्मद खाँ ने सिक्ख सेनापति से सन्धि-वार्ता चलाने का प्रयास किया परन्तु ऐसा समझा जाता है कि उद्धत हरी सिंह ने उसकी कोई परवाह न करते हुए पूरी अफ़गान जाति के प्रति घृणा व्यक्त की; और पेशावर के और आगे तक सिक्ख सेना के अभियान की योजना को भी, छिपाने का प्रयत्न नहीं किया।[2]

जिस समय नौनिहाल सिंह के साथ हरीसिंह पेशावर में उलझा हुआ था, उसी समय सिक्खों की सेना एक अन्य स्थान पर भी व्यस्त थी। सन् १८३२ ई० में सरदार हरी सिंह ने अटक के ऊपर स्थित मुसलमान जनजातियों को पराजित किया और उन्हें सदैव नियंत्रण में रखने के लिए उसने सिन्ध की दाहिनी ओर एक किला भी बनवाया[3]। सन् १८३४ ई० में डेरा इस्माइल खाँ के परे ताक व बन्नू के अफगानों के विरुद्ध भी सिक्खों की एक सेना तैनात की गई, परन्तु एक पर्वतीय गढ़ पर हमला करने में एक सिक्ख टुकड़ो को मुँह की खानी पड़ी और एक सर्दार तथा ३०० सैनिक भी मारे गए। इस असफलता से महाराजा, स्वयम् को अपमानित महसूस करके कुछ कुपित हुए, और उन्होंने इस कार्य के लिए नियुक्त सरदार को निर्देशित किया कि वह ब्रिटिश अधिकारियों को उन प्रतिकूल परिस्थितियों की विस्तृत जानकारी कराए जिनसे उसे सफलता न मिल सकी थी; अंग्रेजों को सिक्ख सेना की शक्ति पर सन्देह न हो, इसलिए उन्होंने कैप्टेन वेड को यह भी स्मरण कराया कि ऐसी घटनाएँ पहले भी घटित हो चुकी थीं, कि उनके सरदारों ने गढ़ की दीवाल में छिद्र बनने या दरार पड़ जाने की प्रतीक्षा नहीं की, कि कलंग में जनरल गिलेप्सी एवम् गुरखों में जो युद्ध हुआ था, उसके उदाहरण से इस युद्ध में उत्पन्न परिस्थितियों व पीछे

२० जुलाई १८३२ हजारा व डेराजाट पर अधिकार १८३५-३६ :

१—कैप्टेन वेड का पत्र सरकार को, १६ मई १८३४।

२—जिस समय हरीसिंह साधारण पद पर था, उस समय भी पंजाब उसके इन विचारों से भली भाँति परिचित था।

३—कैप्टेन वेड का पत्र सरकार को ७ अगस्त १८३२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हटने के कारणों को भली भाँति समझा जा सकता था[1]। सन् १८३३ ई० में कटोच के संसारचन्द के पौत्र को उसके देश में लौट जाने के लिए बाध्य कर दिया गया, जिसके लुधियाना से होकर वापस लौटते समय ब्रिटिश अधिकारियों ने बड़े समारोह के साथ उसका स्वागत किया, क्योंकि संसारचन्द द्वारा अर्जित यश अब भी उसके वंशजों को राजकीय सम्मान का पात्र बनाए हुए था; साथ ही युवा राजा को ५०,००० रूपए की एक जागीर भी प्रदान की गई।

रणजीतसिंह के मिशन की कलकत्ता यात्रा १८३४-३६

इसी वर्ष के दौरान महाराजा ने इंग्लैंड के सम्राट के लिए उपहार लेकर एक सरदार को कलकत्ता भेजने का प्रस्ताव रक्खा; सम्भवत: इस सरदार द्वारा वे यह भी ज्ञात करना चाहते थे कि सिन्ध से सम्बद्ध उनकी योजनाओं के विषय अंग्रेजों का सामान्य मत क्या था। गूजरसिंह मजीठिया की अध्यक्षता में यह मिशन सन् १८३४ ई० में रवाना हुआ तथा लगभग डेढ़ वर्ष तक वापस न लौटा[2]।

रणजीतसिंह व लद्दाख १८२१

जिस समय यात्री मूरक्राफ्ट लद्दाख में था (सन् १८२१ ई०), उस क्षेत्र में रणजीतसिंह के नाम का काफी आतंक फैला हुआ था; साथ ही कश्मीर के सिक्ख सूबेदार ने लद्दाख से कर की माँग भी की थी[3], परन्तु इस निर्बल व दूरस्थ रियासत को उस समय विशेष परेशान नहीं किया गया।

लद्दाख पर जम्मू के राजाओं का अधिकार१८३४-३५

जब जम्मू के नए राजाओं ने रावी तथा झेलम नदियों के मध्यस्थित पर्वतीय क्षेत्रों का राज्याधिकार प्राप्त किया, और यह अनुभव किया कि महाराजा रणजीतसिंह की छत्रछाया में उनका प्रभाव सुरक्षित एवम् प्रबल था, तो उन्होंने लद्दाख पर वक्रदृष्टि लगाई। सन् १८३४ ई० में राजा गुलाबसिंह के किश्तवार स्थित सेनापति जोरावर ने लेह की आन्तरित गड़बड़ियों से लाभ उठाकर घोषित किया कि उस क्षेत्र में स्थित एक रियासत, जो पूर्वत: किश्तवार के सरदार के अधिकार में थी, वापस

१—कैप्टेन वेड के पत्र सरकार को १० मई १८३४। उसके दो वर्ष बाद तक डेरा इस्माइल खाँ और निकटस्थ क्षेत्रों में व्यवस्था स्थापित न की जा सकी (कैप्टेनवेड के पत्र सरकार को—७ व १३ जुलाई १८३६)।

२—कैप्टेन वेड के पत्र सरकार को, ११ सितम्बर १८३४ व ४ अप्रैल १८३६।

३—मूरक्राफ्ट 'ट्रवेल्स' १ : ४२०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कर दी जानी चाहिए। वह किश्तवार से चलकर दक्षिणी जिलों तक तो जा पहुँचा परन्तु सन् १८३५ के प्रारम्भ होने से पूर्व राजधानी तक न पहुँच सका। उसने दो संघर्षरत प्रतिद्वन्द्वियों में से एक का पक्ष लिया, राज्यारूढ़ राजा को पदच्युत किया, और उसके स्थान पर उसके विद्रोही मंत्री का राज-पद दे दिया। जोरावर सिंह ने, इस नए राजा से कर के रूप में ३०,००० रुपये वार्षिक देते रहने का वादा कराया, किले में एक रक्षक सेना रख दी, हिमालय के उत्तरी ढालों पर स्थित कुछ जिलों पर जम्मू की सत्ता स्थापित की और १८३५ के अन्त तक प्रासधन उपहारादि के साथ जम्मू लौट आया। सिंहासनच्युत राजा ने लासा स्थित चीनी अधिकारियों से जम्मू के राजा के विरुद्ध शिकायत की; परन्तु चूँकि उसका उत्तराधिकारी अर्थात् नया राजा भी पूर्वनिर्धारित कर अदा करता रहा, अतः लासा के अधिकारियों ने अपहरण की इस कार्यवाही पर कोई ध्यान नहीं दिया। इसी समय कश्मीर के सूबेदार ने यह शिकायत की कि गुलाबसिंह द्वारा निर्धारित व्यापारिक नियम, शाल के लिए ऊन की पूर्ति में बाधक हो रहे थे; और इस मामले को तुरन्त निपटा दिया गया, फिर भी महाराजा के कृपापात्रों की महत्वाकांक्षाएँ, उनके स्वामि भक्ति के प्रदर्शनों के बावजूद भी, कोई न कोई उपद्रव खड़ा करती रहती थीं[1]।

परन्तु रणजीतसिंह मुख्यतः पेशावर की ओर से आशांकित थे, और सर्वाधिक आशा सिन्ध की दिशा से थी। अमीरों ने जो पराजय पाई थी, उससे उनका आत्मविश्वास बहुत कम हो गया था, और जब शाहशुजा कन्दहार से पिटने के बाद वापस लौटा, उस समय कुछ ऐसा समझा जा रहा था कि हैदराबाद का नूर मुहम्मद दावा, और सिन्ध इस शर्त पर शिकारपुर महाराजा को सौंपने को तैयार था कि वे शाहशुजा की कार्यवाहियों से उसकी रक्षा करने की गारण्टी लें,[2] परन्तु महाराजा स्वयम् सिन्धियों का विशेष विश्वास करने के लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने,

शिकारपुर पर महाराजा का पुनः दावा, और सिन्ध से सम्बद्ध योजनाएँ १८३५-३६

१—कैप्टेनवेड का पत्र सरकार को, २७ जनवरी १८३५, तथा मि० वाइन 'ट्रवेल्स इन कश्मीर एण्ड तिब्बत', २:३५२; मुख्य रूप से युवराज खड़क सिंह जम्मू परिवार की योजनाओं से आशांकित था (कैप्टेन वेड का पत्र सरकार को १० अगस्त १८३६)।

२—कैप्टेन वेड का पत्र सरकार को, ६ फरवरी १८३५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सिन्धियों पर नियंत्रण रखने के ध्येय से निष्कासित कलहोरों के एक प्रतिनिधि को, सिन्ध के परे स्थित राजनपुर में तैनात कर दिया था, और उसके निर्वाह का भार स्वयम् ले रक्खा था;[1] और कलहोरों तथा बारकज़इयों, दोनों को एक ही साथ आतंकित करने के ध्येय से, महाराजा ने शाहशुजा के लुधियाना लौटते ही, उससे वार्ता प्रारम्भ कर दिया;[2] परन्तु महाराजा की योजनाओं के मार्ग में मुख्य बाधा थे, उनके अंग्रेज मित्र; और उनके समक्ष अपनी नाराजगी का औचित्य सिद्ध करने के लिए-उदाहरण-के रूप में उन्होंने सिन्धी अमीरों द्वारा मज़ारी लुटेरों को दी गई गुप्त सहायता का उल्लेख किया[3]। उसने इस बात पर पुनः जोर दिया कि शिकारपुर खोरासान के सरदारों के अधीनस्थ क्षेत्र था[4], और इस तथ्य की ओर भी संकेत किया कि मिठनकोट के नीचे जो नदी थी, वह सिन्ध न होकर सतलज थी — जिसका मूल सन्धि में निर्णायक महत्व था; यही वह नदी थी जो इतने समय से अंग्रेजों व सिक्खों के मित्रता-रूपी उद्यान को ताजगी व सौन्दर्य प्रदान करती रही थी तथा जो पूर्व के दो मुख्य एवम् भाईचारे वाले राज्यों को विभाजित करते हुए भी उन्हें एक सूत्र में बाँधती आरही[5] थी।

परन्तु अंग्रेज भी सिन्ध के अमीरों के साथ जल यातायात सम्बन्धी सन्धि कर चुके थे, और रणजीत सिंह की योजनाएँ उनके लिए नाराजगी का कारण बन गई थीं। उन्होंने कहा कि उन रियासतों के विरुद्ध रणजीत सिंह की अकारण ही शत्रुतापूर्ण कार्यवाहियों को वे दुःख व महत्वाकांक्षा पर असहमति की दृष्टि से देखने के लिए बाध्य थे जिनके

१—कैप्टेनवेड का पत्र सरकार को, १७ जून १८३४; यह व्यक्ति था सरफराज़ खाँ उर्फ गुलामशाह, जिसे तालपुरियों ने निष्कासित कर दिया था। उसे राजन पुर की जागीर काबुल से मिली थी, जहाँ वह रणजीत सिंह के बल पर टिका था।

इस जागीर की आय सामान्यतः लगभग १ लाख रूपया मानी जाती थी पर वास्तव में यह ३०००० रू० से अधिक की सम्पत्ति नहीं थी।

२—कैप्टेन वेड का पत्र सरकार को, १७ अप्रैल १८३५ और उसी वर्ष के अन्य पत्र।

३—,, ,, ,, ,, ५ अक्टूबर सन् १८३६ ई०।

४—कैप्टेन वेड का पत्र सरकार को, १५ जनवरी १८३७।

५ —,, ,, ,, ५ अक्टूबर १८३६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अंग्रेजों की अप्रसन्नता— साथ वे स्वार्थ व सद्भावना के बन्धनों से बँधे हुए थे[1], और इसी लिए वे महाराजा को शिकारपुर के विरुद्ध किसी आक्रामक कार्यवाही से विरत करना चाहते थे, परन्तु उन्होंने अनुभव किया कि इस कार्य को सतर्कता से किया जाना चाहिए, क्योंकि वे प्रत्येक शक्ति से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बनाए रखना चाहते थे, साथ ही सामान्य शान्ति को बनाए रखने के लिए अपने प्रभाव का सर्वत्र प्रयोग करना चाहते थे[2]। इस समय अंगेजों की भावनाएँ यही थीं, परन्तु इस बीच सिक्खों व सिन्धियों में सीमा सम्बन्धी विवाद तेजी से संघर्ष की ओर बढ़ते जा रहे थे। सन् १८३३ ई० में मिठनकोट के नीचे, सिन्ध के दाहिने तट के साथ फैले हुए मजारी लुटेरों को, मुल्तान के सूबेदार द्वारा कुचला जा चुका था, जिसने रोझन के किले में एक रक्षक सेना रखने का प्रस्ताव रक्खा, परन्तु महाराजा ने उसे ऐसा करने से रोक दिया[3]। सन् १८३५ में, ऐसा विश्वास किया गया कि खैरपुर के अमीर मजारियों की लुटेरी जाति को सिक्ख चौकियों पर आक्रमण करने के लिए प्रोत्साहित कर रहे थे, और चूँकि अंग्रेज मजारियों को सिन्ध के अमीरों के अधीन मानते थे, यद्यपि मजारियों को ऐसे स्वतन्त्र अस्तित्व की मान्यता भी दी जाती थी कि व्यापारिक व्यवस्थाओं में उनका उल्लेख करते हुए उन्हें कुल महसूल के एक भाग का हकदार ठहराया गया था[4], अतः अमीरों को सूचना दी गई कि अंग्रेज उनसे मजारियों को नियन्त्रित किए जाने की आशा रखते थे ताकि रणजीत सिंह को हस्तक्षेप करने का कोई बहाना न मिल सके[5], फिर भी आक्रामक तथा सीमाति क्रमक कार्यवाहियाँ चलती रहीं और सन् १८३६ ई० के अगस्त माह में मुल्तान के सूबेदार ने रोझन पर प्रतीकात्मक रूप से अधिकार कर लिया, अक्टूबर माह में एक युद्ध में मजारियों की पराजय हुई; सिक्खों ने रोझन के दक्षिण में स्थित एक गढ़, केन, पर अधिकार कर लिया जो उनके सीमाक्षेत्र से परे स्थित था[6]।

१—सरकार का पत्र कैप्टेन वेड को २२ अगस्त १८३६।

२—,, ,, ,, ,, ,, ।

३—कैप्टेन वेड का पत्र सरकार को, २७ मई १८३५।

४—सरकार के पत्र कैप्टेन वेड को २७ मई १८३५ व ५ सितम्बर १८३६, तथा कर्नल पाटिंगर को, १९ सितम्बर १८३६।

५—कैप्टेन वेड का पत्र सरकार को २९ अगस्त १८३६।

६—,, ,, ,, २ नवम्बर १८३६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इस प्रकार महाराजा रणजीत सिंह धीरे-धीरे बलात विस्तारवादी नीतिपर चलते रहे, परन्तु उस बीच अंग्रेजों ने कूटनीति में उन्हें मात देने का संकल्प कर लिया था, यह निश्चय किया गया था कि कैप्टेन बर्नेस को, सिन्ध नदी को विश्व यातायात के लिए खोलने के कार्य को पूर्ण करने के ध्येय से, एक व्यापारिक मिशन पर, सिन्ध की सीमा पर स्थित देशों में भेजा जाय[1], परन्तु इस सावधानी के साथ कि महाराज को यही विश्वास हो कि इस मिशन के लक्ष्य शुद्धतः व्यापारिक थे, और वास्तव में किसी एक स्थान पर एक व्यापारिक संस्थान की स्थापना के लिए महाराजा की सहायता की अपेक्षा भी की गई, और जैसी आशा एक बार प्रकट की गई थी, कि यह संस्थान मिठनकोट में बनाया जाय, उसका पुनः उल्लेख किया गया[2], वास्तव में अब सिन्ध में अंग्रेज जो रुचि ले रहे थे, उसका कारण शुद्धतः व्यापारिक नहीं रह गया था, बल्कि वह एक निश्चित व स्पष्ट राजनैतिक रूप धारण करता जा रहा था। गवर्नर जनरल के कथनानुसार उस देश की परिस्थिति पर काफी विचार-विमर्श किया जा चुका था जिसका निष्कर्ष यह निकाला गया था कि उसके साथ अंग्रेजों के सम्बन्ध को घनिष्ठतर बनाया जाना चाहिए था[3], इस सिलसिले में गवर्नर जनरल ने यह विचार भी प्रकट किया कि बहुत सम्भव था कि सिन्ध के अमीर, महाराजा रणजीत सिंह के विरुद्ध ब्रिटिश संरक्षण प्राप्त करने की इच्छा करते, और उन्होंने भय अथवा आशंका से जिन पिछली सन्धिवार्ताओं को भंग कर दिया था, उसे वे पुनः अंग्रेजों की सहायता प्राप्त करने के ध्येय से प्रारम्भ करते, और अन्त में सारी परिस्थितियों पर विचार करने के पश्चात् निश्चय किया गया कि ब्रिटिश सरकार रणजीत सिंह व सिन्ध के अमीरों के विवादों में मध्यस्थता करे, और बाद में हैदराबाद में एक अंग्रेज रेजिडेण्ट रख दिए जाने के बाद अमीरों के बाहरी सम्बन्धों को व्यवस्थित किया जाय।

अंग्रेजों के लक्ष्यों का राजनैतिक एवम् व्यापारिक रूप धारण करना १८३६

महाराजा व सिन्धियों में मध्यस्थता का निश्चय

महाराजा रणजीत सिंह के सम्बन्ध में अंग्रेज शासकों ने विचार किया कि सिन्ध के प्रवाह मार्ग के साथ सिक्खों की शक्ति के विस्तार को रोकने के लिए,

---

१—सरकार का पत्र कैप्टेन वेड को ५ सितम्बर १८३६।
२—,, ;, ,, ५ सितम्बर १८३६।
३—,, कर्नल पाटिंगर को, २६ सितम्बर १८३६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

राजनैतिक महत्व के महाराजा को बिना आशंकित किए उनको नियंत्रित करने की अंग्रेजी नीति

अनेक सशक्त कारणों से वे विवश थे, अंग्रेजों ने यह भी विचार किया कि, यद्यपि उन्हें महाराजा की मान्यता प्राप्त सीमाओं का सम्मान तो अवश्य करना चाहिए, या परन्तु इसके साथ ही अभी तक सिक्खों से उनके जो शान्तिपूर्ण मैत्री सम्बन्ध थे, उन्हें भंग न हो, इसका भी ध्यान रखना था, क्योंकि अगर युद्ध प्रारम्भ हो गया तो सिन्ध को व्यापारिक मार्ग का रूप दिया जाना कभी भी सम्भव न होता, अन्ततः लाहौर स्थित पॉलिटिकल एजेण्ट को निर्देशित किया गया कि वह राजनायिक शिष्टाचार की सीमा में प्रत्येक सम्भव प्रयत्न द्वारा महाराज को शिकारपुर के विरुद्ध योजनाओं से विरत करे, और अभी तक पूर्ण आशान्वित शाहशुजा को यह बताया जाना था कि यदि इस बार उसने लुधियाना छोड़ा, तो उसे फिर वापस लौटने की अनुमति न दी जायगी, और उसके परिवार को निर्वाह के लिए दी जाने वाली आर्थिक सहायता भी तुरन्त समाप्त कर दी जायगी। मजारियों के सम्बन्ध में, जिनके इलाकों पर वास्तव में सिक्खों ने अधिकार जमा रक्खा था, यह कहा गया कि उनके दमन से सभी राजनैतिक शक्तियों को लाभ पहुँचा था, और उनके स्थायी नियंत्रण का प्रश्न भविष्य की परिस्थितियों पर छोड़ दिया गया[1]।

सिन्धियों व महाराजा युद्ध के लिए समान रूप से तत्पर :

सिन्धियों ने अपनी ओर से सिक्खों द्वारा केन के किले पर सिक्खों द्वारा बलात्—अधिकार कर लिए जाने के लिए विरोध प्रकट किया, और जब महाराजा ने माँग की कि औपचारिक उपहारों के मूल्य में वृद्धि कर दी जाय, या उस अधिकृत किले को वापसी के लिए एक बड़ी रक़म अदा की जाय, तो उन्होंने शस्त्रों के बल पर निर्णय करने का संकल्प प्रकट किया[2], और इसमें कोई सन्देह नहीं कि सिक्खों ने सिन्ध पर आक्रमण कर दिया होता यदि उनकी सुरक्षा के लिए कर्नल पाटिंगर ने वार्ता द्वारा महाराजा को एक ऐसे कार्य से विरत कर दिया जिसके फलस्वरूप – महाराजा को आशंका थी कि–अंग्रेज सिक्खों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों की समाप्ति की घोषणा कर देते। पर्याप्त शक्तिशाली सेनाओं के साथ राजकुमार खड़कसिंह, व नौनिहाल सिंह, दोनों ही सिन्ध नदी पर डटे थे, और महाराजा लाहौर में ही रह गए थे

१—सरकार का पत्र कैप्टेन वेड को, २६ सितम्बर १८३६।

२—कैप्टेन वेड के पत्र सरकार को, २ नवम्बर व १३ दिसम्बर १८३६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इसका एकमात्र कारण था ब्रिटिश पॉलिटिकल एजेण्ट की असहमति और शान्ति बनाए रखने का परामर्श। इस समय महाराजा के मस्तिष्क में युद्ध व शान्ति की भावनाओं का कुछ ऐसा संघर्ष चल रहा था जिसका परिणाम अनिश्चित था; उनके मानसिक द्वन्द से परिचित कैप्टेन वेड ने ऐसे अवसर पर यही उचित समझा कि वह स्वयम् लाहौर जाकर उन्हें स्पष्ट बता दे कि ब्रिटिश सरकार का खुला विरोध उन्हें कितनी संकटमय परिस्थितियों में डाल सकता है। महाराजा ने ध्यान से उसकी बातें सुनी, और अन्त में युद्ध करने का परामर्श मान लिया। उन्होंने कहा कि वे अपने मित्र, अंग्रेजों की प्रत्येक बात मानने को तैयार थे, वे सिन्धी अमीरों के साथ गत वर्षों की तरह का सम्बन्ध बनाए रख सकते थे, वे केन के किले को भी नष्ट कर सकते थे, परन्तु रोझन व मजारियों के इलाकों को छोड़ देना उनके लिए सम्भव न था[1]। सिक्ख सरदारों ने महाराजा से आग्रह किया कि वे अंग्रेजों के आगे न झुकें, क्योंकि अंग्रेजी माँगें कहाँ जाकर समाप्त होंगी, यह वे नहीं समझ पाए थे, परन्तु महाराजा ने सिर हिलाते हुए उनसे पूछा कि मराठों के दो लाख भालों का क्या परिणाम हुआ था[2]। और सम्भवतः यह प्रदर्शित करने के लिए, कि मित्रता को समाप्ति के कगार पर ला खड़े ही करने वाले कूटनीतिक भेद को वे किस कदर भूल गए थे या उसका मलाल नहीं करते थे, उन्होंने अपने पौत्र नौनिहालसिंह के विवाह के शुभ अवसर पर गवर्नर

१—कैप्टेन वेड का पत्र सरकार को, ३ जनवरी १८३७ ई०।

२— ,, ,, ,, ११ जनवरी १८३७ ई०।

महाराजा रणजीतसिंह प्रायः मराठों के पतन का उल्लेख करके अपने अधीनस्थ सरदारों, परामर्श दाताओं को समझाया करते थे कि किसी भी स्थिति में इन यूरोपीयों के साथ अच्छा सम्बन्ध बनाए रखने में ही बुद्धिमानी थी, देखिए कैप्टेन वेड, 'नैरेटिव ऑव पर्सनल सर्विसेज़, 'पृ० ४४ नोट। [यद्यपि महाराजा अंग्रेजों के साथ मैत्री-पूर्ण सन्धि के पालन में तत्पर थे फिर भी वे अंग्रेज़ों की विस्तार वादी नीति से जब तब आशंकित हो उठते थे। एक बार उन्हें भारत का मानचित्र दिखाया गया जिसमें ब्रिटिश अधिकार क्षेत्र को लाल रंग से दिखाया गया था। जब महाराजा के पूछने पर उन्हें बताया गया कि लाल रंग से भारत में ब्रिटिश राज्य की सीमा दिखाई गई है, तो रिक्त स्थानों को इंगित करते हुए उन्होंने कुछ आकुल स्वर में यह कहु कर नक्शे को एक ओर हटा दिया कि एक दिन 'सब लाल हो जायगा—सम्पादक]

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जनरल को लाहौर आगमन के लिए आमंत्रित किया[1], फिर भी, महाराजा अपने हृदय से इस आशा को विदा न कर सके कि एक न एक दिन उनका लक्ष्य अवश्य पूरा होगा, उन्होंने सिन्ध के अमीरों के साथ सीमा के स्पष्ट निर्धारण को टाल दिया, और मजारियों के ऊपर अधिकार के प्रश्न को भी उपेक्षित रक्खा[2], वे रोझन को भी त्यागने के लिए तैयार नहीं थे, यह स्थान सिक्खों के अधिकार में बना रहा और सन् १८३८ ई० में उस जनजाति के सर्दार द्वारा महाराजा की अधीनता भी स्वीकार कर ली गई[3]।

अब कुछ वर्ष पीछे लौटकर अफ़गानिस्तान के बारकजई शासकों के साथ भारत के ब्रिटिश शासकों के सम्बन्ध को समझ लेना आवश्यक प्रतीत होता है।

गत वर्षों पर विहंगम दृष्टि-अंग्रेज व बारकजई १८२९-३६

सन् १८२३ में, पेशावर के, सिक्खों का करद सूबा होने के कुछ ही समय पश्चात् मुहम्मद अजीम खाँ की मृत्यु हो गई थी, जिसके पश्चात् उसका पुत्र हबीबुल्ला नाममात्र के लिए उस पद पर आसीन हुआ जिस पर रहकर फतेह खाँ तथा अजीम खाँ ने काफी धाक जमाई थी, परन्तु शीघ्र ही स्पष्ट हो गया कि उस युवा उत्तराधिकारी का मस्तिष्क अस्थिर था, उसकी हिंसात्मक व अदूरदर्शिता पूर्ण गतिविधियों से लाभ उठा कर उसके चतुर व कूटनीतिकुशल चाचा, दोस्त मुहम्मद खाँ ने काबुल, गजनी तथा जलालाबाद पर अधिकार कर लिया, जब कि उसके एक अन्य भाई ने कन्दहार में अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित कर ली, और तीसरे भाई ने महाराजा के अधीन पेशावर का शासन भार सँभाला[4]। सन् १८२४ ई० में बारकजइयों ने जिस प्रकार यात्री मूरक्राफ्ट का स्वागत किया एवम् अन्य सम्मानजनक व्यवस्थाएँ की, उससे वह काफी सन्तुष्ट हुआ, यद्यपि इसके लिए उसे अपनी जेब से धन व्यय करना पड़ा[5]। कुछ वर्ष पश्चात् विदेशियों से पर्याप्त आशंकित रहने वाले,

सुल्तान मुहम्मद

१—कैप्टेन वेड का पत्र सरकार को, ५ जनवरी १८३७।

२— ,, के ,, ,, १३ तथा १५ फरवरी, ८ जुलाई, १० अगस्त १८३७।

३— ,, ,, का ,, ९ जनवरी, १८३८।

४—मूर क्राफ्ट, 'ट्रवेल्स' २:३४५; मुंशी मोहनलाल, 'लाइफ ऑव दोस्त मुहम्मद खाँ' १:१३०. १५३ आदि।

५— ,, ,, २:१४६, ३४७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

द्वारा सिक्खों के विरुद्ध अंग्रेजों का संरक्षण प्राप्त करने का प्रयास १८२९ दोस्त मुहम्मद द्वारा भी ऐसा ही प्रयास १८३२

पेशावर के सूबेदार सुल्तान मुहम्मद ने लुधियाना स्थित ब्रिटिश एजेन्ट से एक वार्ता प्रारम्भ की, और एक स्वतंत्र सत्ता युक्त शासक के रूप में ब्रिटिश सरकार से सन्धि वार्ता चलाने की इच्छा प्रकट की[1], परन्तु इस परिवार के अनेक भाइयों में से प्रत्येक, दूसरे के प्रति द्वेष भाव रखता था और अपने लिए स्वतन्त्र अधिकार क्षेत्र की प्राप्ति की आकांक्षा रखता था, दोस्त मुहम्मद सर्वोच्च, प्रभुसत्ता सम्पन्न, राज्याधिकार को अपना लक्ष्य बनाए हुए था। पश्चिम से ईरानी आक्रमण की अफवाह से तो वे परेशान व सतर्क तो थे ही, उधर पूरब में महाराजा रणजीत सिंह की विस्तारवादी व अतिक्रामक नीति भी उनके लिए भय तथा आशंका का कारण बनी हुई थी, और ऐसी स्थिति में, जब कि संयोगवश कई यूरोपीय यात्री अफ़गानिस्तान में उपस्थित थे, इन बारकजई भाइयों को आशा बँधी कि सम्भव है भारत के ब्रिटिश शासक, इन दोनों आक्रामक शक्तियों के मध्य में उनकी सुरक्षा के लिए तैयार हो जाँय[2]। सन् १८३२ ई० में सुल्तान मुहम्मद ने अपने पुत्र की मुक्ति के लिए, जिसे महाराजा ने लाहौर में रोक रक्खा था, ब्रिटिश अधिकारियों से पुनः वार्ता चलाने का प्रयास किया[3]। काबुल के नवाब जब्बार खाँ ने भी ब्रिटिश अधिकारों से पत्र व्यवहार चलाया और सन् १८३२ ई० में दोस्त मुहम्मद ने स्वयम् अंग्रेजों की मित्रता प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की[4]। इन सभी सरदारों के पत्रों को विचार के लिए स्वीकृत किया गया, परन्तु उस समय यही

१—कैप्टेन वेड का पत्र सरकार को, १९ मई १८३२, सन् १८२३,-२४ में ही थे भाई मूर क्राफ्ट के माध्यम से ऐसे प्रस्ताव भेज चुके थे, (ट्रवेल्स '२:३४०)।

२—बंगाल सिविल सर्विस के मि० फ्रेज़र व मि० स्टर्लिंग क्रमशः सन् १८२६ ई० तथा १८२८ में अफगानिस्तान पहुँचे थे। मि० मेसन निचले पंजाब से होते हुए सन् १८२७ ई० में और अगले वर्ष इसी मार्ग से अमेरिकन, डा० हालंन अफ़गानों के देश में पहुँचे। लगभग इसी समय रेवरेण्ड मि० बोल्फ ने भी मध्य एशिया की यात्रा की थी।

३—कप्टेन वेड का पत्र सरकार को १९ मई व ३ जुलाई १८३२।

४— ,, ,, ,, ९ जुलाई १८३२, व १७ जनवरी १८३३; कर्नल वेड की 'पर्सनल सरविसेज' 'पृ० २३ नोट भी देखिए।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उचित समझा गया कि इतने दूरस्थ शासकों से कोई घनिष्ठ सम्बन्ध न रक्खा जाय[1]।

सन् १८३४ ई० में अपहरक बरकजइयों को नए खतरों ने आशंकित करना प्रारम्भ किया। शाहशुजा ने सिन्धियों को पराजित कर लिया था, और सेना के साथ कन्दहार तक आ पहुँचा था, अतः डरकर इन भाइयों ने भयभीत हो कर ब्रिटिश सरकार के अधीन होकर उनका संरक्षण प्राप्त करने का एक और प्रयास किया। उन्होंने ब्रिटिश शस्त्रों के अलावा ब्रिटिश कलाओं की ख्याति भी सुनी थी, वे जानते थे कि खुशामद के लिए कोई भी कार्य असम्भव कभी नहीं होता; सम्भवतः इसी ध्येय से अचानक यह प्रस्ताव किया कि वह अपने पुत्र को लुधियाना भेजना चाहता था ताकि यूरोपिय सभ्यता, संस्कृति व विज्ञान से उसका मस्तिष्क परिष्कृत हो सके[2]. परन्तु वास्तव में, जब्बार खाँ जो अन्य सरदारों की अपेक्षा दोस्त मुहम्मद के पक्ष का समर्थन करता प्रतीत होता था—स्वयम् भी, अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति की योजनाएँ बनाने में व्यस्त था, और उस पर प्रायः यह सन्देह किया जाता था कि वह अंग्रेजी रहन सहन के तरीकों की प्रशंसा तथा स्वयम् भी उसी के पालन के दिखावे द्वारा राजनैतिक शक्ति प्राप्त करना चहता था[3]। इस प्रकार अपने आस पास के सभी सरदारों के प्रति सन्देह करता हुआ दोस्त मुहम्मद शाहशुजा का मुकाबिला करने के लिए काबुल से कूच किया परन्तु इस बीच सिक्खों ने पेशावर पर अधिकार कर लिया था, अतः घबराए हुए अफ़गान शासक को पुनः अंग्रेजों से सहायता की याचना करने के अतिरिक्त अपनी रक्षा का कोई अन्य उपाय नहीं दिखाई पड़ा[4]। उसने ब्रिटिश सरकार की अधीनता स्वीकार कर लेने का स्वीकृति पत्र भेजा, और इस प्रकार अपने राज्य की सुरक्षा के प्रति आश्वस्त हो लेने के पश्चात् उसने शाहशुजा को

शाहशुजा से आशंकित बारकजइयों द्वारा पुनः ब्रिटिश सहायता के लिए प्रयास जब्बार खाँ का पुत्र लुधियाना में ६ मई १८३४

दोस्त मुहम्मद द्वारा ब्रिटेन की अधीनता

१—सरकार का पत्र कैप्टेन वेड को, २८ फरवरी १८३३।

२—कैप्टेन वेड का पत्र सरकार को, ६ मार्च १८३४।

३—,, ,, ,, १७ मई १८३४; मेसन, 'जर्नीज़' १:२१८, २२०।

४—,, ,, ,, १७ जून १८३४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

की औपचारिक स्वीकृति–१ जुलाई १८३४; शाहशुजा की पराजय

युद्ध के लिए ललकारा, इस युद्ध में शाह पराजित हुआ और विजय के नशे में डूबा विजेता अपनी सारी कठिनाइयों को भूल गया। पेशावर पर सिक्खों द्वारा अधिकार किये जाने का बहाना लेकर उसने सिक्खों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी, और सामान्य इस्लाम अनुयायियों को इन काफिर आक्रामकों को नष्ट कर देने के लिए उकसाकर इसे जेहाद या धर्मयुद्ध का रूप देने का प्रयास किया[1]। उसने इसी जोश में 'गाजी' की उपाधि धारण की, साथ ही स्वयम् को 'अमीर' भी कहना शुरू किया; उसने स्वतंत्र प्रभुसत्ता का आभास देनेवाली किसी उपाधि को धारण करना उचित नहीं समझा क्योंकि वह अपने भाइयों की भावना को पूरी तरह मर्माहत नहीं करना चाहता था, और अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उनकी सहायता आवश्यक समझता था[2]।

पेशावर की पुन-प्राप्ति का प्रयास

अपने सारे जोश के बावजूद दोस्त मुहम्मद इस मामले में अंग्रेजों के हस्तक्षेप तथा धर्मोन्मादी मुसलमानों के हथियार–दोनों का ही प्रयोग करना चाहता था, और उसने भारत के अंग्रेज-शासकों से कहा था कि पेशावर से सिक्खों को हटाने में वे उसकी सहायता करें[3]। जिस नवयुवक (जब्बार खाँ का पुत्र) को शिक्षा के नाम पर अंग्रेजों के संरक्षण में लुधियाना भेजा गया था, उसे दोस्त मुहम्मद ने अपनी ओर से कूटनीतिक अधिकार दे दिए गए। अमीर दोस्त मुहम्मद ने यह शिकायत करके—कि उसके 'भतीजे', तथा अंग्रेजों के 'अतिथि' को सिक्खों ने सन्देह की दृष्टि से देखा था, और पंजाब से गुजरते समय उसके मार्ग में अनेक बाधाएँ डालने का प्रयास किया था–अंग्रेजों ने अंग्रेज अधिकारियों के मन में सिक्खों के प्रति दुर्भावना उत्पन्न करने का प्रयास किया; परन्तु अभी तक अंग्रेज यह नहीं सोच पाये थे कि दोस्तमुहम्मद द्वारा बढ़ाए गए हाथ को थामने में उनका क्या हित हो सकता था, अतः दोस्त मुहम्मद को केवल यह आश्वासन देकर टाल दिया कि सतलज के पूर्व के क्षेत्र में जब्बार खाँ के बेटे की हर सुख सुविधा का ध्यान रक्खा जायगा; उसके पत्र में निहित प्रस्तावों का स्पष्ट उत्तर देना उचित नहीं समझा गया; उसमें

१—कैप्टेन वेड का पत्र सरकार को २५ सितम्बर १८३४।

२— ,, ,, २७ जनवरी १८३५।

३—कैप्टेन वेड के पत्र, सरकार को, ४ जनवरी और १३ फरवरी १८३५

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

केवल इस आंशिक सत्य का उल्लेख किया गया कि अंग्रेजों के समान ही अफ़गान भी एक व्यापारिक जाति थे, साथ ही, सिन्ध नदी को व्यापारिक मार्ग का रूप देने की महत्वाकांक्षी योजना पर भी काफ़ी ज़ोर दिया गया; यह आशा भी प्रकट की गई कि व्यापार के इस नए मार्ग के प्रति उत्साह से दोनों सरकारों को एक लाभदायक मित्रता की स्थापना में महत्वपूर्ण सहयोग मिलेगा, और उस अमीर से जो युद्धात्मक योजनाओं के निर्माण में ही व्यस्त था, यह पूछा गया था कि काबुल, तथा अफ़गानों की सीमा बनानेवाली महान नदी के बीच एक सीधे व्यापारिक मार्ग के विषय में क्या वह कोई उपयोगी परामर्श दे सकता था[1]। ब्रिटिश अधिकारियों को, अभी महाराजा रणजीतसिंह को भी उत्तर देना था जिसका, अपने मित्रों तथा शत्रुओं के बीच बढ़ती हुई घनिष्ठता से आशांकित होना स्वाभाविक ही था, और जो चाहता था कि यूरोपीय शासक दोस्त मुहम्मद की अपेक्षा उसके मित्र बने रहें, परन्तु गवर्नर जनरल का विचार था कि सिक्खों व सिन्धियों के बीच मध्यस्थता करने से कोई अच्छे परिणाम नहीं निकलेंगे, और यह कि दोस्त मुहम्मद उक्त पत्रव्यवहार में अंग्रेजों की ओर से उल्लेखित मित्रता को सहायता के वादे के रूप में ग्रहण कर सकता था[2]।

इस प्रकार, दोनों दलों के जोर के बाद भी अंग्रेज तटस्थ बने रहे, और उन्हें उनके ही साधनों पर छोड़ दिया गया। रणजीतसिंह ने अपनी कार्यवाही का प्रारम्भ सुल्तान मुहम्मद को अमीर, दोस्त मुहम्मद से फोड़ने के प्रयत्नों द्वारा प्रारम्भ किया जिसने पेशावर पर सिक्खों के अधिकार के पश्चात् काबुल में शरण ली थी, और पदच्युत सूबेदार ने महाराजा के प्रयत्नों का प्रसन्नता से स्वागत किया, क्योंकि उसे भय था कि यदि दोस्त मुहम्मद ने पेशावर को सिक्खों से छीन लिया तो वह उसे अपने ही अधिकार में रक्खेगा। दोस्त मुहम्मद खैबर दर्रे के पूर्वी मुहाने तक आ पहुँचा;

रणजीतसिंह व दोस्त मुहम्मद सेना सहित पेशावर में १८३५ दोस्त मुह-

---

१—सरकार के पत्र कैप्टेन वेड को, १९ अप्रैल १८३४, और ११ फरवरी १८३५। जब्बार खां का पुत्र अब्दुल गियास खां सन् १८३४ ई० के जून मास में लुधियाना पहुँचा था; उसे पहले अध्ययन के लिए दिल्ली भेजने का इरादा किया गया परन्तु बाद में यह इरादा छोड़ दिया गया और वह लुधियाना में ही बना रहा।

२—सरकार का पत्र कैप्टेन वेड को २० अप्रैल १८३५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

म्मद बिना युद्ध के वापस
रणजीतसिंह उसे उस समय तक वार्ताओं व प्रस्तावों में उलझाए रहे जब तक कि उनकी सेना तैयार नहीं हो गई; और अन्त में सिक्ख सेना ने भूमित दोस्त मुहम्मद को ११ मई १८३५ को लगभग हर ओर से घेर लिया। उस पर १२ मई को आक्रमण करने का निश्चय किया गया था, परन्तु अमीर ने युद्ध करने के स्थान पर लौट जाने में ही अपनी कुशल समझी, और दो तोपें तथा कुछ अन्य सामग्री छोड़कर अपनी सेना का मुँह मोड़ दिया। उसने कुछ सिक्ख राजपुरुषों और उन्हें कैद या नजरबन्द रखकर लाभ उठाने की योजना बनाई थी, परन्तु इस कार्य का भार उसने अपने भाई सुल्तान मुहम्मद खाँ के विश्वास पर छोड़ दिया था जो पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार महाराजा से जा मिला, और उन कैदी सिक्ख एजेण्टों को, महाराजा को सौंपकर उनकी कृपा का पात्र बनने में सफलता प्राप्त की। सुल्तान मुहम्मद तथा उसके भाइयों को पेशावर जिले में पर्याप्त आय वाली जागीरें दी गईं, परन्तु जिले की सैनिक तथा प्रशासनिक व्यवस्था लाहौर दरबार से नियुक्त एक सिक्ख अधिकारी को सौंप दी गई[1]।

सिक्खों के विरुद्ध युद्ध में, बिना लड़े युद्ध क्षेत्र से लौट आने से दोस्त मुहम्मद की साख को बहुत धक्का पहुँचा। अंग्रेजों को पक्ष में लाने के लिए किए गए उसके कार्यों व प्रयासों से उसे कोई लाभ न मिला था, अब इस बार उसने सहायता के लिए ईरान को आजमाने का निश्चय किया,[2] परन्तु अंग्रेजों की तुलना में ईरान की सहायता की न कोई राजनैतिक साख थी, न उपयोगिता, अतः उसने एक बार पुनः गवर्नर जनरल को अपने पक्ष में खींचने का प्रयास किया; उसने कहा कि सिक्ख अंग्रेजी सहायता विश्वासघाती थे और वह स्वयम् ब्रिटिश सरकार के

ईरान से वार्ता;

१—कैप्टेन वेड के पत्र सरकार को, २५ अप्रैल, तथा १, १५ व १६ मई १८३५, देखिये मेसन, 'जरनीज़' '३:३४२, मोहनलाल, दोस्त मुहम्मद' '१:१७२, डा० हार्लन, 'इण्डिया एण्ड अफ़गानिस्तान' १२४, १५८।

कहा जाता है कि इस अवसर पर पेशावर घाटी में लगभग ८०,००० सिक्ख सैनिक मौजूद थे।

२—कैप्टेन वेड का पत्र सरकार को, २३ फरवरी १८३६, ईरान से दोस्त मुहम्मद की वार्ता सम्भवतः १८३५ के सितम्बर में प्राप्त हुई थी।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

की प्राप्ति का पुनर्प्रयास; कन्दहार के सरदार अंग्रेज़ी सहायता के लिए इच्छुक १८३६:

हितों का पूर्ण भक्त था।[1] हेरात के शाह कामरान से आतंकित होने, तथा दोस्त मुहम्मद की सहायता पाने में असफल होने पर कन्दहार स्थित दोस्त मुहम्मद के भाइयों ने भी अंग्रेजी सहायता की याचना की, परन्तु जब कामरान स्वयम् ईरान के आक्रमण की आशंका से चिंतित हुआ तो कन्दहार के सरदारों का भय समाप्त हो गया, और उन्होंने अपने सहायता प्रस्तावों पर अंग्रेजों की स्वीकृति प्राप्त करने पर विशेष जोर नहीं दिया।[2] रणजीत सिंह अपनी ओर से, ब्रिटिश—अफ़गान सन्धि की कल्पना मात्र से क्षुब्ध हो उठते थे, अतः उन्होंने दोस्त मुहम्मद को ही अपने प्रभाव में खींच लाने का प्रयास किया। उसने अफ़गान अमीर को पेशावर की प्राप्ति की आशा दिलाई, और उससे, उपहार स्वरूप कुछ बढ़िया घोड़ों की माँग की, क्योंकि वे अपने विषय में प्रचलित इस सामान्य धारणा से परिचित थे कि उनके द्वारा जिस व्यक्ति से घोड़ों की माँग की जाती थी, वह स्वयम् को उनका विशेष कृपापात्र समझा जाता था। दोस्त मुहम्मद पेशावर को करद जिले के रूप में ही सही, अपने हाथ में रखना चाहता था, परन्तु वह जानता था कि यह समस्या घोड़ों से सुलझने वाली नहीं है।[3] अभी पिछले बार की असफल वापसी का अपमान उसे पीड़ित किए हुआ था, और अन्त में उसने यही निश्चय किया कि चाहे जो भी परिणाम हो, सिक्खों से एक बार युद्ध किया ही जाना चाहिए।[4] सिक्खों ने उसके भाई जब्बार खाँ को फोड़ लिया था, और सरदार हरी सिंह ने खैबर दर्रे के प्रवेश मार्ग पर मोर्चा जमा लिया था और जमरूद में भी खाइयाँ खोदकर मोर्चे बन्दी कर ली थी और इस सघन जाल में से निकलने के लिए एक निर्णायक युद्ध के अतिरिक्त उसके पास कोई मार्ग बचा भी नहीं था।[5] उसकी सेनाओं ने काबुल

युद्ध का निश्चय १८३६–३७ सिंह की योजनाएँ: जमरूद का युद्ध ३० अप्रैल १८३७: सिक्ख पराजित,

---

१– कैप्टेन वेड का पत्र सरकार को १६ जुलाई १८३६।
२—,, ,, ,, ६ मार्च १८३६।
३—,, ,, ,, १२ अप्रैल १८३७।
४—,, ,, ,, १ मई, १८३७।
५—[जिसने बाद में सर डब्लू मैकनाटेन की हत्या की और काबुल से पीछे लौटने की दुखान्त घटना का नायक बना (१८४२)—सम्पादक]

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हरी सिंह मृत; अफ-गान वापस:

से कूच करके, अमीर के पुत्रों में सर्वाधिक युद्ध प्रिय, मुहम्मद अकबर खाँ के नेतृत्व में खैबर के पूर्वी ओर एकत्रित होना प्रारम्भ किया। ३० अप्रैल १८३७ को जमरूद की चौकी पर एक आक्रमण किया गया; परन्तु सिक्खों को अस्तव्यस्त कर देने के बावजूद भी अफ़गान चौकी को ले न सके, पीछे लौटने का बहाना करके सिक्ख सेनापति हरी सिंह ने शत्रु को और अधिक खुले मैदान में खींच लिया; वीर सेनापति पीछे हटता और, धावा करता सिक्ख सेना में प्रत्येक स्थान पर उपस्थित प्रतीत होता था, परन्तु वह घातक रूप से घायल होकर गिर गया, और इसी समय संयोगवश अफ़गानों की सेना एक भाग में अचानक पहुँच कर सिक्खों की अस्तव्यस्तता को उनकी पूर्ण पराजय में परिणत कर दिया, परन्तु उनकी केवल दो तोपें शत्रुओं के हाथ लगी, इस विजय के बावजूद अफ़गान न जमरूद की चौकी ही ले सके न पेशावर ही पा सके, और कुछ दिनों तक घाटी में लूट पाट करने के पश्चात् लाहौर से कूच कर चुकी एक ताजी सिक्ख सेना का सामना करने के खतरे से न जूझकर वे पीछे हट गए।[1]

रणजीत सिंह की प्रतिरक्षात्मक तैयारियाँ: दोस्त मुहम्मह व शाह शुजा

वीर सेनापति सरदार हरी सिंह की मृत्यु तथा सिक्ख सेना की पराजय से लाहौर में कुछ विषाद सा छा गया परन्तु महाराजा ने अविलम्ब सिक्खों को उत्साहपूर्वक, स्वयम् को सुदृढ़ बनाने के लिए प्रोत्साहित कर दिया, और उनके आह्वान का सिक्खों ने समुचित उत्तर दिया। कहा जाता है कि बड़ी बड़ी युद्धक तोपों को चिनाब पर स्थित रामनगर से पेशावर तक खींच ले जाने में कुल छः दिन लगे थे, जब कि

१—कैप्टेन वेड का पत्र सरकार को—१३ व २३ मई तथा ५ जुलाई १८३७। देखिए मेसन, 'जर्नीज' २:३७२; ३८७, तथा मोहनलाल, 'लाइफ ऑव दोस्त मुहम्मद', १:२२६।

ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारम्भ में अफ़गानों को कुछ तोपों से हाथ धोकर पीछे लौटना पड़ा था, परन्तु अमीर के एक रिश्तेदार शमसुद्दीन के अचानक आगमन से विजय ने अफ़गानों का साथ दिया, फिर भी ऐसा विश्वास किया जाता है, कि यदि हरी सिंह मारा न गया होता; तो विजय फिर भी सिक्खों के हाथ ही लगती। नौनिहाल सिंह के विवाह के अवसर पर तथा गवर्नर जनरल के प्रत्याशित आगमन पर सम्मान व धूमधाम प्रकट करने के लिए पेशावर की सेना का एक बड़ा भाग लाहौर चला आया था।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

से सन्धि वार्ताएँ: अंग्रेजों द्वारा सिक्ख अफगान मध्यस्थता का निश्चय १८३७

सड़क द्वारा दोनों स्थानों के बीच की दूरी दो सौ मील से भी अधिक है।[1] महाराजा रणजीत सिंह स्वयम् रोहतास तक जा पहुँचे और सक्रिय ध्यान सिंह पूर्ण गति से सीमा पर जा पहुँचा और अपने ही हाथों से जमरूद में एक गढ़ की नींव डालकर राजभक्ति तथा परिश्रम का एक उल्लेखनीय आदर्श प्रस्तुत किया।[2] इधर इस परिणाम विहीन विजय से ही दोस्त मुहम्मद फूला नहीं समा रहा था और उत्साहित होकर पेशावर को एक ही धावे में ले लेने की योजना बनाने में व्यस्त था; परन्तु कूटनीति-कुशल महाराजा रणजीतसिंह ने इस बार भी उसे बहलाने की योजना बनाई; शीघ्र ही विभिन्न शक्तियों व सरदारों ने पाया कि महाराजा पुनः अमीर से सन्धि-वार्ता चला रहे थे; यही नहीं, दोस्त मुहम्मद के साथ ही शाहशुजा से भी उनकी सन्धिवार्ता चल रही थी[3]। उधर अंग्रेजों के व्यापारिक राजदूत ने अब तक धीरे धीरे सिन्ध में काल्पनिक नावें चलाना प्रारम्भ कर दिया था, और ब्रिटिश सरकार के विचार से वह समय आ गया था जब कि विभिन्न शक्तियों के मामलों में राजनैतिक हस्तक्षेप करने से किसी चिन्ताजनक परिणाम की आशंका नहीं थी, बल्कि इसके विपरीत शान्तिपूर्ण यापार में तथा तत्कालीन राजनीतिक वार्ताओं में लाभ प्राप्त होने की आशा ही अधिक थी. इस बात को प्रचारित कर दिया गया कि दोनों-दलों सिक्खों व अफगानों के मध्य सम्मानपूर्ण ढंग से शान्ति स्थापित करने के लिए ब्रिटिश सरकार मध्यस्थता करने में प्रसन्नता का अनुभव करेगी, फिर भी ब्रिटिश अधिकारियों ने अफ़गानों का पक्ष लिया और कहा गया कि पेशावर एक ऐसा स्थान था जहाँ से दोस्त मुहम्मद अपने सारे दावे समाप्त कर लेगा, ऐसी आशा नहीं की जानी चाहिए थी[4]; कोई निश्चित निर्णय देने से पूर्व दोनों दलों की

१--लेफ्टिनेण्ट कर्नल स्टोनवेक ('पंजाब', पृ० ६४-६८) लिखता है कि स्वयम् उसने अपनी सिख रेजिमेण्ट के साथ १२ दिनों में ३०० मील की दूरी तय की थी।

२--लार्ड एलेनबोरो के लिए, सिख सरदारों के सम्बन्ध में मि० क्लर्क द्वारा तैयार की गई १८४२ की स्मारिका।

३--कैप्टेन वेड का पत्र सरकार को ३ जून १८३७ तथा सरकार का पत्र कैप्टेन वेड को ७ अगस्त १८३७।

४--सरकार का पत्र कैप्टेन वेड को, ३१ जुलाई, १८३७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इच्छाएँ जान लेना आवश्यक समझा गया, और कैप्टेन वेड तथा लेफ्टिनेण्ट बर्नेस से कहा गया कि वे क्रमशः महाराजा तथा अमीर दोस्त मुहम्मद की इच्छाओं की जानकारी प्राप्त कर लें। लेफ्टिनेन्ट बर्नेस को—जिसे अमीर के पास भेजा गया था —औपचारिक रूप से विशेष कूटनीतिक अधिकार दिए गए थे[1]; ईरानियों तथा रूसियों के कुचक्रों तथा षड्यंत्रों ने इसी समय अशंकाजनक रूप धारण करके अंग्रेजों को विवश कर दिया कि वे सिक्खों तथा अफ़गानों के विवाद को अपनी उस रक्षात्मक योजना में विलीन कर लें जिसके अनुसार शाहशुजा को पुनः काबुल के सिंहासन पर आसीन करना आवश्यक था। इस प्रकार लगभग एक पीढ़ी के बाद भारत के ब्रिटिश शासकों की निश्चिन्तता यूरोपीय सेनाओं के कूच की अफवाह[2] ने पुनः भंग कर दिया और महाराजा के फ्रान्सीसी जनरल एलई के व्यवहार से वे और अधिक आशंकित हो गए। कई वर्षों तक पंजाब में रहने के पश्चात् जनरल एलार्ड को कुछ समय पूर्व अपने देश जाने का अवसर प्राप्त हो गया जहाँ से वह सन् १८३६ ई० में कलकत्ता के मार्ग से वापस लौटा। जब वह फ्रान्स में था तो उसने अपनी सरकार से प्रार्थना की थी कि उसे एक राजनायिक प्रमाणपत्र दे दिया गया ताकि यदि उसका जीवन संकट में पड़ जाय या यदि उसे लाहौर की सीमा से बाहर जाने का निषेध कर दिया जाय तो वह पत्र महाराजा को दिखाने पर उसकी प्राणरक्षा हो सके। अंग्रेजों द्वारा ऐसा समझा गया कि यह कागज महाराजा के समक्ष उसी स्थिति में प्रस्तुत किया जाना था जब कि जनरल एलार्ड किसी भयानक विपत्ति में पड़ जाता, परन्तु उसने अपना प्रमाण पत्र, लाहौर पहुँचते ही महाराजा के समक्ष प्रस्तुत कर दिया और ऐसी अफवाह सुनने में आई कि उसे पंजाब में फ्रांस का राजदूत नियुक्त किया गया था, परन्तु बाद में अंग्रेजों को विश्वास हो गया कि इस बात में कोई विशेष महत्व निहित नहीं था[3]

१—सरकार का पत्र कैप्टेन वेड को ११ सितम्बर १८३७।

२—भारत के सम्बन्ध में रूस की दिलचस्पी की ओर ब्रिटिश वायसराय का ध्यान सर्वप्रथम १८३१ में आकर्षित हुआ था (देखिए मरे, 'रणजीतसिंह', प्रिंसेप द्वारा सम्वादित, पृ० १६८), कैप्टेन बर्नेस ने उसी समय से इस अफ़वाह पर कार्य प्रारम्भ कर दिया था, और बाद में इस विचार को प्रचारित कर दिया (देखिए कैप्टेन वेड का पत्र सरकार को, ३ अगस्त १८३१)।

३—फ्रांस के राजा द्वारा महाराजा रणजीत सिंह को लिखे गये पत्र में लुई फिलिप की उपाधि 'इम्परर' लिखी गई है (कैप्टेन वेड का पत्र सरकार

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

महाराजा रणजीतसिंह ने अपने पौत्र नौनिहालसिंह के विवाह संस्कार के उपलक्ष्य में भारत के गवर्नर जनरल, आगरा के गवर्नर (सर चार्ल्स मेटकॉफ) तथा ब्रिटिश सेना के प्रधान सेनापति को लाहौर आने के लिए निमंत्रित किया था। मार्च १८३७ के प्रारम्भ में राजकुमार का विवाह सिक्ख सरदार शामसिंह अटारीवाला की पुत्री से बड़ी धूमधाम के साथ सम्पन्न हुआ परन्तु निमंत्रित ब्रिटिश अधिकारियों में से केवल सर हेनरी फेन ही इस उत्सव में भाग ले सका। यह हेनरी फेन लाहौर में योग्य ब्रिटिश सेनानी सैनिक साधनों तथा सैनिक गुणों का एक सतर्क पारखी था; उसने अवसर पाकर उस शक्ति का अनुमान लगाया जिससे पंजाब को पूर्णतः अधिकार में किया जा सकता था, परन्तु उसी समय उसने यह मत भी निर्धारित कर लिया था कि पूरब में ब्रिटिश साम्राज्य की सीमा के लिए सतलज, राजपूताना के ऊबड़ खाबड़ क्षेत्र तथा सिन्ध नदी की उपयोगिता निर्विवाद थी, और इन पर सरलता से अधिकार भी किया जा सकता था,[1] अस्तु, अभी निकट भविष्य में

नौनिहालसिंह का विवाह १८३७ सर हेनरी फेन लाहौर में

को, ५ सितम्बर १८३७), इस उपाधि के प्रयोग से फ्रांसीसी गर्व की तुष्टि भले ही हुई हो, परन्तु 'किंग' (राजा) व 'इम्परर' (सम्राट) में अन्तर्निहित भेद सिक्खों की समझ में नहीं आया होगा, क्योंकि उन्होंने उसे 'पादशाह' के अर्थ में ही ग्रहण किया होगा। सर क्लॉड वेड के पत्र से कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि फ्रांस का वास्तविक उद्देश्य था रणजीतसिंह के साथ नियमित पत्रव्यवहार रखना, और पंजाब में राजनीतिक प्रभाव स्थापित करना; जो भी हो परन्तु ब्रिटिश एजेण्ट से परामर्श करने के पश्चात्, फ्रांस से कोई सम्बन्ध न रखने का निश्चय किया; (सरक्लाइवेड' नैरेटिव, पृ० ३८, नोट)।

१— सर हेनरी फेन के ये विचार रिकार्ड पर भले न हों, परन्तु वायसराय को उनकी पूरी जानकारी थी, जहाँ तक मुझे याद है मैंने कैप्टेन वेड से सुना था कि सर फेन के अनुमान के अनुसार ६७००० सैनिकों तथा दो वर्ष के सक्रिय युद्ध के पश्चात् ही पंजाब पर पूर्ण अधिकार किया जा सकता था।

यह लाहौर यात्रा सम्भवतः इस दृष्टि से, अधिक महत्व पूर्ण थी कि बंगाल सेना के क्वार्टर-मास्टर जनरल कर्नल गार्डेन को पंजाब के उस क्षेत्र का विस्तृत मानचित्र बनाने का अवसर मिल गया था, और जब अन्त में सिक्खों से युद्ध प्रारम्भ हो ही गया तो युद्ध सम्बन्धी सारे मानचित्र उसी के आधार पर बनाए गये थे।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सिक्खों के साथ संघर्ष की कोई सम्भावना नहीं थी, और एक अतिथि की हैसियत से सर फेन द्वारा उस प्रकार की शत्रुतापूर्ण योजना की रूपरेखा तैयार किया जाना सम्मान के अनुकूल भी नहीं था, अतः उसने लाहौर के वैवाहिक समारोहों एवम् भोजों में खुले दिल से भाग लिया। महाराजा रणजीतसिंह अतिथि-सत्कार का पर्याप्त ध्यान रखते थे, और प्रायः अंग्रेज अतिथियों से महत्वपूर्ण विषयों पर प्रश्न पूछा करते थे, उनकी इस आदत के दो ध्येय थे– एक ओर तो वे अतिथि को अपने ज्ञान का प्रदर्शन करने का अवसर देकर उन्हें प्रसन्न रखते थे और दूसरी ओर नई सूचनाएँ व जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न करते थे[1]। वे सदैव ऐसे मामलों पर पूछ ताछ करने के लिए तैयार रहते थे जिनमें उनके अतिथियों अधिक दिलचस्पी लेते थे सन् १८१२ ई० में ही उन्होंने अपने नए मित्रों की मित्रता की परीक्षा ली थी या उनकी कुशलता के लिए प्रशंसा के भाव व्यक्त किए थे और उनसे पाँच सौ बन्दूकें माँगी थी। इतनी बन्दूके उन्हें तुरन्त दे दी गईं, परन्तु जब उन्होंने इसी प्रकार की ५०,००० बन्दूकें माँगी तो अंग्रेज चकरा गए। महाराजा ने बड़ी प्रसन्नता से अंग्रेजों की एक योजना से सहमति प्रकट करके बम्बई के लिए व्यापार-सामग्रियाँ भेजने के ध्येय से एक बड़ी संख्या में नावें बनवाई, और अंग्रेज उस समय तक उनकी इस व्यापारिक रुचि की प्रशंसा करते रहे, जब तक उन्हें यह ज्ञात न हो गया कि महाराजा चाहते थे कि वापसी में नावों का यह बेड़ा उनकी पैदल सेना के लिए शस्त्रों से भर कर भेजा जाय।[2] वे जब तक अपने तोपखाने के आदमियों को लुधियाना में प्रशिक्षित कराने की बात करते,[3] अपने जस्ते के बमगोलों को इस आशा से निरीक्षण के लिए भेजते कि शायद लोहे की शार्पनेलो (Sharpnelo) के निर्माण के सम्बन्ध में कोई नई जानकारी प्राप्त हो जाय,[4] इसी प्रकार वे ब्रिटिश हिन्दुस्तानी के वेतन की नियमावली, तथा

१—[इस यात्रा के अवसर पर महाराजा ने यूरोप के महान् युद्धों के प्रति विशेष रुचि प्रदर्शित की थी; उन्होंने नैपोलियन के जीवन में सर्वाधिक रुचि दिखाई थी; सर हेनरी के स्टाफ के एक व्यक्ति, कर्नल वालिस ने वाटर लू की महत्वपूर्ण लड़ाई में भाग लिया था जिससे महाराजा ने उस लड़ाई के विषय में अनेक प्रश्न पूछे– सम्पादक]

२—सरकार का पत्र कैप्टेन वेड को ११ सितम्बर १८३७।

३—कैप्टेन वेड का पत्र सरकार को, ७ सितम्बर १८३१।

४—जब शाहशुजा को पुनर्प्रतिष्ठित करने का निश्चय कर लिये जाने पर

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कोर्ट मार्शल की जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करते और इन उलझी हुई प्रणालियों के अनुवाद को सम्मानसूचक वस्त्र भेंट करते,[1] वे यहाँ तक पूछताछ करते कि बेंत मारने को दण्ड के बदलने के लिए किस दण्ड को उसका स्थानापन्न समझा जाता था।[2] लार्ड विलियम बैण्टिक ने सरकारी पत्र व्यवहार के लिए फारसी के स्थान पर अंग्रेजी भाषा को अधिक सुविधाजनक बताया था, अतः महाराजा ने एक सरदार के पुत्र को लुधियाना के स्कूल में अंग्रेजी पढ़ने के लिए भेज दिया था ताकि पढ़ लिख लेने के पश्चात् अंग्रेजों के साथ राजकीय पत्र व्यवहार करने में वह महाराजा की सहायता कर सकता,[3] इसी प्रकार उसने कुछ सिक्ख नौजवानों को पॉलिटिकल एजेण्ट द्वारा लुधियाना में स्थापित अस्पताल में आधुनिक चिकित्सा का साधारण ज्ञान प्राप्त करने के लिए भेजा था ताकि वे सिक्ख बटेलियनों के लिए उपयोगी हो सके।[4] इन तरीकों से महाराजा स्वयम् को उस शक्ति के प्रतिनिधियों के अनुकूल बनाने का प्रयास करते थे जिसका न वे सामना कर सकते थे न विश्वास।

रणजीत सिंह ने अपने बमगोलों को निरीक्षणार्थ लुधियाना भेजा था, सम्भवतः यह प्रदर्शित करने के लिए कि समान राजनीतिक लक्ष्य रखने के कारण वे सैनिक रहस्यों को छुपाए रखना आवश्यक समझते थे।

१—अपने महत्वपूर्ण ग्रंथों द्वारा भारत की ब्रिटिश सेना के गौरव में वृद्धि करने वाले मेजर हफ़ने ने महाराजा के लिए कोर्ट मार्शल की प्रणाली को सिख-परिस्थितियों व सैनिक नियमों का ध्यान रखते हुए, पुस्तक रूप में प्रस्तुत किया था।

२—सरकार का पत्र कैप्टेन वेड को, १८ मई १८३५, जिसमें तनहाई को बेतबाज़ी का स्थानापन्न बताया गया था।

३— कैप्टेन वेड का पत्र सरकार को, ११ अप्रैल १८३५; भारत के अविश्वासी राजा प्रायः अंग्रेजी में पत्रव्यवहार का यह अर्थ लगाते थे कि उनके अंग्रेजी न जानने का लाभ उठाकर, अंग्रेजी का ही प्रयोग कर अंग्रेज उन्हें ब्रिटिश सरकार की वास्तविक नीति व घोषणाओं के पीछे छिपी यथार्थता से अनभिज्ञ रखना चाहते थे।

४—इनमें से कुछ जवानों को सन् १८३९ ई० में पेशावर की उस सेना के साथ रक्खा गया था जो शाहजादा तैमूर को सुरक्षित रूप से खैबर दर्रा पार कराने के लिए तैनात की गई थी।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इधर महाराजा अपने पौत्र नौनिहाल के विवाह की प्रसन्नता में डूबे हुए थे कि इसी समय जमरूद में अफ़गानों की सफलता, तथा वीर हरी सिंह की मृत्यु के समाचार ने सारे उत्सवों में व्यवधान उपस्थित कर दिया। पंजाब के वृद्ध शेर की आँखों में उस समय आँसू आ गए जब उसने सुना कि उसके सुयोग्यतम, परमभक्त, तथा एकमात्र सच्चे सिक्ख सरदार व सेनापति ने वीर गति प्राप्त की।[1] इस महान व्यक्तिगत हानि से क्षुब्ध महाराजा पेशावर को सिक्ख सैनिकों से भर कर सीमा पर अपनी प्रभुसत्ता को मुश्किल से दृढ़ कर पाए थे कि इसी समय उनके बचे खुचे जीवन में जहर घोलने के लिए अंग्रेजों ने हस्तक्षेप करना प्रारम्भ किया, और दक्षिण तथा पूर्व की भाँति पश्चिम में भी महाराजा की महत्वाकांक्षा पर अंकुश लगाने का प्रयास करने लगे। अंग्रेजों की व्यापार नीति को सुचारु रूप से चलाने के लिए यह आवश्यक था कि सिन्ध, खोरासान और पंजाब की अर्धबर्बर जातियों में शान्ति और उद्योग की व्यवस्था एक साथ तथा अविलम्ब की जाय, और इसी ध्येय से नव स्थापित सामन्तवादी रियासतों को निश्चित सीमाएँ देने तथा विस्तारवादी सैनिक शासकों में महत्वाकांक्षा के नियन्त्रण की भावना जगाने का निष्फल प्रयास किया गया अंग्रेजो ने इच्छा प्रकट की कि पंजाब के महाराजा अब तक प्राप्त राज्यविस्तार से ही संतुष्ट रहें, कि सिन्ध के अमीर तथा हेरात, कन्दहार, और काबुल के सरदार अपने क्षेत्रों में स्वयम् को सुरक्षित समझें और बेचैन शाहशुजा अपने दैनिक स्वप्नों के ताज को पुनः प्राप्त करने की सारी आशाओं का त्याग कर दे।[2] ब्रिटिश वायसराय ने अपने एजेण्टों को निर्देशित किया कि वे तालपुरियों, बारकजइयों और सिक्खों

शाहशुजा की पुनर्प्रतिष्ठा के लिए सिन्ध को-व्यापारिक जल मार्ग योजना का स्थगन:

१--कैप्टेन वेड का पत्र सरकार को, १३ मई १८३७; जिसमें वह ब्रिटिश सेना के एक सर्जन डाक्टर वुड का उद्धरण दिया गया है जिसे महाराजा की परिचर्या के लिए तैनात किया गया था और जो इस अवसर पर, रोहतास में उनके साथ ही था।

२--सरकार का पत्र कैप्टेन वेड को, १३ नवम्बर १८३७, तथा कैप्टेन बर्नेस व वेड को एक साथ, २० जनवरी १८३८, सिन्ध के सम्बन्ध में भी रणजीत सिंह के विचार अंग्रेजों के मनोनुकूल नहीं थे, और अमीरों के साथ उनकी वार्ता की शर्तें अस्पष्ट व छलपूर्ण थी (सरकार का पत्र कैप्टेन वेड को, २५ सितम्बर व १३ नवम्बर ८३१)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

को आत्मनियंत्रण के लिए प्रेरित करें; और यदि रूस ने, कारण और अवसर पाकर अपने कुचक्रों के जाल को ईरान व तुर्किस्तान हो ते हुए सिंध के तट तक न पहुँचा दिया होता तो ब्रिटिश सरकार व उसके एजेण्टों के प्रयत्नों की अव्यावहारिकता स्पष्ट हो गई होती। दोस्त मुहम्मद व महाराजा रणजीत सिंह के बीच सुलह करने की इच्छा ने अंग्रेजों को मध्यस्थता करने के लिए विवश किया[1]; ब्रिटिश राजदूत सर बर्नेस की पक्षपातपूर्ण भावना ने उसे

सर एलेक्स बर्नेस काबुल में १८३७-३८ अमीर दोस्त मुहम्मद से वार्ता; अंग्रेजों की नीति भ्रमपूर्ण काबुल अभियान की योजना

सर एलेक्स बर्नेस यह स्वीकार करने के लिए प्रेरित किया कि अमीर दोस्त मुहम्मद से यह आशा नहीं की जा सकती थी कि वह पेशावर पर से अपने सारे दावों को समाप्त कर लेगा[2]। चालाक अमीर को जब यह महसूस हुआ कि अंग्रेज अधिकारी उसका पक्ष ले रहे हैं और उस मित्र बनाने का प्रयास कर रहे हैं तो अपने भयानकतम शत्रु सिक्खों के विरुद्ध अपनी स्थिति को सुरक्षित बना लेने का उसे अच्छा अवसर प्राप्त हो गया, जिनसे कि वह वास्तव में भयभीत था। उसने ईरान से पुनः वार्ता प्रारम्भ कर दिया और रूस के एक राजदूत का

अमीर की रूस व ईरान से वार्ता;

स्वागत किया जिससे कि अंग्रेज उसे मिलाए रखने के लिए उसे जल्द से जल्द पेशावर, तथा महाराजा के अंग्रेजों की नीति विरुद्ध सुरक्षा की गारन्टी दे दें। कन्दहार के बारकजई भाइयों को आश्वस्त करने, तथा महाराजा को यह संकेत करने मात्र से कि वे काबुल पर आक्रमण करने के लिए स्वतन्त्र थे— दोस्त मुहम्मद को ज्ञात हो जाता

१—सरकार का पत्र कैप्टेन वेड को, ३१ जुलाई १८३७।

२—सर एलेक्स बर्नेस के ये पक्षपात पूर्ण विचार, तथा उन पर आधारित दोस्त मुहम्मद की आशाएँ उन लोगों में विवाद का विषय बनी हुई थीं जो सर बर्नेस के व्यक्तिगत सम्पर्क में थे; वह वास्तव में पेशावर को सिक्खों के हाथ से निकाल कर सुल्तान मुहम्मद खाँ को देना चाहता था, और उसकी इस दृढ़ इच्छा का उल्लेख, उसी के शब्दों में, मेसन लिखित, 'जरनीज़' ३:४२३ में मिलता है। दोस्त मुहम्मद या उसके भाइयों के लिए पेशावर को सिक्खों से ले लेने का विचार स्रोतों से पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है—५ अक्टूबर १८३७, २६ जनवरी व १३ मार्च १८३८ में लिखे गये सर बर्नेस के प्रकाशित पत्र (पार्लि. या मेएटरी पेपर्स, १८३९), सरकार के सतर्कता का निर्देश देने वाले उत्तर २० जनवरी, व २७ अप्रैल १८३८, तथः मि० मेसन का कथन ('जरनीज़' ,४२३, ४४८)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कि वह ब्रिटिश शक्ति या सिक्खों के मुकाबले कितना महत्वहीन था[1]; परन्तु ब्रिटिश सरकार ने उसको शत्रुतापूर्ण गतिविधियों की सत्यता एवम् महत्व पर विश्वास कर लिया, या ऐसा प्रदर्शित किया, जब कि भारत के पराभूत राजा एक उत्तरी देश के सम्भावित आक्रमण की अफवाह से प्रसन्न हो रहे थे और यथाशक्ति उनका प्रचार करने में लगे हुए थे, और सारा देश इस आशा से तरंगित हो उठा था कि अंग्रेजों की अनिच्छित सत्ता एक अन्य जाति के समक्ष घुटने टेकने जा रही थी जो भारतीय जातियों से अधिक साम्य प्रकट करती थी[2]। काबुल से कैप्टेन बर्नेस को वापस बुला लिए जाने से तरह तरह के हास्यास्पद अटकल लगाए गए, और अंग्रेज अधिकारी तुरन्त प्रबल कार्यवाही की आवश्यकता व उससे प्राप्य लाभों को स्पष्टतापूर्वक अनुभव करने लगे; ब्रिटिश सत्ता की स्थिरता व ठोसपन के प्रति लोगों को विश्वस्त करने के लिए सिन्ध पर शान्ति बनाए रखना आवश्यक था, अतः अन्त में यह निश्चय किया गया कि मध्य एशिया में एक प्रबल अभियान किया जाय और शाहशुजा को विशिष्ट सत्ता के अधीनस्थ रूप में उसके पैतृक सिंहासन पर पुनः प्रतिष्ठित कर दिया जाय। यह निश्चय साहसपूर्ण तथा निर्णायक था और यदि दृढ़तापूर्वक इसके अनुसार चला गया होता तो उससे इच्छित लक्ष्यों की पूर्ण प्राप्ति हुई होती, और हर तरह से, यह कार्य अंग्रेजों के गौरव के अनुकूल होता[3]।

शाहशुजा की पुन-

सन् १८३८ ई० के प्रारम्भ में गवर्नर जनरल ने काबुल के सिंहासन पर शाहशुजा को पुनः आसीन कराने के सम्बन्ध में कोई विचार नहीं किया था[4]; परन्तु चार महीनों के अन्दर

१—ये विचार थे कैप्टेन वेड के जो व्यापारिक मामलों से सम्बन्धित उसके पत्रों–१५ मई व २८ अक्टूबर १८३७ –में प्रकट किये गये थे।

२—उस समयक भारतीय मामलों के पर्यवेक्षकों को ज्ञात होगा कि उस समय यह भावना कितनी अधिक व्याप्त थी; २० अगस्त १८३९ के गवर्नर जनरल के मिनट में इसका उल्लेख किया गया है।

३—गवर्नर जनरल का १२ मई १८३८ का मिनट और उनकी पहली अक्टूबर की घोषणा में ब्रिटिश सरकार के तत् सम्बन्धी विचारों की पूर्ण अभिव्यक्ति मिलती है। पार्लियामेण्ट के आदेश से मार्च १८३९ में कागज प्रकाशित किये गये थे।

४—सरकार का पत्र कैप्टेन वेड को, २० जनवरी १८३८।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रतिष्ठा के लिए वार्ताएँ मई, जुलाई १८३८ :

ही इस योजना को ग्रहण कर लिया गया और इसी वर्ष के मई मास में महाराजा रणजीत सिंह को ब्रिटिश योजनाओं से अवगत कराने के लिए सर विलियम मैकनाटेन को लाहौर दरबार भेजा गया[1]। महाराजा ने सर मैकनाटन द्वारा प्रस्तावित योजना की इस बात को तो साधारण से असमंजस के पश्चात् स्वीकार कर लिया कि भारत में सर्वाधिक प्रबल सत्ताधारी शक्ति की घोषित सहायता के साथ शाहशुजा उसकी सेना के प्रधान के रूप में कावुल की ओर प्रयाण करे, परन्तु उन्होंने योजना के पूर्ण रूप को, तथा अपने पुराने मित्रों द्वारा शाहशुजा को सक्रिय सहयोग दिए जाने को पसन्द नही किया। इस योजना के अनुसार चलने पर उन्हें

रणजीत सिंह असन्तुष्ट परन्तु सहमत—

४—शाहशुजा को पुनः प्रतिष्ठित करने के निश्चय का कारण था दोस्त मुहम्मद द्वारा ईरान और रूस की मित्रता को अधिक महत्वपूर्ण समझा जाना और सर मैकनाटेन को लाहौर भेजने का तात्कालिक कारण था यथासम्भव रीति से महाराजा की ब्रिटिश नीति से सहमत कराना (देखिए सरकार का पत्र कैप्टेन वेड को, १५ मई १८३८)। यह ब्रिटिश प्रतिनिधिमण्डल २० मई को, रूपड़ पहुँचा और दोना नगर में कुछ समय व्यतीत करके लाहौर पहुँचा। महाराजा से उनका प्रथम साक्षात्कार ३१ मई को तथा अन्तिम, १३ जुलाई को हुआ। सर विलियम मैकनाटेन १५ जुलाई को लुधियाना लौटा तथा १५ व १६ जुलाई को उसने शाहशुजा को पुनर्प्रतिष्ठापन की शर्तें बताई।

सर मैकनाटेन के नेतृत्व में पंजाब पहुँचने वाले इस प्रतिनिधिमण्डल के प्रयाण के दो माह पूर्व महाराजा ने सम्भवतः अपने जीवन में प्रथम बार जम्मू की यात्रा की थी, और यही उसकी अन्तिम यात्रा भी थी जिसमें तत्कालीन संकटमय परिस्थितियों से विचारग्रस्त महाराजा ने पूर्ण प्रसन्नता का आस्वादन किया था। गुलाब ने राज्यभक्ति के हर सम्भव प्रदर्शन के साथ अपने महाराजा का स्वागत किया और उनके चरणों पर सिर रखकर, तथा स्वयम् को महाराजा का दासानुदास, तथा उनके कृपापात्रों में सर्वाधिक कृतज्ञ बताते हुए लगभग ४०००० पौण्ड की कीमत के उपहार उन्हें नज़र किया। रणजीत सिंह की आंखों मे हर्ष के आंसू आ गए, परन्तु बाद में उनकी लोभ वृत्ति ने उन्हें यह कहने के लिए विवश कर दिया कि अब जम्मू में पत्थरों के स्थान पर सोना ही सोना दिखाई पड़ रहा था। (मेजर मेकसन का पत्र कैप्टेन वेड को, ३१ मार्च, १८३८)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

शिकारपुर को पाने की सारी आशा का त्याग करना पड़ता तथा वे अंग्रेजी शासन की लौह भुजाओं में सीमित होकर रह जाते। कोई स्पष्ट निर्णय करने में असमर्थ होकर उन्होंने अचानक दीना नगर से अपना कैम्प उखाड़ लिया और ब्रिटिश प्रतिनिधियों को, अनुसरण करने या शिमला लौट जाने के लिए छोड़कर वहाँ से चल पड़े, परन्तु जब उन्हें सूचित किया गया कि वे भाग लें अथवा न लें, यह अभियान तो होगा ही, तो वे शाहशुजा के साथ हुई अपनी सन्धि में कुछ संशोधन करने को तैयार हो गए, तथा बारकजइयों को निर्मूल करने के लिए त्रिदलीय सन्धि निर्णीत हो गई[1]। अंग्रेजों ने अपनी ओर से अफगानिस्तान पर दुसरे घेरे की योजना पर जोर दिया क्यों कि (१) सिन्ध के अमीर सन्धि व अधीनता की एक प्रस्तावित योजना को नामंजूर कर चुके थे, और कन्दहार जाते हुए शाहशुजा उन्हें अपनी अधीनता, व कर देने के लिए विवश कर सकता था, तथा (२) यह नीतिपूर्ण नहीं था कि शाहशुजा को महाराजा के हाथ में दे दिया जाय जो अवसर पाने पर उसका प्रयोग अंग्रेजों के हितों के लिए करने के स्थान पर सिक्खों के हितों के लिए करने के लोभ में पड़ जाते।[2] यही सब सोच-विचार कर ऐसी व्यवस्था की गई कि शिकारपुर व क्वेटा होते हुए शाहशुजा स्वयम् आगे बढ़े जब कि उसका पुत्र पंजाब के महाराजा की सेना के प्रधान की हैसियत से पेशावर के मार्ग से काबुल की ओर चल पड़ा। ब्रिटिश सेना १८३२ के अन्त तक फिरोजपुर में एकत्रित हो गई जिसके पश्चात् ब्रिटिश

१—यह बात रिकार्ड पर नहीं है कि रणजीतसिंह को स्पष्ट बता दिया गया था कि यदि उन्होंने भाग न लिया तो उनके सहयोग के अभाव में योजना को स्थगित नहीं किया जायगा। जहाँ तक मैं जानता हूँ, यह सन्देश मेजर मेकसन द्वारा महाराजा के पास भेजा गया था।

२—गवर्नर जनरल का १२ मई १८३८ का मिनट तथा उनके द्वारा उसी मास की १५ को मैकनाटेन को दिए गए निर्देश। महाराजा इस अभियान के अपने भाग के प्रतिफल में जलालाबाद को पाना चाहते थे क्योंकि शिकारपुर के प्राप्त होने की कोई सम्भावना नहीं रह गई थी। महाराजा को अपनी सेना के उपयोग के लिए शाहशुजा द्वारा दो लाख रूपया प्रतिवर्ष दिए जाने का वचन दिया गया था, यद्यपि गवर्नर जनरल इससे सन्तुष्ट नहीं हुये (सर मैकनाटेन को लिखा गया पत्र, २ जुलाई १८३८), और यह वचन पत्र, वास्तव में मृत-पत्र हो गया।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वायसराय और सिक्ख-नरेश के मध्य औपचारिक शिष्टाचार के आदान प्रदान के उपरान्त इस स्मरणीय अभियान का प्रारम्भ किया गया।[1] प्रत्यक्षतः महाराजा रणजीत सिंह अपनी महत्वाकांक्षा की चरमसीमा पर पहुँच चुके थे; उन्हें लोग उस साम्राज्य के भाग्यविधाताओं में से एक के रूप में मानने लगे जिसके द्वारा उनके कृषक पूर्वजों पर पर्याप्त अत्याचार किए गए थे, और भारत के ब्रिटिश सत्ताधारियों द्वारा भी उनके साथ अत्यन्त सम्मानजनक व्यवहार किया जाने लगा, परन्तु अब उनका स्वास्थ्य दिन व दिन गिरता ही जा रहा था; वे अनुभव कर रहे थे कि अब वास्तव में वे अंग्रेजों से मित्रता तोड़ने की सीमा पर पहुँच गए थे, और जिस सन्धि के भागीदार वे बन गए थे उसकी कार्य विधियों को सतर्कतापूर्वक पूर्ण करने में उनका उदासीन होना स्वाभाविक ही था। शाहजादा तैमूर ने ब्रिटिश प्रतिनिधि, कर्नल वेड के साथ सन् १८३९ के जनवरी मास में लाहौर से कूच किया; परन्तु सिक्खों की सहायता सेना टुकड़ियों को पेशावर में पूरी तरह एकत्रित करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और यद्यपि अन्त में घाटी में एक काफी बड़ी सेना ने पड़ाव डाला, परन्तु सिक्ख सेना के वास्तविक सेनापति, महाराजा के प्रपौत्र नौनिहाल सिंह ने ब्रिटिश एजेण्ट तथा शाहजादा तैमूर की बातों की व योजनाओं के प्रति उपेक्षा प्रकट की, तथा अफगानिस्तान क घोषित शाह के लिए मित्र बनाने के स्थान लाहौर के

महाराजा महानता की चरम सीमापर: परन्तु मानसिक द्वन्द तथा अस्वास्थ्य से पीड़ित:

१—इस अवसर पर हुई अनेक भेंटों में से एक में औपचारिक वार्ता का जो आदान प्रदान हुआ वह उल्लेखनीय है। महाराजा ने दोनों राज्यों की उपमा, लाल और पीले रंग के सेव से दी जो इस प्रकार मिले हुये थे कि संख्या में में रंग दो थे, परन्तु वास्तव में उनमें एक ही आस्तित्व का आभास मिलता था। लार्ड ऑकलैण्ड ने उत्तर दिया कि महाराजा की उपमा अत्यन्त सुखदायिनी एवम् उपयुक्त थी क्योंकि लाल और पीले रंग क्रमशः अंग्रेजों, तथा सिक्खों के राष्ट्रीय रंग थे, जिस पर महाराजा ने एक ओर दृष्टि से उपमा की उपयुक्तता बताई कि दोनों शक्तियों की मित्रता सेव की ही भाँति ही सुन्दर एवम् सुस्वादु थी। दोनों राजपुरुषों की वार्ताओं के अंग्रेजी और उर्दू अनुवाद सर मैकनाटेन तथा फकीर अजीजुद्दीन द्वारा किए गये जिनमें से प्रत्येक, यद्यपि भिन्न तरीके; से, भाषा का अधिकारिक ज्ञान रखता था, चाहे लिखित हो या मौखिक।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

लिये मित्र प्राप्त करने का प्रयास किया। रणजीत सिंह का स्वास्थ्य सुधरने के स्थान पर गिरता ही गया। अप्रैल में उन्होंने कन्दहार की विजय के समाचार पाया, और उस स्थान की विजय में हुए विलम्ब से उन्हें इस आशा से काफी सान्त्वना मिली कि शायद अंग्रेजों की गति अवरुद्ध ही हो जाय, परन्तु उनकी यह आशा पूर्ण न हो सकी, और सन् १८३९ ई० की २७ वीं जून को उनकी मृत्यु हो गई, जिसके बाद ही संयुक्त सेना ने गजनी तथा काबुल पर अधिकार किया, तथा सिक्ख सेना की सक्रिय सहायता ने खैबर को पार करने में निर्णयिक सहयोग दिया, और उस अभियान का समापन किया जिसमें स्वर्गीय महाराजा एक उदासीन हिस्सेदार थे। मृत्यु के समय महाराजा की अवस्था उनसठ (५९) वर्ष थी।

महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु २७ जून १८३९:

जिस समय रणजीत सिंह पंजाब के राजनीतिक रंगमंच पर प्रकट हुए, देश अनेक अस्थायी मिसलों में विभाजित था; उनका भाग्य सरदारों की कमजोरियों व दोषों पर निर्भर था; अफगान और मराठे सिक्खों को त्रस्त किए हुए थे, और वे अंग्रेजों के आगे घुटने टेकने की स्थित तक आ गए थे, उन्होंने असंख्य छोटी छोटी रियासतों व जागीरों को एक संगठित साम्राज्य का रूप दिया और सबल अंग्रेज शासकों को कभी भी ऐसा अवसर नहीं दिया कि वे उनकी व्यवस्था में हस्तक्षेप करने का बहाना ढूँढ़ सकें। अपने राजनीतिक जीवन के प्रारम्भ में उन्होने सिक्ख सेना के रूप में बर्बर सवारों का ही अस्तित्व देखा जो वीर तो थे, परन्तु वे इस तथ्य से परिचित न थे कि युद्ध एक कला है, केवल सर काटना या कटाना नहीं, और जिस समय उनकी मृत्यु हुई उस समय सिक्ख सेना के विभिन्न अंगों की शक्ति इस प्रकार थी—प्रशिक्षित व अनुशासित पद-सेना—५०,०००; पूर्ण शस्त्र सज्जित अनियमित पद सेना व सवार आदि ५०,०००, तथा तोपें—३०००। उसका शासन एक जाति की भावनाओं के बल पर स्थापित हुआ था, परन्तु इस में सैनिक व्वस्था के आवश्यक सिद्धान्तों तथा क्षेत्र विस्तार का सक्षम समन्वय भी था, और जब एक बार सिक्ख साम्राज्य के लिए एक सीमा बना दी गई और महाराजा की प्रभावशाली प्रतिभा विलीन हो गई; युद्धप्रियता के उत्साह से भरी उनकी जाति ने आन्तरिक संघर्षों की अग्नि में अपने ही अस्तित्व का हवन करने में प्रवृत्त हो गई।[1]

महाराजा रणजीत सिंह द्वारा विकसित पंजाब की राजनैतिक दशा:

१—सन् १८३१ में पंजाब के राजस्व व सेना के सम्बन्ध में कैप्टेन मरे

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जिस समय लार्ड ऑकलैन्ड लाहौर व अमृतसर में महाराजा के अतिथि थे; महाराजा मुश्किल से ही बोल पा रहे थे; और उनके शरीर के अंग शिथिल हो गये थे धीरे धीरे उनकी बोलने की शक्ति के साथ मानसिक शक्तियाँ भी उनका साथ छोड़ने लगी; और उनकी मृत्यु के पूर्व जम्मू के राजाओं ने राजकुमार नौनिहाल सिंह की अनुपस्थिति का पूरा लाभ उठाकर पंजाब के शासन की सारी व्यव-

---

का अनुमान इस प्रकार था—राजस्व, २५ लाख स्टर्लिंग, सेना, ८२०००, जिसमें १५००० नियमित पद सेना तथा ३७६ तोपें भी सम्मिलत थीं (रणजीत-सिंह', प्रिन्सेप का संस्करण, पृ० १८५, १८६); इसी वर्ष कैप्टेन बर्नेस ('ट्रवेल्स' २८६, २६१), राजस्व २५ लाख, और सैन्य संख्या २५००० नियमित को लेकर ७५००० बताता है; मेसन ('जरनीज' १:४३०) राजस्व तो उतना ही बताता है, परन्तु सैन्य संख्या, २०,००० नियमित को लेकर ७०००० ही बताता है; इस अनुमान को सन् १८३८ का माना जा सकता है जब मेसन काबुल से लौटा था। सन् १८४५ ई० में, लेफ्टि० कर्नल स्टीनबेक (पंजाब पृ० ५८) के अनुसार कुल सैन्य संख्या १, १०,००० थी जिसमें ७०,००० नियमित सैनिक थे। सन् १८४४ में सरकार को प्राप्त रिपोर्ट—जो सत्य से अधिक दूर नहीं हो सकती—के अनुसार ३७५ तोपों के साथ, सैन्य संख्या कुल १२५००० थी जिसमें अनुशासित व प्रशिक्षित सैनिकों की संख्या ४०००० थी। देखिए 'कल-कत्ता रिव्यू', ३:१७६; डा० मैकग्रेगर, सिक्स', २:८६, तथा मेजर स्मिथ, 'रेजिंग फेमिली ऑव लाहौर', परिशिष्ट पृ० × × × vii लाहौर के राजस्व के सम्बन्ध में देखिये परिशिष्ट ३८, लाहौर सेना की सूची के लिए परिशिष्ट ३६।

रणजीत सिंह के व्यक्तित्व व तौर तरीकों आचार-व्यवहार आदि के सम्बन्ध में अनेक विवरण मिलती हैं, जिनमें सर्वाधिक पूर्ण एवम् पठनीय है प्रिन्सेप द्वारा सम्पादित मरे की 'लाइफ, पृ० १८७ व आगे। कैप्टेन आसबोर्न के 'कोर्ट एण्ड कैम्प आव रणजीत सिंह' तथा कर्नल लॉरेन्स के एडवेंचरर इन-द पंजाब, में अनेक छोटी व्यक्तिगत आदतों व तौर तरीकों के सस्मरणात्म विवरण मिलते हैं। महाराजा के चित्रों में सम्भवतः सर्वाधिक स्पष्ट है मिस इडेन द्वारा लिया गया चित्र जिसे प्रकाशित किया गया था। रणजीत सिंह एक छोटे कद के व्यक्ति थे; किशोरावस्था में ही वे हर तरह के युवकोचित व्यायाम किया करते थे, और शरीर गठा हुआ था, परन्तु अन्तिम अवस्था में वे अत्यधिक निर्बल हो गये थे; बचपन में ही उनकी एक आँख चेचक ने ले ली थी; उनका माथा बहुत चौड़ा था जो साधारण फोटोग्राफों में स्पष्ट नहीं दिखाई देता।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

स्थाओं को बिना किसी बाधा के अपने अधिकार में ले लिया गया था। सारी सेना मरते हुए महाराजा के अन्तिम दर्शन के लिए एकत्रित हो गई; महाराजा को एक खुली पालकी या डोली में बिठाकर सेना की पंक्तियों के आगे से ले जाया गया; ध्यान सिंह उस विपत्तिपूर्ण अवसर पर भी अपने ध्यान को खड़क सिंह को चुप- अपने लक्ष्य पर केन्द्रित किए रहा; उसने ऐसा प्रदर्शित किया चाप उत्तराधिकारी ब—मानो वह महाराजा की अन्तिम इच्छा जानने का प्रयास नाने के लिए ध्याना कर रहा था और इस शोक पूर्ण जुलूस के बीच में समय सिंह की चालें समय पर घोषित करता रहा कि महाराजा ने खड़क सिंह को अपना उत्तराधिकारी तथा ध्यान सिंह को साम्राज्य का 'वजीर' बनाये जाने की इच्छा प्रकट की है[1]। सैनिकों ने महाराजा द्वारा घोषित कही गई इस वसीयत को चुप चाप स्वीकार किया और पंजाब के इस नए और अयोग्य स्वामी को प्रथा के अनुसार, बधाई देने में सिक्खों की तुलना में कहीं अधिक उत्साह प्रकट किया।

———

१—लॉर्ड एलेनबरी के लिए मिस्टर क्लर्क द्वारा तैयार की गई स्मारिका।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अध्याय ८

महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु से वज़ीर जवाहर सिंह की मृत्यु तक

[१८३९–१८४५]

नौनिहाल सिंह द्वारा खड़क सिंह का अधिकार अपहृत—लेफ्टि० कर्नल वेड तथा मि० क्लर्क—नौनिहाल सिंह तथा जम्मू के राजा—खड़कसिंह की मृत्यु—नौनिहाल सिंह की मृत्यु—शेरसिंह महाराजा घोषित पर सार्वभौम सत्ता नौनिहाल सिंह की माँ के अधिकार में—सेना के विश्वास के बल पर शेर सिंह सत्ता सम्पन्न—सेना का शासन कार्य में एक राजनीतिक संस्था के रूप में भाग लेने की प्रवृत्ति—अंग्रेज, हस्तक्षेप के लिए तत्पर—सिख तिब्बत में—चीनियों द्वारा विरोध, अंग्रेजों द्वारा नियन्त्रण - अंग्रेज़ काबुल में - जनरल पॉलक का अभियान—शेरसिंह की मृत्यु--राजा ध्यान सिंह की मृत्यु—दलीप सिंह, महाराजा तथा हीरासिंह, वजीर घोषित—असफल-आक्रमण—पण्डित जल्ला की गतिविधियाँ व उसके विचार जवाहिर सिंह, वजीर मनोनीत—हरीसिंह का निष्कासन और उसकी हत्या—गुलाब सिंह—पिशौरा सिंह का विद्रोह—सेना द्वारा जवाहिरसिंह का वध

राजा ध्यान सिंह की चालों के परिणामस्वरूप अयोग्य खड़क सिंह को पंजाब का महाराजा घोषित कर दिया गया, परन्तु स्वर्गीय महा-

शेरसिंह द्वारा उत्तरा धिकार का दावा जून-जुलाई १८३९: नौनिहालसिंह द्वारा सत्ता का अपहरण :

राजा के कथित पुत्र शेरसिंह ने ब्रिटिश वायसराय के समक्ष लाहौर के सिंहासन पर अपना अधिक दावा प्रकट किया,[1] और नाम मात्र के महाराजा के पुत्र नौनिहाल सिंह ने शासन का कार्यभार सँभालने कर्तव्य को पूर्ण करने के लिए पेशावर से पूर्णगति के साथ लाहौर की ओर प्रयास किया।

अठारहवर्षीय राजकुमार नौनिहाल सिंह हृदय से राजाध्यानसिंह तथा जम्मू के राजाओं के प्रति विरोध भाव रखता था, परन्तु महाराजा के ऊपर चेतसिंह

१—सरकार का पत्र मि० क्लर्क को, १२ जुलाई १८३९। कैप्टेन वेड की अनुपस्थिति में उसका कार्य सम्भालने के लिए नियुक्त मि० क्लर्क ने, ऐसा प्रतीत होता है कि—इस बात को विशेष महत्व न देते हुए शेर सिंह के सन्देश वाहक को रोक लिया और साधारण रीति से सन्देश को गवर्नर जनरल के पास भेज दिया, लार्ड ऑकलैण्ड ने तत्काल निर्देश दिया कि शेरसिंह को स्पष्ट दिया जाय कि खड़क सिंह उसका स्वामी है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नामक एक कृपापात्र का प्रभाव विशेष बढ़ जाने, तथा खड़कसिंह द्वारा ब्रिटिश एजेण्ट के परामर्श पर निर्भर रहने की इच्छा के फलस्वरूप दोनों दल, प्रथमतः इस कृपापात्र के विनाश, तथा बाद में कर्नल वेड को हटाने के ध्येय से एक में आ मिले। सिक्ख अधिकारों के उदार रक्षक, या एक ऐसे व्यक्ति के रूप में जो महाराजा को बताता रहता था कि किस प्रकार अंग्रेजों से संघर्ष को टाला जा सकता है--कर्नल वेड को महाराजा रणजीतसिंह ऊँची नज़र से देखते थे; उनके जीवनकाल में कर्नल वेड ने राजाध्यानसिंह को अपने तथा वृद्ध महाराजा की वार्ताओं का माध्यम बनाने से स्पष्ट इनकार कर दिया था; युवराज खड़कसिंह पर भी उसने पेशावर में अफगान सरदारों के साथ दुरभिसन्धि का आरोप लगाकर अपने विरुद्ध कर लिया था; इस प्रकार सत्तारूढ़ दल उसकी उपस्थिति को नापसन्द करते थे; वे उसके हस्तक्षेप से डरते थे तथा ब्रिटिश परामर्शों को पूरी तरह न मानने के पक्ष में थे, यद्यपि गवर्नर जनरल के परामर्शों को लाहौर के महाराजा द्वारा सदैव कार्यान्वित किया जाता था।

सन् १८३९ ई० की आठवीं अक्टूबर का राजकुमार एवम् वज़ीर उच्छृंखलता का प्रदर्शन करते हुए महाराजा के महल में घुस गए, और चेतसिंह को जगाकर महाराजा की आँखों के सामने ही उसे मौत के घाट उतार दिया[1]। कर्नल वेड को हटाने के प्रश्न के साथ पंजाब चेतसिंह की हत्या से होकर ब्रिटिश सेना को मार्ग देने का प्रश्न भी जुड़ा ८ अक्टूबर १८३९ हुआ था, और उसे एक दूसरे ढंग से किया जाना था।

गवर्नर जनरल ने निश्चय किया था कि शाहशुजा के साथ गई हुई आँग्ल-भारतीय सेना बोलन दर्रे का चक्कर काटकर वापस लौटने के बदले पेशावर के मार्ग से लौटेगी, और जब उन्होंने लाहौर में महाराजा से भेंट की थी तो वे मौखिक रूप से इसके लिए सहमत हो गए थे, यद्यपि पत्रों द्वारा इस व्यवस्था

१--इस हत्याकाण्ड का सर्वाधिक सक्रिय व दृढ़ कर्ता गुलाब सिंह था यद्यपि घटनास्थल पर स्वयं उसके बड़े भाई तथा राजकुमार नौनिहाल सिंह भी उपस्थित थे। कर्नल वेड को इस बर्बरता पूर्ण घटना के लिए लाहौर दरबार को ब्रिटिस सरकार के क्षोभ को प्रकट करने का निर्देश दिया गया था (सरकार का पत्र कर्नल वेड को, २८ अक्टूबर १८३९); इसी प्रकार जब महाराजा रणजीत सिंह के साथ कुछ स्त्रियाँ सती हुई थी तो मि० क्लर्क को निर्देश दिया गया था कि वह खड़कसिंह के समक्ष स्पष्ट कर दे कि ब्रिटिश सरकार सती प्रथा को अनुचित समझती है; (सरकार का पत्र मि० क्लर्क को, २० अगस्त १८३९).

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

को निश्चित रूप नहीं दिया जा सका था[1]। सन् १८३९ ई० में रणजीसिंह की मृत्यु पर शोक प्रकट करने, तथा नए महाराजा को बधाई देने के लिए मि० क्लर्क को लाहौर भेजा गया जिसे यह भी निर्देश एजेण्ट के रूप में दिया गया था कि वह खड़कसिंह से बात करके गजनी वेड के स्थान पर को विजय करने वाली सेना के साथ लार्ड कीन की मि० क्लर्क की वापसी की व्यवस्था के सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय करे[2]। नियुक्ति १ अप्रैल १८४० ई० नए महाराजा, तथा वजीर अपनी पारस्परिक शत्रुता से अपरिचित नहीं थे और सत्ता हथियाने के लिए एक दूसरी की गुप्त अभिसन्धियाँ उनसे छिपी नहीं थीं, परन्तु पंजाब के हृदय में एक ब्रिटिश सेना की उपस्थिति के विरुद्ध दोनों ही थे। यह ब्रिटिश सेना किसी भी समय उनमें से किसी एक का पक्ष लेकर अशान्ति उत्पन्न कर सकती थी; या उन दोनों का ही विरोध करके पदच्युत खड़कसिंह का पक्ष ले सकती थी; परन्तु अफगानिस्तान स्थित ब्रिटिश सेना की वापसी के लिए मार्ग देने की बात का भी पूर्ण उपेक्षा नहीं की जा सकती थी, अतः महाराजा व वजीर ने प्रस्ताव रक्खा कि ब्रिटिश सेना डेरा इस्माइल खाँ के कठिन मार्ग से वापस लौट सकती है; वे इच्छानुसार राजधानी की सीमा से दूर एक मार्ग देने, तथा यह आश्वासन पा लेने में सफल हो गए कि ब्रिटिश सेना भविष्य में फिर कभी पंजाब से नहीं गुजरेगी[3]। किसी भी परिवर्तन से कुछ न कुछ आशा सदैव बँधती है, और जब लाहौर दरबार की ओर से शिमला को एक वापसी मिशन भेजा गया तो ऐसी अफवाह सुनाई पड़ी कि कर्नल वेड ने स्वयम् को लाहौर के शासकों के लिए व्यक्तिगत रूप से असह्य बना डाला था और जब कुछ दिनों तक महाराज के साथ रहने की इच्छा

१--सरकार का पत्र मि० क्लर्क को, २० अगस्त १८३९।

२--[अंग्रेजों ने १८३९ ई० की आठवीं मई को कन्दहार में प्रवेश किया और उसी दिन शाहशुजा को अमीर घोषित किया गया। गजनी जुलाई में अधिकृत हुआ, और अगस्त मास में अंग्रेजी सेना ने काबुल में प्रवेश किया, और तब यह निश्चय किया गया कि शाहशुजा को बल देने के लिये थोड़ा भाग वहीं छोड़कर सेना का अधिकांश भाग वापस लौट आये--सम्पादक]

३--मि० क्लर्क का पत्र सरकार को, १४ सितम्बर १८३९; गवर्नर जनरल इस दिए गए वचन से सन्तुष्ट नहीं हुए थे कि ब्रिटिश सेना भविष्य में पंजाब से न गुजरेगी (सरकार का पत्र मि० क्लर्क को, १४ अक्टूबर १८३९)

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

से लार्ड कीन सेना का साथ छोड़कर लाहौर आया तो यह शिकायत उससे भी की गई[1]। सन् १८३९ ई० के नवम्बर माह में काबुल से लौटता हुआ कैप्टेन वेड स्वयम् सिक्ख सीमा पर था, परन्तु धार्मिक कार्यों में व्यस्तता के बहाने से खड़कसिंह को उससे दूर रक्खा गया क्योंकि उन्हें भय था कि कहीं खड़कसिंह उस व्यक्ति के संरक्षण में न चला जाय जो इन दोनों--नौनिहालसिंह व ध्यानसिंह को, विरोधभाव से देखता था, जो खड़कसिंह के दावे को समाप्त करने के लिए उसके पीछे पड़े हुए थे[2]।

अंग्रेजों की आक्रामक सेना को अफगानिस्तान में ही छोड़ देने का निश्चय किया गया था, क्योंकि शाहशुजा में इतनी सामर्थ्य नहीं थी कि वह बिना सहायता के अपना अधिकार स्थिर रख सकता। नियमित सैन्यदलों की आवश्यकताएँ अनेक प्रकार की होती हैं, और सन् १८३९ ई० के अन्त तक, कर्नल वेड के लुधियाना पहुँच जाने पर, काबुल भेजने के लिए सैनिक सामग्रियों व गोलाबारूद की आपूर्ति की व्यवस्था करनी थी। लाहौर दरबार से कहा गया कि ब्रिटिश दूत के साथ रक्षकों के रूप में सिपाहियों की एक रेजिमेण्ट भेज दी जाय, परन्तु सिक्ख वज़ीर व नौनिहाल सिंह ने इसका विरोध करते हुए तर्क उपस्थित किया कि कुछ ही माह पूर्व लिखे गए इकरारनामे की शर्तों को देखते हुए ऐसा नहीं किया जा सकता था। यह सारा विरोध केवल इस लिए नहीं था कि वे अपने पुराने ब्रिटिश प्रतिनिधि से विरोध भाव रखते थे बल्कि इसलिए भी कि वे अपने देश से विदेशी सेनाओं के आवागमन के लिए मार्ग देना पसन्द नहीं करते थे, और इस प्रकार कर्नल वेड की साख को गिराने के ध्येय से अफगानिस्तान स्थित ब्रिटिश सैन्य दल के लिए सामाग्रियों की तीव्र आपूर्ति के मार्ग में बाधाएँ उत्पन्न कर रहे थे। गवर्नर जनरल काबुल की सीधी सड़क को ब्रिटिश उपयोग के लिए खुले रहने की आवश्यकता का अनुभव कर रहे थे; उन्होंने लाहौर दरबार की माँग को स्वीकार कर लिया और अपने एजेण्ट को

४--सरकार का पत्र कै० वेड को २९ जनवरी १८४० तथा कर्नल वेड का पत्र सरकार को, १ अप्रैल १८४०।

१--मुन्शी शाहमत अली, 'सिख्स एण्ड अफ़गान्स', ५४३, और खड़क सिंह के विषय में अंग्रेजों की नीति के सम्बन्ध में पृ० ५४५ पर का नोट जिसे निश्चय ही कर्नल वेड द्वारा लिखा गया था। इसमें सन्देह नहीं कि यदि कर्नल वेड को पहले की ही तरह गवर्नर जनरल का विश्वास या सहयोग प्राप्त रहा होता तो पंजाब का इतिहास उससे कुछ भिन्न होता जैसा लोगों ने देखा।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हटा लिया, जब कि इसके पूर्व ही ध्यान सिंह व नौनिहाल सिंह ने ब्रिटिश अधिकारी को लुधियाना जाने की अनुमति दे दी थी[1]। सन् १८४० ई० के अप्रैल मास के प्रारम्भ में पंजाब के साथ ब्रिटिश सम्बन्धों की व्यवस्था का भार मि० क्लर्क पर रक्खा गया, और तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए वही एक व्यक्ति था जो इस पद के सर्वथा उपयुक्त था, क्योंकि जिस कारण से कर्नल वेड अपनी कार्यविधि में महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ था जब कि अंग्रेज सिन्ध को सुरक्षित रखने तथा अफगानिस्तान पर आक्रमण करना चाहते थे, उसी कारण ने भारत में अंग्रेजों की नीति की सफलता के लिए मि० क्लर्क को भी लाभदायक सिद्ध किया। दोनों ही अफसरों को वास्तविक सिक्ख शासकों का विश्वास प्राप्त था, और उनकी सारी सिफारिश पंजाब सरकार के हितों व कल्याण को तथा ब्रिटिश हितों के लिए निर्देशित नीति को दृष्टि में रखते हुए की जाती थी।

व्यापार के विषय में अंग्रेजों की वार्ताएँ:

इस प्रकार सिक्ख राजकुमार तथा ब्रिटिश वायसराय में से प्रत्येक ने तत्कालीन लक्ष्यों को प्राप्त कर लिया था। एक ओर तो महाराजा खड़क सिंह अपने महत्वाकांक्षी पुत्र की सफलताओं तथा बढ़ती हुई शक्ति व उत्साह से आशंकित हो चला था, दूसरी ओर एक ऐसी नीति के समर्थन में ब्रिटिश सेना को लाहौर राज्य के क्षेत्र से आने की स्वतन्त्रा मिल गई थी जिसने पश्चिम योरप को दक्षिणी एशिया से अनेक सन्धियों की एक अटूट शृंखला द्वारा जोड़ दिया था। इसके पश्चात् प्रत्येक दल का ध्यान अन्य मामलों पर केन्द्रित हुआ, और ब्रिटिश सरकार ने अपने प्रिय सिन्ध जल यातायात योजना, और उस नदी पर एक व्यापारिक संस्थान स्थापित करने की योजना के कार्यान्वयन पर पुनः जोर देना प्रारम्भ कर दिया; स्थापित होने पर यह संस्थान सिन्ध जलमार्ग का एक समृद्ध केन्द्र बन सकता था।[2]

१—सरकार का पत्र मि० क्लर्क को, ४ मई १८४०। सिन्ध जलमार्ग को खोलने की योजना का एक मुख्य अंग था, इस प्रकार के व्यापारिक संस्थान की स्थापना (सरकार का पत्र कैप्टेन वेड को, ५ सितम्बर १८३६)।

२—मि० क्लर्क के पत्र सरकार को, १६ मई तथा १८ सितम्बर १८३६ तथा सरकार का पत्र मि० क्लर्क को, २० अगस्त १८३६, इस इकरारनामे के लिए देखिये परिशिष्ट ३१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सन् १८३४ में हुई सन्धि में उन नावों पर कर लगाने की व्यवस्था की गई थी जो सिन्ध और सतलज के जल मार्ग से गुजरती, और सन् १८३९ में सिक्खों ने अपने मित्रों के बदले दृष्टिकोणों पर ध्यान रखते हुए अपनी ओर से भी उस जलमार्ग द्वारा आने जाने वाले माल पर चुंगी लगा दी।[२] सिक्खों की इस योजना ने नावों में लदे माल की खोजबीन की प्रणाली का सूत्रपात किया और जून १८४० में नावों पर लिए जाने वाले कर की पुनर्व्यवस्था की गई, परन्तु इस बार दर कम रक्खा गया और ऐसी नावों को इस व्यवस्था से मुक्त रक्खा गया जिनमें अन्न, लकड़ी या चूने का पत्थर आदि लदे होते थे'; परन्तु अंग्रेज सरकार के प्रत्येक प्रयत्न तथा एक बड़ी सेना के लाभदायक सहयोग के बावजूद सिन्ध जलमार्ग द्वारा एक सक्रिय और समृद्ध व्यापार की आशा पूरी नहीं हो पा रही थी; अंशतः इसलिए कि सिन्ध और अफ़गानिस्तान की भूमि लगभग अनुपजाऊ थी, तथा उनमें अर्धसभ्य जातियाँ बसी हुई थीं जिनकी आवश्यकताएँ भी कम थीं, और साधन भी सीमित थे, और अंशतः इसलिए कि युगों से सड़कों व पूर्व प्रचलित मार्गों द्वारा किए जाने वाला व्यापार अधिक प्रचलित था तथा उसमें बहुत अधिक पूँजी हुई लगी थी; यह व्यापार मार्ग उत्तरी व दक्षिणी भारत को जोड़ता था, जो राजपूताना और मालवा के उपजाऊ क्षेत्रों से गुजरता था और जिसके द्वारा ऊँटों और खच्चरों के बड़े-बड़े झुण्डों के स्वामियों का निर्वाह का साधन प्राप्त होता था; एक ऐसे देश में जो सदियों से राजनैतिक हलचलों से आन्दोलित व उद्वेलित हो रहा था, अनुभवी व्यापारियों की पूर्णस्थापित अर्थनीति को परिवर्तित करने के लिए पर्याप्त समय की आवश्यकता थी।

नौनिहालसिंह ने सत्ता प्राप्त करने के पश्चात् जो मुख्य लक्ष्य निर्धारित कर रक्खा था वह था जम्मू के शक्तिशाली राजाओं को नष्ट या शक्तिहीन कर देना जो सिक्ख साम्राज्य की सारी सत्ता को हथियाने की प्रवृत्ति रखते थे; पंजाब की सीमा के अन्तर्गत अनेक भागों में उनकी जागीरें थी ही, इसके अतिरिक्त लद्दाख तथा रावी व झेलम के मध्यस्थित पहाड़ी रियासतें भी उनके संयुक्त अधिकार में थीं। इधर मण्डी तथा काँगड़ा के आस पास स्थित अन्य राजपूती रियासतों ने पूर्वनिर्धारित कर देना बन्द कर दिया था, या टालमटोल कर रहे थे; और इस स्थिति से लाभ उठाते हुए नौनिहालसिंह ने एक काफी सशक्त सेना को पूर्वी पहाड़ी भाग की ओर कूच करने का आदेश दिया; पर्वतीय मार्गों पर इस सेना को

जम्मू के राजाओं के विरुद्ध नौनिहाल सिंह की योजनाएँ :

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जिन कठिनाइयों व अवरोधों का सामना करना पड़ रहा था, उसके बहाने उस भाग में और अधिक सिक्ख सैन्यदल भेजने का अच्छा अवसर प्राप्त हो गया। वास्तव में नौनिहाल सिंह जम्मू के उत्तर-पूर्व में एक काफी तगड़ी सैन्य शक्ति एकत्र कर देना चाहता था जो अवसर पड़ने पर उन सिक्ख दलों के साथ पूर्ण सहयोग करतीं जिन्हें कुछ ही पड़ावों में लाहौर से जम्मू पहुँचा देने की योजना बनाई गई थी। इन सैन्यदलों का सेनापति उन व्यक्तियों को बनाया गया जो ध्यानसिंह से, पहले से ही वैरभाव रखते थे और वे थे—कुशल जनरल वेण्टुरा तथा सरदार अजीतसिंह सिन्धियानवाल।[1] इस प्रकार इस युवा राजकुमार ने जम्मू के राजाओं को अपनी मुट्ठी में में करने के लिए जो योजनाएँ बनाई थी, वे काफी ठोस थीं, परन्तु इसी समय ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा उत्पन्न किए विवादों ने उसका ध्यान बँटा लिया, अंग्रेजों की ओर से इन विवादों का आधार था लाहौर साम्राज्य की बढ़ती हुई अनिश्चित सीमाएँ, तथा काबुल के पुनर्स्थापित साम्राज्य की सीमा कीनिश्चितता; अंग्रेज अधिकारियों ने नौनिहाल सिंह पर यह स्पष्ट आरोप भी लगाया कि वह शाहशुजा के विरुद्ध विद्रोह की प्रवृत्ति रखने वाले भगेड़ों को प्रोत्साहन देकर भड़का रहा था तथा दोस्त मुहम्मद खाँ को मित्रतापूर्ण आश्वासन दे रहा था जो उस समय एक ऐसे आक्रमण की योजना बना रहा था, जिसने खोरासान स्थित ब्रिटिश अधिकारियों को चिन्ता में डाल दिया था। उधर पुनर्प्रतिष्ठित शाहशुजा ने उन समस्त स्थानों पर अपना दावा जताना प्रारम्भ कर दिया था, जिनकी स्थिति सन्धि में अस्पष्ट व अनिर्णीत छोड़ दी गई थी, या जो लाहौर दरबार के प्रत्यक्ष अधिकार में नहीं थे, इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि शाह की सुरक्षा के लिए नियुक्त ब्रिटिश अधिकारी, दुर्रानी शाह के दावों को नए सिक्ख विजेताओं के दावों की तुलना में अधिक न्याय्य एवम् उचित मानने की प्रवृत्ति रखते थे और इस प्रकार पेशावर का प्रान्त, सीमा विभाजन करने वाली नदी के तट की कुछ पट्टियों तक सीमित कर दिया गया जब कि सन् १८३४ में शाहशुजा के साथ हुई पृथक सन्धि तथा सन् १८३८ ई० में हुई संयुक्त सन्धि के अनुसार भी पेशावर पर लाहौर दरबार का ही अधिकार स्वीकार किया गया था[2]। सिक्ख

अफगानिस्तान के मामले को लेकर अंग्रेजों का हस्तक्षेप

१—मि० क्लर्क का पत्र सरकार को, ६ सितम्बर १८४०।

२—देखिये सर विलियम मेकनाटन के पत्र सरकार को, २८ फरवरी तथा १२ मार्च १८४०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

शाहजादे को दोषी ठहराने के लिये कुछ पकड़े गये कागजात प्रस्तुत किए गये जिन पर नौनिहाल सिंह की मुहर लगी थी जिनमें दोस्त मुहम्मद को आर्थिक सहायता देने का वादा किया गया था, परन्तु इस विश्वासघात के आरोप को शान्तिपूर्वक टाल दिया गया; मुहरों को जाली बताया गया, और पंजाब के ब्रिटिश एजेण्ट ने स्वीकार कर लिया कि स्वतन्त्र तथा आत्म विश्वासी सिक्ख जाति के चरित्र को देखते हुए उनके द्वारा ऐसा गुप्त एवम् विश्वासघाती पत्रव्यवहार सम्भव नहीं था[1]। बारकजई सरदार सुल्तान मुहम्मद खाँ से कहा गया कि वह उन गिलजई विद्रोहियों को कैद करके लुधियाना पहुँचवाने की व्यवस्था करे जिन्होंने भागकर उसकी कोहात की जागीर में शरण लिया था जो पेशावर के निकट स्थित था; इन गिलजई विद्रोहियों के पेशावर के निकट स्थित होने से शाहशुजा तथा उसके अंग्रेज मित्रों के कार्यों एवम् व्यवस्थाओं में बाधा पड़ती रहती थी[2]।

इस प्रकार नौनिहाल सिंह उस खतरे से मुक्त प्रतीत हो रहा था जो उसे इंगलैंड की ओर से आशंकित किए हुए था, और उसके पितामह के जिन कृपा पात्रों ने शासन-तन्त्र में गड़बड़ी उत्पन्न करने की योजना बनाई थी उनकी बढ़ी हुई शक्ति के विनाश में भी वह लगभग सफलता महाराजा खड़क की सीमा तक पहुँच गया था। इसी समय महाराजा सिंह की मृत्यु ५ खड़क सिंह के दिन समाप्त हो जाने की सम्भावना भी नवम्बर १८४०: उत्पन्न हो गई थी, और यद्यपि इस बात पर सर्वत्र विश्वास किया गया कि नौनिहाल सिंह द्वारा सत्तापहरण के दुख के साथ, महाराजा को दी जाने वाली औषधियों ने भी खड़क सिंह को मृत्यु के द्वार तक पहुँचा देने में पूरा योगदान दिया था, परन्तु ऐसे निर्बल एवम् अयोग्य महाराजा की चिन्ता करने वाला कोई भी नहीं था। अन्त में

१—सरकार का पत्र मि० क्लर्क को, १ अक्टूबर १८४०, तथा मि० क्लर्क का पत्र सरकार को, ६ दिसम्बर १८४०। कर्नल स्टीनबेक ('पंजाब' पृ० २३) उस तथ्य को भूलते हुये कि नौनिहाल का प्रथम लक्ष्य जम्मू के राजाओं को नष्ट करके पंजाब का पूर्ण स्वामी होना था, कहता है कि राजकुमार नेपाल तथा काबुल को, अंग्रेजों को देश से निकाल बाहर करने में सिक्खों की सहायता के लिए उकसा रहा था।

२—सरकार का पत्र मि० क्लर्क को, १२ अक्टूबर, तथा मि० क्लर्क के पत्र सरकार को—१४ मई, १० सितम्बर व २४ अक्टूबर १८४०।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

३८ वर्ष की अवस्था में ही चिन्ताओं के बोझ से वृद्ध से प्रतीत होने वाले महाराजा खड़क सिंह का, सन् १८४० ई० की ५ वीं नवम्बर को देहान्त हो गया, और पहले से ही सत्ताधारी नौनिहालसिंह को अब विधिवत पंजाब का महाराजा घोषित किया गया, परन्तु यही दिन नौनिहाल सिंह के जीवन का भी अन्तिम दिन था; सिर पर राजमुकुट धारण करने तथा मृत्यु के अप्रत्याशित आगमन के बीच का समय अत्यधिक संक्षिप्त सिद्ध हुआ। वह अपने पिता के दाह संस्कार सम्बन्धी अन्तिम क्रिया को सम्पन्न करने के पश्चात्, गुलाब सिंह के ज्येष्ठ पुत्र के साथ, ऊपर से छाए हुए एक फाटक से गुजर रहा था कि अचानक फाटक का एक भाग ध्वस्त होकर गिर गया जिससे वजीर का भतीजा तो घटनास्थल पर ही मर गया। और नौनिहाल सिंह इस बुरी तरह घायल हो गया कि तत्काल संज्ञाहीन हो गया और उसी रात को मर गया। यह बात निश्चित रूप से ज्ञात नहीं हो सकी है कि नौनिहाल सिंह रूपी काँटे को दूर करने के लिए यह जम्मू के राजाओं की साजिश थी अथवा नहीं, परन्तु उन्हें इस अवराध से मुक्त करना कठिन है, और यह भी निश्चित है कि उनके पास ऐसा करने के कारण भी थे, साधन भी। वे अपने बचाव में केवल आत्मरक्षा का तर्क प्रस्तुत कर सकते थे क्योंकि यह भी निश्चित है कि राजकुमार उनकी शक्ति को न्यूनता की सीमा तक पहुँचाने अथवा नष्ट ही कर देने के लिए कृतसंकल्प था[1]। नौनिहाल सिंह की आयु, मृत्यु के समय कुल ३० वर्ष ही थी; इतनी ही अल्पायु में वह एक योग्य और शक्तिशाली शासक के गुणों का पर्याप्त आभास दे चुका था; यदि वह जीवित रह गया होता, और अंग्रेजी नीति ने पश्चिम में अपना जाल सुदृढ़ न कर लिया होता तो वह सिन्ध अफगानिस्तान व हिन्दूकुश के परे के क्षेत्रों में अपनी महत्वाकांक्षा को पूर्ण करने में प्रत्येक उपलब्ध अवसर का

नौनिहाल सिंह की मृत्यु ५ नवम्बर १८४०:

१—मि० क्लर्क के पत्र सरकार को, ६, ७ व १० नवम्बर १८४०, जिसके अनुसार जनरल वेण्टुरा का मत था फाटक संयोग वश ही गिरा था। मेजर स्मिथ ('रेनिंग फेमिली ऑव लाहौर' 'पृ० ३५) एक प्रत्यक्षदर्शी यूरोपीय यात्री कैप्टेन गार्डनर के आधार पर इसे राजा ध्यान सन्धि की दुरभिसन्धि का परिणाम मानता है। [यह दुर्भाग्यपूर्ण घटना लाहौर के किले के उस फाटक के नीचे घटित हुई थी जो हजूरी बाग तथा बादशाही मस्जिद के सामने है—, यह फाटक अब बन्द कर दिया गया है परन्तु इसकी मीनारों द्वारा इसे अब भी पहचाना जा सकता है—सम्पादक]

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भरपूर लाभ उठाता, और अन्त में गर्व से यह उद्घोषित करने में समर्थ होता कि भारत के जागृत किसानों ने महमूद व तैमूर के आक्रमणों व अत्याचारों का बदला ले लिया था।

अब महाराजा रणजीत सिंह के परिवार में एक ही व्यक्ति ऐसा बच रहा था जो लाहौर राज्य का उत्तराधिकारी माना जा सकता था, और वह था शेरसिंह, जिसके महाराजा घोषित किए जाने का समर्थन राजा ध्यान सिंह तथा ब्रिटिश एजेण्ट, दोनों ने किया; जिस समय महाराजा खड़क सिंह की मृत्यु तथा कुँवर नौनिहाल सिंह की हत्या हुई, शेरसिंह लाहौर में उपस्थित नहीं था; अतः ध्यान सिंह ने राजकुमार की मृत्यु के समाचार को फैलने से यथासम्भव रोके रहा ताकि शेरसिंह अपने मित्रों को एकत्र करने का समय पा जाय, और ब्रिटिश प्रतिनिधि ने एक सन्देश भेज कर वजीर से कहा कि सीमान्तों पर सुव्यवस्था बनाई रक्खी जाय क्योंकि उपद्रवी प्रवृत्ति के लोगों का, उक्त घटनाओं की जानकारी के पश्चात्, सक्रिय होना स्वाभाविक था;[1] परन्तु, जैसा कि पीछे लिखा जा चुका है, महाराजा रणजीत सिंह ने शेर सिंह को अपना वैध पुत्र नहीं माना था, उसमें व्यक्तित्व की प्रबलता व शक्ति भी नहीं थी कि वह अपना पक्ष सबल कर सकता; जम्मू के राजाओं व अधिकांश सिक्ख सरदारों में पर्याप्त वैमनस्थ भी था, और इन सभी परिस्थितियों से उत्साहित होकर मृत राजकुमार की विधवा माँ चाँदकौर ने अचानक अप्रत्याशित रूप से सारी शासकीय सत्ता अपने हाथ में ले ली, परन्तु उस समय उसके आश्चर्य चकित प्रतिद्वन्दियों को विरोध करने का साहस नहीं हुआ। अनेक महत्वपूर्ण सरदार चाँदकौर का समर्थन कर रहे थे जिनमें से मुख्य था सिन्धानवाला परिवार जो स्वयम् को महाराजा के वंश से घनिष्टता पूर्वक सम्बद्ध मानता था। चाँदकौर ने अपनी ओर से महाराजा रणजीत सिंह के प्रियपात्र हीरा सिंह (ध्यान सिंह का पुत्र) को गोद लेकर उसके अधिकार में वृद्धि करने का भी प्रस्ताव रक्खा जिसे रणजीत सिंह भी औपचारिक रूप से तो नहीं, परन्तु हृदय से अंगीकार किया था। चाँदकौर ने सन्देह और अटकलबाजी के

शेर सिंह को महाराजा घोषित करने का निश्चय:

नौनिहाल सिंह की माँ चाँदकौर की प्रबलता; शेरसिंह मात्र संरक्षक:

१—मि० क्लर्क का पत्र सरकार को, ७ नवम्बर १८४०; तथा मि० क्लर्क की १८४२ की स्मारिका।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वातावरण को दूर करने के लिए इस तथ्य को भी घोषित कर दिया कि उसकी पुत्रवधू—नौनिहाल सिंह की विधवा—गर्भवती थी और उसके गर्भ में पंजाब का भावी उत्तराधिकारी विकसित हो रहा था। उसके प्रतिद्वन्दियों ने तरह तरह की बातों से उसे डिगाने का प्रयास किया परन्तु विधवा महारानी ने पंजाब सम्राज्य की सत्ता पर अपना दावा और भी प्रबलता से प्रकट किया, और कुछ सप्ताहों बाद जिस अस्थायी सरकार का गठन किया गया वह इस प्रकार था–(१) महारानी चाँदकौर उस समय तक सर्वोच्च सत्ताधारिणी या संरक्षक, जब तक नौनिहाल सिंह की भावी सन्तान जन्म न लें; (२) शेरसिंह, उपसंरक्षक या राज्य-समिति का अध्यक्ष और (३) राजा ध्यान सिंह, वजीर। यह गठन पूर्णतः अस्थायी सिद्ध हुआ और कुछ ही दिनों बाद शेरसिंह तथा ध्यान सिंह कई-कई दिनों तक लाहौर से अनुपस्थित रहने लगे; ध्यान सिंह इस आशा में था कि अंग्रेजों के साथ सिखों के बढ़े हुए सम्बन्धों से, वही एक व्यक्ति है, जो पूर्णतः परिचित है, और इससे इस बात को प्रत्येक व्यक्ति स्वीकार कर लेगा कि बिना उसकी सहायता के शासन कार्य चलाना असम्भव है; और शेरसिंह, या सम्भवतः दोनों ही व्यक्ति चुपचाप, वेतन बढ़ाने तथा पुरस्कार आदि का लोभ देकर सेना को अपने पक्ष में लाने के प्रयास में लगे हुए थे, ताकि उचित अवसर आने पर कम से कम सेना उनका साथ दे; परन्तु शेरसिंह के सन्दिग्ध जन्म व उत्तराधिकार के सम्बन्ध में जनसाधारण में उतनी दुर्भावना व्याप्त थी कि वजीर को भी सन्देह था कि शेरसिंह को साधन बनाकर सफलता प्राप्त करना कठिन था, अतः कोई दूसरा साधन ढूँढ़ना आवश्यक था, और इसी ध्येय से ध्यान सिंह ने ब्रिटिश अधिकारियों को एक ऐसे तथ्य से अवगत कराया जिसके सम्बन्ध में वे अभी तक अन्धकार में थे; और वह यह कि महाराजा रणजीतसिंह की १६-१७ रानियों में से सर्वाधिक प्रिय, रानी जिन्दाँ (जिसे महाराजा प्यार से 'महबूबा' कहा करते थे) के गर्भ से दलीप नाकक एक पुत्र उस समय से कुछ महीनों पूर्व पैदा हुआ था जब शाहशुजा को काबुल के सिंहासन पर पुनः बैठाने के विषय में वर्ताएँ हो रही थीं[1]।

दलीपसिंह का जन्म व दावा प्रचारित

ब्रिटिश वायसराय ने चाँदकौर को मृत पति व पुत्र की असन्दिग्ध

१—मि० क्लर्क के पत्र सरकार को–१० नवम्बर १८४० तथा २ जनवरी १८४१ के बीच, यह बात लगभग पूर्णतः निश्चित है कि इसके पूर्व ब्रिटिश अधिकारियों को बालक दिलीप के अस्तित्व के सम्बन्ध में कोई भी ज्ञान नहीं था।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उत्तराधिकारिणी या देश की सर्वोच्छा सत्ताधिकारिणी होने की मान्यता नहीं दी; परन्तु ब्रिटिश व सिक्ख राज्यों के मध्य, अंग्रेज़ कुछ समय के लिए तटस्थ एक रेख, चाँदकौर को अस्थायी शासिका मानकर, असफल प्रयास के बाद दोस्त मुहम्मद का आत्म समर्पण: दोनों के विश्वस्त एजेण्टों द्वारा सारे मामलों की देख तटस्थ की जाती रही; इस तटस्थता के बावजूद ब्रिटिश वायसराय की, पंजाब में सुव्यवथा बनी रहे, इस विषय में पर्याप्त चिन्ता प्रकट करते थे, और अफ़ग़ानिस्तान में स्थितियों ने जो रूप धारण कर लिया था, उसके कारण यह चिन्ता और भी अधिक बढ़ गई थी। दोस्त मुहम्मद के विद्रोही प्रयासों में वृद्धि होती जा रही थी, और सरकार ने केवल अपने ही साधनों से उसका सामना करने का निश्चय किया था; इस स्थिति को देखते हुए अतिरिक्त सैन्य दलों का भेजा जाना आवश्यक हो गया था और खड़क सिंह की मृत्यु से पूर्व काबुल के लिए रवाना किये गये ३००० सैनिक फीरोज पुर पहुँच चुके थे[1]। लाहौर में अधिकार के लिए उठ खड़े हुए विवादों का इस शक्तिशाली ब्रिटिश ब्रिगेड की प्रगति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा; बिना किसी अवरोध के यह सैन्य दल आगे बढ़ता रहा और जब पेशावर पहुँचा तो विजेता के स्थान पर बन्दी के रूप में दोस्त मुहम्मद वहाँ पहले से ही उपस्थित था। दोस्तमुहम्मद ने एक कार्यमुक्त ब्रिगेड के साथ पंजाब से बन्दी के रूप में प्रयाण किया; यद्यपि उस समय शेर-सिंह लाहौर के किले पर घेरा डाले पड़ा था, परन्तु पहले से ही सिक्ख राजधानी की सीमा से काफी दूर के मार्ग को ब्रिटिश सेनाओं के आवागमन के लिए चुने जाने की बुद्धिमत्ता तथा मुसलमान जातियों द्वारा पूर्ण अधीनता स्वीकार कर लिए जाने के कारण, उस निश्चित मार्ग से लुधियाना की ओर बढ़ने वाले ब्रिटिश सेनानायक को साधारण रिपोर्टों व समाचार-लेखकों से प्राप्त सूचनाओं के अतिरिक्त लाहौर में चल-रहे संघर्ष की विशेष सूचना न मिल सकी।

लाहौर के उत्तराधिकार के सम्बन्ध में, यह सच है कि ब्रिटिश सरकार ने अपनी ओर से कोई घोषणा नहीं की थी, परन्तु ऐसा विश्वास किया जाता

१—इस लौटती हुई ब्रिगेड का कमाण्डर कर्नल ह्वीलर [बाद में सर ह्वयूग ह्वीलर, कानपुर की रक्षक सेना का दुर्भाग्य-शाली कमाण्डर-सम्पादक] था जिसका नाम अफगान व सिक्ख युद्धों के सम्बन्ध में जन साधारण को विदित है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

था कि सामान्यतः शेरसिंह को ही सिक्ख-साम्राज्य के न्याय प्रतिनिधि के रूप में ग्रहण किया जा रहा था और महारानी चाँदकौर के परामर्शदाताओं ने शीघ्र ही अनुभव कर लिया कि बिना ध्यानसिंह की पूर्ण सहायता प्राप्त किए वे शेर सिंह के दावों तथा ब्रिटिश सरकार के प्रबल प्रभाव से टक्कर नहीं ले सकेंगे। एक समय तो स्वयम् राजा ध्यान सिंह वह महारानी चाँदकौर के अधीन, वजीर का पद सँभाल लेने के इच्छुक थे, और अपेक्षाकृत अधिक नीतिकुशल गुलाब सिंह को भी एक स्त्री के शासन में आवश्यक रूप से उत्पन्न परिस्थितियों को अपने परिवार के हितों की ओर मोड़ने की पर्याप्त सम्भावनाएँ दिखाई दी थीं जिन्हें किसी औसत बुद्धि के पुरुष शासक के प्रत्यक्ष शासन में प्राप्त करना अत्यन्त कठिन था; परन्तु महारानी चाँदकौर के परामर्शदाता स्वयम् को इस प्रकार स्वत्वहीन होने देना नहीं चाहते थे, ऐसी परिस्थिति में ध्यानसिंह पूर्ण शान्त रहा, परन्तु शेरसिंह को उचित अवसर आ उपस्थित होने पर सहायता का आश्वासन देकर प्रोत्साहित करता रहा। शेरसिंह अपनी ओर से ब्रिटिश एजेण्ट से अपने उत्तराधिकार की मान्यता के लिए प्रयत्न करता रहा, और अन्त में एजेण्ट के उत्तर से सन्तुष्ट हो गया, यद्यपि उसे मात्र आश्वासन दिया गया था कि ३२ वर्षों से सिक्खों के साथ मित्रता का निर्वाह करते आ रहे अंग्रेज पंजाब में एक शक्तिशाली सरकार देखना चाहते थे[1]।

ध्यानसिंह की सहायता से सेना शेर सिंह के पक्ष में;

वजीर ध्यान सिंह की सहायता से शेरसिंह के अधिकार में सिक्ख सेना के कुछ डिवीजन आ गये थे, और उसे विश्वास था कि यदि उसने साहस से काम लिया, तो सारी सिक्ख सेना उसके पक्ष में हो जायगी। शेरसिंह या उसके अनुयायियों की अधीरता ने दूरदर्शिता के स्थान पर अधीरता से काम लिया; युद्ध का निर्णय करने में जल्दबाजी कर दी गई, और जब वह सन् १८४१ ई० की १४ वीं जनवरी को सहसा लाहौर में प्रकट हुआ तो उसने पाया कि ध्यान सिंह अभी तक जम्मू से वापस नहीं लौटा था और गुलाब सिंह, उसका साथ देने की अपेक्षा, साम्राज्य की मान्य अधिकारिणी, महारानी के लिए लड़ने की प्रवृत्ति प्रदर्शित कर रहा था,

शेर सिंह का लाहौर पर आक्रमण १४—१८ जनवरी १८४१

१—देखिए मि० क्लर्क के पत्र सरकार को, दिसम्बर १८४० व जनवरी १८४१, विशेषतः ९ जनवरी का पत्र।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

परन्तु उत्साह के आवेग में शेर सिंह अपने आपको भूल बैठा था, उसकी युद्धातुर सेना किले को तोड़ देने का निश्चय लेकर बढ़ चली; गुलाब सिंह ने उनकी युद्धात्मक कार्यवाही को कुछ काल के लिए टालने का प्रयास किया ताकि इस शत्रुत्रापूर्ण वातावरण को शान्ति में परिवर्तित किया जा सके, परन्तु शेरसिंह को उसके निश्चय से विरत न किया जा सका। १८ जनवरी को ध्यान सिंह तथा अन्य अनेक प्रमुख सरदार लाहौर आ पहुँचे और एक या दूसरे दल में जा मिले। शीघ्र ही सुलह की बातचीत शुरू हो गई, और अन्तिम निर्णय के अनुसार महारानी का हर प्रकार से सम्मान किया गया और उसे बड़ी बड़ी जागीरें दी गईं परन्तु शेर सिंह को पंजाब का महाराजा घोषित कर दिया गया; ध्यान सिंह को इसबार भी वजीर का पद प्रदान किया गया और सैनिकों के वेतन में एक रुपये की स्थायी वृद्धि कर दी गई। महारानी के प्रबल समर्थक, सिन्धानवाला परिवार ने महसूस किया कि नया महाराजा उन्हें वक्र दृष्टि से ही देखेगा अतः अतर सिंह व अजीत सिंह राजधानी से भागकर ब्रिटिश राज्य क्षेत्र में जा पहुँचे, परन्तु इस परिवार का एक अन्य प्रमुख सदस्य लहना सिंह अपने अधीनस्थ सेना के डिवीजन के साथ कुल और मण्डी की पहाड़ियों में ही पड़ा रहा[1]।

चाँदकौर नत; शेर सिंह महाराजा घोषित : सिन्धानवाला परिवार

शेरसिंह ने सेना को अपने पक्ष में खींच कर लाहौर के सिंहासन पर तो अवश्य अधिकार कर लिया, परन्तु उसमें इतनी सामर्थ्य न थी कि वह सेना को नियंत्रित एवम् अनुशासित रख सकता; सैनिकों ने उसकी इस असमर्थता तथा अपनी शक्ति का भरपूर लाभ उठाते हुए उन विभिन्न सैन्याधिकारियों से बदला लेना शुरू कर दिया जिन्होंने कभी भी उन्हें अपमानित या दण्डित किया; उनकी प्रतिहिंसा के आग से, वेतन बाँटने वाले बख्शी भी न बच सके जो उनके वेतन के हिसाब में गड़बड़ी और गोलमाल करते थे। कुछ घरों को लूट लिया गया और अनेक व्यक्तियों को पकड़ कर मार डाला गया। कुछ यूरोपिय न भी सैनिकों की आँखों में बुरी तरह खटक रहे थे; नम्र व उच्चविचारों से युक्त जनरल कोर्ट को अपनी प्राण रक्षा के लिए भागना पड़ा; और फाँक्स नामक एक वीर युवक अंग्रेज को निर्दयतापूर्वक मृत्यु के घाट उतार दिया गया। यह हिंसात्मक भावना केवल राजधानी में स्थित सेना तक या निकटस्थ पूर्वी पहाड़ियों तक ही सीमित न

सिक्ख सेना अनियंत्रित

१—देखिये मि० क्लर्क के पत्र सरकार को १७ से ३० जनवरी १८४१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

रहकर कश्मीर और पेशावर तक व्याप्त हो गई। कश्मीर के गवर्नर मियान सिंह को वहाँ की सेना द्वारा मार डाला गया था और पेशावर में जनरल एविटेबिल इतना अधिक परेशान हुआ कि वह अपने पद का त्याग करके आत्म-रक्षा के लिए जलालाबाद की शरण लेने को तैयार हो गया। उस समय ऐसा विश्वास किया जाने लगा था कि उन्मत्त एवम् अनियन्त्रित सैनिक केवल उन लोगों से बदला लेकर ही सन्तुष्ट नहीं हो जायँगे जिन्हें वे अपना शत्रु मानते थे, बल्कि इस कार्य से मुक्ति पाने पर वे खुली लूटपाट में भी प्रवृत्त हो सकते थे। सतलज के दोनों तटों पर बसे हुए लोग एक भयंकर हलचल के लिए तैयार हो गए थे और अमृतसर के समृद्ध व्यापारी व महाजन अपने दूकनों की लूट की आशंका से इतने भयभीत हो उठे कि अंग्रेजों की दुहाई देने लगे। आतंक पूर्ण स्थिति देखकर शेर सिंह भय से सिकुड़ गया, और ऐसा प्रतीत हुआ कि वह उस भयंकर हिंसाग्नि को बुझाने के लिए अंग्रेजों से सहायता माँगने का निश्चय कर चुका था जिसे स्वयम् उसी ने भड़काया था और अब उसे नियंत्रित करने में स्वयम् को असमर्थ पा रहा था। अंग्रेज इस हलचल व हिंसापूर्ण अराजकता के अध्ययन में ले रहे थे यद्यपि वे कुछ चिन्तित भी थे; जब यह स्थिति आ गई कि सूबों और नगरों के निवासी इन सैनिक लुटेरों से हर पल भयभीत रहने लगे और हर ओर से लूटपाट व हत्याओं की अफवाहें उड़ने लगीं, तो ब्रिटिश सरकार ने वही किया जो एक विपत्ति ग्रस्त मित्र राज्य के प्रति एक सभ्य व शक्तिशाली पड़ोसी राज्य का समुचित कर्तव्य था; अंग्रेजों ने अब सिक्खों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने के निश्चय की घोषणा कर दी, परन्तु उनकी इच्छाओं ने जो रूप धारण किए वे अनेक, तथा परस्पर विरोधी थे। सेना की पहले से ही स्पष्ट असंगठित दशा तथा उसके साथ (Aggrandiseruent) की स्वाभाविक इच्छा, इन दोनों ने मिलकर सैनिकों के रूप में सिक्खों की साख को पतन की ओर खींचने का कार्य आरम्भ कर दिया, और जम्मू के राजाओं को तो जैसे प्रभुसत्ता ही प्राप्त हो गई थी और वे पहाड़ी क्षेत्रों से कर वसूल रहे थे; केवल जम्मू के ये राजा ही ऐसे थे जिनके सैनिक नियन्त्रणहीन न हो पाए थे। ब्रिटिश अधिकारी अपने अनुभवों के आधार पर यह मानते थे कि धार्मिक उन्माद में मरने, मारने की स्थिति में आने के अवसरों के अतिरिक्त सिक्ख सैनिकों का साहस किसानों के समान ही सन्दिग्ध था। सिक्खों के साहस व शौर्य के सम्बन्ध में यह भ्रम पूर्ण विचार उस समय तक अंग्रेजों के मन में सिक्ख सैनिकों के प्रतिहीन

शेर सिंह आतंकित अंग्रेज शान्ति के लिए चिन्तित

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भावना पैदा करता रहा जब तक कि फीरु शहर के युद्ध में उन्होंने उनका अप्रतिम शौर्य प्रत्यक्ष न देख लिया[1]।

इस प्रकार अंग्रेजों ने पंजाब में शान्ति स्थापित करने के लिए कोई सशक्त कदम उठाना आवश्यक समझा और उनके काबुल स्थित एजेण्ट ने—जिसे शाहशुजा को न केवल पद से, बल्कि साधनों से भी एक सत्ताधारी शासक की हैसियत प्रदान करने का कार्य सौंपा गया था—महाराजा रणजीतसिंह के अन्तिम प्रतिनिधि की मृत्यु के समाचार को सुनते ही लाहौर के दरबार के साथ हुई सन्धियों को समाप्त समझे जाने की घोषणा की, और पेशावर को अफगान राज्य में मिलाने की योजना बनाने लगा।

सशस्त्र हस्तक्षेप के लिए तत्पर; फरवरी १८४१

कलकत्ता में ब्रिटिश सरकार ने काबुल के एजेण्ट द्वारा जल्दबाजी में किए गए इस अनुचित निर्णय की भर्त्सना की, परन्तु मन ही मन, सिक्खों के प्रति विश्वास व मित्रभाव को तोड़े बिना न केवल सिन्धस्थित डेराजाट, बल्कि पेशावर को भी दुर्रानी शाह के राज्य में मिला देने की आशा से प्रसन्न भी हुई, क्योंकि ऐसी सम्भावना व्यक्त की जा रही थी कि शीघ्र ही सिन्धानवाला सरदार तथा जम्मू के राजा सिक्खों का राज्य दो ओर से खण्डित किया जा सकता था[2]। सतलज स्थित ब्रिटिश एजेण्ट ने लाहौर की स्थिति को पतन के इतने निकट

१—मि० क्लर्क के पत्र सरकार को २ जुन व १३ अप्रेल १८४१, ८ व १० दिसम्बर १८४१ तथा १५ जनवरी, १० फरवरी तथा २३ अप्रैल १८४२। मि० क्लर्क की अभिव्यक्तियाँ अत्यन्त निश्चित रूप में हैं, जैसे कि सिक्ख पर्वतीय जातियों से भयभीत रहते थे जो अधिक वीर थे, या यह कि राजपूत अफगानों को नियत्रण में रख सकते थे जो सिक्खों के लिए सम्भव न था, परन्तु वह सम्भवतः भूल गया था कि पिछली ही शती में प्राचीन राजपूत वशों ने गुरखों तथा मराठों की उभरती हुई शक्ति के आगे घुटने टेक दिए थे और स्वयम् सिक्खों ने हिमालय के आभिजात राजपूतों से गंगा से लेकर कश्मीर तक के क्षेत्र के लिए कर वसूल किया था।

२—देखिये सरकार का पत्र सर मैकनाटेन को, २८ दिसम्बर १८४०; गवर्नर जनरल का यह कथन उचित ही था कि सिन्ध एक व्यक्ति विशेष के साथ नहीं बल्कि सिक्ख साम्राज्य से हुई थी, और उस समय तक इस सन्धि की शर्तों का पालन किया जाता रहेगा तब तक यह मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बना रहेगा।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नहीं स्वीकार किया, और अपनी नीति, अपने सैनिकों की वीरता तथा ब्रिटिश नाम की महत्ता के प्रति विश्वस्त होकर यह दावा किया कि वह केवल १२००० सैनिकों के साथ लाहौर जाकर संख्या में चौगुने सिक्ख सैनिकों को बिखेर सकता था, वहाँ व्यवस्था स्थापित कर सकता था, और शेरसिंह की प्रभुसत्ता को दृढ़ता प्रदान कर सकता था; परन्तु इसके बदले में उसने शेरसिंह से सिस सतलज क्षेत्र सिक्खों के रूप में चालीस लाख रूपयों की माँग की[1]। उसके इस प्रस्ताव से महाराजा शेरसिंह अपनी प्रजा के हाथों अपनी जान, तथा अपने अंग्रेज मित्रों के हाथों अपने साम्राज्य को असुरक्षित समझ कर आशंकित हो उठा[2]। गवर्नर जनरल सैनिक आक्रमण के लिए तैयार भी न थे, यद्यपि वे निश्चय कर चुके थे कि यदि सिक्खों के बहुमत के साथ स्वयम् महाराजा भी इस प्रकार के सैनिक हस्तक्षेप के लिए इच्छा प्रकट करे तो ऐसा ही किया जायगा[3]। इसके पश्चात् लाहौर में धीरे-धीरे सेना की अव्यवस्थाएँ व अनुशासनहीनता समाप्त होने लगी परन्तु यह बात दूर-दूर के क्षेत्रों तक प्रचारित हो गई कि अंग्रेजों के साथ इस समय वार्ताएँ की गई थी और सिक्ख सैनिक विदेशी सहायता प्राप्त करने की भावना मात्र से इतनी घृणा करते थे कि लहनासिंह सिन्धानवाला को उसके ही सैनिकों

सेना नियंत्रण में, पर सिक्ख अंग्रेजों से आशंकित

१—मि० क्लर्क का पत्र सरकार को, २६ मई १८४१।

२—जब शेरसिंह मि० क्लर्क के प्रस्तावों से अवगत हुआ, तो कहा है जाता कि उसने गले पर उँगली फिरा कर इंगित किया था कि यदि उसने इन प्रस्तावों को स्वीकार कर लिया तो सिक्ख प्रजा उत्तेजित हो कर उसकी जान का ग्राहक बन बैठेगी। स्थिति को सम्भालने के लिए अंग्रेजों द्वारा सहायता देने के लिए तैयार होने की बात को सर्वप्रथम फकीर अजीजउद्दीन के समक्ष व्यक्त किया गया और उस सतर्क वार्ता करने वाले व्यक्ति ने कहा कि इस बात को अलिखित ही रहने देने में कुशल है; उसने कहा कि वह शेरसिंह से व्यक्तिगत रूप से भेंट करके उसे सारी स्थिति से अवगत कराने को अधिक सुरक्षित समझा; वह गया और फिर वापस न लौटा; सम्भवतः वह ऐसी अनिश्चित योजनाओं से दूर ही रहना चाहता था।

३—सरकार के पत्र मि० क्लर्क को, १८ फरवरी तथा २९ मार्च १८४१; गवर्नर जनरल का यह कथन ठीक ही था कि महाराजा ने नहीं बल्कि मि० क्लर्क ने ही सशस्त्र हस्तक्षेप का प्रस्ताव रक्खा था।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ने यह आरोप लगाकर बन्दी बना लिया कि वह अपने शरणार्थी भाई के साथ दुरभिसन्धि करके विदेशियों की सत्ता का सूत्रपात करना चाहता था[1]।

अंग्रेजों के विरुद्ध सिक्खों की आशंकाओं तथा घृणा को और भी अधिक भड़काया एक अंग्रेज अफसर की गतिविधियों ने जिसे बाद में ब्रिटिश मित्रता एवम् सहयोग के प्रतिनिधि के रूप में मनोनीति कर दिया गया। मेजर ब्राँडफूट को, शाहशुजा के लिए खान खोदने वालों की भर्ती कराने कार्य भार सौंपा गया था। और चूँकि शाहशुजा का परिवार, तथा साथ ही अन्धे शाह जमाँ, तथा उसके बीवी बच्चे भी काबुल जाने के लिए तैयार हो गये थे, अतः मेजर ब्राँडफूट के साथ एक सशक्त रक्षक सैन्य–दल को भी काबुल जाने का निर्देश दिया गया। इस ब्रिटिश मेजर ने सन् १८४१ ई० के अप्रैल मास में पंजाब की सीमा में प्रवेश किया जब सिक्ख सेना की विद्रोही भावना राजधानी से सूबों की ओर तेजी से फैलती जा रही थी। लाहौर सरकार ने शाही परिवारों की इस यात्रा को सुरक्षित बनाने के ध्येय से मिश्रित या मुसलमान सिपाहियों की एक टुकड़ी को मेजर ब्राँडफुट के साथ भेजना चाहा, परन्तु उसे इस टुकड़ी की नीयत पर सन्देह हो गया, और रावी के तट पर उसने अपने नवगठित रेजिमेण्ट के साथ उसने उन लोगों के सम्भावित आक्रमण का प्रतिरोध करने के लिए मोर्चा बन्दी की जो उसे सुरक्षित रूप से काबुल तक पहुँचाने के लिए भेजा गया था। सिन्ध के मार्ग में जिन सिक्ख सैन्य दलों से उसकी मुलाकात हुई या जो दल उधर से गुजरे, उन सभी को वह शंका की दृष्टि से देखता रहा; उसे विश्वास था कि उनका इरादा उसके कैम्प में लूट-पाट करने का था, और उसने सोचा कि अपनी वार्ताओं द्वारा तथा जहाँ कहीं शक्ति के प्रदर्शन की धमकी देकर, अपनी नीति कुशलता के बल पर उन्हें टकराने से रोकता रहा है। अटक में नदी पार कर लेने के पश्चात्, उस क्षेत्र में पड़ी हुई, तथा पेशावर स्थित बटालियनों की आक्रामक प्रवृत्ति की निर्मूल आशंका से मेजर ब्राँडफूट इतना सतर्क हो गया कि उसने अपने कैम्प के लिए पूर्ण प्रतिरक्षात्मक व्यवस्था की नावों के पुल को तुड़वा डाला और अफगान जनता को प्रेरित करना प्रारम्भ किया कि वे अपनी सिक्ख सरकार की सेनाओं के विरुद्ध उसकी सहायता करें, परन्तु ऐसा प्रतीत नहीं होता कि उसको इन आशंकाओं के पीछे कोई ठोस कारण भी था। लगभग इसी समय उसने एक विद्रोही सी प्रतीत होने वाली

पंजाब से होते हुए मेजर ब्राँडफूट की यात्रा

५–मि० क्लर्क सरकार को, २५ मार्च १८४१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

रेजिमेण्ट के कुछ नायकों पकड़ लिया जो अपने सेनापति से कुछ बातें करने के उपरान्त वापस लौट रहे थे और व्यर्थ में आशंकित उस ब्रिटिश मेजर के कैम्प की सीमा के निकट जा पहुँचे थे। उसके इस कार्य ने पेशावर के सूबेदार जनरल एविटेबिल तथा पेशावर स्थित ब्रिटिश एजेण्ट, दोनों ही चौंक पड़े, और जलालाबाद में पहले से ही तैयार और प्रतीक्षारत एक ब्रिगेड, सिन्ध नदी के तट पर स्थित सिक्ख सैन्यदलों को आतंकित करने के लिए तीव्र गति से सिन्ध की ओर बढ़ चलीं, परन्तु इस सहायक सैन्य दल द्वारा कोई सुरक्षात्मक व्यवस्था की जाने के पूर्व ही शाह का परिवार तथा उसके अनुयायी सुरक्षित रूप से खैबर दर्रे को पार कर चुके थे इस सारी दौड़धूप का केवल एक ही परिणाम हुआ, और वह यह कि इससे अंग्रेजों के विरुद्ध सिक्खों को क्षोभ एवम् विश्वास में और अधिक वृद्धि हुई, साथ ही शेरसिंह अपनी उपद्रवी सेना को यह धमकी देकर आतंकित करने का अवसर पा गया कि पंजाब हर ओर से अंग्रेजी सैन्य दलों द्वारा घिरा हुआ था और वे सिक्ख सेना के जरा से भी उपद्रव को बलात कुचल डालने के लिए कटिबद्ध थे[1]।

सन् १८४१ ई० के मध्य के पूर्व ही लाहौर के सैन्यदलों की अधिक हिंसात्मक कार्यवाहियाँ लगभग समाप्त हो चलीं थीं, परन्तु राज्य के प्रति सेना के दृष्टिकोण में पूर्ण परिवर्तन हो गया था; अब यह सेना स्वयम् को एक अकुशल सरकार की इच्छाओं की पूर्ति का साधन मात्र न मानकर सिक्ख लाहौर राज्य के जनता का प्रतिनिधिक संगठन मानती थी और 'खालसा' प्रति सेना का का वास्तविक प्रतिनिधि मानती हुई, देश के सार्वजनिक बदला हुआ रुख मामलों में सक्रिय भाग लेना अपना कर्तव्य समझती सेना द्वारा स्वयम् थी। एक अनुशासित शक्ति के रूप में सिक्ख सेना की को खालसा का कार्यक्षमता को इससे कोई हानि नहीं पहुँची थी, क्योंकि प्रतिनिधि समझा सैनिक एक उच्चतर भावना से अनुप्राणित थे, और बढ़ी जाना हुई सतर्कता तथा दृढ़ निश्चय ने वास्तविक प्रशिक्षण की आवश्यकताओं की पूर्ति कर दी थी। सिक्ख सैनिक एक प्रणाली बद्ध संगठन से होने वाले लाभों से परिचित थे और गुरुगोबिन्द जी के खालसा के वास्तविक प्रतिनिधियों के रूप में वे अपनी शस्त्र सज्जा व युद्ध कौशल पर गर्व रखते थे; जैसा कि सामान्य नियम है, जहाँ तक सैन्यदलों

१—मि० क्लर्क के पत्र सरकार को, २५ मई तथा १८ जून १८४१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के साधारण सैनिक —कर्तव्यों का सम्बन्ध था, सैनिक अपने ऊपर नियुक्त नायकों की आज्ञाओं का पालन करते थे, परन्तु देश की सरकार के सम्बन्ध में किसी रेजिमेण्ट, ब्रिगेड या डिवीज़न की क्या स्थिति होनी चाहिए थी इसका निर्णय एक समिति द्वारा किया जाता था जिसे 'पंचायत' कहा जाता था; इस 'पंचायत में पाँच पंच होते थे जिन्हें विभिन्न बटेलियनों से चुना जाता था; और इस चुनाव के उम्मीदवारों को दो आधारों पर चुना जाता था—सिक्ख सैनिकों के रूप में उनका सामान्य चरित्र, तथा उनके गाँवों में उनका विशेष प्रभाव। पंचायतों की प्रणाली सारे भारत में प्रचलित है, और प्रत्येक जाति, प्रत्येक वर्ग, प्रत्येक समुदाय का हर सदस्य अपने से श्रेष्ठतर गुरुजनों के सामूहिक निर्णय के आगे सिर झुकाना अपना कर्तव्य समझता है। पंजाब में पंचायतों ने एक नया रूप धारण किया और सामाजिक संस्थाओं के साथ ही सेना ने भी इस संस्था के संगठन की आवश्यकता का अनुभव किया; और इस प्रकार प्राप्त साधारण प्रतिनिधित्व द्वारा भी सिक्ख जनता शासकों के मनोनीत किए जाने या पदच्युत किए जाने के प्रश्नों पर सक्षम रूप से हस्तक्षेप करने की सामर्थ्य रखती थी; परन्तु प्रत्येक बटेलियन व कम्पनी की अलग अलग पंचायतें कभी कभी सार्वजनिक उपद्रवों को सैनिक उपद्रवों का रूप दे डालती थीं। उनके प्रस्ताव प्रायः अस्थिर तथा अबुद्धिमत्तापूर्ण होते थे, और विभिन्न डिवीजनों के प्रतिनिधि पक्षपात अथवा अज्ञान के कारण परस्पर विरोधी निर्णय करके सेना को दो विरोधी भागों में विभाजित कर सकते थे, या फिर राजा गुलाबसिंह जैसे नीतिकुशल और योग्य लोगों द्वारा उन्हें घूस देकर या बहका-फुसला कर कर्तव्यच्युत भी किया जा सकता था[1]।

आन्तरिक व्यापार के लिए अंग्रेजों से वार्ता १८४१ :

सन् १८४१ ई० के पतझड़ में अल्पकाल के लिए स्थापित आंशिक शान्ति से लाभ उठाकर व्यापारिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए वार्ताएँ प्रारम्भ कर दी गईं जिस पर ब्रिटिश अधिकारी सतत ध्यान रक्खे हुए थे। सिन्ध और सतलज के जलमार्गों को खोलने के लिए अब काफी सुविधाएँ उपलब्ध हो चुकी थीं और अब यह सोचा जा रहा था कि यदि पंजाब में भू-व्यापार का प्रसार किया जा सकता तो यह योजना अधिक लाभदायिनी सिद्ध हो सकती थी। बीस वर्ष पूर्व यात्री मूर-क्राफ्ट ने अपनी ओर से महाराजा

---

१ - देखिए मि० क्लर्क का पत्र सरकार को, १४ मार्च, १८४१, जिसमें फकीर अजीजुद्दीन के इस कथन का उल्लेख किया गया है कि सिक्ख सेना उस समय भी पंचायतों द्वारा संगठित एवम् शासित होती थी।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

रणजीतसिंह के समक्ष प्रस्ताव रक्खा था कि चुंगी की निश्चित दरों पर ब्रिटिश माल को लाहौर में आने की अनुमति दे दी जाय[1]। सन् १८३२ ई० में कैप्टेन वेड ने महाराजा के समक्ष सामान्य व्यापार का एक अन्य प्रस्ताव रक्खा, और ऐसा प्रतीत हुआ कि इस बार महाराजा अपने मित्रों के विचारों में रुचि ले रहे थे, परन्तु वास्तव में वे ऐसे मामलों में कोई व्यवस्था देना उचित नहीं समझते थे जिनके क्षेत्र व प्रवृत्ति के विषय में वे पूर्ण निश्चिन्त नहीं हो लेते थे; इस अवसर पर उन्होंने नदी के महसूल के निपटारे को भी यह कह कर टाल गए कि इससे अमृतसर की समृद्धि पर बुरा प्रभाव पड़ेगा, और गोवध को प्रोत्साहन मिलेगा। उन्होंने कहा कि जो लोग ब्रिटिश गारण्टी के साथ पंजाब से गुजरेंगे वे गाय के मांस को भोजन के रूप में प्रयोग करना चाहेंगे, और इससे देश के धार्मिक वर्गों में असन्तोष उत्पन्न होने की सम्भावना है[2]। सन् १८४० ई० में, जब भारतीय सेना अफगानिस्तान में पड़ी हुई थी वे इस विषय पर लाहौर के अधिकारियों का ध्यान पुनः आकर्षित करने पर जोर दिया, और एक वर्ष से कुछ अधिक समय व्यतीत होने के पश्चात् शेरसिंह ने कुछ छोटे पैमाने पर, और चुंगी की निश्चित दरों पर, तथा एक ही स्थान पर सारी धनराशि वसूलने पर अपनी सहमति प्रकट कर दी, परन्तु लगाए गए महसूल उसे अब भी अधिक प्रतीत हो रहे थे और ब्रिटिश बाइसराय ने सिक्ख महाराजा द्वारा किए जा रहे अनुचित विलम्ब, तथा स्वयम् उसकी ही प्रजा के हितों के प्रति उसकी उदासीनता पर क्षोभ प्रकट किया[3]।

केन्द्र में लाहौर सरकार भले ही संकटपूर्ण दौर से गुजर रही थी परन्तु सीमाओं पर इसकी प्रगति व गौरव का भावनाजनित उत्साह, ऐसे भागों में सक्रिय था जहाँ ब्रिटिश सेना द्वारा हस्तक्षेप या विरोध किए जाने की सम्भावना

१—मूर क्राफ्ट, 'ट्रेवेल्स' १:१०३।

२—कर्नल वेड का पत्र सरकार को ७ नवम्बर व ५ दिसम्बर १८३२, भारत में ऐसे विरोध प्रायः किये जाते हैं इसलिये नहीं कि उनके पीछे कोई विशेष कारण होता है, बल्कि इसलिये कि हढ़ता के लिए धर्म एक शक्तिशाली आधार है और यही एक ऐसी चीज है जिसे परिवर्तित करने की चेष्टा अंग्रेजों द्वारा नहीं की जाती, इस प्रकार किसी कार्य या प्रस्ताव से असहमत होने के लिये धर्म की ही आड़ ली जाती है।

३—सरकार के पत्र मि० क्लर्क को, ४ मई १८४० व ११ अक्टूबर १८४१, मि० क्लर्क का पत्र सरकार को, २० सितम्बर १८४१।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

न थी। कश्मीर के अधीनस्थ सरदार, गुलाबसिंह द्वारा तिब्बत में कुछ स्थानों पर अधिकार जमा लिए जाने के कारण उससे सदा द्वेष रखते थे। परन्तु लाहौर की उत्तराधिकार सम्बन्धी, तथा सैनिक हलचलों के समय कश्मीर घाटी का सूबेदार, मियानसिंह नामक एक वीर परन्तु उद्धत सैनिक था; उसने जम्मू के शक्तिशाली एवम् महत्वाकांक्षी राजाओं की गतिविधियों से आशंकित व सतर्क होकर इस्कार्दो तथा ऊपरी सिन्ध की समूची घाटी को जम्मू के नायकों के आक्रमक कार्यवाहियों के लिए मुक्त क्षेत्र के रूप में छोड़कर हट गया[1]। बल्टी नामक रियासत का सरदार अपने परिवार में संघर्ष पैदा करने वाले मतभेद से परेशान था; वास्तव में वह रियासत का उत्तराधिकारी अपने ज्येष्ठ पुत्र के, स्थान पर एक छोटे पुत्र को बनाना चाहता था। न्याय उत्तराधिकारी ने कश्मीर के सूबेदार के साथ ही लद्दाख में जम्मू के प्रतिनिधि जोरावरसिंह की सहायता पाने का प्रयास किया, और सन् १८४२ ई० में वह अपने पिता के पास से भाग आया और लेह में शरण लिया और सहायता प्राप्त करने की कोशिश की। लद्दाख का नाममात्र का राजा नोदुप तान्जिन स्वयम् को जम्मू के राजाओं की अधीनता से मुक्त होने की गुप्त योजनाएँ बना रहा था; जिसमें वह अहमदशाह की सहायता प्राप्त करने का भी प्रयास कर रहा था; उसकी योजना की सिद्धि के लिए जोरावरसिंह की अनुपस्थिति ने एक अच्छा अवसर प्रदान कर दिया था, अतः उसने इस्कर्दो के सैन्य-दलों की कुछ टुकड़ियों को लेह पर धावा करने तथा वहाँ के सरदार के लड़के को उठा लाने का निर्देश दिया। जोरावरसिंह ने इस धावे को युद्ध का बहाना बना लिया और सन् १८४० ई० के मध्य से पूर्व ही वह छोटे तिब्बत का स्वामी बन बैठा और अहमदशाह के क्षेत्र की अनुपजाऊ व कंकरीली पथरीली जमीन को देखते हुए केवल ७००० रुपए वार्षिक कर पर उसने उस

जम्मू के राजाओं के सहकारी जोरावर सिंह का इस्कार्दो पर अधिकार: १८४०

१--सर क्लाड वेड ('नैरेटिव' 'पृ० ३३,नोट) के अनुसार जम्मू परिवार ने ब्रिटिश सरकार से आश्वासन प्राप्त किया था कि सन् १८३९ की त्रिदलीय सन्धि के अनुसार पश्चिम व दक्षिण की ओर सिक्ख विजयों पर जो बन्धन लगाया गया था वह उत्तर व तिब्बत की ओर के क्षेत्रों पर लागू नहीं था और सिक्ख उस दिशा में इच्छानुसार कार्य करने को स्वतंत्र थे।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सरदार की रियासत को उसके ही अधिकार में छोड़ दिया[1]। लाहौर की चंचल स्थिति तथा अपनी हाल की सफलताओं से उत्साहित जोरावरसिंह ने गिलगिट से कर की माँग की; यारकन्द के चीनी सूबेदार तथा उसके बीच झगड़े की नौबत आ गई; उसने लद्दाख पर अपने प्रभुसत्तात्मक दावे को पुनः दुहराना प्रारम्भ किया, और ल्हासा के राजा से रोहतक, गारों तथा मानसरोवर के झीलों के समर्पण की माँग की[2]।

जोरावरसिंह नए क्षेत्रों पर अधिकार करने की इच्छा से प्रेरित था, साथ ही वह कश्मीरी शाल के ऊन के व्यापार पर भी अपना एकाधिकार स्थापित करना चाहता था क्योंकि इस व्यापार की एक महत्वपूर्ण शाखा सतलज मार्ग से होते हुए लुधियाना और दिल्ली की ओर बढ़ गई थी, और उससे जम्मू के खजाने को कोई लाभ नहीं पहुँचता था।[3] सन् १८४१ ई० के मई एवम् जून के महीनों में उसने सतलज व सिन्ध नदियों के उद्गम-स्थलों से उनकी घाटियों तक के समस्त क्षेत्र पर अधिकार कर लिया और नेपाल की सीमा के निकट तथा अलमोड़ा की ब्रिटिश चौकी के सामने स्थित हिममण्डित श्रेणी के दूसरी ओर अपने रक्षक सैन्य-दल तैनात कर दिए। काली और सतलज के मध्य स्थित छोटे-छोटे राजपूत राजाओं के राजस्व में बाधा पड़ने लगी और अपनी सीमाओं की सुरक्षा के प्रति आशंकित हो उठे; नेपाल सरकार ने सन् १८३८ में प्रारम्भ की गई अभिसन्धियों को पुनः प्रारम्भ कर दिया था, और लाहौर के कूटनीति कुशल वजीर तथा उदासीन सिन्धानवाला सरदारों से नेपालियों का पत्र व्यवहार चलने लगा था[4] और स्वयम् ब्रिटिश सरकार पृथ्वी की कुल परिधि की आधी दूरी

गारो पर अधिकार १८४१

१—देखिये मि० क्लर्क के पत्र सरकार को २६ अप्रैल, ९ और १३ मई तथा २५ अगस्त १८४०।

२— ,, ,, २५ अगस्त, ८ अक्टूबर १८४० और २ जनवरी तथा ५ जून १८४१।

३— ,, ;; ५ और २२ जून १८४१

४—मि० क्लर्क के पत्र सरकार को; १६ अगस्त व २३ नवम्बर १८४० तथा १७ जनवरी १८४१; तथा सरकार का पत्र मि० क्लर्क को, १९ अक्टूबर १८४०। नेपोलियों का सिखों से पत्रव्यवहार (जम्मू के राजा की गतिविधियों के सम्बन्ध में) के प्रारम्भ होने का आंशिक कारण मातबर सिंह नामक एक महत्व

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पर स्थित चीन से युद्ध में उलझी हुई थी[1]। यह निश्चय किया गया कि ब्रिटिश भारतीय प्रजा के व्यापार में चीन अधिकृत तिब्बत में जम्मू की विजयों से कोई हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए; इसी प्रकार हिमालय के पीछे लाहौर और नेपाल राज्यों के एक दूसरे के साथ चलने की बात को भी उचित नहीं समझा गया, और इस सम्भावना पर भी विचार किया गया कि कहीं पेकिन का सम्राट स्वतन्त्र सिक्खों को सत्ताधारी अंग्रेजों से लड़ाने का कुचक्र न रचे और अनिर्णीत, तथा सम्भाव्य सन्धिवार्ताओं के मार्ग में और बाधाएँ उत्पन्न कर[2] दे। इसलिए अन्त में यह निश्चय किया गया कि शेरसिंह से कहा जाय कि वह अपने अधीनस्थ, जम्मू के राजाओं को लासा के क्षेत्र को खाली कर देने के लिए निर्देशित करे; गारो के समर्पण के लिए भी एक तिथि—१० दिसम्बर १८४१—निश्चित कर दी गई और एक ब्रिटिश अधिकारी को दलाई लामा की सत्ता की पुनर्स्थापना की व्यवस्था देखने के लिए तिब्बत भेज दिया गया।

पूर्ण गुरखा सरदार का पंजाब में शरण भी लेना था। उसने सन् १८३८ में सतलज पार किया और शीघ्र ही लाहौर दरबार व सेना में उच्च पद पा गया। इस प्रकार प्राप्त सफलता तथा उसके द्वारा ब्रिटिश अधिकारियों से की जाने वाली वार्ताओं का समाचार पाकर नेपाल सरकार उसे शंका की दृष्टि से देखने लगी और अन्त में स्वयम् अंग्रेजों की दृष्टि में मातवर सिंह इतना महत्वपूर्ण हो गया कि सन् १८४० ई० में जब काठमाण्डू के साथ मतभेद से युद्ध की आशंका होने लगी तो अंग्रेजों ने उससे वार्ता प्रारम्भ की और उसे नेपाल राज्य के एक दावेदार के रूप में अपने हाथ में रक्खा। इससे उसे पंजाब से हटाया गया जहाँ उसका रहना पसन्द भी नहीं किया जाता था, परन्तु गुरखों से मतभेद समाप्त हो गया और तब महत्वहीन समझ कर ब्रिटिश सरकार ने उसे १००० रु० मासिक की वृत्ति दे कर टाल दिया (सरकार के पत्र मि० क्लर्क को, ४ मई और २६ अक्टूबर १८४०, और मि० क्लर्क का पत्र सरकार को २२ अक्टूबर १८४०)।

१— [प्रथम चीन या अफ़ीम युद्ध जो नानकिन की सन्धि (१८४२) से समाप्त हुआ जिसके फलस्वरूप चीन को हांग-काँग को छोड़ना पड़ा और पाँच अन्य बन्दरगाहों को अंग्रेजों के लिए खोलना पड़ा —सम्पादक]

२—सरकार के पत्र मि० क्लर्क को, १६ अगस्त और ६ तथा २० सितम्बर १८४१; सिक्खों को भी चीन से कुछ हिसाब चुकाना था अतः उन्होंने समुद्रतट पर चल रहे युद्ध में अंग्रेज सरकार के साथ सहयोग करने की इच्छा प्रकट की थी (मि० क्लर्क के पत्र सरकार को, १८ अगस्त व २० अक्टूबर, १८४१)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

महाराजा तथा उसके अधीनस्थ जम्मू के राजाओं ने अंग्रेज सरकार की इच्छानुसार ही कार्य किया और जोरावर सिंह को लासा से वापस लौटने का आदेश भेज दिया गया, परन्तु यह आदेश उसे मिलने और इसके अनुकूल कार्य करने के पूर्व ही जाड़ों के मध्य में लासा की, पाले और बर्फ की अभ्यस्त एक सशक्त सेना द्वारा उसे समुद्र के धरातल से लगभग बारह हजार फीट की उँचाई पर घेर लिया गया। वहाँ की कठोर सर्दी को सहने के अनभ्यस्त, मैदानों और निचले हिमालय क्षेत्र के सैनिकों के लिए ईंधन की अत्याधिक आवश्यकता थी जो वहाँ की जलवायु को देखते हुए भोजन के समान ही आवश्यक था; कुछ ने तो अपने ठिठुरते हुए हाथों को गर्म करने के लिए आवश्यक सामग्रियां तक को जला डाला, और युद्ध के दिन दिसम्बर के मध्य में, थोड़ी देर के युद्ध विराम के दौरान सिक्ख सैनिक अपनी कतारों में ही ठण्ड से अकड़ गए, उनका सेनापति मारा गया, कुछ विशेष महत्वपूर्ण व्यक्तियों को बन्दी बना लिया गया और चट्टानों के पीछे या खाइयों में ढेर के ढेर अकड़े पड़े सैनिकों को मौत की घड़ियाँ गिनने के लिए छोड़ दिया गया। इस पराजय का समाचार पाकर नैपाल की सीमा पर पड़ी सिक्खों की एक रक्षक सेना भाग खड़ी हुई। इन भागते हुए सैनिकों का पीछा तो नहीं किया गया; परन्तु अल्मोड़ा के मार्ग में १८००० फीट ऊँची पर्वतीय श्रेणियों को पार करने में ठण्डक से तड़प कर उनमें से आधे मृत्यु की भेंट चढ़ गए और शेष में से आधे अपंगों, अपाहिजों के रूप में जीवन व्यतीत करने के लिए जीवित रह गए[1]।

लासा की एक सेना द्वारा सिक्ख पराजित—

सन् १८४२ ई० की वसन्त ऋतु में विजयी चीनी सिन्ध के किनारे के साथ आगे बढ़े और अपने खोए हुए प्रान्त पर अधिकार ही नहीं कर लिया बल्कि लद्दाख पर विजय प्राप्त करने के साथ लेह पर भी घेरा डाल दिया।

१—लद्दाख के मामलों के इस तेज़ विवरण में लेखक ने अधिकांशतः अपनी व्यक्तिगत जानकारी का उपयोग किया है। मानसरोवर के युद्ध के पश्चात् पश्चिमी दर्रे लगभग पाँच सप्ताह तक बन्द पड़े रहे और सिखों की पराजय का समाचार गारों से पहले, अलमोड़ा को भागे हुए सैनिकों के माध्यम से कलकत्ता और पेशावर पहुँच गया था। लेफ्टि० एच० स्ट्रैची के विवरण के अनुसार मानसरोवर की ऊँचाई १५२५० फुट है (जनरल एशि० सोसाइटी, बंगाल', अगस्त १८४८, पृ० १५५)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कल्मकों या प्राचीन सोकयों में कश्मीर पर एक और हमले की चर्चा की जाने लगी तथा बड़े और छोटे तिब्बत के तातार बदले और लूटपाट का एक अच्छा अवसर पाने की आशा से उत्साहित हो उठे, परन्तु हिमालय की श्रेणियाँ सिक्ख सैनिकों से भर उठीं। युद्ध में स्वभावतः कम रुचि लेने वाले भोटिये दक्षिण के तलवार बाजों और तोपचियों से बहुत भयभीत रहते थे; लेह का घेरा उठा लिया गया और इसी वर्ष (१८४२) के सितम्बर माह में गुलाब सिंह के सेनापति ने छल से लासा के वजीर को पकड़ लिया और कौशल से लेह और रोहतक के मध्य स्थित अपनी सेना को हटादिया जहाँ पहले जाड़ों की प्रतीक्षा करने का निश्चय किया गया था। शीघ्र ही लासा और लाहौर के अधिकारियों में वार्ता प्रारम्भ हुई जिसके अनुसार यह निश्चय किया गया कि दोनों शक्तियाँ युद्ध से पूर्व की स्थिति को कायम रक्खें जैसा कि अंग्रेज भी चाहते थे; चूँकि इस व्यवस्था से ब्रिटिश सूबों में शाल के ऊन के व्यापार को पुनः पूर्व प्राप्त सुविधाएँ उपलब्ध हो गईं थीं अतः वैमनस्यपूर्ण चीनियों और नियंत्रित सिक्खों के मध्य किसी प्रकार का हस्तक्षेप करना अवश्यक नहीं समझा गया[1]।

चीनियों व सिक्खों में शान्ति की स्थापना:

जब सन् १८४१ ई० में कश्मीर की सेना ने अपने सूबेदार को मौत के घाट उतार दिया तो व्यवस्था स्थापित करने के लिए राजा गुलाब सिंह को भेजा गया जिसे निर्देश दिया गया था कि नए सूबेदार, गुलाब मुहीउद्दीन को सुदृढ़ रूप से स्थित किया जाय। राजा गुलाब सिंह के अधीन सेना ने कश्मीर के विद्रोही सैनिकों को अस्त्र रखने पर विवश किया और उन्हें कठोर दण्ड दिए गए और शीघ्र ही स्पष्ट हो गया कि जिस मुहीउद्दीन की सहायता के लिए उसे भेजा गया था, उसे उसने अपने

जम्मू के राजाओं की महत्वा कांक्षा सिन्ध की ओर

१—जब औपचारिक रूप से गुलाबसिंह को, सन् १८४१ ई० में, अमृतसर में, जम्मू के महाराजा के पद से सम्मानित किया गया, उस समय उसने लासा के लामा के प्रति अपने सम्बन्धों को पीली स्याही से स्पष्ट किया, जिसे चीन की ओर से लाल स्याही द्वारा प्रस्तुत किया गया था, उनमें से प्रत्येक ने नियमित मुहर या लिखित हस्ताक्षर के स्थान पर, इस व्यवस्था पत्र पर अपने हाथों को क्रमशः पीले और लाल रंगों में डुबोकर पंजे का निशान लगाया था ऐसे कार्यों में पंजे का प्रयोग एशिया में सामान्यतः प्रचलित है, और पूर्वी अफ़गानों के झण्डों तक में इस चिन्ह का प्रयोग प्रतीक के रूप किया जाता है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वश में कर लिया और स्वयम् ही कश्मीर का वास्तविक शासक बन बैठा[1]। यह सर्वविदित था कि वजीर ध्यान सिंह तथा उसका भाई गुलाब सिंह, दोनों ही पंजाब के मामलों में अंग्रेजों के हस्तक्षेप को पसन्द नहीं करते थे; उस समय वे नैपाल के साथ गुप्त एवम् सन्दिग्ध वार्ता कर रहे थे, और सुल्तान मुहम्मद खाँ से भी कुछ वचनों द्वारा बँधे हुए थे जिसे शाहशुजा के विरुद्ध षड़यन्त्रों में लिप्त होने के कारण लाहौर में एक वर्ष पूर्व ही में शरण लेना पड़ा था[2]। जनरल एविटेबिल पेशावर में जिस विपत्तिपूर्ण परिस्थिति में फँसा हुआ था, उससे शीघ्र ही मुक्त होने के लिए वह अधिकाधिक उत्सुक था, सिक्ख नीतियों के निर्धारण व परामर्शों में राजा ध्यान सिंह का प्रभाव बहुत बढ़ा हुआ था, लोग यह भी समझते थे कि जम्मू के राजाओं की प्रशासनिक योग्यता तथा उनके सैनिकों की श्रेष्ठता के अंग्रेज भी कायल थे, अतः लाहौर दरबार में इन भाइयों के प्रति पक्षपात से काम लिया जाता था, ऐसा लोगों का विश्वास था[3]। इसी समय शेरसिंह ने प्रस्ताव किया कि अफगान सूबा कश्मीर में शान्ति स्थापित करने वाले, राजा गुलाब सिंह को दे दिया जाय; परन्तु इस व्यवस्था से काँगड़ा की पहाड़ियों से लेकर खैबर दर्रे तक का

अंग्रेजों की नीति के साथ संघर्ष

१—देखिए मि० क्लर्क के पत्र सरकार को, ६ जुलाई व ३ सितम्बर, १८४०।

२—जम्मू के राजाओं तथा पेशावर के बारकज़ई सरदार सुल्तान मुहम्मद खाँ के इन सम्बन्धों व योजनाओं का आभास मि० क्लर्क द्वारा सरकार को लिखे गए अनेक पत्रों में मिलता है जिनमें से ८ अक्टूबर १८४० का पत्र विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

३—मि० क्लर्क राजा ध्यानसिंह एवम् गुलाबसिंह की शक्ति एवम् नीति-कुशलता का कायल था, और उसने ध्यानसिंह की सामर्थ्य, 'उसकी सैनिक-प्रतिभाओं और व्यापार के प्रति समक्ष झुकाव' की जो प्रशंसा की है उसमें अतिरंजित होने की पर्याप्त सम्भावना दिखाई पड़ती है (मि० क्लर्क का पत्र सरकार को, ७ नवम्बर १८४० और १३ मई १८४१। दृष्टान्तः, जनरल वेण्टुरा के मतानुसार राजा ध्यानसिंह एक साधारण समझ का आदमी था, यद्यपि राजा ध्यानसिंह से जनरल वेण्टुरा के व्यक्तिगत सम्बन्ध कोई अच्छे नहीं थे फिर भी इस मामले में उसे एक न्याय पूर्ण तथा योग्य निर्णायक माना जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

समस्त क्षेत्र उन लोगों के अधिकार में आ जाता जो ब्रिटिश नीतियों के विरोधी थे तथा शाहशुजा व अफ़गानों के प्रति शत्रु भाव रखते थे, अतः अंग्रेजों की ओर से यह निश्चय किया गया कि जिस प्रकार तिब्बत में उनकी महत्वाकांक्षा के मार्ग में बाधाएँ डाल कर उन्हें वापस लौटने के लिए विवश किया गया था उसी प्रकार काबुल नदी पर, अधिक विपत्तिपूर्ण सिद्ध होने वाले उनके अधिकार की स्थापना को रोकने का प्रयास किया जाय। सन् १८४१ ई० के पतझड़ में राजा गुलाब सिंह को पेशावर की सूबेदारी के लिए मनोनीत किए जाने के प्रस्ताव के विरुद्ध लाहौर स्थित ब्रिटिश एजेण्ट ने विशेषाधिकार का प्रयोग किया[1]।

इसके लगभग दो माह पश्चात्, अर्थात् २ नवम्बर १८४१ को काबुल में उस भयंकर विद्रोह का सूत्रपात हुआ जिसे भारत के ब्रिटिश इतिहास का एक अत्यन्त दुःखदायी अंश माना जाता है। काबुल स्थित हिन्दुस्तानी सेना इस विद्रोह से घबरा गई और मुट्ठीभर अंग्रेज अफसरों को भागने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं दिखाई पड़ा; उनमें कोई ऐसा साहसी नहीं निकला जो भागती हुई सेना को वापस लौटाकर मोर्चा लेने के लिए ललकारता, या अपनी स्थिति पर डटे रहने की दृढ़ता दिखाता[2]। सर विलियन मैकनाटेन ने अपने स्वाभाविक साहस, शौर्य और धैर्य का परिचय दिया, परन्तु उस अकारण भय के विरुद्ध उनके सारे प्रयास व्यर्थ सिद्ध हुए जो सेना के उच्चतम अफसरों तक में व्याप्त हो गई थी, यही नहीं दूर देश स्थित इन अफसरों में व्याप्त विस्मय भय का जहर भारत के उच्चतम् ब्रिटिश अधिकारियों तक पहुँच गया जो खोरासान पर अधिकार बनाए रखने को पूर्णतः अनुपयोगी और एक भार समझने लगे; परन्तु ऊबकर खोरासान को मुक्त कर देने का यह उदार विचार शीघ्र ही दुर्रानी सन्धि को तोड़ देने तथा सिन्ध तट पर, या और पीछे हटकर सतलज

काबुल में विद्रोह
नवम्बर १८४१

१—सरकार का पत्र मि० क्लर्क को, २८ अगस्त, तथा मि० क्लर्क का पत्र सरकार को, २० अगस्त १८४१।

२—सेना के अधीनस्थ पदाधिकारियों में वीर व समर्थ व्यक्तियों का अभाव नहीं था, और यह भी ज्ञात हुआ है कि मेजर पाटिंगर ने इस कायरता पूर्ण पलायन के प्रति असहमति प्रकट की थी; कागजात की वैधता प्रदान करने के लिए दुर्भाग्यवश उसने उन पर हस्ताक्षर कर दिए थे जिनमें कन्दहार और जलालाबाद के समर्पण के आदेश थे।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के किनारे पर सेना एकत्रित करने की इच्छा में परिवर्तित हो गई ताकि वहीं से उमड़ते हुए अफगानों की बाढ़ को अवरुद्ध करने के लिए संघर्ष किया जाय, जिसे अंग्रेजो की भयभीत कल्पना ने पहले से ही काफी भयंकर रूप दे डाला था[1]। सिक्खों की मित्रता अथवा युद्ध कुशलता को इस कार्य में विश्वसनीय नहीं समझा गया[2], और यद्यपि अभी तक उनके सहयोग को महत्वपूर्ण समझा जाता रहा था, परन्तु इस बार जिस ढंग से सिक्ख सहायता माँगी गई और उसका उपयोग किया गया, उससे लाहौर की सेना अंग्रेजों की नजरों में और नीचे गिर गई, यद्यपि इसके लिए सिक्ख सैनिकों को दोषी नहीं माना जा सकता[3]।

१—सरकार के पत्र कमाण्डर ईन चीफ़ को २ दिसम्बर १८४१ तथा १० फरवरी १८४२; सरकार का पत्र मि० क्लर्क को, १० फरवरी १८४२ और गवर्नर पॉलक को, २४ फरवरी १८४२। इस अवसर पर ब्रिटिश नीति के निर्धारण में जिन लोगों ने अपने परामर्श दिए थे उनमें से मि० रावर्टसन, लेफ्टि० गवर्नर, आगरा, तथा पॉलिटिकल सेक्रेटरी सर हबर्ट हैं मडॉक ने पेशावर में अड़े रहने के पक्ष में मत दिया था कौंसिल के एक सदस्य. मि० प्रिन्सेप, तथा गवर्नर जनरल के प्राइवेट सेक्रेटरी, मि० काल्विन ने सतलज तक हट आने की राय दी थी।

सर्वविदित है कि कमाण्डर इन चीफ़ का कहना था कि स्वयम् हिन्दुस्तान की रक्षा के लिए भी, आवश्यक होने पर सरकार के पास पर्याप्त साधन नहीं थे और मि० क्लर्क का विचार था कि यदि जलालाबाद हाथ से चला गया तो पहाड़ी जातियाँ अवश्य ही धावा करना प्रारम्भ कर देतीं जिसे रोक सकना सिक्खों की शक्ति के बाहर होता (मि० क्लर्क का पत्र सरकार को, १५ जनवरी, १८४२)।

२—सरकार का पत्र कमाण्डर इन चीफ़ को, १५ मार्च १८४२।

३—पिछले नोट में उल्लिखित मि० काल्विन का सतलज तक हट आने का पत्र अंशत. मि० क्लर्क द्वारा सिक्ख शक्ति की अक्षमता के अनुमान, तथा अफ़गानों को रोक सकने की उनकी अनुमानित असमर्थता पर आधारित था। इस बात को मान लेने पर कि मुंशी शहामत अली लिखित 'सिख्स एण्ड अफ़गान्स में पृ० ५३५ का नोट कर्नल वेड द्वारा ही लिखा गया है, ऐसा प्रतीत होता है कि वह इन दोनों जातियों की तुलनात्मक शक्ति के विषय में समानता का मत रखता था। वह कहता है कि सिक्ख, खैबरियों से सदैव डरते रहते थे, और इन

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

फीरोजपुर से सिपाहियों की चार रेजिमेण्टों ने, बिना तोपें लिए, और बिना सवारों की सहायता के खैबर दर्रे को लक्ष्य बनाकर कूच किया, और स्थानीय ब्रिटिश अधिकारियों ने पेशावर स्थित सिक्ख सेना को भी सहयोग करने के लिए कहा, यद्यपि चाहिए यह था कि लाहौर सरकार उनके पास आदेश भेजती कि वे पंजाब के मित्रों के कार्य में सहायता पहुँचाए, या अकेले ही जलालाबाद की ओर कूच कर दे, अंग्रेजों के पराजित होने का तथ्य काफी प्रचारित हो गया था, और अब उनकी घबराहट सिक्खों के लिए प्रसन्नता का विषय बनी हुई थी; लाहौर दरबार से कोई निश्चित आदेश न पाने के कारण सिक्ख सूबेदार ने अपनी रेजिमेण्टों के पंचों के समक्ष सहायता करने अथवा न करने का प्रश्न विचारार्थ प्रस्तुत किया, जिन्होंने बिना महाराजा के आदेश के आगे बढ़ने का विचार अस्वीकृत कर दिया; अंग्रेजों के अनुसार उनके इस इनकार का कारण था उस शक्ति से भयभीत होना जिसने हिन्दुस्तानी सेना को बिना लड़े भाग निकलने को विवश किया था, परन्तु वास्तव में इसके पीछे अंग्रेजों के प्रति घृणा, अविश्वास तथा आशंका की मिली जुली भावनाएँ थीं। जिले के गवर्नर जनरल, एविटेबिल ने - जो सौभाग्यवश अभी तक अपने उसी पद पर बना हुआ था—बिना असमंजस के यथासम्भव सहायता दी, कुछ अन्य सैनिक सामग्रियों के साथ उसने अपने तोपखाने की कुछ तोपें भी दी, और ब्रिटिश सैन्य दल ने अली मस्जिद को पुनः अधिकार में ले लिया; परन्तु बिना खाद्य सामग्री लिए जो कि उपलब्ध थी - उस गढ़ तक जाने की अक्षम्य उपेक्षा के फलस्वरूप इस सैन्यदल को पुनः पीछे लौटना पड़ा, और विदेशियों की लड़ाइयों में भाग न लेने की सिक्ख प्रवृत्ति ने ब्रिटिश सैन्य दल के हिन्दुस्तानी नौकरी पेशा सिपाहियों पर भी हावी होना प्रारम्भ किया और अफगान सम्बन्धों के प्रति गवर्नर जनरल के हृदय में और भी अधिक उदासीनता उत्पन्न हुई[1]।

अंग्रेजों का सिक्खों पर अविश्वास फिर भी सहायता की माँग :

पहाड़ियों द्वारा घिरे हुए जिले के मुख्य अधिकारी के रूप में जनरल एबिटेबिल से परिचित था और सम्भवतः इसी लिए वह इस पक्ष में नहीं था कि अंग्रेज अधिकारियों का अनुकरण व अनुसरण करते हुए सिक्ख रेजिमेन्ट भी पहाड़ों की ओर जाँय।

१—इस पैराग्राफ का विवरण मुख्यतः लेखक के सरकारी व अर्ध सरकारी पत्र व्यवहार के नोटों पर आधारित है। अली मस्जिद से हटने के विषय में

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कम से कम जलालाबाद को अधिकार में ले लेने की आवश्यकता को बुरी तरह महसूस किया जा रहा था अतः सन् १८४२ ई० के बसन्त में एक सुसज्जित ब्रिटिश सेना पेशावर जा पहुँची, परन्तु सिक्खों की सहायता अब भी आवश्यक समझी जा रही थी, और चूँकि शाहशुजा

पुनः प्रयास १८४२: व अंग्रेजों के साथ हुई त्रिदलीय सन्धि की एक शर्त के अनुसार लाहौर दरबार को शाहशुजा से, ५००० सैनिको के उपयोग के लिए दो लाख रुपये प्रतिवर्ष मिलते जा रहे थे, अतः इस सन्धि का उल्लेख करके कम से कम ५००० सैनिकों की सहायता माँग की गई[1]। शेरसिंह इस सीमा से भी अधिक सहायता प्रदान करने का इच्छुक था; उसने पंजाब में अन्न तथा गाड़ी खींचने वाले पशुओं के क्रय के लिए यथासम्भव सुविधाएँ उपलब्ध कराई और वह जो सहायक सेना भेजने का विचार कर रहा था उसकी सैनिक संख्या अंग्रेजों द्वारा लाई गई सेना से भी कहीं अधिक थी, परन्तु इसी समय सिन्धानवाला सरदारों की गतिविधियों से वह आशंकित हो उठा जिनमें से एक अपने या चाँदकौर के दावे की प्रबलता सिद्ध करने के लिए कलकत्ता जा पहुँचा था, और जिनमें से सभी की, सिक्ख सेना में काफी धाक थी। अंग्रेजों की ओर से शेरसिंह को आश्वासन दिया गया कि इन शरणार्थियों को उसके राज्यकार्य में बाधा पहुँचाने का अवसर नहीं दिया जायगा, और इस प्रकार

सरकार का पत्र, मि० क्लर्क को, ७ फरवरी १८४२ भी देखा जा सकता है, यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि मि० क्लर्क ने अपने १० फरवरी के पत्र में इंगित किया था कि यद्यपि अंग्रेज़ों द्वारा आयोजित किसी अचानक धावे में सिक्ख सहयोग की इच्छा नहीं कर सकते थे, परन्तु वे किसी अभियान के दौरान अपने परीक्षित तरीकों, जिनसे उन्हें सफलता की पूर्ण आशा रहती थी– सहायता करने के लिये तैयार रहते थे।

१—देखिये सरकार के पत्र मि० क्लर्क को, ३ मई और २३ जुलाई १८४२, ब्रिटिश एजेन्ट सन्धि की शर्तों का हवाला देकर सैनिक सहायता की माँग औपचारिक ढंग से करने के स्थान पर सिक्ख अधिकारियों को उद्धत ढंग से यह जताने का प्रयास करते थे कि सिक्ख सरकार न केवल मित्रता के नातें, बल्कि सन्धि के अनुसार ऐसी सहायक सेना अविलम्ब प्रस्तुत करने के लिये बाध्य थी।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उसका पूर्ण सहयोग प्राप्त करने के मार्ग में अब कोई बाधा न रह गई[1] परन्तु सच्चे दिल से सहायता के लिए आगे आने वाले सिक्खों को अंग्रेज अधिकारी अविश्वास की दृष्टि से तो देखते ही थे, उनके युद्ध कौशल व शौर्य को भी नीची नजर से देखते थे, अतः जम्मू के सैनिकों को वरीयता दी गई और राजा गुलाब सिंह को पेशावर जाकर जन-रल पॉलक को, सिक्खों की ओर से सक्षम सहायता के लिए आश्वस्त करने का निर्देश दिया गया[2]। उस समय गुलाब सिंह कश्मीर और अटक के मध्य स्थित कुछ उपद्रवी जातियों के दमन का कार्य पूर्ण करने में लगा हुआ था और उसका हृदय तिब्बत में था जहाँ उसने स्वयम् एक सेना और एक राज्य से हाथ धो लिए थे। वह पेशावर गया परन्तु वह अपने क्षेत्र के पहाड़ियों की प्रकृति से परिचित था; वह विदेशियों की प्रणालियों का अनुसरण करके—कोई जोखिम उठाने के लिए तैयार न था और यदि वह सिक्ख बटेलियनों को अंग्रेजी रेजिमेण्टों की भाँति सुव्यवस्थित एवम् सुसज्जित बनाने में सफल हो सका तो इसमें आश्चर्य की कोइ बात नहीं। उसकी सतर्कता और असफलता को निष्ठा का अभाव और उदासीनता की संज्ञा दी गई, और यह सन्देह प्रकट किया गया कि वह अकबर खाँ से साठ गाँठ करके घृण्य यूरोपीय शक्ति के विनाश की कोशिशों में लगा हुआ था[3]; फिर भी उसकी सहायता को आवश्यक समझा गया, और स्थानीय ब्रिटिश अधिकारियों ने उसे

सहायक सेना के नेता के पद पर गुलाब सिंह की नियुक्ति:

१—मि० क्लर्क के पत्र सरकार को, २ जनवरी तथा ३१ मार्च १८४२, तथा सरकार के पत्र मि० क्लर्क को, १७ जनवरी व १२ मई १८४२, अफ़गान-युद्ध के दौरान ब्रिटिश सेना के लिए खाद्य सामग्री, गाड़ियों आदि की व्यवस्था में सिक्खों के सहयोग के लिए मि० क्लर्क के १५ जनवरी, १८ मई और १४ जून ४२ के पत्रों का उल्लेख किया जा सकता है; अन्तिम पत्र के अनुसार १८३९ व १८४२ के मध्य सिक्खों के माध्यम से ब्रिटिश सेना को १७३८१ ऊँट प्राप्त हुए थे।

२—देखिए मि० क्लर्क के पत्र सरकार को, १५ जनवरी, १० फरवरी तथा ६ मई १८४२; पहले गुलाब सिंह के आने या न आने के सम्बन्ध में सरकार उदासीन थे, और यह मि० क्लर्क ही था जिसने उसकी सहायता की सिफारिश की थी।

३—मि० क्लर्क का पत्र सरकार को १९ मार्च १८४२।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

घूस के रूप में जलालाबाद को दे देने का इरादा किया जिस पर उसका अधिकार महाराजा शेरसिंह के नियन्त्रण से मुक्त होता ताकि वह खुले दिल से उनकी योजनाओं में पूर्ण सहयोग प्रदान करे। मि० क्लर्क द्वारा इस योजना की जो निन्दा की वह उचित ही थी[1] अप्रैल माह में खैबर दर्रे को ब्रिटिश अधिकार में ले लिया गया और सहायक सेना के रूप में आए हुए सिक्ख अंग्रेजों की दृष्टि में सन्तोषजनक माने गये; जम्मू के राजा से भी कोई ऐसा वादा नहीं किया गया जैसा कि सोचा गया था, और गुलाब सिंह भी विदेशियों की सफलता या प्रतिहिंसा के प्रति उदासीन भाव प्रकट करते हुए लद्दाख की सीमा पर उन मामलों के निरीक्षण के लिए तेजी से चल पड़ा जो उसे अंग्रेजों की सफलता या प्रतिहिंसा की अपेक्षा अधिक प्रिय थी। इधर जनरल पॉलक ने योजना बनाई कि पूरी सिक्ख डिवीजन को जलालाबाद पर अधिकार बनाये रखने में सहायता पहुँचाने के लिए वहीं छोड़ दिया जाय, जब कि मुख्य ब्रिटिश सेना ने काबुल का मार्ग पकड़ा, परन्तु कर्नल लॉरेन्स[2] के उचित परामर्श की उपयोगिता को महसूस करके लाहौर की सेना के एक भाग को इस अभियान में भी साथ ले लिया गया क्योंकि वे पिछले आक्रमण में भी भाग ले चुके थे और कठिनाइयों में छोड़ दिए जाने पर, उनका अपने ढंग से सामना करने में पर्याप्त सक्षम सिद्ध हुए थे।

काबुल पर पुनः अधिकार

नए गवर्नर जनरल एलेनबोरो ने जलालाबाद, गुलाब सिंह को दे देने के प्रस्ताव को एक नए ही रूप में ग्रहण किया; चूँकि एलेनबोरो के विचार व सिद्धान्त निश्चित हो चुके थे, अतः उन्होंने अपने इस मत को प्रकाशित कर दिया कि सिक्खों या अंग्रेजों में से किसी के भी राज्य

१—मि० क्लर्क का पत्र सरकार को, १३ फरवरी १८४२; यहाँ जिन अफ़सरों की ओर संकेत किया गया है उनके नाम हैं मेजर मेकसन लेफ्टि० कर्नल सर हेनरी लॉरेन्स जिनके नाम, भारत के उत्तर पश्चिम के भागों में अंग्रेजों की गतिविधियों के सम्बन्ध में काफी सम्मान से लिए जाते हैं।

२—लेफ्टि० कर्नल लारेन्स का पत्र मेजर मेकसन, २३ अगस्त १८४२; पेशावर में, कर्नल वाइल्ड, सर जॉर्ज पॉलक, तथा राजा गुलाब सिंह के नेतृत्व में सैनिक गतिविधियों के सम्बन्ध में देखिए 'कलकत्ता रिव्यू' (नं० ३, पृ० १८०) में लेफ्टि कर्नल लॉरेन्स का एक लेख।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जलालाबाद और की सीमा हिमालय और 'सफेद कोह' अर्थात् काबुल सिक्ख राज्य की के परे न हो, और चूँकि दुर्रानी सन्धि को भंग समझा सीमा के सम्बन्ध में जाने लगा था अतः जम्मू और बारकजई सरदार की

विवादः अभिसन्धियों की कोई महत्व देने की आवश्यकता का अनुभव नहीं किया गया; इसी निश्चिय के अनुसार लाहौर दरबार से कहा गया कि गुलाब सिंह को लद्दाख से अपने हाथ हटा लेने, तथा पंजाब सरकार के अधीन, जलालाबाद को, स्वीकार करने का निर्देश दिया जाय[1]। यद्यपि सिक्खों की यह हार्दिक इच्छा थी कि उनके साम्राज्य में एक और अफ़गान जिला सम्मिलित कर लिया जाय परन्तु राजा गुलाब सिंह, अन्य शर्तों के साथ लद्दाख से हाथ हटा लेने की शर्त से सहमत न हुआ, न शेरसिंह ने ही उस समय तक किसी निष्कर्ष पर पहुँचना उचित समझा जब तक कि वह काबुल में एक सरकार की मान्यता के सम्बन्ध में अंग्रेजों के अन्तिम निर्णय से परिचित न हो जाय[2]। शाहशुजा की मृत्यु और उसकी सन्दिग्ध गतिविधियों को देखते हुए काबुल पर पुनः अधिकार करना अनावश्यक समझा गया, और त्रिदलीय सन्धि की समाप्ति की घोषणा कर दी गई[3] परन्तु अफ़गान राजधानी पर धावा करने की नीति पर काफ़ी जोर दिया गया और अन्त में उस पर अमल करके बुद्धिमानी का कार्य किया गया[4]। पहले तो ऐसी आशा की गई थी कि शीत ऋतु काबुल में ही व्यतीत हो जायगी, परन्तु शीघ्र ही विजयी सिक्ख ब्रिटिश सेनाएँ भारत लौट आईं। अब सिक्ख जलालाबाद लेने को तैयार हो गए, परन्तु इसके पूर्व कि परिवर्तन सम्बन्धी यह आदेश जलालाबाद पहुँच पाता, वहाँ पर स्थित जनरल पालक ने[5] वहाँ

१—सरकार का पत्र मि० क्लर्क को, २७ अप्रैल १८४२।

२—मि० क्लर्क का पत्र सरकार को, १८ मई १८४२।

३—,, ,, ,, २७ मई व २९ जुलाई १८४२।

४—जिस ढंग से अचानक अफ़गानिस्तान से वापस लौटने का प्रस्ताव रक्खा गया था उसे सिक्खों ने भी अच्छी नीति का नमूना न मानते हुए इस प्रकार की वापसी को अपमानजनक तथा अशोभनीय बताया था (मि० क्लर्क का पत्र सरकार को, १९ जुलाई १८४२); मि० क्लर्क उन सर्व प्रमुख व्यक्तियों मे से एक था जिन्होंने प्रारम्भ में विनम्रतापूर्वक काबुल पर कूच करने पर ज़ोर दिया था और बाद में अचानक अफगानिस्तान छोड़ देने का कड़ा विरोध किया था (देखिए ऊपर उल्लिखित तथा २३ अप्रैल १८४२ का पत्र)

५—यह आदेश पत्र पर १८ अक्टूबर १८४२ की तारीख पड़ी थी; लार्ड

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

की सारी किले बन्दी को तहस नहस कर दिया था, और इस जिले को नाम प्रात्र के लिए शाहपुर के अधिकार में छोड़ दिया था जिसे बाला हिसार में आश्रय दिया गया था[1]। यह सम्भव है कि शेरसिंह इस दुखदायी उपहार से मुक्त होने का अनिच्छुक न रहा हो क्योंकि स्वयं लाहौर को सँभालने में वह विपत्ति में पड़ा हुआ था, और पंजाब से होते हुए चले जाने व सुरक्षा की गारण्टी पर दोस्त मुहम्मद को भी मुक्त किये जाने की चर्चा सुनाई पड़ रही थी, और लाहौर दरबार की ओर से यह उचित व नीतिपूर्ण सोचा गया होगा कि एक असुविधाजनक जिले को समर्पित करके अकबार खाँ के पिता को मिला लिया जाय जो अंग्रेजों के विरुद्ध प्राप्त विजयों के कारण पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था[2]।

एलेनबरो को स्वयम् सन्देह था कि विजयी सेनापति काबुल में शीत ऋतु व्यतीत करने के लिए बहाने बना सकते थे और इसीलिए सर जान मैकास्किल का कोहिस्तान अभियान उन्हें उतना प्रसन्न नहीं कर पाया था जितना किसी अन्य अवसर पर करता।

१—जून १८४९ का कलकत्ता रिव्यू' (पृ० ५३९) इंगित करता है कि यह शाहज़ादा, अर्थात् शाहशुजा का पुत्र शाहपुर जनरल पॉलक द्वारा नहीं, बल्कि काबुल के सरदारों द्वारा प्रतिष्ठित किया गया था; जनरल पॉलक को यह अधिकार नहीं था कि वह अफ़गानिस्तान में किसी शासक को मान्यता दे सकता।

२—यह बात नहीं थी कि सिक्ख इस क्षेत्र को प्राप्त करना नहीं चाहते थे, परन्तु वे अपने मार्ग को स्पष्टतः देख लेना चाहते थे, और वे उस समय तक ऐसा करने में असमर्थ थे जब तक अंग्रेज अपनी नीति का निर्धारण न कर लेते। सिक्ख इतना अवश्य जानते थे कि गवर्नर जनरल ने अफ़गानिस्तान से सारे सम्बन्ध तोड़ लेने का दृढ़ निश्चय कर लिया है परन्तु वे यह भी जानते थे कि अंग्रेजों का बहुमत इस सम्बन्ध को कम से कम अस्थायी तौर पर ही बनाए रखने का समर्थन करेगा। वे यह भी देख रहे थे कि प्रत्येक गढ़ पर अब भी ब्रिटिश सेना की टुकड़ियाँ जमी पड़ी थीं, और ऐसी स्थिति में अधिकृत क्षेत्रों को स्वेच्छा से त्यागने की नीति उनके लिए अत्यन्त विचित्र एवं रहस्यपूर्ण थी। इसी संशय ने उन्हें अब तक अनिश्चित अवस्था में रख छोड़ा था; जब फौजों की वापसी के पश्चात् वे अपनी इच्छानुसार कार्य करने के लिए स्वतंत्र थे, उसी समय दोस्त मुहम्मद के मुक्त कर दिये जाने से वे उलझन में पड़ गये क्योंकि वे अमीर को सुरक्षित रूप से पंजाब

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गवर्नर जनरल ने फ़ीरोज़पुर में सेना रखने का निश्चय करके बहुत उचित किया था क्योंकि जहाँ एक ओर अफ़ग़ानिस्तान में कोई प्रतिकूल स्थिति उत्पन्न हो जाने पर उसका प्रतिकार अविलम्ब किया जा सकता था, वहीं देशी राजाओं को भी यह ज्ञात हो जाता कि उनके अंग्रेज शासक किसी भी विद्रोही का दमन करने के लिए पर्याप्त साधन सम्पन्न थे[1]। लार्ड एलेनबरो शेरसिंह से भेंट करने के इच्छुक थे और चूंकि उस समय कृतज्ञता का भाव व्यक्त करना ही नीतिपूर्ण था कि महाराजा को निरन्तर मित्रता की भावना से भरे उन कार्यों के लिए धन्यवाद दे दिया जाय जो गतयुद्ध में और उसके पूर्व भी अंग्रेजों के हितों के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुए थे। इस मुलाकात के दृश्य को और अधिक गौरव व महानता प्रदान करने के लिए यह निश्चय किया गया कि अवसर के अनुकूल भावना के साथ ही, काबुल से विजय प्राप्त करके वापस लौटती हुई उन दो शक्तिशाली सेनाओं के प्रधान के रूप में ब्रिटिश मित्रता की दृढ़ता तथा उदारता की अभिव्यक्ति कर दी जाय जिनकी संख्या, सतलज पर स्थित सुरक्षित सेना के मिल जाने से चालीस हजार तक पहुँच गई थी। इस विशाल वाहिनी में अंग्रेज सैनिकों की संख्या भी काफ़ी अधिक थी और सम्भवतः उस समय के बाद से जब कि सिकन्दर महान की विजयी सेना ने पंजाब को मेसिडोन का एक प्रान्त बना लिया था सम्भवतःभारत भूमि पर इतनी अधिक संख्या में सशस्त्र यूरोपीय सैनिक पहली बार खड़े हुए थे; ब्रिटिश सेना के इस प्रकार इकट्ठा होने के कम से कम एक कारण से सिक्ख भी सामान्यतः प्रसन्न थे; पश्चिमी सीमा के, ब्रिटिश सेना से मुक्त होने से उनकी आशकांएँ समाप्त हो गयीं थीं; परन्तु शेरसिंह ने लॉर्ड एलेनबरो से मुलाकात को बहुत प्रसन्न भाव से स्वीकार नहीं किया था; अन्य स्थितियों में इस प्रकार की मुलाकात में अपनी शक्ति एवम् गौरव के प्रदर्शन का अवसर पाने से उसके गर्व की सन्तुष्टि हो सकती थी जो इस अवसर पर सम्भव न थी। एक शासक के रूप में वह अपनी

फ़ीरोज़पुर में गवर्नर जनरल की युवराज व वज़ीर से भेंट १८४२:

को पार कराने के लिए वचनबद्ध थे और उससे कोई शर्तें निश्चित करने का अवसर नहीं पा सकते थे (विस्तृत विवरण के लिए देखिए मि० क्लर्क का पत्र सरकार को, २ सितम्बर १८४२)।

१—लॉर्ड ऑकलैण्ड ने भी इसी प्रकार सोचा था कि ऐसा प्रदर्शन हो अधिक उचित एवम् लाभदायक सिद्ध होगा (सरकार का पत्र मि० क्लर्क को, ३ दिसम्बर १८४१)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

निर्बलता एवम् असामर्थ्य का अनुभव करता था, और उसे यह भय आवश्यक रूप से चिन्तित किए हुए था कि गवर्नर जनरल उससे कहीं सिक्खों की ज्यादतियों, और भाग्य के कठोर चक्र में डगमगाते हुए सिन्ध के अमीरों से उसकी सन्दिग्ध वार्ता के लिए जवाब न तलब करें यही नही, उसे यह आशंका भी थी कि अफ़गानिस्तान पर पूर्ण आधिपत्य–स्थापित करने के लिए अंग्रेज पंजाब को भी अपने अधीन बनाने की योजना बना रहे थे। उस अपने में कोई विश्वास नहीं था और वह अपने अनुयायियों की प्रतिहिंसा की भावना से भी डरता था जो विश्वास करने लगे थे कि वह अपने हितों व स्वार्थों की पूर्ति के लिए खालसा का भी बलिदान कर सकता था। ऐसा समझा जाता था कि वज़ीर ध्यानसिंह भी इससे सहमत नहीं था कि महाराजा गवर्नर जनरल से भेंट करें, और उसके सन्देहयुक्त स्वभाव ने उसे यह सोचने पर विवश किया कि उसका महाराजा, स्वयम् उसके विनाश, अथवा उसके सर्वव्यापी प्रभाव के ह्रास के लिए गवर्नर जनरल को प्रेरित कर सकता था। इस प्रकार शेरसिंह और उसका वज़ीर, दोनों ही यह सोचकर सम्भवतः प्रसन्न थे कि जिस गलत फहमी के कारण लुधियाना में सिक्ख सरदार लहनासिंह का स्वागत नहीं किया गया था उसी के फलस्रूप अंग्रेज यह अनुमान लगाने लगे थे कि दोनों राज्यों के प्रधानों की यह मुलाकात सन्दिग्ध अथवा असम्भव थी[1]। लार्ड एलेनबरो

१—राजा ध्यान सिंह तथा महाराजा शेरसिंह ने भी, अनेक अवसरों पर ब्रिटिश आक्रमण की आशंका व्यक्त की थी (दृष्टान्ततः मि० क्लर्क का पत्र सरकार को, २ जनवरी १८४२)। 'कलकत्ता रिव्यू' (नं० २, पृ० ४९३) के एक लेख में, जिसका लेखक लेफ्टि कर्नल लॉरेन्स को समझा जाता है–स्वीकार किया गया है कि ध्याना सिंह, शेरसिंह व गवर्नर जनरल की प्रस्तावित भेंट के विरुद्ध था। उसमें शेरसिंह की तत्कालीन चिन्ता को व्यक्त किया गया है, परन्तु साथ ही यह विचार भी प्रकट किया गया है कि वह स्वयम् को संरक्षण में दे देने का इच्छुक था, और यदि वह अपनी हत्या के भय से सुरक्षित होता, और उसे विश्वास दिला दिया जाता कि किसी भी परिस्थिति में लार्ड एलेनबरो उसे सिंहासनच्युत न होने देंगे, तो वह निस्सन्देह ऐसा ही करता।

सिन्ध के अमीरों से शेरसिंह की वार्ता के सन्देह के सम्बन्ध में देखिये, थार्नटन 'हिस्ट्री आव इण्डिया', ६:४४७ जो भी हो, सिक्खों कभी भी इस प्रकार के आरोपों ना सन्देहों की सफ़ाई मांग नहीं की गई थी।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ऐसी परिस्थितियों से बहुत असन्तुष्ट हुए, और सिक्खों के व्यवहार को देखते हुए यह असन्तोष स्वाभाविक ही था, उन्हें सरलता से प्रसन्न किया जाना सम्भव नहीं था; जब वजीर ध्यान सिंह और युवराज परताब सिंह की व्यक्तिगत क्षमा प्रार्थनाओं ने अप्रसन्नता के सभी कारणों को समाप्त किया, उस समय तक अर्थात् जनवरी १८४३ विशाल ब्रिटिश वाहिनी के बिखरने का निर्धारित समय भी आ पहुँचा था और गवर्नर जनरल युद्ध से थके रेजिमेण्टों को अधिक समय तक रोके रखकर परेशान नहीं करना चाहते थे। इस प्रकार शेर सिंह से तो मुलाकात न हो सकी परन्तु किशोर वय के राजकुमार परताब सिंह से भेंट करने के लिए लार्ड एलेनबरो स्वयम् गए; और जिस तीव्रता से वर्षा से भीगे हुए एक सिक्ख सैन्यदल को सतलज पर ब्रिटिश सेनाओं ने पार किया, उससे सिक्ख चकित रह गए जिसे, ब्रिटिश सेना की उपलब्धियों एवम् विशालता के प्रति गर्व से भरे हुए ब्रिटिश कैप्टनों ने अच्छी तरह परिलक्षित किया। राजकुमार परताव सिंह ने भी कुछ आश्चर्य से आगल भारतीय सेना का निरीक्षण किया और सिक्ख सरदारों ने जलालाबाद के रक्षकों को पूरी दिलचस्पी से देखा और इस विशाल और सशक्त वाहिनी के कुशल एवम्

लहना सिंह के सम्बन्ध में गलतफ़हमी का विवरण इस प्रकार है—औपचारिकता के नाते, गवर्नर जनरल के सीमा पर आ पहुँचने पर उनके स्वागत के लिए लहनासिंह को भेजा गया था; ऐसी व्यवस्था की गयी थी कि गवर्नर जनरल उससे लुधियाना में भेंट करेंगे, तदनुसार दिन और समय निश्चित कर लिया गया और उचित तैयारियाँ कर ली गईं। स्वयम् मि० क्लर्क उसे गवर्नर जनरल के कैम्प तक पहुँचाने के ध्येय से उसके कैम्प की ओर यह सोचकर चला, कि उसे सिक्ख पड़ाव की आधी दूरी तक ही जाना है; उधर सिक्ख सरदार यह सोचकर अपने शिविर में बैठा रहा कि मि० क्लर्क वहाँ तक आएगा, या उसे वहाँ तक आना चाहिए, जब कि मि० क्लर्क आधे रास्ते में ही बैठ कर दो घण्टों तक प्रतीक्षा करता रहा। लार्ड एलेनबरो को सिक्ख सरदार का यह व्यवहार अत्यन्त असन्तोषजनक प्रतीत हुआ और उससे इसके लिए जवाब तलब किया गया (सरकार का पत्र मि० क्लर्क को, १५ दिसम्बर १८४२) ऐसा विश्वास करने के कुछ कारण हैं कि लाहौर के वकील ने जो ध्याना सिंह के पक्ष का आदमी था— गवर्नर जनरल से मुलाकात की निर्धारित व्यवस्था के सम्बन्ध में लहना सिंह को बहका दिया था कि वह महाराजा, तथा गवर्नर जनरल, दोनों की नजरों में गिर जाय।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सक्षम संचालक जनरल नाँट की प्रसंसा मुक्त कण्ठ से की। अन्त में सशस्त्र दलों को बिखेर दिया गया, फीरोजपुर के मैदान, जो ब्रिटिश सेना के कैम्पों से सफेद हो गए थे खाली हो गये, शेर सिंह ने मुक्ति की साँस ली और इस महान विपत्ति से छुटकारा पा जाने की प्रसन्नता में ईश्वर को धन्यवाद देने के लिए तेजी से अमृतसर की ओर चल पड़ा। यह सब समाप्त हो जाने पर उसने लाहौर में दोस्त मुहम्मद खाँ का मुक्त हृदय से स्वागत किया और फरवरी १८४३ में मुक्त अमीर से हुई एक औपचारिक सन्धि पर हस्ताक्षर किया जिसमें अंग्रेजों द्वारा उपहार स्वरूप दिए गए जलालाबाद का कोई उल्लेख नहीं किया गया था[1]।

दोस्त मुहम्मद काबुल को वापस १८४३

शेर सिंह को अधिक भय अपने ही सरदारों व प्रजा से था और यद्यपि जून १८४२ में महारानी चाँद की आयोजित या आकस्मिक हत्या से[2] शेर सिंह के मार्ग का एक काँटा साफ हो गया था, पर ध्यान सिंह के बढ़े चढ़े प्रभाव से उसे बहुत भीति थी जिसके कारण वह शान्ति का अनुभव नहीं कर पा रहा था। इस समय उसका प्रमुख परामर्श दाता था उसका गुरु, भाई गुरमुख सिंह जो एक धार्मिक नेता के रूप में पर्याप्त यश अर्जित कर चुका था और एक प्रसिद्ध धार्मिक एवम् प्रभाव शाली नेता का पुत्र होने के नाते विशेष सम्मान का पात्र भी समझा जाता था[3]। इधर देश के सभी दलों को संगठन सूत्र में बद्ध करने की कल्याण

शेर सिंह की चिन्ताएँ

१—सरकार के पत्र मि० क्लर्क को, १५ फरवरी व १७ मार्च १८४३।

२—मि० क्लर्क का पत्र सरकार को, १५ जून १८४२। जैसा कि पता लगा, खड़क सिंह की विधवा को उसकी सेवा के लिए नियुक्त स्त्रियों ने इतना पीटा कि वह लगभग तुरन्त ही मर गई; इसके लिए शेरसिंह की ओर से यह सफाई दी गई कि महारानी उन दासियों को किसी गलती पर बुरी तरह फटकार रहीं थीं जिससे उत्तेजित हो कर उन्होंने ऐसा काण्ड कर डाला, परन्तु सिखों ने यह विश्वास नहीं किया कि इस निन्दनीय हत्या में शेरसिंह का हाथ नहीं था।

३—अपने शासनकाल के प्रारम्भ में शेरसिंह ज्वाला सिंह नामक एक सरदार पर बहुत कृपा दृष्टि रखता था जिसने लाहौर के घेरे में काफी साहस दिखाया था। शेरसिंह को आशा थी कि यह वीर सरदार लाहौर दरबार से ध्याना सिंह, व जम्मू के राजाओं के प्रभाव को समाप्त करने में सफल होगा परन्तु ज्वाला सिंह की जल्दबाजी से ध्याना सिंह सतर्क हो गया और उसे मई १८४१

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मयी, परन्तु अव्यवहारिक योजना पर चलने का प्रयास करती हुई अंग्रेज सरकार इस बात पर जोर दे रही थी कि सिन्धानवाल सरदारों को लाहौर दरबार का आश्रय पुनः प्राप्त हो जाय, जिनके अपने एजेण्ट पूर्णतः सतर्क थे और शेर सिंह स्यवम् अनिश्चय और आशंका की अवस्था में था[1]। अपनी अस्थिर व चंचल प्रकृति के कारण शेर सिंह कोई समझौता हो जाने के विरुद्ध न था और धीरे धीरे जम्मू के राजाओं से शत्रुता रखने वाले इस परिवार को, वह पुराना सम्मान दे देने के लिए सहमत भी हो गया था। स्वयम् ध्यान सिंह भी सिन्धानवालों की वापसी का विरोध नहीं कर रहा था क्योंकि अब रानी चाँदकौर के मर जाने के कारण, उसे आशा थी कि इन विरोधी सरदारों को अपने पक्ष में खींचकर वह उनका उपयोग अपने हितों की पूर्ति के लिए कर सकता था; अन्तन्त सरदार अजीत सिंह तथा उनके चाचाओं ने पुनः लाहौर दरबार में अपना खोया हुआ सम्मान प्राप्त कर लिया। सन् १८४३ ई० की ग्रीष्म ऋतु में ध्यान सिंह ने लक्ष्य किया कि महाराजा के ऊपर व्यक्तिगत रूप से उसका प्रभाव घटता जा रहा था; गुरमुख सिंह की अभि सन्धियों से भयभीत होने के लिए उसके पास अनेक कारण थे जिनमें से मुख्य तो यही था कि यदि एक धार्मिक नेता की हैसियत से वह सिक्खों को वजीर के विरुद्ध उत्तेजित कर देता तो ध्यान सिंह का सारा प्रभाव मिट्टी में मिल जाता; अतः अपनी ओर से ही आशंका का वातावरण उत्पन्न करने के लिए उसने एक तरफ तो महाराजा रणजीत सिंह के, इसी जिन्दाँ से उत्पन्न पुत्र, राजकुमार दलीप को पुनः चर्चा का विषय बनाया, और दूसरी ओर सिन्धानवाला सरदारों को यह विश्वास दिलाने का प्रयास किया कि उनको लाहौर दरबार में पुनः स्थापित करने के पीछे शेर सिंह की यह अभिसन्धि

सिन्धानवाला सरदार और जम्मू के राजा

में कैद कर लिया जिसके तुरन्त पश्चात् उसे अज्ञात तरीकों से मार डाला गया था (देखिए मि क्लर्क के पत्र सरकार को ७ मई व १० जून १८४१)।

१—मि० क्लर्क का पत्र सरकार को, ७ अप्रैल १८४२ और सरकार का पत्र मि० क्लर्क को, १२ मई १८४२, इसके अतिरिक्त, लेफ्टि० कर्नल रिचमण्ड का पत्र सरकार को, ५ सितम्बर १८४३। जून १८४३ में मि० क्लर्क को आगरा का लेफ्टि० गवर्नर बना दिया गया और सीमा पर उसका उत्तराधिकारी नियुक्त हुआ लेफ्टि० कर्नल रिचमण्ड जिसने गत अफ़गान-युद्ध में, जनरल पॉलक की अधीनता में अपना नाम ऊँचा किया था।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

थी कि उनकी बची खुची शक्ति का पूर्ण विनाश कर डाला जाय। इस समय तक सरदार अजीत सिंह, महाराजा शेर सिंह का अन्तरंग साथी बन चुका था, परन्तु वह स्वयम् एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति था वजीर को मनोवृत्ति से परिचित हो लेने पर उसने तथा उसके चाचा लहना सिंह ने अपनी योजनाओं में उसे भी सम्मिलित करने का विचार किया; उन्होंने ध्यानसिंह की उत्तेजक बातों से प्रभावित होने का प्रदर्शन करते हुए उससे सहमति प्रकट की और कहा कि अपनी जान बचाने के लिए, यदि आवश्यक हुआ तो, वे शेर सिंह का प्राण लेने में भी नहीं हिचकेंगे। १५ सितम्बर (१८४३) अपने कुछ अमूल्य संग्रह दिखाने के बहाने अजीतसिंह ने शेरसिंह को अलग ले जाकर उसे अचानक गोली का निशाना बना दिया। क्रूर व पश्चाताप रहित लहना सिंह ने उसी समय किशोर वय के राजकुमार परताब सिंह का भी वध कर डाला और तब सिन्धानवाला सरदार ध्यान सिंह से जा मिले और एक नए महाराजा की घोषणा के लिए किले की ओर चल पड़े। अब तक कुचक्रों में लिप्त वजीर अपनी ही कुमंत्रणाओं के जाल में फँस चुका था, और उसे ज्ञात नहीं था कि वही उसके जीवन का भी अन्तिम दिन था; अजीत सिंह कोई गुप्त वार्ता करने के बहाने उसे उसके सेवकों से अलग, एकान्त में ले गया, और अभी अपने नरेश की हत्या से रँगे उसके हाथ सूख भी नहीं पाए थे कि उसने ध्यान सिंह को भी गोली का निशाना बना दिया[1]। ये षड़यन्त्रकारी यहाँ तक तो अपने दुस्साहस और अपराधों में सफल होते गए, परन्तु भूल यह कर बैठे कि उन्होंने मृत वजीर के समर्थ पुत्र हीरा सिंह को जीवित और स्वतन्त्र रहने दिया, और सेनिकों ने जिस तटस्थता से महाराजा शेरसिंह की मृत्यु को सह लिया था, वैसा भाव वे वजीर की हत्या पर न रख सके और सेना में क्षोभ की लहर दौड़ गई। युवा हीरा सिंह अपने पिता की हत्या का समाचार पाने के समय से ही प्रतिहिंसा की भावना से पागल सा हो रहा था; उसने सिन्धानवाला सरदारों को उक्त तीनों हत्याओं का दोषी बताते हुए और सेना को पर्याप्त पुर

अजीत सिंह द्वारा शेरसिंह की हत्या, १५ दिसम्बर १८४३:

ध्यान सिंह द्वारा परताब सिंह का वध; तथा स्वयम् अजीत सिंह द्वारा मारा जाना—१५ सितम्बर १८४३:

हीरा सिंह द्वारा पिता का बदला:

१—ले० क० रिचमण्ड के पत्र सरकार को, १७ व १८ सितम्बर १८४३'

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

स्कार का प्रलोभन देते हुए सैनिकों को अपने पिता तथा उनके मित्र की हत्या का बदला लेने के लिये उकसाया। सेना ने उसके आह्वान का उत्तर दिया और किले पर तुरन्त आक्रमण कर दिया गया, फिर भी सिक्ख जनता में जम्मू के राजाओं के प्रभाव के प्रति इतनी अधिक घृणा थी कि यदि गढ़रक्षक सेना तीन चार दिन तक इस आक्रामक सेना को रोक रखने में सफल होती तो सेना के क्रोध व आश्चर्य की प्रेरक भावना समाप्त हो जाती, और उसके युद्ध से विरत हो जाने पर हीरा सिंह को अपनी जान बचाने के लिए भागना पड़ता, परन्तु ऐसा न हो सका। दूसरे ही दिन विजयी सेना ने शाम को किले में प्रवेश किया; घायल लहना सिंह को तुरन्त मौत के घाट उतार दिया गया और ऊँची दीवालों को फाँद कर पलायित होने के साहसपूर्ण प्रयास में गिर का अजीत सिंह भी मारा गया[1]। अब महाराजा रणजीत सिंह के एकमात्र बच रहे पुत्र बालक दलीप सिंह को महाराजा घोषित किया गया और हीरा सिंह को अपने पिता का उच्च एवम् प्रभावशाली पद प्राप्त हुआ जो उस समय सर्वशक्तिमान था; सिन्धानावाला परिवार की सम्पत्ति को जब्त कर लिया गया और उनके घरों को धूल में मिला दिया गया, और युवा प्रतिहिंसक की आग उस समय तक न बुझी जब तक उसने भाई गुरमुख सिंह तथा मिसर बलीराम को भी मौत के घाट उतार दिया जिनमें से प्रथम, महाराजा की हत्या पर प्रसन्न हुआ था जब शेरसिंह के जीवनकाल में वह उसका मुख्य परामर्शदाता रहा था, साथ ही उसी ने वजीर के वध का भी संकेत किया था, और दूसरा सदा से मृत महाराजा का कृपापात्र रहा था, परन्तु जम्मू परिवार के बढ़ते हुए प्रभाव से सदैव ईर्ष्या रखता था। जब अतर सिंह सिन्धानवाला ने—जो तेजी से लाहौर की ओर चला आ रहा था—हीरा सिंह द्वारा किले पर अधिकार किए जाने का समाचार सुना तो एक विख्यात भक्त, भाई बीर सिंह के माध्यम से उसने गाँव के लोगों को अपने पक्ष में उकसाने और विद्रोह के लिए तैयार करने का प्रयास किया, परन्तु इस समय तक सिक्ख सेना को ही खालसा का वास्तविक प्रतिनिधि माना जाने लगा था, अतः उसका प्रयास निष्फल गया, और हीरा सिंह के आदमियों से बचने के लिए वह ब्रिटिश क्षेत्र की ओर निकल गया[2]।

दलीप सिंह महाराजा, व हीरा सिंह वजीर घोषित, सितम्बर १८४३:

१—लेफ्टि० कर्नल रिचमण्ड के पत्र—२१ सितम्बर से २ अक्टूबर, १८४३।

२—,, ,, ,, का पत्र, २६ सितम्बर १८४३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नए वज़ीर ने सैनिकों के वेतन में दो रूपए आठ आने की वृद्धि कर दी और उनका कुछ बकाया वेतन देने का भी प्रबन्ध किया, सेना ने महसूस किया कि अब राज्य पर उन्हीं का पूर्ण अधिकार था, अतः सेना के पंचों ने स्वयम् को सिक्ख प्रजा की दृष्टि में ऊँचा उठाने के लिए राज्य से जम्मू के प्रभाव को समाप्त करने तथा पूर्व उल्लेखित भाई बीर सिंह को धर्म गुरु व राजा बनाने के विचार प्रकट किया। बालक-महाराजा दलीप के मामा जवाहिर सिंह ने पहले ही यथा सम्भव उच्चतम पद पर अधिकार कर लिया था, जब कि वज़ीर के परिवार में आपस में ही अनैक्य था। सुचेत सिंह यह सोचकर स्वयम् को बड़ा अपमानित समझते थे कि उसके भतीजे ने इतनी धाक जमा ली थी जब कि वह युद्ध-कला से अनभिज्ञ था और राजनीति व कूटनीतिज्ञ के क्षेत्र में एक बच्चे के समान अनुभव हीन था, अतः उसे एक दल का संगठन प्रारम्भ किया जो उसका प्रभाव स्थापित कर सकता[1], सुचेत सिंह की ऐसी मनोवृत्ति देखकर हीरासिंह के लिए स्वाभाविक था कि वह समर्थन व सहायता के लिए अपने दूसरे चाचा गुलाब सिंह की ओर देखता, जब कि जम्मू के राज-कार्य में व्यस्त गुलाब सिंह को इसकी चिन्ता ही नहीं थी, न वह इस विषय में सोचने का कष्ट ही करना चाहता था; परन्तु व्यक्तिगत रूप से सिक्ख समाज अब भी उससे घृणा और द्वेष रखता था, साथ ही यह सोचकर भयभीत भी था कि कहीं वह प्रत्येक गढ़ को अपने ही अनुयायियों व सैन्य-दलों से न भर दे; इस भावना से परिचित हो लेने पर गुलाब सिंह अपनी गतिविधियों में सतर्क हो गया, और १० नवम्बर तक लाहौर पहुँचने के पूर्व उसने प्रायः सभी दलों से शान्ति वार्ता कर ली थी परन्तु जवाहिर सिंह वह अन्तःकरण से घृणा करता था, अतः उससे कोई बात होने की न सम्भावना थी, न हुई[2]। जवाहिर सिंह इस बात से बहुत कुढ़ा, और महाराजा का मामा होने के नाते प्राप्त सुविधा का लाभ उठाते हुए वह बालक दलीप को गोद में लेकर सेना के सामने गया और एकत्रित रेजिमेण्टों से कहा कि जम्मू के राजाओं से महाराजा

सेना की शक्ति में वृद्धि

राजा गुलाब सिंह, सरदार जवाहिर सिंह २४ नवम्बर १८४३:

---

१ - लेफ्टि० कर्नल रिचमण्ड का पत्र सरकार को १६ व २२ अक्टूबर १८४३।

२ —,, ,, ,, २६ सितम्बर व १६ नवम्बर १८४३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के जीवन को खतरा है, अतः यदि सेना उनका प्रभाव समाप्त नहीं करती तो महाराज को लेकर रक्षा के लिए अंग्रेजों के पास चला जायगा परन्तु सिक्ख अंग्रेजी सहायता के नाम से ही जलते थे, अतः जवाहिर सिंह की इस धमकी से कुपित होकर सैन्याधिकारियों ने उसे बन्दी बना लिया, इस प्रकार जवाहिर सिंह ने एक ऐसा सबक पाया जिसे जीवन के बचे खुचे समय में वह कभी विस्मृत न कर पाया[1]।

फिर भी हीरा सिंह कठिनाइयों के विषम जाल से मुक्त होने का अवसर न पा सका। मृत ध्यान सिंह का एक व्यक्तिगत सेवक सरदार था फतेह खाँ तिवाना, जिसपर सन्देह किया जाता था कि उसने अपने स्वामी की हत्या में सिन्धानवालों का साथ दिया था और जिस समय अजीत सिंह-वजीर को अलग ले जाने लगा था तो सब कुछ जानते हुए भी, फतेह खाँ जानबूझ कर रुक गया था। किले पर सेना का आक्रमण होते ही यह सरदार भाग कर अपने गाँव पहुँचा जो डेरा इस्माइल खाँ के क्षेत्र में था, और अपने सूबे में विद्रोह का झण्डा ऊँचा करने का प्रयास किया और लाहौर में यह सोचकर खतरे को भयंकर व चिन्तनीय माना गया कि यह विद्रोह मुल्तान के सूबेदार द्वारा किया गया था[2], इस छोटे से विद्रोह का दमन करने के लिए अभी कोई प्रयास भी नहीं किया गया था कि महाराजा रणजीतसिंह के ही दो अन्य कथित पुत्रों—कश्मीरासिंह और पिशोरा सिंह ने दलीपसिंह के प्रतिद्वन्दी दावेदारों के रूप में एक साथ दलबन्दी करके सियालकोट को अपनी खुली विद्रोहात्मक कार्य-वाहियों का केन्द्र बनाया है; जिस समय महाराजा रणजीत सिंह ने कश्मीर और पेशावर को अंग्रेजों से छीना था, उसी समय ये दोनों लड़के पैदा हुए थे, या महाराजा ने उन्हें गोद लिया था, और जीते गए सूबों के अनुसार ही उनका नाम भी रक्खा गया था। पेशावर को भेजी गई कुछ रेजिमेण्टों ने भी इन दोनों राजकुमारों का पक्ष ग्रहण कर लिया; लाहौर स्थित मुस्लिम रेजिमेण्ट को जब इन विद्रोही राजकुमारों को कुचलने का आदेश दिया गया तो उन्होंने यह कह कर इनकार कर दिया कि पहले किसी सिक्ख रेजिमेण्ट को भेजा जाय; अन्त में बड़ी कठिनाई से, और राजा गुलाब सिंह

फतेह खाँ तिवाना

कश्मीरा सिंह व पिशोरा का विद्रोह १८४३-४४

१—लेफ्टि० कर्नल रिचमण्ड का पत्र सरकार को २८ नवम्बर १८४३।

२—,, ,, ,, १२ दिसम्बर १८४३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

की सहायता प्राप्त होने पर ही सियालकोट का घेरा बनाया जा सका[1]। शीघ्र ही ये दोनों राजकुमार विद्रोही दल का नेतृत्व करने में असमर्थ सिद्ध हुए, हीरा सिंह ने भी उनको असमर्थता समझते हुए अपना घेरा ढीला कर दिया और मार्च के अन्त तक घेरा उठा लिया गया तथा उन्हें इच्छानुसार कहीं भी जाने की अनुमति दे दी गई[2]। इस बीच जवाहिर सिंह ने अपने रक्षकों को प्रभावित करके सेना की कैद से मुक्ति पा लिया, और महाराजा जवाहिर सिंह का मामा होने के नाते उस दरबार में पुनः सम्मिलित होने से न रोका जा सका क्योंकि नाम मात्र को ही सही, पर महाराजा के पद का सम्मान सभी प्रमुख सरदार करते थे[3]।

राज सुचेत सिंह का प्रयास— मार्च १८४४:

ऐसा विश्वास किया जाता था कि कश्मीरा सिंह के विद्रोही प्रयास में राजा सुचेता सिंह का भी पर्याप्त भाग था, और जवाहिर सिंह भी सम्भवतः उसी के प्रयास या प्रभाव से मुक्त हुआ था। राजा सुचेत सिंह ने सोचा कि खालसा सेना में उसका बहुत प्रभाव है, विशेषकर सवारों में, जो नियमित पद-सेना व तोपखाने के बढ़ते हुए प्रभाव, महत्व व सम्मान के प्रति द्वेषभाव से प्रेरित होकर स्वयम् भी कुछ कर गुजरने के लिए उकता रहे थे। पिछली बार के विवाद के पश्चात वह राजा गुलाब सिंह के साथ जम्मू चला गया था परन्तु वह अपने भतीजे के प्रभाव को समाप्त करने की योजनाएँ बनाता रहा और अचानक मार्च की छब्बीसवीं तारीख की शाम को वह कुछ गिने चुने अनुयायियों के साथ लाहौर में प्रकट हुआ और सेना को अपने पक्ष में खींचने का प्रयास किया जिसमें वह असफल रहा, अंशतः इसलिए कि हीरा सिंह सेना को पुरस्कार आदि देने का वादा

१—[सन् १८१२ ई० में गुजरात के सरदार साहब सिंह की दो विधवा पत्नियों—रत्नकौर और दयाकौर को अपने महलों में डाल लिया, उक्त दूसरी रानी सन्तान विहीन थी परन्तु उसने दो लड़कों को खरीद कर गोद ले लिया था। महाराजा रणजीत सिंह ने इन दोनों और सपुत्रों को सियालकोट की जागीर प्रदान की थी। रानी-दयाकौर के साथ महाराजा ने चादर डालने की रीति से विवाह किया था—देखिए नन्दकुमार देव शर्मा रचित 'पंजाब हरण' पृ० १०, नोट—अनुवादक]।

२—लेफ्टि० कर्नल रिचमण्ड के पत्र सरकार को—२१ व २७ मार्च १८४४।

३—,, ,, २९ मार्च १८४४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

करने में बहुत तेज था जिनको प्रायः पूरा भी किया करता था, और अंशतः इसलिए भी कि रेजिमेण्टों के पंच अब अपने महत्व का अनुभव करने लगे थे और यह नहीं चाहते थे कि जो भी चाहे अपनी सत्ता के लिए उन्हें मुहरों की तरह प्रयोग करे, अस्तु राजा सुचेत सिंह के लाहौर आगमन के दूसरे दिन सबेरे ही एक विशाल सैन्य दल ने उसके विरुद्ध कुच कर दिया परन्तु वीर राजपूत, सुचेत सिंह भागा नहीं। उसने एक ध्वस्त मस्जिद में मोर्चाबन्दी की और मुट्ठी भर अनुयायियों के साथ अन्तिम साँस तक वीरतापूर्वक लड़ा, यद्यपि सिक्ख सेना के निकट आने से पूर्व ही उनकी तोपों की मार से सुचेत सिंह के अधिकांश सैनिक मर चुके थे।[1]

सरदार अतर सिंह और भाई सिंह का विद्रोह, मार्च १८४४:

राजा सुचेत सिंह के असफल प्रयास और मृत्यु के पश्चात् से दो महीनों के भीतर ही अतर सिंह सिंधानवाला ने भी—जो इस समय थानेसर में रह रहा था, सेना को हीरा सिंह के विरुद्ध अपने पक्ष में मोड़ने के लिए इसी प्रकार का एक व्यर्थ का प्रयास किया उसने दो मई को सतलज पार कर लिया परन्तु कुछ दूर हट कर, तथा छिटपुट और बिना तैयारी के युद्धों से बचकर सिक्ख जनता की विद्रोही भावनाओं को उत्तेजित करने का अवसर ढूँढ़ने के स्थान पर वह भाई बीर सिंह से जा मिला जिसके धार्मिक प्रभाव से सिक्ख किसानों के जत्थे एकत्रित हो गए, और संगठित होकर उन्होंने राजधानी से लगभग ४० मील की दूरी पर अपना मोर्चा बना लिया। एक बार का पराजित कश्मीरा सिंह भी सरदार अतर सिंह से आ मिला, परन्तु इस सम्बन्ध में विचार विमर्श करती हुई सेना के सम्मुख आ खड़ा हुआ, और खालसा सेना को यह याद दिलाते हुए कि सिन्धानवाला परिवार सदा से अंग्रेजी सहायता का पक्षपाती रहा है, उसने उन्हें अतरसिंह के विरुद्ध कार्यवाही के लिए उत्तेजित करने में सफलता प्राप्त की जिसके फलस्वरूप लाहौर से एक बड़ी सेना ऊपर उल्लेखित मोर्चे की ओर चल पड़ी, परन्तु भाई बीर सिंह के धार्मिक प्रभाव को दृष्टि में रखते हुए यह निश्चय किया गया कि उसे सरदार अतर सिंह से फोड़ लिया जाय क्योंकि ऐसे पवित्र व्यक्ति के दल पर आक्रमण करने में खालसा सेना असमंजस प्रकट करती, या इनकार ही कर देती, जैसा कि कश्मीरा सिंह को सियालकोट में घेरते समय देखा जा चुका था;

१—लेफ्टि० कर्नल रिचमण्ड का पत्र सरकार को २६ मार्च १८४३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

तदनुसार मई की सातवीं तारीख को, भाई बीर सिंह को युद्ध से विरत करने के लिए कुछ दूत उसके पास भेजे गये जिनकी किसी बात पर सरदार अतर सिंह क्रुद्ध हो गया और उसने एक दूत को उसी आवेश में मार डाला, और इसके परिणाम स्वरूप खालसा सेना ने अविलम्ब आक्रमण कर दिया; इस युद्ध में अतर सिंह सिन्धानवाला तथा कश्मीरा सिंह दोनों ही मारे गये और कुछ समय बाद यह ज्ञात हुआ कि तोप के एक गोले ने बीर सिंह का भी काम तमाम कर दिया था। इस अवसर पर सिक्ख सेना का नेतृत्व लाभ सिंह नामक, जम्मू के एक राजपूत सरदार के हाथ में था जिसने कश्मीरा सिंह के परिवार को अपने अधिकार में लेकर इस विजय को पूर्णता प्रदान की, परन्तु सिक्ख सेना ने महाराजा रणजीत सिंह के पुत्र के परिवार की महिलाओं को कैदियों के रूप में लाहौर ले जाने से इनकार कर दिया; सिक्ख सेना ने भाई बीर सिंह की मृत्यु के लिए भी बहुत पश्चाताप किया और अपने आप को कोसने लगी; सिक्ख सेना की इन गतिविधियों से लाभ सिंह आशंकित हो उठा और आत्मरक्षा के लिए लाहौर की ओर भागा[1]।

मुल्तान के सूबेदार द्वारा अधीनता की स्वीकृति:

इस प्रकार हीरा सिंह को अपने दो प्रमुख एवम् प्रबल प्रतिद्वन्दियों से मुक्ति मिली, और चूँकि मुल्तान के सूबेदार से भी बात करके उसने सारी स्थिति समझ ली थी अतः फ़तेह खाँ तिवाना की गतिविधियों की उसे कोई विशेष चिन्ता न रह गई[2]।

उसके सामने चिन्ता का सबसे भयंकर विषय था खालसा सेना का नियन्त्रण; इसलिए नहीं कि इससे सिक्ख साम्राज्य के संकुचित हो जाने की सम्भावना थी, बल्कि इसलिए कि उसे भय था कि यह सेना कभी उसके ही प्राण न ले ले, या उसे अपना वज़ीर मानने से इनकार न कर दे; क्योंकि पंचायतें यद्यपि यह अनुभव कर रही थीं कि उन्हें अपना महत्व स्थापित करना चाहिए तथा सैनिकों के लिए अधिक वेतन तथा अन्य सुविधाओं की व्यवस्था की जानी चाहिए, परन्तु वे अपने कर्तव्य के प्रति भी सजग थीं; साम्राज्य के विस्तार को संकुचित न होने देने को वे अपना प्रथम कर्तव्य मानती थीं और विभिन्न सूबों में सेनाओं की अदला बदली, स्थानान्तरण आदि की व्यवस्था उन्होंने अपने ही हाथ में ले ली थी। सीमाओं पर सिक्ख निस्सन्देह अपनी आन्तरिक शक्ति का प्रदर्शन करते रहे, और सन् १८४३ ई० के लगभग

१—लेफ्टि० कर्नल रिचमण्ड के पत्र सरकार को, १०, ११, १२ मई १८४४

२—,, ,, ,, २६ अप्रैल १८४४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गिलगिट पर अधिकार १८४३:

अन्त तक गिलगिट के इलाके को जीता गया और कश्मीर के सूबे में मिला दिया गया। पंचायतों ने शीघ्र ही अनुभव किया कि हीरा सिंह सिक्ख सेना को देश में बिखेर कर पहाड़ी जातियों की अतिरिक्त सेनाओं के संगठन की योजना बना रहे थे परन्तु पंचायतों ने यह दृढ़ नियम बना लिया था कि जब तक आवश्यकता स्पष्ट न कर दी जाय तक तक किसी भी रेजीमेण्ट को लाहौर छोड़ने की अनुमति नहीं दी जायगी; इधर जब ब्रिटिश सेनाओं ने सिन्ध का पूरा इलाका खाली कर दिया और धीरे धीरे उनकी बटेलियनें सतलज की ओर लौटती रहीं और इस स्थिति का लाभ उठा कर अपनी वास्तविक आशंकाओं को रंग देना प्रारम्भ किया और यह कहने लगा कि अंग्रेजों की ओर से सिक्खों के लिए एक बड़ा खतरा दिखाई पड़ रहा था। अंग्रेजों से संघर्ष के लिए खालसा सेना बहुत उत्सुक थी, और हीरा सिंह जो चाहता था वही हुआ; सिक्ख सेना की एक ब्रिगेड लाहौर से कसूर भेज दी गई तथा कुछ अन्य टुकड़ियों को भी राजधानी से इधर उधर थोड़ी थोड़ी दूर पर छिटका दिया, और अंग्रेजों को सन्तुष्ट करने के लिए कहा गया कि चारे और खाद्यसामग्री की सुविधाजनक आपूर्ति की दृष्टि से ऐसा किया गया था[1]। जब ब्रिटिश फौजों के बिखरे रहने के कारण सदैव आशंकित महाराजा रणजीत सिंह निश्चित हो जाते थे तो वे भी इसी प्रकार सेना को सुविधा की दृष्टि से बिखेर देते थे[2], परन्तु हीरा सिंह के मन में अंग्रेजों के प्रति तथा स्वयम् सिक्ख सेना के प्रति भी जो आशंकाएँ थीं, वे, उसकी सफलताओं से तथा ब्रिटिश सरकार के अधीन रेजिमेण्टों में व्याप्त हो रही विद्रोही भावनाओं के कारण बहुत कम हो गई। इन रेजिमेण्टों के सिपाहियों ने आदेश दिए जाने पर सिन्ध की ओर जाने से इनकार कर दिया और सिक्ख इस विद्रोह की प्रगति को प्रसन्नतामिश्रित आश्चर्य से देखते रहे; ब्रिटिश सेना के प्रसिद्ध सैनिकों को ब्रिटिश सरकार के ही विरुद्ध खड़ा देखना

हीरा सिंह के अविश्वास की अभिव्यक्ति:

सिन्ध के लिए आदेशित ब्रिटिश सिपाहियों का विद्रोह:

१—लेफ्टि० कर्नल रिचमण्ड के पत्र सरकार को, २० दिसम्बर १८४३ तथा २३ मार्च १८४४।

२—दृष्टान्त: सर डेविड आक्टर लोनी का पत्र सरकार को, १६ अक्टूबर १८१२

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सिक्खों के लिए एक नई बात थी, परन्तु यदि विदेशियों के संगठित शासन में उत्पन्न हो गई इस दरार से कोई लाभ उठा सकने की उनकी आशा शीघ्र ही समाप्त हो गई जब यूरोपियन टुकड़ियों ने सिन्ध की ओर प्रयास किया, अनियमित अश्वारोही दलों ने अनन्य निष्ठा का परिचय दिया और विद्रोही सिपाही स्वयम् ही अपनी गलती का अनुभव करके पूर्ववत् आज्ञा-पालन में तत्पर हो गए। ब्रिटिश सेनाएँ ने जब सिन्ध की ओर बढ़ना प्रारम्भ किया तो क़सूर स्थित सिक्ख टुकड़ी को लाहौर बुला लिया गया[1]।

ऊपर से सिक्ख ब्रिटिश सम्बन्धों में पूर्ण शान्ति परिलक्षित होने के बावजूद ऐसे कारणों का अभाव नहीं था कि ब्रिटिश सरकार के प्रति वास्तविक या कथित असन्तोष की भावना सिक्खों में व्याप्त न होती, और अन्त में लाहौर में एकत्रित सेनाओं को एकाधिक कारणों के माध्यम से अंग्रेजों के विरुद्ध भड़काए रखना अत्यन्त सहज हो गया। नाभा का सिक्ख राजा अंग्रेजों द्वारा संरक्षित था, परन्तु उसका एक प्रियपात्र धन्ना सिंह महाराजा रणजीत सिंह की छत्र छाया में रहता था, और महाराजा के अनुरोध पर नाभा के राजा ने धन्नासिंह के लिए मोरन नामक गाँव दे दिया था। यह बात सन् १८१९ ई० की है जब राजा अंग्रेजों के संरक्षण में आ चुका था, परन्तु ब्रिटिश अधिकारियों को इसके विषय में कोई जानकारी नहीं थी जिससे इस कार्य को अवैध मानते हुए ब्रिटिश अधिकारियों ने उस गाँव को ब्रिटिश सत्ता से अलग व स्वतंत्र नहीं मान सकते थे। इस बीच नाभा का राजा धन्ना सिंह से किसी बात पर अप्रसन्न हो गया और सन् १८४३ में उसने उसे मोरन की जागीर से वंचित कर दिया, परन्तु ऐसा करने में नाम के सैनिकों ने शरारतवश धन्ना सिंह की सम्पत्ति को लूटा पाटा और इस प्रकार लाहौर सरकार को शिकायत का एक बहाना मिल गया जिसका उपयोग तुरन्त, दल बन्दी के लिए किया गया, परन्तु इसी समय हीरा सिंह और उसके परामर्श दाता एक अन्य विवाद में भी उलझे हुए थे जो राजा सुचेत सिंह द्वारा गाड़े गये खजाने के सम्बन्ध में था बात यह थी कि राजा सुचेत सिंह ने कुछ सिक्खों और सोने की सिलों आदि के रूप में फीरोजपुर में गुप्त रूप से एक काफी बड़ा खजाना जमा कर रक्खा था; उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके सेवक इस खजाने को ले जाने के प्रयत्न

मोरन नामक गाँव के सम्बन्ध में अंग्रेजों से विवाद

सुचेत सिंह दाता का खजाना

१—लेफ्टि० कर्नल रिचमण्ड से पत्र सरकार को, १८ तथा २८ मई, १८४४

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

में पकड़े गए। इस खजाने की कुल कीमत लगभग १५ लाख रुपये आँकी गई, अंग्रेजों की ओर से ऐसा समझा गया कि यह खजाना गत अफगान युद्ध में ब्रिटिश सरकार को युद्धकालीन ऋण के रूप में दिए जाने के लिए उस समय फीरोजपुर भेजा गया था जब सरकार अपने संरक्षित सिक्ख सरदारों से ऋण ले रही थी। लाहौर दरबार ने दो आधारों पर इस खजाने पर अधिकार जताया कि (१) यह एक ऐसे सरदार की सम्पत्ति थी जो लाहौर दरबार के अधीन था—तथा सन्तानविहीन था, तथा (२) यह एक ऐसे विद्रोही की सम्पत्ति थी जिसने अपने नरेश के विरुद्ध शस्त्र उठाया था और मारा गया था परन्तु ब्रिटिश सरकार का कहना था कि विद्रोह या षड़यंत्र का प्रभाव सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार पर नहीं पड़ता तथा जम्मू और पंजाब के विधानों के अनुसार इस सम्पत्ति पर किसका अधिकार होना चाहिए; इस पर ब्रिटिश न्यायालय में ही विचार एवम् निर्णय किया जा सकता था। अदालत में इस सीमा तक लाहौर दरबार के पक्ष में तर्क दिए गए कि कोई भी ब्रिटिश प्रजा इस सम्पत्ति पर दावा नहीं जता सकती थी और जो इस सम्पति का वास्तविक अधिकारी हो, उसे दे देने के लिए अस्थायी रूप से उस खजाने को पंजाब के शासक को सौंपा जा सकता था परन्तु सर्वोच्च ब्रिटिश अधिकारियों ने यूरोप की न्याय प्रणाली का अनुसरण करते हुए व्यवस्था दी कि यदि महाराजा लिखें कि राजा गुलाब सिंह और हीरा सिंह इस बात से सहमत हैं कि उचित अधिकारी को देने के लिए यह सम्पत्ति सिक्ख राज्य को सौंप दी जाय तो ब्रिटिश सरकार अविलम्ब खजाना लाहौर दरबार को सौंप देगी। लाहौर दरबार ने इस प्रस्ताव या व्यवस्था को स्वीकार नहीं किया क्योंकि एक तो इस बीच चचा भतीजे – हीरा सिंह व गुलाब सिंह—में मतभेद बढ़ गया था और दूसरे सिक्ख दरबार, अपने प्रारम्भिक दावे के आधारों को हिन्दू विधान एवम् परम्परा के अनुसार अकाट्य मानता था; इस प्रकार यह खजाना उस दिन तक असन्तोष का कारण बना रहा जिस दिन अंग्रेज लाहौर के स्वामी बने, और उसी समय कश्मीर घाटी राजा गुलाब सिंह के लिए स्वतंत्र छोड़ दी गई जिसके मूल्य के एक भाग के रूप में इस विवादग्रस्त खजाने को ब्रिटिश कोष में जमा कर दिया गया[1]।

१—खजाने को रोक रखने या सौंपने से सम्बद्ध विवादों के लिए देखिये लेफ्टि० कर्नल रिचमन्ड के पत्र सरकार को ७ अप्रैल, ३ व २७ मई, २५ जुलाई १० सितम्बर तथा २५ अक्टूबर १८४४, और सरकार के पत्र रिचमण्ड को, १६ व २२ अप्रैल, १७ मई और १० अगस्त १८४४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हीरा सिंह अपने कार्यों एवम् सफलताओं में सामान्य अनुमान व आशा से बहुत आगे निकल गया, और घटनाओं ने जैसा मोड़ लिया उससे हीरा सिंह में एक उच्च और पूर्ण नियोजित प्रशासक की प्रतिभा दिखाई पड़ने लगी जिसकी उससे आशा नहीं की जाती थी, परन्तु राजा हीरा सिंह को भली भाँति ज्ञात था कि स्वयम् उसके पास रूप और बात चीत की विनम्रता के अतिरिक्त कोई विशेष महत्वपूर्ण प्रशासकीय गुण न था; इन समस्त गूढ़ कार्यों का निर्देशन जल्ला पण्डित नामक एक ब्राह्मण करता था

जल्ला पण्डित, हीरा सिंह का पथ प्रदर्शक:

जो जम्मू के राजाओं का कुलगुरु था तथा ध्यान सिंह के बच्चों को शिक्षा देता था। हीरा सिंह को वह बचपन से ही शिक्षा दे रहा था, जबकि महाराजा रणजीत सिंह भी हीरा सिंह का बहुत ध्यान रखते थे, और उसी समय से महत्वाकांक्षी जल्ला पण्डित का जो प्रभाव बालक हीरा सिंह पर था, युवा वजीर हीरा सिंह अब भी उस प्रभाव से रंचमात्र भी मुक्त न हो पाया था। केवल जल्ला के परामर्श से कितनी बार सेनाएँ कूच का डंका बजा चुकी थीं और कितने ही सरदार विस्मृत के अन्धकार में विलीन हो गए थे। उसकी महत्वाकांक्षाएँ बढ़ती रहीं, और ऐसा प्रतीत होने लगा कि जिस प्रकार अशिक्षित मराठों में एक ब्राह्मण ने पेशवाओं का शासन स्थापित कर लिया था, उसी प्रकार पण्डित जल्ला भी पंजाब के अर्धसभ्य जाटों पर अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करने का स्वप्न देख रहा था। उसने अनुभव किया कि खालसा सेना को अपने अनुकूल बनाए रखना चाहिए और अपनी गर्दन बचाने के लिए सेना को कहीं न कहीं व्यस्त रखना चाहिए। पण्डित जल्ला देश के अगणित छोटे मोटे सरदारों तथा नाम मात्र के राजाओं के अस्तित्व के अन्तर से घृणा करता था और यह घृणा अकारण नहीं थी; वह यह भी अनुभव कर रहा था कि राजा गुलाब सिंह देश के राजस्व का एक बड़ा भाग स्वयम् हथिया लेता था, और अपनी आवश्यकता

जागीरदारों की सम्पत्ति और जागीरों के सम्बन्ध में भारत व एशिया के अन्य देशों में प्रचलित परम्परागत नियमों का उल्लेख बर्नियर के 'ट्रवेल्स' (पृ० १८१) मिलता है; उनकी सम्पत्ति पर राज्य का पूर्ण अधिकार होता है. और भावना अथवा सिद्धान्त के अनुसार माना यही जाता है कि जागीरदार अपने जीवन पर्यन्त जागीर का उपयोग मात्र कर सकता है, और मितव्ययिता या अन्यान्य से वह जो कुछ सम्पत्ति जोड़ता है, वह उस राज्य की सम्पत्ति होती है जिसके अधीन वह जागीर हो।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

से अधिक बढ़ी हुई शक्ति तथा प्रभाव से लाहौर सरकार को बुरी तरह परेशान किए हुए था। सबसे प्रथम आवश्यकता थी सेना को प्रसन्न व सन्तुष्ट रखने की जिसके लिए नियमित व उचित वेतन देना जरूरी था, अतः पण्डित जल्ला-ने बिना असमंजस के अनेक जागीरे को केन्द्र के सीधे अधिकार में ले लिया और सेना को जम्मू पर आक्रमण करने का महत्व समझा कर उत्तेजित व प्रेरित करने लगा। गुलाब सिंह के प्रति हीरा सिंह विरोध भाव के अनेक कारणों में से एक यह भी था कि गुलाब सिंह ने मृत राजा सुचेत सिंह की जागीरों को अपने अधिकार में ले लिया था जब कि हीरा सिंह स्वयम् को मृत राजा का एक मात्र उत्तराधिकारी समझता था[1]।

पण्डित जल्ला व गुलाब सिंह

जल्ला ने अपने द्वारा किये गये प्रत्येक कार्य में अपनी शक्ति व सामर्थ्य प्रदर्शित की, परन्तु कुछ मामलों में उसने जल्दबाजी से काम लिया, और एक ही साथ बहुत अधिक कर गुजरने का प्रयास किया; सम्भवतः वह सिक्खों के जातिगत चरित्र की गहराई तक न पहुँच सका था, साथ ही सम्भवतः गुलाब सिंह की शक्ति एवम् सामर्थ्य का समुचित अवमूल्यन नहीं कर पाया था। राजा गुलाब सिंह वास्तव में चाहता था कि राजा सुचेत सिंह की जागीरों को अपने तथा हीरा सिंह के बीच विभाजित कर लिया जाय[2], परन्तु इसी बीच फतेह खाँ तिवाना ने डेराजाट में पुनः विद्रोह का सूत्रपात कर दिया,[3] चतर सिंह अटारीवाला ने रावलपिण्डी के निकट सशस्त्र विरोध प्रारम्भ कर दिया[4], और जिस राजा को पण्डित जल्ला कुचलना चाहता था उसी की कूटनीति के फलस्वरूप कश्मीर के दक्षिण पश्चिम में स्थित मुस्लिम जनजातियों को भी विद्रोह के लिए प्रोत्साहन मिला[5]। दूसरी ओर पिशोरा सिंह ने पुनः पंजाब के राज्य पर अधिकार करने का स्वप्न देखना प्रारम्भ कर दिया था और राजा गुलाब सिंह अपनी ओर उसे पूर्ण सहायता प्रदान कर रहा था; एक गुलाब सिंह के माध्यम से इतनी विपत्तियों को एक साथ उत्पन्न होते देखकर

१—देखिए लेफ्टि० कर्नल रिचमण्ड के पत्र सरकार को, १३ अगस्त तथा १० अक्टूबर १८४४।

२— ,, ,, ,, ३० अक्टूबर १८४४।

३— ,, ,, ,, १४ जून १८४४।

४— ,, ,, ,, १६ अक्टूबर १८४४।

५—मेजर ब्रॉडफुट का पत्र सरकार को, २४ नवम्बर १८४४।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पण्डित जल्ला को इस चतुर शत्रु से अच्छा सम्बन्ध बनाए रखने में ही कुशल दिखाई पड़ी[1], और एक समझौते की वार्ता प्रारम्भ हुई जिसके लिए राजा ने अपने पुत्र सोहन सिंह को लाहौर भेज दिया। गुलाब सिंह को सन्धिवार्ता में प्रवृत्त देखकर राजकुमार पिशौरा सिंह की राज्यप्राप्ति की आशाओं पर पानी फिर गया और अपनी सुरक्षा के लिए वह सतलज के दक्षिण ओर निकल गया[2]।

पण्डित जल्ला के प्रति सिक्खों का क्रोध; रानी जिन्दाँ के प्रति जल्ला का असम्मानजनक व्यवहार

पण्डित जल्ला ने इस बात को भूलकर एक और महान भूल की सिक्ख जाति केवल राजा गुलाबसिंह से ही नहीं बल्कि उनके धर्म व जाति के बाहर किसी भी विजातीय से विरोध भाव रखते थे; विभिन्न सरदारों को कुचलते समय वह यह भूल गया था कि वे सिक्ख थे, और 'खालसा' के नाममात्र में ऐसी मोहिनी थी कि एक ही पुकार पर छोटे बड़े का भेदभाव भूलकर समस्त सिक्ख कट मरने के लिए तैयार हो सकते थे। जो सरदार योग्य, प्रभावशाली व साधन सम्पन्न थे उनके प्रति भी पण्डित जल्ला का व्यवहार अशिष्ट और असम्मानजनक था। उसके इसी व्यवहार से चिढ़कर लहनासिंह मजीठिया ने तीर्थयात्रा के बहाने सन् १८४४ ई० के मार्च में पंजाब छोड़ दिया[3], इस बीच केवल एक व्यक्ति को कुछ प्रोत्साहन दिया गया जो सर्वथा अयोग्य था--यह व्यक्ति था लालसिंह नाम का एक ब्राह्मण जो जम्मू के राजाओं का पार्षद था परन्तु महारानी जिन्दाँ को उसने प्रभावित कर लिया था, और इस प्रकार अपना कुछ प्रभाव स्थापित कर लिया था। गर्वाभिभूत पण्डित जल्ला ने मद में अन्धा होकर महाराजा की माँ, रानी जिन्दाँ के प्रति

१—लेफ्टि० कर्नल रिचमण्ड का पत्र सरकार को १६ अक्टूबर १८४४ तथा मेजर ब्रॉडफुट का पत्र सरकार को, २४ नवम्बर १८४४।

२—मेजर ब्रॉडफुट के पत्र सरकार को १४ व १८ नवम्बर, १८४४; सीमावर्ती एजेण्ट के पद पर रिचमण्ड के स्थान पर मेजर ब्रॉडफुट की नियुक्ति १ नवम्बर १८४४ को हुई, प्राणरक्षा के लिये पलायित पिशोरा सिंह को उसने ससम्मान आश्रय दिया था और निर्वाह के लिए १००० रूपए मासिक की वृत्ति देने का भी प्रस्ताव रक्खा था।

३—लहनासिंह पंजाब से हरिद्वार और फिर बनारस चला गया; उसने गया, जगन्नाथ और कलकत्ता की; भी यात्रा की जब सिक्खों व अंग्रेजों में शत्रुतापूर्ण व्यवहार प्रारम्भ हुआ, उस समय वह कलकत्ता में ही था।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भी कुछ असम्मानजनक शब्दों का प्रयोग कर दिया, और महाराजा के मामा, जवाहिर सिंह के प्रति तो वह सदैव अशिष्टता का व्यवहार करता था; अन्त में स्थिति असह्य हो गई और कुपित महारानी तथा महत्वाकांक्षी जवाहिरसिंह ने सैनिकों को जल्ला पण्डित के विरुद्ध भड़काना प्रारम्भ कर दिया; महान महाराजा रणजीतसिंह की अन्तिम अवशिष्ट स्मृति की प्रतीक रानी ने खालसा के बच्चों के समक्ष अपनी दुःखगाथा रक्खी जो पहले ही जल्ला से जले भुने बैठे थे; यह स्थिति देखकर जल्ला व हीरासिंह दोनों ने समझ लिया कि अब उनका शासन समाप्त ही होने को है। सन् १८४४ ई० की २१ वीं दिसम्बर को खालसा सेना के कोपानल में भस्म होने से बचने के लिए वे राजधानी से भाग निकले, परन्तु उनके जम्मू पहुँचने से पूर्व ही सिक्ख सैनिकों ने उन्हें जा पकड़ा और गुलाबसिंह के पुत्र सोहनसिंह तथा अब तक एक विजयी सेनापति का सम्मान पाते रहने वाले लाभ सिंह को भी हीरासिंह व जल्ला पण्डित के साथ ही मार डाला। पण्डित जल्ला के वध को तो कोई महत्व नहीं दिया क्योंकि उससे सभी घृणा करते थे, परन्तु हीरा सिंह के दुर्भाग्य पर बहुतों ने शोक प्रकट किया और आँसू बहाए, क्योंकि उसने अपने पिता की हत्या का पूरा बदला लिया था और अपने पद को भी शक्ति, सामर्थ्य व विनम्रता से सँभाला था[1]।

हीरासिंह व जल्ला का पलायन-पकड़ा जाना, और वध, २१ दिसम्बर १८४४

हीरा सिंह की सरकार के सहसा भंग हो जाने से कुछ समय के लिए लाहौर दरबार में अव्यवस्था उत्पन्न हो गई और ऐसा प्रतीत होने लगा कि सिक्ख राज्य में कोई उत्तरदायी प्रशासक है ही नहीं, परन्तु धीरे धीरे यह अनुभव किया जाने लगा कि रानी जिन्दां के भाई जवाहिर सिंह तथा प्रिय पात्र लाल सिंह सर्वाधिक प्रभाव शाली प्रशासकीय अधिकारी बनने की योग्यता रखते हैं; इस स्थिति की सूचना पाकर उधर ब्रिटिश अधिकारियों की नज़र बचाकर पिशौरा सिंह निकल भागा, परन्तु उसने सिंहासन प्राप्त करने की दिशा में कोई प्रयास नहीं किया और उन्हीं लोगों पर आश्रित सा प्रतीत होता रहा जिन्होंने हीरा सिंह से उसका पूरा बदला लिया था[2]। खालसा सेना की अनन्य राजभक्ति के लिए पुरस्कार स्वरूप सैनिकों के वेतन में आठ आने प्रति

जवाहिर सिंह व लाल सिंह के प्रभावमें वृद्धिः

१—देखिए मेजर ब्रॉडफुट के पत्र सरकार को २४ व २८ दिसम्बर १८४४।

२—देखिए " " २८ दिसम्बर १८४४ तथा ४ जनवरी १८४५

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

माह की वृद्धि कर दी गई, अनेक सरदारों की जागीरों को वासस कर दिया गया और गुलाब सिंह के विरुद्ध योजनाओं पर पुनः विचार किए जाने से सिक्खों के समस्त निष्क्रिय दल अचानक—उत्साहित एवम् अनुप्राणित हो उठे[1]। कश्मीर के पर्वतीय क्षेत्रों में व्याप्त अशान्ति और अराजकता को अविलम्ब समाप्त किया गया; विद्रोही फतेह खाँ को सुलह द्वारा मिला लिया गया। यद्यपि गुलाब सिंह सहायता के वादों द्वारा दलित वारकज़इयों को विद्रोह के लिए उत्तेजित करने का प्रयास कर रहा था[2], फिर भी पेशावर, समस्त अफ़गानों की शक्ति से लोहा लेने की स्थिति में था और उसकी रक्षा के सम्बन्ध में लाहौर दरबार निश्चिन्त था; परन्तु सरकार के लिए यह भी आवश्यक कि सेना को कहीं न कहीं उलझाया जाय; लाहौर दरबार में जम्मू के विरोधियों की संख्या बहुत अधिक थी; कुछ लोग लोभ के कारण और शेष प्रतिहिंसा की भावना से प्रेरित होकर जम्मू पर आक्रमण करने के पक्ष में थे अतः शीघ्र ही जम्मू के विरुद्ध कूच का डंका बजा दिया गया[3]।

सिक्ख सेना का जम्मू अभियान
फरवरी मार्च १८४५

अपने सैनिकों की आनुपातिक अक्षमता से परिचित जम्मू के राजा गुलाब सिंह ने सिक्ख सेना के आक्रमण को रोकने के लिए अपनी कूटनीति की सारी कलाओं को प्रदर्शित कर डाला; उसने रेजिमेण्टों की पंचायतों में मुक्त हस्त धन लुटाया, व्यक्तिगत वार्ताओं द्वारा उसने इन पंचायतों के पंचों को अलग-अलग अपने पक्ष में करने का काफी सफल प्रयास किया; साथ ही उसने सिंहासन का अधिकार दिलाने का वादा करके पिशोरा सिंह को पुनः बालक महाराजा व लाहौर दरबार के विरुद्ध उभाड़ने का प्रयास किया। उसने खालसा सेना को भी बहुत कुछ देने का वादा किया जो उसके दमन के लिए लाहौर से कटिबद्ध होकर चले थे; उसने परिवार की सामान्य सम्पत्ति के कुछ भाग को भी समर्पित करने का वचन दिया साथ ही दण्ड के रूप में लाहौर के खजाने में पैंतीस लाख रूपया

१—देखिये मेजर ब्राडफुट का पत्र सरकार को २८ दिसम्बर १८४४ तथा २ जनवरी १८४५

२— " " " १६ जनवरी १८४५।

३—सेना ने लाहौर दरबार की उन शर्तों से असहमति प्रकट की जिनसे गुलाबसिंह को सजभौते में बाँधे जाने का प्रस्ताव रक्खा गया था (मेजर ब्राडफुट का पत्र सरकार को २२ जनवरी १८४५)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जमा करने के लिए भी तैयार हो गया;[1] परन्तु किसी निश्चय पर पहुँचने से पूर्व ही दोनों राज्यों के अनुयायी किसी बात पर झगड़ बैठे और कुछ समय बाद फतेहसिंह मान तथा एक अन्य सरदार बचना—जो हाल ही में गुलाबसिंह का साथ छोड़कर सिक्ख सेना में आ मिला था—पर मार्ग में हमला करके दोनों को मार डाला गया[2] जिस पर राजा गुलाबसिंह पर विश्वासघात का आरोप लगाया गया, परन्तु राजा ने इस आरोप को स्वीकार नहीं किया; और इसकी कोई सम्भावना भी नहीं प्रतीत होती कि उसने बचना के अतिरिक्त उस समय किसी अन्य व्यक्ति को मरवाने की आवश्यकता महसूस की हो; बचना राजा के सभी संसाधनों व कुचक्रों से भिज्ञ था, और चूँकि उसने राजा का साथ छोड़ दिया था, अतः उसका जीवित रहना हर प्रकार से गुलाबसिंह के लिए अहितकारी ही सिद्ध होता। जो भी हो, इस कार्य से सिक्ख सैनिक अत्यधिक उत्तेजित हो गए और गुलाबसिंह समझ गया कि अब केवल अधीनता की स्वीकृति ही जम्मू को सिक्ख-आक्रमण से बचा सकती है। उसने कुछ अंशों में दो ब्रिगेडों को अपने पक्ष में कर लिया सन् १८४५ ई० के अप्रैल माह के प्रारम्भ में लगभग बन्दी के रूप में लाहौर पहुँचा, यद्यपि उसे आशा थी कि शीघ्र ही वह देश का मन्त्रि पद प्राप्त कर लेगा; क्योंकि एक राजा को पूर्णतः झुका लेने के पश्चात् अब सिक्ख सैनिक सन्तुष्ट हो गये थे, और उसके द्वारा वितरित धन ने पञ्चायतों को उसका पक्षपाती बना दिया था और महाराजा रणजीत सिंह के पुराने सेवकों में से अनेक को उसकी योग्यता तथा राज्य के प्रतिनिष्ठा में विश्वास था[3]; फिर भी विरोधभाव के कुछ चिन्हों का आस्तित्व अभी बना हुआ था जो हीरा सिंह के लिए घातक सिद्ध हुए थे; अनेक निष्कासित पहाड़ी सरदारों के प्रतिनिधि अपने प्रबलतम् शत्रु को असहाय देखकर भी शान्त न हुए थे और उसे मृत देखने की कामना करते थे, और धर्मोन्मादी अकालियों के वर्ग का कोई भी सदस्य बिना रोक टोक के इस 'डोगरा' राजा की जान ले सकता था। जवाहिर सिंह—जिसका प्रभाव इधर काफ़ी बढ़ गया था, वजीर के पद अधिकार विहीन के लिए अत्यधिक व्यग्र दिखाई पड़ रहा था, और

१—मेजर ब्राँडफुट का पत्र सरकार को १८ मार्च १८४५।

२— ,, ,, , ३ मार्च १८४५।

३—मेजर ब्राँडफुट के पत्र सरकार को; ८ तथा ९ अप्रैल एवम् ५ मई १८४५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गुलाब सिंह लाहौर में अप्रैल १८४५

लाल सिंह की अपनी महत्वाकांक्षा ने उसे प्रेरित किया कि वह महाराजा की माँ रानी जिन्दाँ को, उस व्यक्ति के प्रति बढ़ती जाने वाली विश्वास व कृपा की भावना को रोकने व आगे न बढ़ने देने का परामर्श दे, जिसकी शक्ति से सभी सिक्ख सरदार द्वेष भी रखते थे, और भयभीत भी थे। इन स्थितियों में गुलाब सिंह ने उस समय शक्ति के लिए प्रतिद्वन्दिता या संघर्ष में पड़ना उचित नहीं समझा, और लाहौर निवास की असुरक्षा का अनुभव कर किसी सुरक्षित स्थान पर चले जाने का निश्चाय किया। उसे शान्तिपूर्वक चले जाने के लिए जिन शर्तों को स्वीकार करना पड़ा वे इस प्रकार थीं—(१) वह दण्ड स्वरूप लाहौर के खजाने में ६८ लाख रुपया जमा करे; (२) अपनी निजी जागीरों को छोड़कर शेष समस्त क्षेत्रों का समर्पण कर दे जो उसके परिवार के अधिकार में थे; (३) सिन्ध और झेलम के मध्य स्थिति नमक की खानों का पट्टा उसे पुनः दिया जा सकता था, यदि वह लाभ के एक बड़े हिस्से से वंचित होना स्वीकार करता और रोहतास की पहाड़ियों पर से अपनी सत्ता को समाप्त कर लेता[1]। उसने इन सभी शर्तों को स्वीकार कर लेने के अतिरिक्त वर्तमान परिस्थितियों में कोई मार्ग न देखा। गुलाब सिंह के लाहौर में उपस्थित रहने के समय ही महाराजा के मामा जवाहिर सिंह को वजीर के पद पर प्रतिष्ठित किया गया[2], (१४ मई,) और १० जुलाई को अटारी सरदार चतर सिंह की एक लड़की से महाराजा की सगाई हुई[3]। अगले मास के अन्त तक गुलाब सिंह जम्मू लौट गया, जिसकी वास्तविक शक्ति तो काफी अंशों तक छिन गई थी, परन्तु उसकी विनम्रता से प्रभावित होकर सेना ने उसका स्वागत किया, और अंग्रेजों का यह विचार अन्तिम रूप से दृढ़ हो गया कि ये पहाड़ी राजपूत सिक्ख सैनिकों का सामना करने की भी सामर्थ्य नहीं रखते थे[4]।

१—" " " " ५ मई १८४५।

२—मेजर ब्रॉडफुट का पत्र सरकार को, २४ मई १८४५।

३— " " " १४ जुलाई १८४५।

४—मेजर ब्रॉडफुट ने स्वीकार किया कि हाल की घटनाओं ने पहाड़ियों में राजा की निर्बलता को स्पष्ट कर दिया था', जहाँ कि उसकी शक्ति सर्वाधिक होती यदि उसके अनुयायी वीर और विश्वासनीय होते (सरकार को पत्र, ५ मई १८४५)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मुल्ताल के योग्य दीवान सावनमल की हत्या सन् १८४४ ई० के सितम्बर मास में एक ऐसे व्यक्ति ने कर दी जो अपनी अपराध वृत्ति के लिये कुख्यात तो था फिर भी उसे स्वतन्त्र छोड़ दिया था[1]। हीरासिंह की पतनोन्मुख सरकार ने दीवान सावनमल की मृत्यु से रिक्त हुए पद पर उसके पुत्र मूलराज को नियुक्त किया जिसने सूबे की फौज में हुए एक विद्रोह का दमन अत्यन्त कुशलता एवम् तत्परता से किया, साथ ही अपने एक छोटे भाई से निपटने में भी उसने तत्परता का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया जो चाहता था कि मृत पिता का समान उत्तराधिकारी होने के नाते उसे भी सूबे का आधा हिस्सा दे दिया जाय। उसने इस भाई को कैद कर लिया और इस प्रकार समस्त स्थानीय खतरों से निश्चिन्त हुआ, पर अब उसके सामने एक अन्य समस्या थी जिससे निपटना सरल नहीं था—लाहौर दरबार उसके सूबे से अपनी माँग बढ़ाता जा रहा था, और उत्तराधिकार प्राप्त करने की प्रचलित प्रथा के अनुसार नजराने के रूप में एक बड़ी रकम की माँग की जा रही थी, और मूलराज टालता जा रहा था; अतः जैसे ही सिक्ख सेना गुलाब सिंह की सत्ता को झुका कर वापस लौटी उसी समय मुल्तान के विरुद्ध एक सैन्य-दल भेजने का प्रस्ताव रक्खा गया जिसे ब्रिगेडों तथा रेजिमेण्टों की एकत्रित पंचायतों के माध्यम से खालसा सेना ने स्वीकार कर लिया। खालसा के इस निश्चय से डर कर नए दीवान ने सिक्ख दरबार की शर्तें मान लीं और १८४५ के सितम्बर माह में यह व्यवस्था की गई कि जुर्माने के रूप में वह दरबार को १८ लाख रूपया देगा; इकरार नामे की रकम में वृद्धि से तो वह अवश्य मुक्त हो गया, परन्तु उसे कुछ जिलों से हाथ धोना पड़ा[2]।

मुल्तान के सावन मल की हत्या, सितम्बर १८४४: उत्तराधिकारी, उसका पुत्र मूलराज

१—रिचमण्ड का पत्र सरकार को १० अक्टूबर १८४४।

२—इस पैराग्राफ में लेखक ने घटनाओं से सम्बन्धित व्यक्तिगत नोट्स का ही उपयोग किया है। मुल्तान की सेना का विद्रोह नवम्बर १८४४ में हुआ था। दीवान ने तुरन्त विद्रोही टुकड़ी को घेर लिया और नायकों को तलब किया; उनके आने से इनकार कर देने पर उसने पूरी टुकड़ी पर गोला बारी प्रारम्भ करा दी और जैसा कि कहा गया, लगभग ४०० आदमी मारे गये। उसने अपने भाई को अगस्त १८४५ में बन्द किया था; अगले महीने लाहौर दरबार से उसके उत्तराधिकार की शर्तें निश्चित की गई थीं। [मूलराज

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नए वजीर जवाहिरसिंह को गुलाबसिंह की शत्रुता तथा मुल्तान के दीवान की जिद से भी अधिक परेशान करने वाली समस्या थी, राजकुमार पिशौरा सिंह की विद्रोहात्मक गतिविधियाँ; वैसे स्वयम् राजकुमार में कोई विशेष योग्यता या क्षमता नहीं थी परन्तु रणजीतसिंह का पुत्र होने के नाते सिक्ख उसके प्रति किसी असम्मानजनक व्यवहार को पसन्द नहीं कर सकते थे। उधर गुलाबसिंह भी कुँवर पिशौरासिंह को प्रोत्साहन दे रहा था जो उस समय पहाड़ियों में पूर्णतः सुरक्षित था; जवाहिरसिंह को महाराजा दलीप को लेकर अंग्रेजों के पास भागने की धमकी पर जिस सिक्ख ब्रिगेड ने उसे कैद कर लिया था उसने भी राजकुमार को सहायता का आश्वासन दिया था; उक्त ब्रिगेड ने उस अवसर पर जवाहिर सिंह को रोककर राज्य तथा महाराजा की जो सेवा की थी उसके महत्व की परवाह न करते हुए, वजीर के पद पर आते ही उसने अत्यन्त बर्बरता का प्रदर्शन करते हुए उस ब्रिगेड के नायक का नाक कान कटवा लिया था। पिशौरा सिंह ने स्वयम् को एक सफल विद्रोह का नेतृत्व करने में सक्षम समझा और जागीर के रूप में प्राप्त

पिशौरा सिंह का विद्रोह

मार्च १८४५ स्यालकोट में अपने दल को संगठित करने का प्रयास किया, परन्तु सिक्ख इस प्रकार उसके दावे को स्वीकार करने और सशस्त्र विद्रोह के लिए तैयार न थे, फलतः आशंकित और साधन हीन होने पर जून में वह स्यालकोट से भाग खड़ा हुआ और जुलाई के अन्त तक देश में इधर उधर भटकता रहा; इसी महीने में उसने अटक पर अचानक अधिकार कर लिया, स्वयम् को महाराजा घोषित किया और दोस्त मुहम्मद खाँ से पत्रव्यवहार चलाने लगा। पिशौरा सिंह का दमन करने के लिए अटारी के सरदार चतर सिंह को भेजा गया और डेरा इस्माइल खाँ में स्थित सेना को भी उसी ओर कूच करने का आदेश दिया गया। राजकुमार किले में स्वयम् को असहाय महसूस करने लगा और उसे अपनी अक्षमता का पूरा आभास मिल गया; ३० अगस्त को उसने

ने अपना जुर्माना कभी नहीं दिया। जब इसके लिए अप्रैल १८४८ में सेना भेजी गई तो उसने अपने पद से त्याग पत्र दे दिया, और उसके स्थान पर कन्ह सिंह को दो अंग्रेज अफ़सरों—मि० वान्स एग्न्यू तथा लेफ्टि० एण्डर सन के साथ भेजा गया। मुल्तान पहुँचते ही इन दोनों अफसरों की हत्या कर दी गई जिसका परिणाम हुआ द्वितिय सिक्ख युद्ध तथा सिक्खों की स्वतंत्रता का अन्त]।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आत्म समर्पण कर दिया, और उसे ससम्मान लाहौर ले जाने का बहाना किया गया परन्तु जवाहिर सिंह के निर्देशानुसार मार्ग में ही गुप्त रूप से उसका वध कर डाला गया; इस क्रिया में मुख्य भाग लेने वाला व्यक्ति था फतेह खाँ तिवाना, जो इस सेवा कार्य द्वारा सिक्ख दरबार के उस समय के स्वामी को प्रसन्न करना चाहता था जिसने उस पर कृपा प्रदर्शित की थी और सिन्ध स्थिति ऊपरी डेराजाट का इलाका सौंप दिया था[1]।

पिशौरासिंह का वध
अगस्त सितम्बर १८४४:

यह अन्तिम विजय जवाहिर सिंह के लिए घातक सिद्ध हुई; सिक्ख सैनिक पहले भी उसके प्रति विरोध भाव रखते थे, और अब महाराजा रणजीत सिंह के असहाय पुत्र की हत्या से उन्हें उससे घृणा हो गई। समय पर उसने उत्साह एवम् धैर्य का संतुलित प्रदर्शन किया था, परन्तु वे कार्य व्यक्तिगत स्वार्थों एवम् क्षोभ से प्रेरित थे, और उनमें कभी भी एक श्रेष्ठ प्रशासकीय बुद्धि परिलक्षित नहीं हुई थी। प्रारम्भ में अंग्रेजों का संरक्षण प्राप्त करने के उसके विचार ने ही उसे सिक्खों की नजर में नीचे गिरा दिया था और वे उसे अविश्वास की दृष्टि से देखने लगे थे; जिस समय हीरा सिंह और पण्डित जल्ला खालसा सेना के कोप भाजन हुए और जवाहिर सिंह मंत्री बना; उसी समय से वह सेना के हाथ का खिलौना बना हुआ था; सेना भी उसका साथ देती आ रही थी क्योंकि अभी तक दोनों के सामने एक ही लक्ष्य था; अब खालसा सैनिक स्वयम् को 'पन्थ खालसगी', (अर्थात् ईश्वर में विश्वास करने वालों का समाज) कहने लगे थे, और जैसी प्रवृत्ति प्रदर्शित करने लगे थे उससे जवाहिर सिंह भय से व्याकुल हो गया। जम्मू के विरुद्ध प्राप्त सफ़लताओं के बीच ही वह अपनी जान बचाने के प्रयत्न में लग गया था; उसने दो बार सतलज पार कर ब्रिटिश क्षेत्र में भाग जाने का भी प्रयास किया परन्तु सेना अपने नाममात्र के प्रधान को इस प्रकार चले जाने की अनुमति देने के लिए तैयार नहीं थी। उसने अनुभव किया कि सेना की ओर से उस पर नज़र रक्खी जा रही थी, अतः उसने भाग निकलने की समस्त आशाओं का त्याग कर दिया और अपने ब्रिटिश मित्रों को युद्ध

जवाहिर सिंह भयाकुल:

१—मेजर ब्रॉडफुट के पत्र सरकार को, १४ व २६ जुलाई तथा ८ और १८ सितम्बर १८४३।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

की धमकी दे देकर स्वयम् अपने को तथा सिक्ख सैनिकों को बहलाने लगा[1] इस प्रकार स्वयम् सिक्ख ही जवाहिर को घृणा एवम् अविश्वास की दृष्टि से देखते थे; वजीर के पद की आकांक्षा रखने वाले लाल सिंह ने इस शत्रुता की आग में घी डालना शुरू किया और इसी बीच पिशौरा सिंह का कत्ल हो जाने से हर ओर क्षोभ एवम् असन्तोष की लहर दौड़ गई क्योंकि इस कार्य को सिक्ख जाति का अपमान मानकर इसकी निन्दा की जाने लगी। रेडीमेण्टों की पंचायतों ने एक परिषद् का आयोजन किया और निश्चय किया गया कि उसे खालसा का विश्वास घाती मानकर उसे प्राणदण्ड दिया जाय, क्योंकि मृत्यु ही एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा भारत की रक्तप्रिय, अर्ध-बर्बर सरकारें किसी दुःखदायी मंत्री से मुक्ति पाती हैं। उक्त निश्चय के अनुसार जवाहिर सिंह के पास आदेश भेजा गया कि वह २१ सितम्बर को खालसा की पंचायतों के समक्ष उपस्थित होकर अपने दुष्कर्मों की सफाई पेश करे। जवाहिर सिंह उक्त तिथि को हाथी पर बैठ कर गया, परन्तु अपने प्राण के प्रति आशंकित होकर उसने अपने साथ काफी मूल्य के जवाहरात व स्वर्ण व बालक महाराजा को भी ले लिया। जब वह खालसा सेना के सामने पहुँचा तो उसने कुछ प्रभावशाली सैनिक अधिकारियों को नकद पुरस्कार तथा बड़े वादों का प्रलोभन देकर उन्हें फोड़ने का प्रयास किया परन्तु उससे आदेशात्मक स्वर में कहा गया कि वह महाराजा को अपने बगल से हटा दे और स्वयम् चुपचाप बैठा रहे। बालक दलीप सिंह को पास ही के एक शिविर में बैठा दिया गया और सैनिकों के एक दल ने दृढ़तापूर्वक आगे बढ़कर गोलियों से वजीर को छलनी कर डाला।[2] जवाहिर सिंह के दो निकटस्थ सहयोगियों को भी उसी समय समाप्त कर दिया गया परन्तु इसके पश्चात् कुछ भी रक्तपात नहीं हुआ; यह कार्य एक न्याय संगत दण्ड की सी गम्भीरता एवम् शान्ति से किया गया जिसे जनता की सहमति प्राप्त थी, और जिसे जनता ने अपनी आँखों से देखा; जवाहिर सिंह के शव

सेना द्वारा जवाहिर सिंह की निन्दा एवम्, वध, २१ सितम्बर १८४५:

१—मेजर ब्राँडफुट के पत्र सरकार को, २३ व २८ फरवरी, ५ अप्रैल (एक अर्ध-सरकारी पत्र) और १५ तथा १८ सितम्बर १८४५।

२ मेजरब्राँड फुट का पत्र सरकार को, २६ सितम्बर १८४५; उल्लेखनीय है कि सिक्ख प्रायः समझते थे कि जवाहिर सिंह अंग्रेजों को पंजाब में लाने के लिये तैयार था, और खालसा के प्रति भक्ति नही रखता था।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

को वहाँ से ले जाने की अनुमति दे दी गई और सती प्रथा के अनुसार अनेक स्त्रियाँ भी उसके शव के साथ जल मरीं।

जवाहिर सिंह की मृत्यु के पश्चात् कुछ समय तक किसी भी सरदार को यह साहस न हुआ कि पंजाब के सर्वोच्च प्रशासकी का उत्तरदायित्व सँभाले या उस आत्मनिर्भर सेना का प्रधान बने जिसने कुछ ही महीनों में अपनी प्रबल शक्ति से जम्मू के राजा को लाहौर में कैदी की भाँति ला खड़ा किया था, मुल्तान के शक्तिशाली दीवान को नतमस्तक किया था; महाराजा के सौतेले भाई समझे जाने वाले विद्रोही राजकुमार का दमन किया था; राज्य के सर्वोच्च प्रशासकीय अधिकारी को उसके अपराधों का समुचित दण्ड दिया था और अफ़गानों की लड़ाकू जाति को पेशावर व सीमाओं पर बिना प्रयास के ही रोक रक्खा था। राजा गुलाब सिंह को पुनः सिक्ख राजधानी में आने का निमंत्रण भेजा गया परन्तु वह तथा अन्य सभी समर्थ सरदार प्रबल सिक्ख सेना से आतंकित थे, अन्त में, वजीर की अनुपस्थिति में, राजमाता महारानी जिन्दाँ ही कुछ समय तक नियमित रूप से दरबार करती रहीं। इस व्यवस्था से सेना भी कुछ अंशों में सन्तुष्ट हो गई क्योंकि सैनिक पंचायतों को विश्वास था कि वे विभिन्न सूबों को नियंत्रित रख सकती थीं; राजकीय व्यवस्था के लिए उन्होंने दीनानाथ, बख्शी भगतराम तथा नूरुद्दीन को सम्मिलित प्रतिभा व राजभक्ति पर पूर्ण विश्वास किया जिनमें से अन्तिम, अपने अग्रज अजीजुद्दीन की भाँति अंग्रेजों के साथ हुई सन्धियों और व्यवस्थाओं से पूर्णतः परिचित था। खालसा सेना ने पहले से ही यह व्यवस्था कर रक्खी थी कि इन तीनों व्यक्तियों से परामर्श लेकर ही जवाहिर सिंह कोइ राजकीय कार्य कर सकता था; परन्तु उक्त व्यवस्था के पश्चात भी राज्य के एक उत्तरदायी प्रधान का अभाव बुरी तरह खटक रहा था और चूँकि सिक्खों को धीरे धीरे अंग्रेजों से युद्ध करने के लिए तैयार किया जा चुका था अतः राजा लाल सिंह को वजीर मनोनीत किया गया और सरदार तेज सिंह के सेनापति के पद को पूर्ण समर्थन के साथ मान्यता दे दी गई। ये नियुक्तियाँ सन् १८४५ के नवम्बर माह के प्रारम्भ में की गई थी।

सेना की सर्वोच्च सत्ता

अंग्रेजों से युद्ध की आशा से लाल सिंह वजीर; तथा तेज सिंह सेनापति नियुक्त

—: o :—

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अध्याय १

अंग्रेज़ों के साथ युद्ध

१८४५-४६

सिक्खों एवम् अंग्रेजों को युद्ध की ओर खींचने वाले कारण—सीमावर्ती अशान्तियों से आशंकित अंग्रेज़ १८०९ की नीति के विरुद्ध, प्रति रक्षात्मक नीति पर—सन्देह में डाले गए सिक्ख, अंग्रेजों के आक्रमण से आशंकित सिक्ख तैयारी पर—ब्रिटिश प्रतिनिधि के प्रति अविश्वास से क्षोभ व वैर-भाव में वृद्धि—सम्भावित युद्ध में सिक्खों द्वारा सतलज पार करके आक्रमण में पहले सिक्खों की चालें—सिक्ख नेताओं के विचार—मुड्की का युद्ध – फीरू शहर का युद्ध तथा सिक्खों का पीछे हटना—इन लाभहीन विजयों का हिन्दुस्तानियों पर; तथा स्वयम् अंग्रेजों पर प्रभाव – सिक्खों का पुनः सतलज पार करना—बडोवाल का युद्ध-अलीवाल का युद्ध—राजा गुलाब सिंह के माध्यम से सन्धि-वार्ता—सोबराँव का युद्ध—सिक्ख सरदार पराजित और लाहौर अंग्रेजों के अधिकार में—पंजाब का विभाजन—दलीप सिंह के साथ सन्धि—गुलाल सिंह से सन्धि—निष्कर्ष—भारत में अंग्रेजों की स्थिति।

हिन्दुस्तानी प्रजा में अंग्रेज-सिक्ख युद्ध की आशा व्याप्त:

ब्रिटिश सरकार काफ़ी समय से यह आशा पाले हुए थी कि पंजाब की निरंकुश सैनिक शक्ति से एक न एक दिन संघर्ष छेड़ने के लिए विवश हो जाना पड़ेगा। हिन्दुस्तानी जनता इन यूरोपीय विदेशियों को मन-चाही दिशा में बढ़ते और सफल होते देखने के आदी हो चुके थे, और उत्सुकतापूर्वक उस समय की प्रतीक्षा कर रहे थे जब विस्तृत ब्रिटिश साम्राज्य में एक और शक्तिशाली राज्य सम्मिलित किया जाता, उनको उन कारणों की सूक्ष्म जानकारी प्राप्त करने की कोई चिन्ता या उत्सुकता नहीं थी जिन्होंने सिक्ख-अंग्रेज युद्ध को आवश्यक बना डाला था, जब कि अपने साधारण स्वार्थों एवम् हितों की रक्षा के लिए देश की स्वतन्त्रता को भी दाँव पर लगाने के लिए तैयार थे ताकि देश में शान्ति व सुरक्षा बनी रहे और अंग्रेजों के हस्तक्षेप से उनकी

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जागीरों की सुरक्षा की गारण्टी रहे। ये समृद्ध परन्तु सामर्थ्य विहीन सरदार रणजीत सिंह की उच्चतर महानता के समक्ष अत्यन्त घृणित प्रतीत होते थे, वे उस पूर्ववर्ती, रहस्यमय भावना वाले देश के लिए कलंकस्वरूप थे जिसने पूर्ण जाति को शस्त्र उठाने की प्रेरणा दी थी, और उन्हें आशा कि इसी विश्वासघात और ओछेपन से देश की राज नीति में थी जो परिवर्तन होगा, उससे उनकी समस्त आकाँक्षाएँ पूर्ण हो जायगी, परन्तु यह बात सन्देहजनक है कि आगे होने वाले प्राथमिक युद्धों के तीन माह पूर्व तक सिक्ख सेना ने हिन्दुस्तान की सर्वजयी सेना से युद्ध करने के विषय में कभी गम्भीरता से विचार भी किया था अथवा नहीं, और युद्ध छिड़ने के समय भी अशिक्षित कृषक-सैनिकों को यही ज्ञात था कि उन्हें पूर्णतः प्रतिरक्षात्मक तैयारी करनी है; उनको इसका स्वप्न में भी विचार नहीं हुआ होगा कि इस सम्भाव्य युद्ध में वे ही पहला आक्रमण करेंगे।

अंग्रेजों की आशंकाएँ सिक्ख भयभीत

जिस क्षण से पंजाब की खालसा सेना ने राज्य की सत्ता अपने हाथों में ली थी, उसी समय से अंग्रेज अधिकारियों ने यह अनुमान लगाना आरम्भ कर दिया था कि अब शीघ्र ही लाहौर सरकार छिन्न भिन्न हो जायगी, कि लुटेरों के दल सर्वत्र वातावरण को अशान्त बना देंगे और एक सभ्य समुदाय के समाज के प्रति, प्रशासकीय शक्ति के, अपनी प्रजा के प्रति कर्तव्य, सभी मिलकर एक संघर्ष को जन्म देंगे; और इन्हीं अनुमानों और आशंकाओं से प्रेरित होकर अंग्रेजों द्वारा वे सभी आवश्यक कदम उठाये गए जिनसे सीमावर्ती चौकियों को सक्षम एवम् सुदृढ़ बनाया जा सके, और एक ऐसी सशक्त सेना को सदैव तैयार रक्खा जा सके जो प्रत्येक आक्रामक कार्यवाही को अवरुद्ध कर सके और ब्रिटिश नाम की मर्यादा व सत्ता को आँच न आने दे[1]। अंग्रेजों द्वारा इस प्रकार जो भी कदम उठाए गए वे औचित्य व आत्मरक्षा की भावना से प्रेरित थे परन्तु दोनों राज्यों की आनुपातिक परिस्थियों पर सिक्खों ने एक दूसरे ही दृष्टिकोण से विचार किया, वे अपने महान तथा प्रगतिशील पड़ोसियों की महत्वाकांक्षा से भयभीत हो उठे; उनकी समझ में नहीं आ रहा था अंग्रेज उनके प्रति क्यों आशंकित थे जब

सिक्खों का भयः

१—गवर्नर जनरल का मिनट, १६ १८४५, तथा गवर्नर जनरल का पत्र सेक्रेट कमिटी को, १ अक्टूबर १८४५ (पार्लियामेण्टरी पेपर, १८४६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कि आन्तरिक संघर्षों ने सिक्खों की अपेक्षाकृत निर्बल सेना को और भी निर्बल बना दिया था; अंग्रेजों द्वारा उठाए गए प्रतिरक्षात्मक कदमों को उन्होंने आक्रामक तैयारियों के रूप में ग्रहण किया, और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि पंजाब पर अंग्रेजों के आक्रमण की पूरी तैयारी की जा चुकी है और खतरा सर पर है। एक निर्बल और कम दूरदर्शी शक्ति द्वारा निकाला गया यह निष्कर्ष गलत होते हुए भी उनकी स्थिति के अनुसार विचित्र एवम् अतार्किक न होकर पूर्ण स्वाभाविक था क्योंकि हमें इस बात पर भी ध्यान रखना है कि सभ्यता की दृष्टि से भारत यूरोप से अभी बहुत पीछे है और आजकल यहाँ की रियासतों में राजनीतिक नैतिकता को उतना ही कम महत्व दिया जाता है जितना कि मध्य-काल में यूरोपीय देशों में दिया जाता था। फिर हिन्दुस्तान को पश्चिम में काबुल, पूरब में आसाम और दक्षिण में लंका द्वीप तक विस्तृत पूरा एक देश माना जाता है और जनभावना में पूरे देश के एक चक्रवर्ती और एकछत्र सम्राट या एक जाति के राज्य की परम्परा गत भावना व्याप्त है। विक्रमादित्य तथा चद्रगुप्त, तुर्कोमानो तथा मुगलों की प्रबल व निरंकुश सत्ताओं की गाथा लोगों के मन प्राण में बसी है, और अंग्रेजों द्वारा एक अन्य राज्य की विजय की बात सुनकर कोई हिन्दू या मुसलमान बस इतना ही कह कर सन्तोष कर लेगा कि ब्रिटिश राष्ट्र का भाग्य प्रबल है या सितारा बुलन्द है या उन की तोपें अजेय हैं एक राजा को आन्तरिक पीड़ा हो सकती है कि उसका एक सूबा हाथ से निकल गया या करद हो गया परन्तु यहाँ की जनता विजेताओं पर कभी भी यह आरोप नहीं लगाएगी कि उनका आक्रमण अन्यायपूर्ण था, अथवा महत्वाकांक्षा का अनौचित्यपूर्ण एवम् सिद्धान्त-विहीन प्रदर्शन था।

सिक्खों में सामान्यतः यह विचार प्रचारित था और भारत के अन्य राज्य भी ऐसा ही सोचते थे - कि अंग्रेज प्रारम्भ से ही अपनी शक्ति के विस्तार को बढ़ाने के लिए सर्वदा तत्पर रहते थे और हैं, और स्वयम् पंजाब के विषय में ही ब्रिटिश नीति पर एक विहंगम दृष्टि डालने से बात पूर्णतः सन् १८०९ ई० की स्पष्ट हो जायगी। सन् १८०९ ई० में, जब पूर्व पर नीति के बिरुद्ध फ्रेंच आक्रमण की आशंका से ब्रिटिश सरकार मुक्त हो ब्रिटिश सेनाएँ सत- हो गई और विदेशी आक्रमण का भय समाप्त हो गया लज की ओर रवाना था, जब यमुना नदी को ही हिन्दुस्तानी ब्रिटिश राज्य की पश्चिमोत्तर सीमा मानने का एक स्वर से समर्थन किया जाता था और जब सरहिन्द के सूबे को दो भिन्न जातीय राज्यों के बीच

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

स्थायी सीमा बनाने की नीति ग्रहण की गई थी, तो अंग्रेज वायसराय ने कहा था कि महाराजा रणजीत सिंह को आशंका में न डालने के लिए ब्रिटिश सेना की उस टुकड़ी को वापस करनाल बुला लिया जाय जो बढ़ती हुई लुधियाना तक जा पहुँची थी[1]। उस समय निस्सन्देह, इस प्रस्ताव को कार्य-रूप देना उचित नहीं समझा गया था, परन्तु सन् १८३८ ई० के अफगान युद्ध तक, गुरखा युद्ध के पश्चात् पहाड़ी क्षेत्रों की रक्षा व्यवस्था के लिए सबाथू में तैनात रेजिमेण्ट के अतिरिक्त पंजाब की सीमा पर अंग्रेजों की केवल एक सशस्त्र टुकड़ी थी जो लुधियाना में थी। सतलज की ओर कुछ आगे तक बढ़ी हुई अन्तिम ब्रिटिश चौकी सैनिक राजनीतिक दृष्टिकोण से कोई विशेष उपयोगी नहीं थी; यह केवल एक प्रतीक थी अंग्रेजों व सिक्खों की पारस्परिक सन्धि, सहयोग व मित्रता की; और अपेक्षाकृत निर्बल सिक्ख इन पुराने सम्बन्धों को बनाए रखने के इच्छुक प्रतीत होते थे जिनसे घनिष्ठता का साधारण सा आभास मिलता था। सन् १८३५ ई० में सतलज के तट पर लुधियाना की अपेक्षा नीचे की ओर ७० मील की दूरी पर स्थित फीरोजपुर की रियासत के उत्तराधिकारी विहीन होने पर ब्रिटिश सरकार ने उसे जब्त कर लिया क्योंकि लाहौर को छोड़ सभी सिक्ख रियासतें ब्रिटिश संरक्षण में थी। इस स्थान के सैनिक महत्व की प्रसंसा की जाने लगी जिसका अनुमान पहले से ही किया, जा रहा था, और चूँकि यह सिक्ख राजधानी से थोड़ी ही दूर पर स्थित था अतः महाराजा रणजीत सिंह ने सुरक्षा की दृष्टि से इसके महत्व का अनुभव किया और इस पर अपना दावा जताया। सन् १८३८ ई० में, इस स्थान को एक सैनिक छावनी का रूप दे दिया गया जिसकी आशंका महाराजा को पहले से ही थी; खोरासान के लिए कूच करने के इरादे से बारह हजार सैनिक फीरोजपुर में आ जुटे, और सेना के कूच की तिथि निश्चित की जाने से पूर्व ही जब यह ज्ञात हो गया कि ईरानियों ने हेरात का घेरा उठा लिया था, तो यह निश्चय किया गया था कि सेना की एक छोटी सी डिवीजन को उस समय तक के लिए वहीं छोड़ दिया जाय जब तक कि आयोजित आक्रमण की सफलता से इस टुकड़ी के यहीं पड़े रहने की आवश्यकता समाप्त न हो जाय[2]। परन्तु

१--सरकार का पत्र सर डेविड आक्टरलोनी को, ३० जनवरी १८०९।

२--उस समय ऐसा ही सोचा गया था, यद्यपि इसका कोई लिखित प्रमाण नहीं है; यह आशा अवश्य की गई थी कि बारह महीनों के भीतर ही शाहशुजा को काबुल में गद्दी पर बैठकार ब्रिटिश सेना वापस लौट आएगी।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अफगानिस्तान व सिन्ध में युद्ध की विजयपूर्ण प्रगति ने इस छावनी को स्थायित्व प्रदान किया और सन् १८४२ में यह तर्क देकर कि सतलज पर स्थिति दोनों चौकियाँ इतनी दूरी पड़ती थीं कि समय पर आवश्यक सामग्रियों व सैनिकों की आपूर्ति में असुविधाजनक विलम्ब होता था, अम्बाला में, सुरक्षित सेना तथा सिक्ख सीमा से सटी हुई पहाड़ियों में यूरोपियन सैनिकों की टुकड़ियाँ रख दी गईं[1], फिर भी सिक्खों ने १८०९ ई० के सम्बन्धों को बनाए रक्खा, यद्यपि यह सम्भव है कि सम्पूर्ण भारत भूमि के विभिन्न भागों में अनेक समस्याओं से घिरी प्रबल सत्ताधारी ब्रिटिश सरकार को जब तब यह सोचने की आवश्यकता ही न महसूस हुई हो कि सिक्ख उनके कार्यों और नीतियों के विषय में क्या सोचते थे, जैसा कि स्वाभाविक है, क्योंकि अपनी अपराजेय शक्ति के प्रति विश्वस्त शासक प्राय. अपने अधीनस्थ लोगों की साधारण बातों की परवाह नहीं करते, न यही सोचते हैं कि उनके कार्यों को वे लोग किस दृष्टिकोण से देखेंगे जिनकी आकांक्षाएँ, उद्देश्य तथा आशाएँ उनसे पूर्णतः भिन्न हैं।

सिक्ख शासकों से यह बात कभी भी नहीं छिपाई गई कि देश की मान्यता प्राप्त सरकार की असहाय अवस्था को देखते हुए अंग्रेज फीरोजपुर और लुधियाना की सैन्य संख्या में उस सीमा तक वृद्धि करना उचित समझते थे कि उन जिलों के निवासी स्वयम् को सुरक्षित महसूस पेशावर के सम्बन्ध करें और लुटेरों के दलों से ब्रिटिश चौकियों की सुरक्षा में अंग्रेजों का दृष्टि के प्रति निश्चिन्त रहा जा सके[2]। सिक्ख अंग्रेजों के कोण, शेरसिंह को इस अधिकार को भी मानने से इनकार नहीं करते थे

१—लेखक इन कारणों के लिए किसी लिखित स्रोत का उल्लेख नहीं कर सकता, परन्तु उसे ज्ञात है कि यही तर्क दिए गए थे। जब आगे बढ़ने का निश्चय कर लिया गया तो इस बात पर दुख प्रकट किया गया कि यह छावनी सरहिन्द में क्यों न बनाई गई जो प्रत्येक दृष्टि से लाभदायक सिद्ध होती जैसा कि सर डेविड आक्टरलोनी ने ३ मई १८१० के पत्र में ही इंगित कर दिया था, सरहिन्द पटियाला के सिक्खों के अधिकार में था इसलिए भी कुछ हिचकिचाहट प्रकट की गई थी यद्यपि पंजाब के विरुद्ध इससे भी अधिक आपत्तिजनक कार्यों एवम् व्यवहार में भी असमंजस प्रकट नहीं किया गया था।

१—गवर्नर जनरल का पत्र सिक्रेट कमिटी को, २ दिसम्बर १८४५ (पार्लियामेण्टरीपेपर्स १८४६) तथा ३१ दिसम्बर १८४५ का पत्र (पार्लि० पेपर्स, पृ० २८)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सहायता का प्रस्ताव— कि वे अपने इलाकों की रक्षा के लिए मनचाही सैनिक व्यवस्थाएँ कर सकते थे, परन्तु जो लोग सिक्खों की निर्बल सैनिक शक्ति से परिचित थे वे यह स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे कि अंग्रेजों को लाहौर से किसी सम्भावित खतरे का सामना करने के लिए तैयार रहना चाहिए। अनेक परिस्थितियों ने इस विचार को और अधिक शक्ति प्रदान की यद्यपि अंग्रेजों ने उनकी न चिन्ता की, न उनके महत्व का उचित अनुमान ही लगाया; इस प्रकार इन सारी परिस्थितियों को देखते हुए स्पष्ट था कि सिक्ख इस स्थिति में थे ही कि वे ब्रिटिश सरकार के लक्ष्यों के प्रति आशांकित रहते। इसमें सन्देह नहीं है कि सिक्खों को यह बात बिल्कुल ही नहीं बताई गई थी कि सर विलियम मैकनाटेन तथा अन्य ब्रिटिश अधिकारियों ने उस समय पेशावर को लाहौर राज्य से निकाल कर शाहशुजा को दे देने का प्रस्ताव रक्खा था जब नौनिहालसिंह की मृत्यु के पश्चात् यह समझा जाने लगा था कि अब महाराजा रणजीतसिंह के सिंहासन का कोई प्रत्यक्ष उत्तराधिकारी नहीं रह गया था, परन्तु यह मानना मूर्खतापूर्ण प्रतीत होता है कि लाहौर सरकार उस योजना से अनभिज्ञ थी जिस पर अंग्रेजों के राजकीय पत्रों में विवाद व तर्क-वितर्क किया जा रहा था, या सर एलवजेण्डर वर्नेस के उस प्रस्ताव के विषय में जानकारी नहीं रखती थी जिसमें उसने पेशावर, दोस्त मुहम्मद को दे दिए जाने की इच्छा प्रकट की थी और जो एक समय वार्ता का विशेष विषय बन गया था, और कम से कम सिक्खों से यह आशा तो अवश्य ही की जा सकती थी कि सन् १८४३ के उस ब्रिटिश प्रस्ताव को वे भूले नहीं होंगे जिसमें उनकी सेना को बिखेरने और उनकी राजधानी पर धावा करने की बात कही गई थी। पुनः सन् १८४३ व १८८४ में यह बात दूर-दूर तक फैल कर शान्त हो चुकी थी कि सतलज पर नावों का पुल बनाने के लिए अंग्रेज बम्बई में नावें तैयार करा रहे थे, कि सिन्ध की सेनाओं को मुल्तान पर आक्रमण करने के लिए सज्जित किया जा रहा था[1] और उत्तरी

१—सन् १८४४-४५ में मुल्तान पर आक्रमण करने के लिए पाँच हजार सैनिकों की एक टुकड़ी के लिए सक्खर में हथियारों और गोलाबारूद के संग्रह की बात केवल साधारण सरकारी पत्रों, इष्टाततः कलकत्ता के मिलिटरीबोर्ड और उस विभाग के अधीनस्थ अफसरों के बीच होने वाले पत्र व्यवहार का विषय थी। स्वयम् चार्ल्स नेपियर ने लेखक को बताया था कि गवर्नर होते हुए भी उसे इस पत्रव्यवहार की जानकारी नहीं थी, और उसने सेना से सम्बन्धित

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पश्चिमी सूबों की रक्षक सेनाओं में धीरे-धीरे वृद्धि की जा रही थी जब कि उनमें से कुछ सेनाओं के साथ अत्यधिक मात्रा में युद्ध-सामग्रियों पहुँचाई जा रही थी।[१] इनमें से किसी भी कार्य या उसके लक्ष्य के विषय में सिक्ख सरकार को कुछ भी नहीं बताया गया, परन्तु ब्रिटिश सरकार के लक्ष्य का आभास सभी को मिल गया और सर्वत्र समझा जाने लगा कि ये तैयारियाँ प्रतिरक्षात्मक नहीं, बल्कि आक्रामक थीं[२]।

इस प्रकार सिक्ख समझते थे कि अंग्रेजों की स्थिर व स्थायी नीति क्षेत्रीय विस्तार की थीं और उनकी महत्वाकांक्षा का मुख्य लक्ष्य लाहौर विजय था; तत्कालीन ब्रिटिश एजेण्ट की गतिविधियों एवम् व्यवहारों व विचारों को देखते हुए सिक्खों ने जो मत स्थिर किया उससे भी उक्त धारणा तत्कालीन ब्रिटिश को पर्याप्त बल मिला। सन् १८४३ ई० तक मि० क्लर्क एजेण्ट का सिक्खों लाहौर के ब्रिटिश प्रतिनिधि के पद पर रहा, परन्तु उसी

कोई तैयारी नहीं की थी; उक्त पत्र व्यवहार की सत्यता के सम्बन्ध में लेखक को कोई सन्देह नहीं है। सर्वोच्च अधिकारियों का उद्देश्य मुल्तान पर उस समय आक्रमण करना नहीं; बल्कि भविष्य के सम्भावित युद्ध के लिए कुछ अंशों तक तैयार रहना था।

२—लार्ड एलेनबरो तथा हार्डिंगंज द्वारा की गई तैयारियों का विस्तृत विवरण 'कलकत्ता रिव्यू' के एक लेख में देखा जा सकता है जो हार्डिंगंज के प्रशासन पर है और जिसे लेफ्टि० कर्नल लॉरेन्स द्वारा लिखा समझा जाता है।

सन् १८३८ ई० टक सीमावर्ती ब्रिटिश सेना का विवरण इस प्रकार था—एक रेजिमेण्ट सबाबू में और दो लुधियाना में, छः तोपें और कुल मिलाकर लगभग २५०० सैनिक। लॉर्ड आकलैण्ड ने लुधियाना और फिरोजपुर में छावनियाँ बनाकर इस को ८००० तक पहुँचा दिया था; लार्ड एलनबरो ने अम्बाला, कस्सोली और शिमला में भी छावनियों की स्थापना कर सिक्ख सीमा पर कुल मिलाकर ४८ तोपों के साथ १४००० सैनिकों को तैनात कर दिया था, लॉर्ड हार्डिंग्ज दो कदम और आगे बढ़े उक्त छावनियों पर ६८ तोपों के साथ सैनिक संख्या बढ़ाकर ३२००० कर दिया जिसके अतिरिक्त एक सशक्त सेना के साथ १०,००० सैनिक मेरठ में भी रख दिए गए। सन् १८४३ ई० के पश्चात् जमुना पर स्थित करनाल की छावनी तोड़ दी गई जहाँ १८३८ व उसके पूर्व ४,००० के लगभग सैनिक रहते थे।

३—गवर्नर जनरल का पत्र सिक्रेट कमिटी को, २ दिसम्बर १८४५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पर प्रतिकूल प्रभाव व आशंका में वृद्धि: वर्ष के जून माह में जब उसे आगरा का लेफ्टि० गवर्नर नियुक्त कर दिया तो लाहौर के मामलों के ब्रिटिश एजेण्ट का पद सँभाला लेफ्टि० कर्नल रिचमण्ड ने, जिसका स्थान अगले ही वर्ष के नवम्बर माह में मेजर ब्राँडफुट ने ले लिया जो एक असन्दिग्ध योग्यता एवम् उत्साह से मुक्त अफसर था। भारत में ब्रिटिश सरकार द्वारा यह प्रथा बना ली गई थी कि सन्धिवद्ध मित्रों एवम् अधीनस्थ नरेशों व सरदारों तक को सरकार के विचारों से अवगत कराने का कार्य किसी विश्वस्त ब्रिटिश अफसर के माध्यम से ही किया जाता है। माध्यम का कार्य करने वाले ऐसे अफसर का व्यक्तिगत चरित्र उसके सभी कार्यों एयम् कथनों को एक विशिष्टता प्रदान करता है; सरकार की नीति का आभास इस प्रतिनिधि के कार्य-व्यवहार से ही मिल जाता है, और यह निश्चित है कि ऐसे अफसर की नियुक्ति से सिक्ख अधिकारियों को सरकार की शान्ति के लिए बढ़ती हुई इच्छा का कोई आभास न मिला जिसने तीस मास पूर्व ही एक तूफान की भाँति पंजाब की भूमि को पार किया था।[1]

मेजर ब्राँडफुट ने कार्य भार सँभालते ही जो प्रथम कार्य किया, वह यह घोषित करना था कि पटियाला तथा अन्य रियासतों के मेजर ब्राँडफुट के साथ ही सिक्ख-सतलज क्षेत्र के लाहौर अधिकृत भू-भाग विचारों व कार्यों भी ब्रिटिश संरक्षण में थे तथा महाराजा दलीपसिंह की से सिक्ख अप्रसन्न मृत्यु या, उसके पदच्युत होने पर ब्रिटिश सरकार उनको जब्त कर सकती थी[2]। उसने इस विचार को औप-

---

१—सर क्लाड (नैरेटिव', पृ० १९ नोट) के अनुसार भारत में ब्रिटिश सन्धि-प्रणाली को सुरक्षित बनाये रखने के लिए आवश्यक था कि पालिटिकल एजेण्ट जिन रियासतों के लिये नियुक्त किया गया था वहाँ के नरेशों से उनके सम्बन्ध मित्रता पूर्ण हों, और वे केवल सरकारी आदेश पहुँचाने या उनका पालन कराने तक ही अपना कर्तव्य सीमित न समझें।

२—मेजर ब्राँड फुट के पत्र सरकार को, ७ दिसम्बर १८४४, ३० जनवरी, और २८ फरवरी, १८४५; अन्तिम पत्र यह स्पष्टतः कहता है कि यदि बालक महाराजा दलीप सिंह, जो उस समय चेचक से पीड़ित था; की मृत्यु हो जाय, तो वह निर्देश दे देगा कि लाहौर साम्राज्य के सिक्ख-सतलज ज़िलों के सम्बन्ध में (लाहौर का वकील या एजेण्ट) रिपोर्टें स्वयम् उसको दी जायेगी, पंजाब के किसी अधिकारी को नहीं।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

चारिक विधि से सिक्ख सरकार के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया था, परन्तु यह बात बुरी तरह प्रचारित हो चुकी थी, और इसी नीति का अनुसरण करते हुए मेजर ब्राँडफुट ने अधिकार पूर्वक तथा सैन्य शक्ति के साथ आनन्दपुर मखोवाल के धार्मिक प्रवृत्तिवाले सोधियों के मामलों में हस्तक्षेप किया कुछ वर्ष पूर्व इस जागीर पर से ब्रिटिश सरकार ने यह कह कर अपने सारे दावों को समाप्त करने का निश्चय प्रकट किया था कि यहाँ की विशेष सुविधा प्राप्त जनता के मामलों को उन्हीं के धर्मानुयायी, महाराजा रणजीत सिंह अधिक कुशता से समझ एवम् निबटा सकते थे।[1] इसी समय के लगभग सिक्ख सवारों के एक दल ने लाहौर के निकट स्थित कटक पुर नामक एक नगर की पुलिस को अवकाश देने या उनका स्थान लेने के लिए फीरोज पुर के निकट से सतलज नदी को पार किया परन्तु ऐसा करने से पूर्व उन्होंने ब्रिटिश एजेण्ट की अनुमति प्राप्त नहीं की थी जैसा कि दोनों सरकारों के मध्य हुई सन् १८०९ ई० में हुई सन्धि की एक शर्त के अनुसार किया जाना चाहिए था, परन्तु यह शर्त इतने छोटे तथा इस साधारण से उद्देश्य से जाने वाले सैनिक-दल पर लागू होने लायक नही थी; परन्तु मेजर ब्राँडफुट ने केवल इसी बात पर उन सवारों को पुनः नदी पार करके वापस लौटने के लिए कहा, और यह सोच कर, कि शायद वे उसके आदेश का पालन न करें उसने कुछ सैनिकों के साथउनका पीछा किया और उसी समय उनके सर पर जा पहुँचा जब कि वे नदी पार करने की तैयारी कर रहे थे; अंग्रेजों के दल से गोली भी चलाई गई परन्तु सिक्ख नायक कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहता था जिसके लिये बाद में उसकी सरकार को जवाब देह होना पड़े, और केवल उसकी सहनशीलता के कारण ही संघर्ष की स्थिति उत्पन्न न हो सकी।[2] इसी बीच बम्बई में नौकाओं का पुल बनवाने के लिए जो नावें तैयार कराई गई थी; सन् १८४५

१--आनन्द पुर के सम्बन्ध में देखिए अध्याथ ७; उक्त स्थल पर उल्लेखित विवाद के लिए देखिये मेजर ब्राँडफुट का पत्र सरकार को १३ सितम्बर १८४५ जिसमें वह अपनी गतिविधियों एवम् व्यवहारों का औचित्य सिद्ध करने का प्रयास करता है।

२--मेजर ब्राँडफुट का पत्र सरकार को, २७ मार्च १८४५; ऐसा समझा जाता है कि सरकार ने असहमित प्रकट की थी। जून १८०९ के कलकत्ता रिव्यू (पृ० ५४१) के अनुसार गवर्नर जनरल ने असहमति प्रकट करने के स्थान पर इस मामले में मेजर ब्राँडफुट के कार्यों का पूर्ण समर्थन किया था; ऐसा प्रतीत

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के पतझड़ में फीरोजपुर के लिए रवाना कर दिया गया; मेजर ब्राँडफुट ने जब यह कहा कि इन सशस्त्र नावों के खतरे में पड़ जाने की पूरी आशंका थी, और उन्हें सुरक्षित रूप से निश्चित लक्ष तक पहुँचाने के लिए एक सुदृढ़ रक्षक दल की तैनाती आवश्यक थी। तथा जब इन नावों के बेड़े को फीरोजपुर पहुँचते ही उसने नाविकों को पुल निर्माण में लगा दिया तो उसका आशय यही था कि स्थिति अत्यन्त शत्रुतापूर्ण हो चुकी थी, और सिक्ख किसी भी समय आक्रमण कर सकते थे[1]।

मेजर ब्राँडफुट की गतिविधियाँ खुले युद्ध की द्योतक

सिस सतलज क्षेत्र के जिलों के सम्बन्ध में मेजर ब्राँडफुट के तथा उसी की रिपोर्टों के आधार पर ब्रिटिश सरकार के जो विचार थे, तथा इस सम्बन्ध में सरकार द्वारा जो कदम उठाए, गये उनके औचित्य को कुछ सीमा तक सिद्ध किया जा सकता था क्योंकि वे लगभग उसी श्रेणी में आते हैं जिसमें सर डेविड आक्टरलोनी की अस्पष्ट घोषणाओं या महाराजा रणजीत सिंह के आशंका जनित विचारों तथा कार्यों को रक्खा जाता है।[2] यह भी

होता है कि 'रिव्यू' के इस लेख का लेखक इस समर्थन के राजनीतिक तथा सरकारी पहलू से परिचित था, परन्तु मैं इस बात पर, विश्वास नहीं कर सकता कि गवर्नर जनरल अपने एजेण्ट के इस अशोभनीय एवम् युद्धोत्तेजक कार्य से प्रसन्न या सन्तुष्ट हो सकते थे, यद्यपि उनकी यह इच्छा अवश्य हो सकतीं थी कि सिक्खों के अनियमित व्यवहारों पर दृढ़ता पूर्वक रोक लगाई जाय।

१—मेजर ब्राँडफुट की रिपोर्ट में नावों के प्रत्येक जत्थे के साथ एक यूरोपियन अफ़सर के साथ एक टुकड़ी तैनात करने का परामर्श दिया गया था; परन्तु ब्रिटिश प्रतिनिधि की आशंका की निर्मूलता इसी बात से सिद्ध हो जाती है कि उस समय लोहे के छोटे छोटे स्टीमर सतलज में बिना रक्षकों के आते रहते थे; इस प्रकार का एक स्टीमर कई दिनों तक फिल्लौर की तोपों के नीचे पड़ा रहा और सिक्खों की ओर से सभ्यता एवम् शिष्टता का ही व्यवहार किया गया।

२—ऐसा समझा जाता है कि सर डेविड आक्टरलोनी द्वारा ७ मई १८०९ की तारीख में महाराजा रणजीत सिंह के प्रतिनिधि मोहकम चन्द को लिखे गये एक पत्र का हवाला देते हुये ब्राँडफुट ने यह स्पष्ट करना चाहा था कि लाहौर अधिकृत सिक्ख-सतलज भूभाग भी, अन्य रियासतों के साथ, ब्रिटिश संरक्षण में थे, इसके साथ ही अप्रैल १८२४ में महाराजा रणजीत सिंह द्वारा लिखे गए एक आदेश पत्र का भी उल्लेख किया था जिसमें दक्षिण पार के सिख अधिकारियों को

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विश्वास किया जाता है कि यदि ब्रिटिश सरकार सिस सतलज क्षेत्र के उक्त विवाद ग्रस्त भूभागों को अपने प्रत्यक्ष अधिकार में ले लेने की भी इच्छा प्रकट करती तो, यह कार्य बिना शस्त्र प्रयोग के ही हो सकता था, परन्तु मेजर ब्राँडफुट के प्रत्येक कार्य से एक पूर्व निश्चित दृढ़ संकल्प का आभास मिलता था,

---

ब्रिटिश एजेण्ट के आदेशों का पालन करने का निर्देश दिया गया था। यह असम्भव नहीं है कि सर डेविड आक्टरलोनी ने ऊपर उल्लेखित तिथि से समय किसी विशेष रियासत से ब्रिटिश सम्बन्धों को इसी रूप में ग्रहण किया हो, परन्तु बात किसी प्रकार भी अतार्किक लगती है कि लाहौर साम्राज्य द्वारा अधिकृत सतलज पार की रियासतें बृटिश संरक्षण में थी, और उसे न मानने के लिए निम्न कारण दिये जा सकते हैं: (१) ब्रिटिश सरकार द्वारा सिन्ध के सरदारों को दिया गया संरक्षण महाराजा रणजीत सिंह के आक्रमणों से उन सरदारों की रक्षा के लिए था, इसका यह अर्थ कदापि नहीं हो सकता कि सरकार ने सतलज और यमुना नदियों के मध्य स्थित पूरे भूभाग को अपने संरक्षण में ले लिया था जिसका एक भाग लाहौर राज्य के अधिकार में था (देखिए सन् १८०९ ई० की सन्धि, और ३ मई १८०९ की घोषणा का पहला आर्टिकिल, तथा सरकार का पत्र सर डेविड आक्टरलोनी को, १० अप्रैल, १८०९); अवसर पाने और सुविधा का अनुभव करने पर ब्रिटिश सरकार यह भी कह सकती थी कि यद्यपि सन् १८०९ की सन्धि सिस-सतलज क्षेत्र के सम्बन्ध में महाराजा रणजीतसिंह पर प्रतिबन्ध लगाती थी, परन्तु ब्रिटिश सरकार की शक्तियों पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया था जिसे केवल यह अधिकार दिया गया था कि वह अपनी इच्छानुसार इस क्षेत्र की कार्यवाहियों में हस्तक्षेप कर सकती थी (सरकार का पत्र कैप्टेन वेड को २३ अप्रैल १८३३), यह बात अवश्य थी कि यह अधिकार लिखित रूप में केवल बहावलपुर के लिए दिया गया था, परन्तु इसका प्रयोग सामान्य कर दिया गया था। (२) सरहिन्द के सरदारों को जो संरक्षण दिया गया था उसमें; बाद में यह सीमा लगा दी गई थी कि मैदानी भाग में उनकी महाराजा रणजीतसिंह तथा गुरखों से, रक्षा की जायगी परन्तु पहाड़ी भागों की गारण्टी नहीं गई थी (सरकार का पत्र सर डेविड आक्टरलोनी को, २३ जनवरी १८१०) जब कि महाराजा रणजीत द्वारा अधिकृत सतलज पार के क्षेत्रों के सम्बन्ध में यह घोषणा की गई थी, कि नैपोलियन के) आक्रमण से उन भूभागों की रक्षा का उत्तरदायित्व महाराजा को ही दिया गया था, और इस बात को नीति पर छोड़ दिया गया था कि इस रक्षा प्रयास में महाराजा को ब्रिटिश

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

और यह स्पष्ट हो जाता था कि वह जिस नीति पर चल रहा था उसका आधार सद्भाव की नहीं, बल्कि शत्रुता की भावना थी[1]। सिक्खों को अपने अंग्रेज मित्रों से केवल इतनी ही शिकायत नहीं थीं। सन् १८४५ ई० की ग्रीष्म ऋतु में सिक्ख सैनिकों का एक दल कुछ लुटेरों का पीछा करने में, मुल्तान होते

सहायता प्राप्त होती अथवा नहीं। यह बात भी कह दी गई थी कि यदि वे चाहते तो सम्बन्धित जिलों के रक्षा-प्रयास में यमुना की निकटस्थ पहाड़ियों में गुरखों पर आक्रमण करने के, ध्येय से, अपने सिस सतलज ज़िलों में से ससैन्य गुज़र सकते थे (सरकार का पत्र सर डेविड आक्टरलोनी को, ४ अक्टूबर व २२ नवम्बर १८११) इस मामले में सर चार्ल्स मेटकॉफ द्वारा दिए गये ह्वदनी के सम्बन्ध में ब्रिटिश कार्यवाहियों के विवरण में प्रकट किये गये मतों का भी उल्लेख किया जा सकता है जिनसे मेजर ब्रॉडफुट के कार्य व्यवहारों का अनौचित्य सिद्ध होता है।

१—भारत के अंग्रेज़ सामान्यतः यह मत रखते थे कि मेजर ब्रॉडफुट की नियुक्ति से सिक्खों से युद्ध की सम्भावनाओं में पर्याप्त वृद्धि हो गई थी, साथ ही यह विचार भी प्रकट किया गया था कि यदि मि० क्लर्क ही एजेण्ट के पद पर रहा होता तो युद्ध की कोई आशंका ही न होती। यदि सन् १८४५ में मि० क्लर्क या मि० वेड में से कोई भी एजेण्ट होता तो वह स्वयम् लाहौर जाकर उक्त कार्यवाहियों के प्रबन्धकों के स्वार्थपूर्ण व अदूरदर्शी कार्यों के विरुद्ध शिकायत करता; सदैव यह दिखाने का प्रयत्न करता कि ब्रिटिश सरकार आक्रामक नहीं हो सकती थी, और न ही उस समय तक युद्ध का समर्थन करता जब तक कि सम्मान पूर्ण शान्ति बनाए रखने का कोई भी मार्ग बचा रहता। स्वयम् मेजर ब्रॉडफुट के पत्रों से ही स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि उसे सिक्खों का कितना बड़ा विरोधी समझा जाता था १६ मार्च सन् १८४५ में मुल्तान के दीवान की ओर से उसने एक पत्र में सरकार से पूछा था कि यदि लाहौर की सेना मुल्तान के विरुद्ध कूच करे, तो सिक्खों को नियन्त्रण में रखने के लिए कौन से कदम उठाए जाँय, मुल्तान का दीवान मूलचन्द वस्तुतः लाहौर दरबार के अधीन था, और यह बात रहस्यमय एवम् असाधारण सी प्रतीत होती है कि उसने इस प्रकार का प्रश्न उस व्यक्ति के सम्मुख रखा जिसकी नियुक्ति लाहौर दरबार तथा ब्रिटिश सरकार के बीच मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बनाये रखने के लिए हुई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि मेजर ब्रॉडफुट दीवान मूलराज की वार्ताओं से प्रभावित था, क्योंकि २० नवम्बर सन् १८४५ को उसने पंजाब से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हुए सिन्ध के क्षेत्र में कुछ मील तक घुस गया और ब्रिटिश अधिकारियों को रिपोर्ट मिली की लाहौर के सैनिकों ने अनावश्यक रक्तपात तथा ज्यादती की जो भी हो इन सैनिकों का लक्ष्य स्पष्ट था, सिन्ध और पहाड़ियों के बीच इन दोनों प्रान्तों की सीमा का भी कोई स्पष्ट निर्धारण नहीं किया गया था, परन्तु गवर्नर जनरल, सर चार्ल्स नेपियर ने अपनी सीमा को हिंसात्मक कार्यवाहियों का क्षेत्र बनने से रोकने के लिए अपनी रेजिमेण्ट के एक विंग को रोजहन के कुछ मील नीचे स्थित कश्मीर की ओर कूच करने का आदेश दे दिया जिससे लाहौर अधिकारियों को अपनी सुरक्षा के प्रति चिन्तित होने का एक अन्य कारण मिल गया, परन्तु सर चार्ल्स नेपियर के लक्ष्य एवम् कार्य को समर्थन न मिल सका और सिन्ध विजेता की मुस्तैदी को उचित रूप में न ग्रहण करते हुए, उसे सिक्खों से युद्ध की इच्छा का एक अन्य प्रमाण माना गया।

सर चार्ल्स नेपियर की उत्तेजक कार्यवाहियाँ

सिक्ख सेना और सामान्य सिक्ख प्रजा को यह पक्का विश्वास हो चला था कि अब अंग्रेजों से युद्ध अवश्यम्भावी है, परन्तु अधिक भिज्ञ, लाहौर सरकार के सदस्य जानते थे कि जब तक उनकी ओर से अंग्रेजों के प्रति कोई शत्रुतापूर्ण कार्य अथवा व्यवहार न किया जायगा तब तक अंग्रेजों की ओर से उनकी व्यवस्था में हस्तक्षेप की कोई सम्भावना नहीं है[1]। सिक्ख सरदार अंग्रेजों की शक्ति व कथित

सिक्ख सरदारों द्वारा स्थिति का

रखने वाले प्रत्येक अधिकारी को सूचित किया कि सीमावर्ती सूबों पर सिक्खों के आक्रमण का ख़तरा हर समय बना हुआ था, और उसने सक्खर स्थित ब्रिटिश मेजर जनरल को बताया था कि दीवान मूलराज सिक्खों के विरुद्ध अपनी रक्षा के लिए तैयार था, और इस प्रकार मेजर जनरल को यह विश्वास दिलाना चाहता था कि उसने मुल्तान के दीवान को सिक्ख सन्धि व लाहौर दरबार से फोड़ लेने में सफलता प्राप्त कर ली थी।

१—गवर्नर जनरल का पत्र सिक्रेट कमिटी को, २ दिसम्बर १८४५, पार्लियामेण्टरी पेपर्स, २६ फरवरी १८४६, पृ० २१। मेजर ब्रॉडफुट ने गुलाबसिंह के विषय में लिखा था कि उसे विश्वास था कि अंग्रेज पंजाब को हड़पने की योजनायें बना रहे हैं, और ऐसा ही विश्वास अन्य सरदारों को भी था। मेजर ब्रॉडफुट का पत्र सरकार को, ५ मई १८४५) यह बात बुरी तरह प्रचारित हो गई थी कि अंग्रेजों ने कावुल को इसलिए छोड़ दिया था कि, लाहौर

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

व्यक्तिगत स्वार्थों के लिए प्रयोग

चालों से भयभीत होते हुए भी आपस में संगठित नहीं थे। एक दूसरे के विरुद्ध ईर्ष्या-द्वेष की भावनाओं ने उनकी शक्ति को खोखला कर दिया था, इसके अतिरिक्त वे धन और विलासिता को सम्मान एवम् स्वतंत्रता की अपेक्षा अधिक महत्व देने लगे थे, महाराजा शेर सिंह, सिन्धानवाला तथा अन्य सरदार इस स्थिति के लिए तैयार बैठे थे कि अवसर पाते ही विदेशी शासकों की सहायता व संरक्षण प्राप्त कर लिया जाय और पंजाब को भी ब्रिटिश साम्राज्य का करद राज्य बना दिया जाय। चूँकि इधर कुछ समय से सेना की शक्ति प्रबलतर होती जा रही थी, और सारे निर्णय एवम् निश्चय सैनिक पञ्चायतों द्वारा किए जाने लगे थे, अतः लाहौर सरकार के अधीनस्थ सरदार तथा अन्य स्वार्थी जन सेना के रूप में खड़े इस नए खतरे से अत्यधिक भयभीत रहने लगे थे। जहाँ एक ओर यह सम्भवना उन्हें आशंकित किए थी कि उन्हें बारी बारी से उस संगठित शक्ति के कोपाग्नि में भस्म किया जा सकता है जिसे नियंत्रित रख सकने की शक्ति किसी में भी नहीं थी, वहीं दूसरी ओर प्रशासक वर्ग को यह भय भी सता रहा था कि कहीं सेना में कोई ऐसा प्रभावशाली नायक न उत्पन्न हो जाय, जो इन सरदारों के सारे प्रभाव को समाप्त कर दे, सारी शक्ति अपने हाथ में ले ले और धन के ढेर पर बैठे हुए विलासी और स्वार्थी सरदारों की बलि चढ़ा कर अपने अनुयायियों को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करे। खालसा सेना की अनियंत्रित शक्ति के कारण, अंग्रेजों की सहायता लेने की बात का सर्वदा विरोध करने वाले, जम्मू के राजा को भी यह महसूस होने लगा कि बिना अंग्रेजों के नाम का आश्रय लिए न तो वह अपने पराधीन राज्य में सुरक्षित रह सकता था, न लाहौर के वजीर के पद पर अपना स्थायी अधिकार ही स्थापित कर सकता था, इसी प्रकार महारानी जिन्दाँ के विशेष कृपा पात्र लाल सिंह, तेजसिंह तथा अन्य सिक्ख सरदार भी सिक्ख सेना को नियन्त्रण में रखने में असमर्थ्य का अनुभव कर रहे थे। प्रशासक वर्ग के सभी लोगों ने यह विचार किया कि अब उनकी शक्ति एवम् सत्ता को सुरक्षित रखने का

सेना के विनाश के लिए उसे अंग्रेजों के

केवल एक मार्ग शेष रह गया था, और वह यह कि खालसा सेना को अंग्रेजों के विरुद्ध उत्तेजित करके लड़ा

उनके हाथ में नहीं था और जिस दिन पंजाब को उन्होंने अपनी सत्ता के अधीन कि या उसी दिन से योजनाबद्धढंग से वे खोरासान की सत्ता को अपनी मुठ्ठी में करने का प्रयत्न प्रारम्भ कर देंगे।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विरुद्ध उत्तेजित करना: कर खपा दिया जाय, और इस प्रकार खालसा सेना की समाप्ति पर उनके पद और स्वार्थ सुरक्षित हो जायँगे, और यही सोचकर उन्होंने एक ऐसे युद्ध की आग भड़काने की योजना बनाई जो अंत में पंजाब की स्वाधीनता के विनाश का कारण बना।[1] यदि

१—गवर्नर जनरल का पत्र सिक्रेट कमेटी को, ३१ दिसम्बर १८४५ (पार्लि० पेपर्स, २६ फरवरी १८४६, पृ० २६)। यहाँ महारानी के अनुचित प्रेम-सम्बन्धों अथवा जवाहिरसिंह के चिड़चिड़े स्वभाव आदि का उल्लेख करना आवश्यक नहीं समझा गया है यद्यपि ब्रिटिश पार्लियामेन्ट के समक्ष उनकी चारित्रिक दुर्बलताओं को अतिरंजित रूप में प्रस्तुत करके लाहौर दरबार को निम्नस्तरीय सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। हो सकता है कि जवाहिर सिंह जब तब शराब के नशे में रहता रहा हो या महारानी अपने अनैतिक कार्यों को छिपाने का विशेष प्रयत्न न करती रही हों परन्तु सार्वजनिक स्थलों व अवसरों पर औपचारिक शिष्टता का पूर्ण ध्यान रक्खा जाता था, विशेषतः उस समय जब कि विदेशी लोग भी दरबार में उपस्थित रहते थे। राजाओं का व्यक्तिगत जीवन प्रायः अनेक अफवाहों का विषय हो सकता है परन्तु सार्वजनिक मामलों पर समर्थ व शक्तिशाली वर्ग के घरेलू व व्यक्तिगत दोषों का अपेक्षाकृत कम प्रभाव पड़ता है।

ऐसे व्यक्तिगत रहस्यों व दोषों की खोजबीन में प्रायः समाचारवाहक अधिक दिलचस्पी दिखाते हैं, और ऐसी बातों पर इतना अधिक ध्यान देने के लिए भारत स्थित ब्रिटिश कूटनीतिक सेवा की निन्दा भी अनेक बार की गई है; अन्त में सर्वविदित है कि हिन्दुस्तान स्थित अंग्रेजों के हिन्दुस्तानी सेवक—जो न अधिक शिक्षित होते हैं न कुलीन-न सोचते हैं कि उन समस्त राज्यों तथा शासकों के सम्बन्ध में इस प्रकार की कुत्सित अफ़वाहों, या सूचनावों द्वारा अपने विदेशी स्वामियों को सर्वाधिक प्रसन्न कर सकते हैं जो विशेष तौर पर ब्रिटिश सरकार के प्रति शत्रुतापूर्ण दृष्टिकोण रखते हैं, और जिनके साथ प्रतिद्वन्दिता या युद्ध की सम्भावना है उनमें खुशामद की आदत इतनी गहराई तक जड़ें जमाए हुए हैं, और यह विश्वास इतना प्रबल है कि अंगेज अपनी प्रशंसा और दूसरों की निन्दा में अत्याधिक रुचि लेते हैं—कि छोटे से छोटे स्थानीय अधिकारी भी पड़ोसी सन्धि वद्ध, या ब्रिटिश-संरक्षित रियासतों के सम्बन्ध में मौखिक या लिखित रिपोर्ट में निन्दा-सूचक शब्दों का प्रयोग आवश्यक समझते हैं; इस प्रकार लाहोर का समाचार लेखक सिक्ख दरबार के जो घृणित शब्द-चित्रः प्रस्तुत

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सेना की पंचायतों को अंग्रेजों की ओर से युद्ध की तैयारियाँ किए जाने की अफवाह के पक्ष में प्रमाण न मिलते, और उन्होंने इस पर विश्वास न कर लिया होता तो वे लालसिंह और तेजसिंह जैसे कपटी सरदारों के उत्तेजक प्रचारों पर सम्भवतः बिल्कुल ध्यान न देते, यद्यपि कुछ ही वर्ष पूर्व, अपने महान महाराजा के एक इशारे पर ये ही सिक्ख सैनिक बिना पूछताछ या सोच विचार के दिल्ली पर भी धावा कर सकते थे; परन्तु जो कुछ कहकर सिक्ख सैनिकों को भड़काया, बहकाया जा रहा था, ब्रिटिश सत्ता के स्थानीय प्रतिनिधियों के कार्यों एवम् व्यवहारों ने एक तरह से उसकी पुष्टि ही की, और खालसा सेना का वातावरण इतना उत्तेजनामय हो उठा कि जब सैनिकों से व्यंगपूर्वक पूछा जाता था कि क्या वे खालसा राज्य के क्षेत्र को सीमित किए जाते देखते रहेंगे जब कि यूरोप की भारत-स्थित सरकार लाहौर के मैदानों की ओर पाँव पसारती आ रही है तो वे जोश से उत्तर देते थे कि गुरुगोबिन्द जी के खालसा के समस्त सदस्य जान देकर भी देश-रक्षा का यत्न करेंगे और पहले ही कूच करके शत्रुओं के दाँत उन्हीं की भूमि पर खट्टे करेंगे[1]। जिस समय यह वातावरण बना हुआ था, अर्थात् नवम्बर के प्रारम्भ में लुधियाना के निकट स्थित दो गाँवों को यह कह कर खाली करा दिया कि ब्रिटिश सरकार के अपराधी उनमें जा छुपते थे, और तत्सम्बन्धित आवश्यक कार्यवाहियों में विलम्ब के साथ कठिनाई भी होती थी और वे अपराधी ब्रिटिश-दण्ड से बचे रह जाते थे क्योंकि सिक्ख सरकार उन्हें अंग्रेजों के हवाले करने की परवाह नहीं करती थी[2]। ऐसे कार्य को तो सिक्ख-समर्थन उस समय भी नहीं मिल सकता था जब कि ये दोनों राज्य अभिन्न समझे जाते थे, और इसी समय ब्रिटिश गवर्नर जनरल के सीमा पर आ पहुँचने से, यदि पंचायतों को अंग्रेजों के आक्रामक इरादों व तैयारियों के विषय में कुछ सन्देह रहा हो, तो वह भी दूर हो गया। सिक्ख लोग जहाँ कहीं भी एकत्रित होते, शीघ्र ही होनेवाले एक महा-युद्ध की चर्चा करते, अपने

करता है उसका कुछ कारण तो उसके व्यावसायिक चरित्र में निहित है, और अंशतः इस विश्वास में, कि वह वही कह रहा है जो अंग्रेज सुनना चाहते थे।

१—उस समय के साधारण कोटि के व्यक्तिगत पत्र व्यवहारों में भी इसी प्रकार विचार प्रकट किये गये हैं।

२—लगता है कि मेजर ब्राँडफुट का राजकीय पत्रव्यवहार २१ नवम्बर १८४५ के पश्चात् बन्द हो गया था, इसके जो पत्र रिकार्ड में हैं, उनमें इस मामले पर कोई रिपोर्ट नहीं मिलती।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रिय, स्वर्गीय महाराजा, रणजीतसिंह की समाधि के इर्द गिर्द जमावड़ा करते और खालसा के प्रति भक्ति की शपथ खाते[1]। इसी प्रकार के उत्साह एवम् उत्तेजना से पूर्ण वातावरण में १७ नवम्बर को अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी गई जिसके कुछ ही दिन पश्चात् लाहौर सिक्ख सतलज पार से सिक्ख सेना की टुकड़ियाँ सीमा की ओर बढ़ने लगीं, १० दिस० १८१५ उन्होंने ११वीं दिसम्बर को हरिकी और कसूर के मध्य, सतलज को पार करना प्रारम्भ किया, और इसी माह की १४वीं तारीख को सिक्ख सेना ने फीरोजपुर से कुछ ही मील के अन्दर अपनी मोर्चाबन्दी कर ली[2]।

इस प्रकार इस युद्ध में सिक्खों ने ही पहल की, जिन्होंने बिना गम्भीरता-पूर्वक विचार किए एक महत्वपूर्ण एवम् दृढ़ सन्धि को भंग कर दिया और सन्धिबद्ध मित्रों के राज्यक्षेत्र पर आक्रमण कर दिया। यह एक निश्चित तथ्य है कि अब तक अंग्रेज पंजाब के साथ शान्ति व मित्रता का सम्बन्ध बनाए रखना चाहते थे, और एक आकस्मिक पर्यवेक्षक को सिक्खों का यह आक्रमण असंगत एवम् अतार्किक प्रतीत होगा, फिर भी, विशेष खोज व सूक्ष्म निरीक्षण करने पर ज्ञात होगा कि अंग्रेज अनेक वर्षों से सिक्खों के प्रति जिस नीति पर चलते आ रहे थे वह वास्तव में इतनी सक्षम नहीं थी कि शान्तिपूर्ण सम्बन्ध बना रहने देती और इसीलिए वे इस युद्ध को प्रोत्साहित करने के दोषारोपण से पूर्णतः मुक्त नहीं किए जा सकते जिसकी वे आशा कर रहे थे, और जिससे उनके अपने ही सम्मान व गौरव के वृद्धि की सम्भावना थी। अंग्रेज अधिकारियों की कार्यवाहियों में प्रारम्भिक सम्बन्धों जैसी शिष्टाचार और भेद उत्पन्न करने की सम्भावना रखने वाली छोटी से छोटी बात पर चिन्ता प्रकट करने की भावना अब वास्तव में दिखाई ही नहीं पड़ती जिसमें परि-स्थितियों के ऐसे किसी भी परिवर्तन का प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए था जो पूर्व निश्चित व्यवस्थाओं के परित्याग का कारण बनता, और निर्बल हो जाने पर भी सिक्खों की स्वतन्त्र सत्ता को यथा सम्भव अक्षुण्ण रखना अंग्रेज सरकार का कर्तव्य था। इस समय अंग्रेजों के कार्य उस उच्च-बुद्धि एवम् निश्चित दूर-

१—सरकार के लिए लाहौर समाचार-लेखक द्वारा प्रस्तुत वितरण, २४ नवम्बर १८४५।

२—गवर्नर जनरल का पत्र सिक्रेटरी कमिटी को, २ व ३१ दिसम्बर (पार्लि० पेपर्स, १८४६)।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

दर्शिता का भी परिचय नहीं देते जिन्हें वास्तविक जीवन, तथा इतिहास के उदाहरणों से परिचित एक बुद्धिमान शासक जाति की नीतियों का एक आवश्यक अंग होना चाहिए। सिक्खों पर व्यापार व जल-यातायात की सन्धियों को बिना इस बात पर विचार किए लाद दिया गया था कि वे असमान एकता के इन बन्धनों को अच्छी दृष्टि से नहीं देखते थे; उनको इस बात के लिए विवश किया गया कि वे सिन्ध, अफ़गानिस्तान और तिब्बत की ओर बढ़ने का प्रयास न करें, जिसका सीधा अर्थ यह था कि सिक्खों की सीमाओं से सटे हुए इन समस्त क्षेत्रों को ब्रिटिश महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए बिना किसी विरोध के खुला छोड़ दिया जाय; और पुरानी परम्पराओं को पूर्णतः तिलाँजलि देते हुए सिक्ख सीमाओं पर नई सैनिक चौकियाँ स्थापित कर उन्हें और अधिक आशंकित कर दिया गया, जब कि इनकी स्थापना के लिए कोई भी संगत वैध अथवा शक्तिशाली कारण नहीं दिया जा सकता था इस सम्बन्ध में जो कदम उठाए गए, उन पर अंग्रेजों ने अपनी शक्ति के विकास की दृष्टि से ही विचार किया, और इसकी रंचमात्र भी चिन्ता न की कि ऐसे कार्यों से सिक्ख क्या निष्कर्ष निकालेंगे, यद्यपि ऐसे निष्कर्ष वे कितने भी गलत क्यों न हों—निश्चय ही एक उद्धत् और युद्ध-प्रिय जाति को युद्ध के लिए प्रेरित करने की क्षमता रखते थे, और युद्ध के कारण बन सकते थे। इस प्रकार अन्त में, मुख्यतः इसी सम्भावना को एकमात्र दृष्टिकेन्द्र बना लिया गया कि सिक्ख नरेश, सामन्त-सर्दार व जनता उत्तेजित होकर अपने अजेयशत्रु के ऊपर आक्रमण करके खुद ब-खुद पतन के गर्त में जा पड़े। इसी प्रकार जिस प्रारम्भिक व्यवस्था द्वारा सरहिन्द के सूबे को ब्रिटिश सेना व प्रजा से खाली कर दिया गया था और जिसके द्वारा अधीनस्थ रियासतों के एक संघ को, एक अर्ध बर्बर सैनिक सत्ता तथा एक मानवतावादी व सभ्य सरकार की पारस्परिक कार्यवाहियों को उदार बनाने का अवसर दिया गया था, उसे भी अंग्रेजों ने ऐसे लक्ष्यों के लिए उपेक्षित कर दिया जो आवश्यक और उपयोगी प्रतीत हो रहे थे, परन्तु जिनके क्षेत्र-विस्तार के निर्धारण में नीतिकौशल व बुद्धि से काम नहीं लिया गया था, सिक्खों ने अंग्रेजों की इस योजना को भ्रामक अर्थों में ग्रहण करते हुए निस्कर्ष निकाला कि अंग्रेज मन्द गति से परन्तु निश्चित योजना पर चलते हुए पंजाब-विजय के पथ पर अग्रसर हो रहे थे, और जब उनकी इस गलत-फहमी को, और अधिक संकुचित एवम् एकतरफा तर्कों का बल मिल गया, तो सिक्ख नीति पूर्णतः दोषयुक्त हो गई और वास्तव में उस भयंकर युद्ध का कारण बनी जिसको टाले रहने के लिए अंग्रेज सरकार इतनी चिन्तित थी।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अभी इस समय तक अंग्रेज चूँकि गुरुगोबिन्द जी के शिष्यों के उत्साह के पीछे निहित दृढ़ता का स्पष्ट आभास न पा सके थे, अतः वे उन्हें अत्यन्त निर्बल तथा हेय समझते थे; उन्होंने एक युवा और श्रद्धापूर्ण धर्म से उत्पन्न भावना की एकता व गहराई का परिचय नहीं पाया था, और अभी तक सिक्ख अपने शौर्य के ऐतिहासिक दृष्टान्तों से राजपूतों व पठानों की श्रेणी तक नहीं पहुँच पाए थे, और इसलिए अपनी शक्ति के प्रति विश्वस्त अंग्रेज उनके क्षोभ व आशंकाजनित प्रयासों से रंचमात्र भी चिन्तित होने की आवश्यकता का अनुभव नहीं कर रहे थे।

जैसा कि पीछे लिखा जा चुका है, सन् १८४२ ई० के अभियान में अंग्रेजों ने सिक्खों को अफगानों से युद्ध करने में अक्षम समझा था, और उन्हें युद्ध कौशल में जम्मू की पहाड़ियों के निवासियों से भी हेय माना गया था। सन् १८४५ ई० के सरकारी पत्रव्यवहार में सिक्ख सैनिकों को 'कोलाहलपूर्ण भीड़' की संज्ञा दी जाती थी, और कहा जाता था कि सिक्ख सेना की क्षमता दिन व दिन घटती जा रही थी[1]। यह निस्सन्देह निश्चित है कि अंग्रेज अफसरों और हिन्दुस्तानी सिपाहियों को यह आशा न थी कि उन्हें सिक्ख युद्ध में कठिन, लम्बे व दृढ़ संघर्ष का सामना करना पड़ेगा; उन्हें तो विश्वास था कि दृढ़तापूर्वक कूच करके तथा तोपों के कुछ गोले छोड़कर ही विजय प्राप्त कर लेंगे।[2]

अंग्रेजों ने अपने शत्रु की शक्ति का गलत अनुमान ही नहीं लगाया था, बल्कि वे इस बात का भी सही अन्दाज नहीं लगा पाए थे कि सम्भावित सिक्ख

१—मेजर ब्रॉडफुट के पत्र सरकार को, १८ व २१ जनवरी, १८४५; एक वर्ष पूर्व लेफ्टि० कर्नल लॉरेन्स ('कलकत्ता रिव्यू, नं० ३, पृ० १७६, १७७) ने यह मत प्रकट किया था कि सिक्ख सेना किसी भी अन्य भारतीय सेना के समान ही कुशल थी, और ग्वालियर की उन टुकड़ियों से तो निश्चय ही कम कुशल नहीं थी जो महाराज पुर में लड़ी थीं। वह लाहौर के तोपखाने को अवश्य कुछ कम कुशल मानता था यद्यपि उसका मत था कि मोर्चों पर ये तोपें अच्छा काम कर सकती थीं, 'एडेवेंचरर इन द पंजाब (पृ० ४७, नोट 'के') में उसने मराठा तोपखाने को अधिक कुशल बताया था।

२—मेजर स्मिथ का मत था कि ब्रिटिश सेना के हिन्दुस्तानी सिपाही सिक्ख सैनिकों के शौर्य के प्रशंसक थे, यद्यपि अंग्रेज उन्हें बकवादी और कायर मानते थे ('रेनिंग फेमिली ऑव लाहौर' भूमिका, पृ० २४ व २५); देखिए डाक्टर मैकग्रेगर, 'हिस्ट्री ऑव इण्डिया', पृ० ८६, ९०,।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आक्रमण का क्या रूप होगा[1]। उन्होंने स्वप्न में भी यह नहीं सोचा था कि सिक्ख अधिकारियों या सेना में समानता के स्तर पर अजेय समझी जानेवाली ब्रिटिश सेना के साथ खुले संघर्ष की घोषणा के साथ सतलज पार करने का साहस भी हो सकता है। सिक्ख सरदारों के विश्वासघाती विचारों के

अंग्रेजों की तैयारी न के बराबर

१—देखिए गवर्नर जनरल का पत्र सिक्रेट कमिटी को, ३१ दिसम्बर १८४५ (पार्लि० पेपर्स, १८४६) तथा 'कलकत्ता रिव्यू' नम्बर १६, पृ० ४७५। इस स्थल पर उस विषय पर कुछ शब्द आवश्यक प्रतीत होते हैं जो उस समय भारत में विवाद स्पद बना हुआ था, और वह था, मेजर ब्राँडफुट का कथित अविश्वास कि सिक्ख सतलज पार कर सकते थे, यद्यपि उसके सहायक कैप्टेन निकल्सन का मत था कि वे ऐसा कर सकते थे। भारतीय जनता ने इस मामले को इस रूप में ग्रहण किया कि फीरोज़पुर में तैनात कै० निकल्सन कई महीनों से या एक वर्ष से भी अधिक समय से यह आशंका प्रकट करता आ रहा था कि सीमास्थित ब्रिटिश सूबों पर एक निश्चित अवधि के भीतर निश्चय ही आक्रमण होगा, जब कि वास्तविकता यह थी कि निकल्सन भी अन्य लोगों से कम अनिश्चय की स्थिति में नहीं था। सत्य तो यह प्रतीत होता है कि जब कैप्टेन निकल्सन ने यह रिपोर्ट दी कि सिक्ख सेना कूच कर सतलज पर कैम्प डाल चुकी है और सतलज पार करने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ है, तो मेजर ब्राँडफुट ने उस पर विश्वास नहीं किया और लाहौर से इसके विपरीत प्राप्त एक गुप्त सूचना—जो उसके अपने मत से मेल खाती थी—को; अधिक महत्व दिया, गवर्नर जनरल का उक्त पत्र इसी सम्भावना का समर्थन करता प्रतीत होता है (पार्लि० पेपर्स १८४६, पृ० २६, २७)।

'कलकत्ता रिव्यू' (संख्या १६, पृ० ४७५) का लेखक मेजर ब्राँडफुट की सफ़ाई देते हुए कहता है कि सीमास्थित समस्त अफ़सर ऐसा ही मत रखते थे। यहाँ विवाद की बात यह नहीं है कि सिक्ख आक्रमण सम्भव था अथवा नहीं, बल्कि यह है कि दिसम्बर १८४५ के प्रारम्भ में मेजर ब्राँडफुट को यह समझ लेना चाहिए था अथवा नहीं, कि सिक्ख सतलज पार करेंगे। उक्त विवेचक यह कहना भूल जाता है कि स्थानीय अधिकारियों में केवल मेजर ब्रांडफुट ही सिक्खों के उत्साह की मात्रा का सही अनुमान लगा सकने की स्थिति में था, तथा अन्य अधिकारियों की रिपोर्ट १७ नवम्बर से पहले के ही समाचारों पर आधारित थी; इस प्रकार उसे छोड़ कर शेष सभी अधिकारियों के पास सम्भावित कार्यवाही का सही अन्दाज लगा पाने के पूर्ण साधन नहीं थे।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कारण निश्चिन्त ब्रिटिश अधिकारी खालसा की सेना की एकता तथा भावनात्मक गहराई का सही अनुमान नहीं लगा पाए थे और बराबर विश्वास करते रहे थे कि देर सबेर सिक्ख युद्ध तो अवश्य करेंगे, परन्तु वह युद्ध बहुत ही असंगठित और छिटपुट होगा जिसमें अंग्रेजों को भी हस्तक्षेप करना होगा, परन्तु अंग्रेज यह हस्तक्षेप भी अपनी सुविधानुसार करेंगे। ब्रिटिश पक्ष में पुलों के निर्माण के लिए नावों, तथा मोर्चे के लिए रेजिमेण्टों और तोपों तथा साथ ही युद्ध के प्रति स्वाभाविक उत्साह का अभाव तो नहीं था, परन्तु खाद्यसामग्री एवम् गोलाबारूद, गाड़ियाँ और अस्पताली साज सामान आदि की संख्या व मात्रा किसी बड़े अभियान का भार संभालने के लिए अपर्याप्त थी; इस प्रकार के सभी सामान दिल्ली या आगरा में पड़े हुए थे, और वहाँ भी उन्हें शीघ्रता से इकट्ठा करके भेजने की व्यवस्था करना कोई सरल कार्य नहीं था; अंग्रेजों की इस असावधानी का कारण—कहा जाता है - यह था कि वे वास्तव में शान्ति बनाए रखना चाहते थे, और उन्हें आशा थी कि इस प्रकार सरहद पर सेना एकत्रित करने से सीमाक्षेत्र लुटेरों तथा सिक्ख आक्रामकों से सुरक्षित रहेगा, और सिक्ख भी अंग्रेजों से युद्ध करने को आत्महत्या ही समझ कर कोई शत्रुतापूर्ण कार्यवाही नहीं करेंगे[1]।

सिक्खों के अवरोध के लिए अंग्रेजों की शीघ्रता

गवर्नर जनरल[2] दिसम्बर के प्रारम्भ में ही अम्बाला में ब्रिटिश कमाण्डर इन-चीफ से जा मिले और ज्योंही यह बात निश्चित रूप से ज्ञात हो गई कि सिक्ख पूरी शक्ति के साथ सतलज की ओर बढ़ रहे थे, उत्तरी सूबों की सारी ब्रिटिश टुकड़ियों को सीमा की ओर कूच करने का आदेश दे दिया गया। निकटतम डिवीजनें थीं अम्बाला, लुधियाना तथा फीरोजपुर की, जिनमें ६९ तोपों के साथ कुल मिलाकर १७,००० सैनिक थे

१—इस समय प्रायः यह बात कही जाती थी, और ठीक भी थी कि यद्यपि भाग्यवश भारत सरकार के पास प्रधान के रूप में लार्ड हार्डिंगंज जैसा सुयोग्य व व्यवहारिक सैनिक था, परन्तु लार्ड एलेनबरो इस समय तक गवर्नर जनरल के पद पर बने रहते तो ब्रिटिश सेना कहीं अधिक साज-सज्जा के साथ युद्ध क्षेत्र में खड़ी होती।

२—[जुलाई १८४४ में लार्ड एलेनबरो के स्थान पर गवर्नर जनरल के पद पर लार्ड हार्डिंगंज की नियुक्ति की गई थी, इस युद्ध के समय ब्रिटिश सेना के कमाण्डर-इन चीफ, सर ह्यू ग गफ थे—सम्पादक]

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

और चूँकि फीरोजपुर की डिवीजन सबसे अधिक खतरे में थी, अतः उसकी सहायता के लिए अम्बाला की टुकड़ियों को सीधे भेज दिया गया और लार्ड हार्डिगंज ने निश्चय किया कि लुधियाना के छोटे से किले की निगरानी के लिए एक छोटी सी टुकड़ी छोड़ दी जाय और लॉर्ड गफ को यथासम्भव बड़ी सी बड़ी सेना के साथ सिक्खों को अवरुद्ध करने के लिए भेज दिया जाय, यदि वे सतलज को पार करने का प्रयास करें।[1]

सिक्ख सेना की संख्या

इस आक्रामक सिक्ख सेना में कुल मिलाकर ३५ या ४० हजार सैनिकों के साथ एक सौ पचास तोपें थीं जिसमें वह टुकड़ी की संख्या सम्मिलित नहीं है जिसे अवसर के अनुकूल कार्यवाही करने के उद्देश्य से लुधियाना की ओर भेज दिया गया था; उस समय सिक्खों की संख्या का जो अनुमान लगाया गया था, वह उक्त संख्या से काफी अधिक था क्योंकि विजेता व पराजित, दोनों ही प्रायः एक दूसरे के सैन्य-बल का अतिरंजित विवरण देते हैं। अंग्रेजों का अनुमान था कि सिक्खों की स्थायी सैन्य संख्या ब्रिटिश फौज की डेढ़गुनी थी, परन्तु इस सम्बन्ध में कोई सन्तोषजनक प्रमाण नहीं मिलता यद्यपि अस्थायी अश्वारोही दलों ने एक बड़ी संख्या में एकत्रित हो कर सिक्ख सेना को ब्रिटिश सेना का लगभग दो गुना बना दिया था[2]।

फीरोजपुर खतरे में, परन्तु आक्रमण

सिक्ख सेनानायक ने फीरोजपुर के निकट आ पहुँचे; इस समय फीरोजपुर की रक्षा के लिए कुल सात हजार सैनिक ही थे, और यद्यपि अपने कमाण्डर, सरजॉन लिटलर के नेतृत्व में वे उमड़ती हुई सिक्ख सेना से लोहा लेने का साहस

१—उस समय फिरोज़शाह में 'कलकत्ता रिव्यू' (संख्या १६, पृ० ४७२) के अनुसार १७,७२७ तथा लार्ड हार्डिगंज के ३१ दिसम्बर १८४५ के पत्र के अनुसार १६, ७०० सैनिक ही, अम्बाला से सतलज तक तैनात ३२, ४७९ सैनिकों में से—इस युद्ध के लिए प्राप्त थे।

२—३१ दिसम्बर १८४५ के पत्र में गवर्नर जनरल ने सिक्खों की अनुमानित सैन्य संख्या ४८ से ६० हजार के बीच बताया है, परन्तु यह अनुमान ठीक नहीं प्रतीत होता क्योंकि पंजाब की कुल स्थायी सैन्य संख्या (पैदल) केवल ४२,००० ही थी जिसकी कुछ रेजिमेण्टें अब भी लाहौर, मुल्तान, पेशावर और कश्मीर में पड़ी हुई थीं, मेरे विचार से इस युद्ध में हर प्रकार के सिक्ख सैनिकों की संख्या कुल मिलाकर लगभग ३० हजार थी।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

में विलम्ब लाल- बाँधे बैठे थे; परन्तु सिक्ख सेना द्वारा फीरोजपुर पर सिंह व तेजसिंह के आक्रमण नहीं किया गया[1]। वास्तव में लालसिंह व तेजसिंह

उद्देश्य यह तो चाहते ही नहीं थे कि वे ब्रिटिश सेना की एक टुकड़ी को काटकर फिर ब्रिटिश सरकार से सन्धि कर ली जाय, बल्कि वे चाहते थे कि ब्रिटिश सेना, खालसा सेना की शक्ति के मद को चूर करके उसे बिखेर दे और अंग्रेज सरकार विजय प्राप्त कर लेने पर उनकी ब्रिटिश भक्ति के पुरस्कार स्वरूप उन्हें एक अधीनस्थ राज्य का वजीर व प्रधान सेनापति बना देगी। इसी देश द्रोही उद्देश्य से प्रेरित होकर वे युद्धोन्मत्त सिक्ख सेना को फीरोजपुर पर आक्रमण करने से रोकते रहे और ब्रिटिश अधिकारियों को अपनी इस गुप्त अभिसन्धि के प्रति आश्वस्त कर दिया; परन्तु इन सरदारों को अपने देश के प्रति अपने उत्तरदायित्व का भी प्रदर्शन करना था और स्वयम् को सिक्ख राज्य के हितों का शुभ चिन्तक सिद्ध करना था; अतः अभी आक्रमण का आदेश न देने के कारणों की व्याख्या करते हुए उन्होंने सिक्ख सेना को यह कह कर बहकाया कि फीरोजपुर की छोटी सी टुकड़ी को हराने से न कोई लाभ ही होगी, न कीर्ति ही मिलेगी; उन्होंने कहा कि खालसा सेना की कीर्ति को देखते हुए उसके यश सम्मान के अनुकूल कार्य यह होगा कि ब्रिटिश सेना के प्रधानों पर आक्रमण किया जाय, और यदि गवर्नर जनरल को मारा या कैद किया जा सके तो खालसा की कीर्ति को बहुत अधिक वृद्धि होगी[2]। सेना ने भी

१—[अनेक अन्य अंग्रेज इतिहास लेखकों ने भी सिक्ख सेनापतियों के इस विश्वासघात पूर्ण कार्य की निन्दा की हैः सर नेपियर लिखते हैं "यदि विश्वास घातक लाल सिंह सिक्ख सेना को फीरोज़ पुर पर तथा तत्पश्चात् मात्र आठ हज़ार सैनिकों द्वारा रक्षित गवर्नर जनरल पर आक्रमण करने देता तो अंग्रेजों की हार अवश्यम्भावी थी" ('सर चार्ल्स नेपियर्स करेसपाण्डेन्स', जिल्द ४, पृ० ६६६) एक अन्य इतिहास लेखक का कथन है कि यदि इस समय महाराजा रणजीत सिंह जीवित होते तो वे सतलज पार करते ही अंग्रेजों के अधीन व संरक्षित प्रदेशों पर धावा बोल देते और लूट पाट करते मेकग्रेगर लिखता है-- यदि लाल सिंह सिक्ख सेना को एक ही स्थान पर रोक रखने के बजाय इधर उधर बिखेर देता तब भी शान्ति स्थापित होने में पर्याप्त समय लग जाता पर यह लाल सिंह की आशा व इच्छा के विपरीत था'--अनुवादक]

२—उस समय यह शत पर्याप्त निश्चित एवम् कुख्यात थी कि लालसिंह फीरोजपुर स्थित ब्रिटिस एजेण्ट मि० निकल्सन से सम्पर्क स्थापित किए हुए था,

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अनुभव किया कि युद्ध के मामलों में संगठन व एकता बनाए रखना चाहिए. और इसी विचार के परिणामस्वरूप रेजिमेण्टों की सैनिक

सिक्खों की चालें: पंचायतों के सारे अधिकार राज्य की कार्यकारिणी के प्रधानों लाल सिंह व तेज सिंह निलम्बित कर दी गई जिससे इन विश्वासघाती सरकारों को अपने कुकृत्यों की पूर्ति में और अधिक सुविधा प्राप्त हो गई[1]। पंचायतों द्वारा स्वेच्छा से अपने अधिकार के त्याग के बावजूद मोर्चा बाँधने और पद सेना तथा अश्वारोहियों की तैनाती आदि से सम्बद्ध साधारण सैनिक व्यवस्थाओं में सेना नायक एवम् निम्नपदीय सरदार स्वेच्छा से ही कार्य करते थे और उस भावना के प्रति सभी को बरबस ही श्रद्धा से सिर झुका देना पड़ता था जिससे अनुप्राणित अस्थायी सिक्ख सैनिक भी गुरुजी के खालसा के लिए प्राणपण से युद्ध करने को तत्पर थे। यद्यपि सिक्ख सेना का नेतृत्व इस समय ऐसे व्यक्तियों के हाथ में था जो युद्ध-कला से अनभिज्ञ होने के साथ ही अपने अनुयायियों के प्रति विश्वासघात भी कर रहे थे, परन्तु सेना में उद्देश्य को उत्साहपूर्ण एकता का प्रभाव केवल उस तीव्रगति से ही

परन्तु इस एजेण्ट की अकाल मृत्यु के कारण अब उनके मध्य हुई वार्ताओं और वादों की सन्तोषजनक जानकारी सम्भव नहीं है; देखिए डा० मैकग्रेगर, 'हिस्ट्री आव द सिख्स' २:८०)।

लालसिंह और तेजसिंह के विश्वासघात के निश्चित तथ्य के प्रति सन्देह प्रकट करते हुए जून १८४६ का 'कलकत्ता रिव्यू' (पृ० ५४६) स्वीकार करता है कि लालसिंह, कैप्टेन निकल्सन से केवल वार्ता ही नहीं कर रहा था, बल्कि ऐसा भी पता लगा था कि उसने ७ फरवरी १८४६ को लेफ्टि० कर्नल लॉरेन्स के पास सोबराँव के सिक्ख मोर्चे का नक्शा भेजा था, तथा मुड़की के युद्ध के एक दिन पश्चात्—१६ दिसम्बर १८४५ को—लालसिंह का एक एजेण्ट मेजर ब्राडफुट के पास भी आया था जिसे उसने काफी फटकार बताकर वापस कर दिया था। [तेजसिंह की बहादुरी के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि युद्ध के बहुत पूर्व ही उसे ज्ञात हो आया था कि तोपखाने के गोला बारूद आदि को भिगों कर व्यर्थ बना दिया गया है, अपने ही पक्ष के इस विश्वास घाती कार्य का उसके आगे के व्यवहार पर काफी प्रभाव पड़ा था— सम्पादक]

१—सरकार के लिए तैयार किए गए लाहौर न्यूज लेटर' से ज्ञात होता है कि ८ नवम्बर १८४५ या उसके आसपास लालसिंह को वजीर और तेजसिंह को प्रधान सेनापति बनाया गया था।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

स्पष्ट हो जाता था जिससे बड़ी बड़ी तोपें गोला बारूद की गाड़ियों तथा खाद्य सामग्रियों को सतलज जैसी चौड़ी नदी के पार पहुँचा दिया गया था। प्रत्येक सिक्ख, इस युद्ध को अपना व्यक्तिगत युद्ध समझता था और स्वेच्छा से मजदूरों की तरह युद्ध सामग्रियों को ढोता था, वह तोपों को खींचता, बैलों को हाँकता, ऊटों की नकेल पकड़े दिखाई देता, और उत्साह पूर्ण प्रसन्नता से नावों में समान लादता-उतारता था जब कि विजातीय, व्यावसायिक सैनिकों में अपने देश या स्वामियों के हितों के प्रति कोई चिन्ता न थी और यद्यपि उन्हे अच्छी तरह अभ्यास कराया गया था, और अच्छा भोजन दिया जाता था, परन्तु उनमें वह रक्त की उष्णता कहाँ से आती जो धर्मोन्मत्त सिक्खों में थी। युवक खालसा सक्रिय और दृढ़-संकल्प था, परन्तु इन व्यवसायी सैनिकों को कभी ऐसे प्रबल शत्रु का सामना नहीं करना पड़ा था और पूरब में युद्ध की उपलब्धियों के लिए विख्यात ब्रिटिश सेना से भयभीत ये विजातीय सैनिकों टुकड़ियाँ अपनी सारी चालों को भूल कर हत प्रभ सी हो गई थीं। सिक्ख सेना ने सतलज नदी को पार कर लिया था और इतने वर्षों से चली आ रही मित्रता की सन्धि भंग हो गई थी, परन्तु सिक्ख अपनी ही तीव्र गति पर चौंक से उठे और वहीं अड़कर सेना के एक भाग ने मोर्चे के खिए खाइयाँ खोदना प्रारम्भ किया और दूसरे भाग को खतरे से बाहर सुरक्षित सेना के रूप में छोड़ दिया।

ब्रिटिश सेना की अम्बाला तथा लुधियाना स्थित डिवीजनें आदेश पाते ही तीव्रगति से अपनी छावनियों को चल पड़ी और १८ दिसम्बर को मुड़की में आ उपस्थित हुई जो फीरोज पुर से वीस मील की दूरी पर स्थित है।

मुड़की का युद्ध १८ दिसम्बर १८४५: अभी वे अपना मोर्चा बना भी नहीं पाए थे कि सिक्ख सेना के भाग ने उन पर हमला बोल दिया, उस समय ऐसा अनुमान लगया गया था कि इस हमलावर सैन्य दल की सैनिक संख्या तीस हजार से भी अधिक थी परन्तु वास्तव में इस दल में दो हजार से भी कम पैदल और लगभग २२ तोपें और आठ या दस हजार अश्वारोही थे[1]। इस आक्रमण में सेना का नेतृत्व

१—इस युद्ध में सिक्खों ने अपूर्व क्षमता का प्रदर्शन करते हुए सिद्ध कर दिया कि अश्वारोहियों के गति के साथ ही पैदल सेना व तोपखाने को भी ले जा सकते थे, और स्पष्ट है कि अंग्रेजों की गतिमान ब्रिग्रेडो को छोड़कर भारत या दक्षिणी एशिया की कोई अन्य सेना उन पर सफल आक्रमण नहीं कर सकती थी।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

लाल सिंह के हाथ में था, जिसने अपनी विश्वासघातक दुरभिसन्धि के अनुकूल आचरण करते हुए सेना को उलझा कर उन्हें नेतृत्वविहीन पराक्रम प्रदर्शित करने के लिए छोड़ दिया, बिना सेनापति द्वारा संचालित सेना की जो गति होनी चाहिए थी, वही हुई; सिक्खों को १७ तोपों से हाथ धोकर पीछे लौटना पड़ा, परन्तु अंग्रेजों की विजय उतनी पूर्ण नहीं थी कि उसे ब्रिटिश सेना द्वारा प्राप्त प्रसिद्ध विजयों की श्रेणी में रक्खा जा सकता[1]। अब यह निश्चय किया गया कि सिक्ख सेना की अगली टुकड़ी पर आक्रमण करने से पूर्व इस ब्रिटिश दल को सर जॉन लिटलर की डिवीजन से मिला दिया जाय जो इस समय मुदकी और फीरोज पुर से दस मील की दूरी पर स्थित फिरोशहर[2] में व्यूह बनाए पड़ी थी। लगभग १०० तोपें और इकट्ठा करके इस मोर्चे की शक्ति बढ़ाई गई और खाइयों को कमर तक गहरा खोदा गया। उस समय ऐसा विश्वास किया जाता था कि ब्रिटिश सेना की अनुमानित संख्या लगभग पचास हजार थी परन्तु बाद की जाँच से पता लगा कि पैदल सेना की केवल

लॉर्ड गफ ने १६ दिसम्बर १८४५ के पत्र में इस आक्रमण सेना की संख्या ३०,००० और तोपों की संख्या ४० बताया है। फिरोजपुर स्थित कै० निकल्सन यह संख्या केवल ३५०० बताता है, जो निश्चय ही वास्तविक से कम है यद्यपि बाद में यह ज्ञात हो गया था कि पैदल सेना काफी कम थी जिससे फीरोजशाह के मोर्चे पर खड़ी रेजिमेण्टों में से प्रत्येक के कुछ सैनिक सम्मिलित थे। 'कलकत्ता रिव्यू', संख्या १६, पृ० ४८६ तोपों की संख्या केवल २२ बताता है जो सम्भवतः सही है।

१—इस युद्ध में ब्रिटिश पक्ष के १५ मारे गये थे और ६५७ घायल हुए थे (लॉर्ड गफ का पत्र, १९ दिसम्बर १८४५) उस समय लॉर्ड गफ के पास लगभग ११, ००० सैनिक थे, गुप्तचरों की दोषपूर्ण प्रणाली के कारण अंग्रेज अधिकारी सिक्खों की स्थिति व उनके लक्ष्य की जानकारी न पा सके थे, और अश्वारोहियों का इतना अक्षम प्रयोग किया गया कि सिक्खों के काफी नजदीक आ जाने पर ही वे उनका पता पा सके, और इसी कारण उन्हें बीच में अवरुद्ध न किया जा सका।

२—इस महत्वपूर्ण युद्ध के स्थल का शुद्ध नाम है 'फिरोशहर', इसके लिये फिरोज़शाह लिखना वास्तव में गलत है, परन्तु क्षेत्र के किसान या अन्य लोगों की बातचीत सुनने पर 'फिरोशहर' की अपेक्षा 'फिरोजशाह, ही सुनाई पड़ता है। सिक्ख इसे 'फीरो की लड़ाई' कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

बारह रेजिमेण्टें थीं, और अश्वारोहियों की संख्या आठ से दस हजार के बीच में थी। इस प्रकार सिक्ख सेना के जिस भाग पर आक्रमण किया गय उसकी संख्या आक्रामक सेना से बहुत अधिक नहीं थी; तोपों के आकार व उनकी संख्या में सिक्ख अवश्य कुछ अच्छी स्थिति में थे, क्योंकि ब्रिटिश तोपखाने की लगभग सभी तोपें ६ और ९ पौण्ड वाली ही थी;[1] परन्तु ब्रिटिश तोपखाने की प्रबलता के सम्बन्ध में लोग अत्यधिक विश्वास रखते थे, और उस समय की अंग्रेजी तोपों को देखते हुए यह माना जाता था कि ब्रिटिश सेना के सिपाही अपने से दस गुनी बड़ी सेना पर भी पूर्ण विश्वास के साथ धावा बोल सकते थे।

२१ वीं दिसम्बर को दोपहर के लगभग लॉर्ड गफ की सेना फिरोशहर में स्थित सर जॉन लिटलर की सेना से जा मिली, जहाँ से शत्रु के मोर्चे की दूरी केवल चार मील थी। आक्रमण की योजना तैयार करने में काफी समय लग गया अतः सन्ध्या से पूर्व आक्रमण नहीं किया जा सका;

फिरोशहर का युद्ध

आत्मविश्वसी अंग्रेज अब मनचाहा युद्ध क्षेत्र पा गए और सिक्खों की थे; उन्होंने सीधी कतारों में आगे कदम बढ़ाए और

१—लाहौर की सेना के सिक्ख और यूरोपीय अफ़सर इस बात पर एक मत थे कि फिरोशहर की सिक्ख सेना में केवल बारह रेजिमेण्टें ही थी, और यही सत्य भी प्रतीत होता है। गवर्नर जनरल और कमाण्डर इन चीफ़, दोनों के ही अनुमानों के अनुसार सतलज के बाएँ तट पर ६०,००० सिक्ख सैनिक थे और लार्ड गफ़ के अनुसार तेज सिंह २२ दिसम्बर को ताज़ी बटेलियनों तथा एक शक्तिशाली तोपखानें के अतिरिक्त ३०,०० अश्वारोही भी ले आया था जिसे मान लेने पर फिरोशहर की पहले दिन की लड़ाई में सिक्ख सैनिकों की संख्या बहुत कम हो जाती है (देखिए २२ व ३१ दिसम्बर १८४५ के पत्र)। लेखक को सूचना मिली है कि युद्ध के पश्चात् लाहौर स्थित ब्रिटिश अधिकारियों के आधार पर लार्ड गफ़ ने फिरोशहर की सिक्ख सेना की संख्या बताई थी ४६,८०८ सैनिक तथा ८८ तोपें "जिसमें तेज सिंह द्वारा लाई तथा ले जाई गई तोपें भी सम्मिलित है।" सिक्ख तोपखाने का कुछ हल्का अनुमान उक्त गणना को कुछ विश्वसनीय बना देता है और तोपों की भाँति यदि तेजसिंह द्वारा लाये गये सैनिकों की संख्या को भी ४६८०८ में ही सम्मिलित मान लिया जाय तो यह अनुमान पूरी तरह विश्वसनीय हो सकता है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वापसी २१ व २२ दिसम्बर १८४५: उनके विख्यात तोपखाने ने गोले उगलना प्रारम्भ कर दिया, परन्तु सिक्ख तोपों ने भी उतनी ही तत्परता, तीव्रता व कुशता से ब्रिटिश गोलों की बाढ़ का प्रत्युत्तर दिया; सिक्ख सैनिक तोपों के बीच में और उनके पीछे दृढ़तापूर्वक डटे रहे और उनकी बन्दूकें अपना काम करती रहीं। अंग्रेजी सेना के अधिकारी व सैनिकों की आँखें आश्चर्य से विस्फरित हो गई क्योंकि उन्होंने सिक्खों से इतने कड़े प्रतिरोध की आशा नहीं की थी, सिक्ख तोपों की भयंकर अग्निवृष्टि से ब्रिटिश तोपें अस्त व्यस्त हो गईं, और गोले बारूद की गाड़ियाँ उड़ गईं; अंग्रेजी टुकड़ियों की गति पूर्णतः अवरुद्ध हो गई, एक के बाद दूसरी बटेलियन को बिखेर बिखेर कर पीछे लौटने पर विवश कर दिया गया, और सूर्यास्त होने के बाद ही ब्रिटिश सेना शत्रु के मोर्चे के कुछ भाग पर अधिकार कर सकी। घने अन्धकार और युद्ध की भयंकरता ने अंग्रेजों को घबराहट में डाल दिया, विभिन्न रेजिमेण्टों और विभागों के आदमी एक भीड़ के रूप में जहाँ तहाँ इकट्ठे हो गए; विभिन्न सेनानायक यह भी न जान पाए कि उन्हें कुछ सफलता मिली अथवा नहीं; और मिली भी तो किस सीमा तक; कर्नलों को यह भी पता नहीं था कि जिन रेजिमेण्टों को लेकर वे युद्ध क्षेत्र में उतरे थे, वे उस समय कहाँ थीं, या उस सेना की क्या गति हुई जिसके वे अंग थे। शत्रु सेना की पंक्तियों के कुछ भागों में दरार भी नहीं पड़ने पाई थी; सिक्खों की जो तोपें अभी तक उन्हीं के अधिकार में थीं, उनके मुँह ब्रिटिश सैनिकों की अस्तव्यस्त भीड़ की ओर घुमा दिए गए जो ढण्डक, प्यास और थकावट से पस्त थे, और आग जलाकर अपने ठण्ड से अकड़े हुए अंगों को गरम करने के प्रयास में सतर्क शत्रु का ध्यान आकृष्ट कर रहे थे, इस समय ब्रिटिश सेना अत्यधिक संकट एवम् घबराहट की स्थिति में थी; उनके व्यवसायिक सैनिकों ने न केवल भारत में, बल्कि विदेशों में भी अपना युद्ध कौशल प्रकट किया था, परन्तु वह स्थिति उस समय की थी जब शत्रु सेनाओं में अनुशासन को विशेष महत्व नहीं दिया जाता था और ब्रिटिश सेना निरन्तर विजय प्राप्त करके अजेय समझी जाने लगीं थी। कुछ ही घण्टों की गोलाबारी के ताण्डव नृत्य ने एक दूर देश की पाँच हजार सन्तानों को बता दिया कि सिक्खों ने उनकी युद्ध कला को सीख लिया था, और एक ऐसा संकट उत्पन्न कर दिया था जिससे त्राण पाने के लिए उन्हें अपनी सारी शक्ति का प्रयोग करना था। उस चिरस्मरणीय कालरात्रि को अंग्रेजों ने अनुभव किया कि शायद ही उस भूमि पर उनका अधिकार बना रह सकता था जिसपर वे लड़ रहे थे, उनके पास कोई सुरक्षित

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सेना नहीं थी जब कि शत्रु ने दूसरी सुरक्षित सेना का सहारा बना रक्खा था और बढ़ी हुई संख्या के साथ पुनः और प्रबलता से युद्ध प्रारम्भ कर सकने की स्थिति में थे। पहले तो ब्रिटिश अधिकारियों ने तत्काल फीरोजपुर लौट चलने का विचार किया, परन्तु लार्ड गफ के अदम्य उत्साह ने इस विचार को अस्वीकृत कर दिया और तोपों को ध्वस्त करने के कार्य में अंग्रेज सैनिकों के नेता के रूप में स्वयम् कमाण्डर इन चीफ तथा गवर्नर जनरल हार्डिगंज की कुशलता के फलस्वरूप कुछ थोड़ी सी सफलता मिली और कुछ क्षणों के लिए युद्ध क्षेत्र में गोलों की गड़गड़ाहट मन्द पड़ गई। २२ वीं दिसम्बर को सबेरे ही सिक्खों की बची खुची संख्या को उनके कैम्पों से खदेड़ दिया गया परन्तु दिन चढ़ने के साथ ही सिक्ख सेना का दूसरा भाग पूर्ण युद्ध सज्जा के साथ युद्ध क्षेत्र में आ पहुँची, और थके हुए अंग्रेजों ने अपने सामने एक अत्यन्त निराशाजनक, और सम्भवतः व्यर्थ का संघर्ष देखा; इस दूसरे सैन्य दल का नेतृत्व तेज सिंह के हाथ में था; उसके अधीनस्थ सरदार व सैनिक युद्ध के लिए उतावले थे और अंग्रेजों के समक्ष निर्बल पड़ रहे अपने भाइयों को समय पर सहायता पहुँचाने के लिए सुबह से ही आतुर थे, और उनके बहुत जोर डालने पर ही तेज सिंह वहाँ आ पहुँचा था, परन्तु वास्तव में देश द्रोही तेज सिंह का आन्तरिक उद्देश्य यह था कि आतंक जमाए रखने वाली खालसा सेना, अंग्रेजों द्वारा काट डाली जाय और बिखेर दी जाय, और उसने उस समय तक अपनी युद्धातुर सेना को युद्ध में कूद पड़ने का आदेश नहीं दिया जब तक लाल सिंह के अधीनस्थ लड़ रही पहली सेना के पाँव हर जगह से पूरी तरह नहीं उखड़ गए, और ब्रिटिश सेना पूर्णतः पुनर्व्यवस्थित न हो गई, और इतना बिलम्ब करने के पश्चात् भी प्रबल आक्रमण के स्थान पर उसने छिटपुट संघर्ष किया और व्यर्थ ही सेना को इधर उधर दौड़ाता रहा। इतना ही नहीं, वह घृण्य देश द्रोही कुछ ही समय पश्चात्, ऐसे नाजुक अवसर पर अपने अधीनस्थ नायकों को लक्ष्य-निर्देश या कोई आदेश दिए बिना ही भाग खड़ा हुआ, जब कि स्थिति अत्यधिक उत्साहप्रद थी; अंग्रेजों की तोपों का गोलाबारूद समाप्त हो गया था; उनकी सेना का एक भाग शरण के लिए फिरोजपुर की ओर लौट रहा था और यदि सिक्खों ने दृढ़ निश्चय के साथ आगे बढ़कर अंग्रेजों को दबाया होता तो शेष अंग्रेजी सेना का एक भी सैनिक जीवित निकल जाने का अवसर न पाता[1]।

१—फिरोशहर के युद्ध के लिए देखिये लॉर्ड गफ व लॉर्ड हार्डिंज के क्रमशः २२ और ३१ दिसम्बर के पत्र। गवर्नर जनरल पैदल सेना की विशेष प्रशंसा

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इस प्रकार इस सम-स्तरीय संघर्ष में ब्रिटिश पक्ष को विजय प्राप्त हुई जिसके फलस्वरूप सिक्खों की सत्तर से भी अधिक तोपों के साथ कुछ भूभाग भी अंग्रेजों के हाथ लगे, परन्तु विजेताओं की संख्या का सातवाँ भाग इस युद्ध में काम आ गया और थकावट तथा चिन्ता के कारण अंग्रेज कुछ

करते, हैं और तीसरी लाइट ड्रेगून द्वारा किया गया एक धावा तो सामान्य प्रशंसा का विषय बन चुका है; इस युद्ध में मरे अंग्रेजी सेना के ६९४ में से १०३ तो अफ़सर ही थे जिनमें से मेजर ब्रॉडफुट भी एक था घायलों की संख्या १७२ थी। —सम्पादक]

युद्ध के पश्चात् लॉर्ड गफ़ को सिक्ख सेना के हताहतों के विषय में जो सूचना मिली उसके अनुसार लगभग दो हजार सैनिक काम आये थे, क्योंकि मरे हुए लोगों के उत्तराधिकारियों द्वारा कुल १७८२ सैनिकों के शेष वेतन का दावा किया गया था। यह संख्या बहुत अधिक है किन्तु युद्ध के पश्चात् युद्ध क्षेत्र में सिक्ख शवों की संख्या बहुत कम दिखाई पड़ी थी।

कुछ अन्य बातों के लिए, जिनके सम्बन्ध में हमारी जानकारी अधूरी है-देखिए 'क्वार्टरली रिव्यू' जून १८४६, पृ० २०३-६, और 'कलकत्ता रिव्यू' दिसम्बर १८४७, पृ० ४६८। इनमें से दो बातें इस प्रकार हैं (१)-२१ दिसम्बर की रात को फीरोजपुर लौटने का प्रस्ताव, (२)—२२ दिसम्बर को दोपहर से कुछ पूर्व ही ब्रिटिश सेना के एक काफी बड़े भाग का फीरोजपुर की ओर हटना।

यदि सिक्खों के पास कुशल और देशनिष्ठ सेनापति होते तो सैनिक दृष्टि से अंग्रेजों के लिए फीरोजपुर लौट जाना ही अधिक उचित होता, परन्तु बिश्वास घाती सिक्ख सेनापतियों के कारण, ब्रिटिश सेना का वीरतापूर्वक डटा रहना ही सर्वाधिक उचित था सम्भवतः ब्रिटिश अधिकारियों को लाल सिंह व तेजसिंह की गद्दारी या अक्षमता पर पूर्ण विश्वास,नहीं था

फिरोशहर में दोनों दिनों के युद्धों के पश्चात् सिक्ख तोपखाने की बिखरी हुई धातु के अधिक भार और आकार को देखते हुए यह मानना पड़ता है कि ब्रिटिश तोपखाने की तुलना में सिक्खों का अभ्यास श्रेष्टतर था। पकड़ी गई सिक्ख तोपों में क्षतिग्रस्त होने के शायद ही कोई चिन्ह दिखाई पड़े थे जबकि-ब्रिटिश तोपों की लगभग एक तिहाई संख्या, तोप गाड़ियों में ही, बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो गई थी।

इस युद्ध के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि सिक्खों की सैन्शक्ति तथा स्थिति के सम्बन्ध में अंग्रेजों की जानकारी दोषपूर्ण थी। इस अभियान के लिए

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

समय के लिए निश्चेष्ट से हो गए, और फिर से युद्ध की तैयारियों के लिए सिक्खों को अपनी सुविधानुसार सतलज पार करने का पूरा अवसर दे दिया गया। देशी सिपाहियों को पहली बार एक ऐसी समस्तरीय सेना का सामना करना पड़ा था जिसकी युद्ध शैली भी उन्हीं जैसी हो थी। इन सिपाहियों ने अपनी तोपों की अक्षमता की शिकायत पहली बार की। सिक्खों के शौर्य व पराक्रम के लिए केवल देशी सिपाहियों के हृदय में ही सम्मान और प्रशंसा के भाव नहीं थे यूरोपीय सैनिक भी सिक्खों की वीरता व दृढ़ता से काफी प्रभावित हुए थे। ब्रिटिश जनता, चर्च के धर्माधिकारियों और राज्य के मंत्रियों ने उस भयंकर संकट से मुक्ति पाने पर ईश्वर को धन्यवाद दिया जिससे उनके विशाल साम्राज्य की शान्ति, और सुरक्षा भी खतरे में पड़ गई थी[1]।

अंग्रेजों का तैयार न होना, और युद्ध में सेना के संचालन का तरीका, इन दोनों बातों को सदैव ध्यान में रखना चाहिए। यदि अंग्रेजी सेना का संचालन और उसकी शस्त्र सज्जा और सक्षम रही होती तो सिक्खों को इस युद्ध में उतनी ख्याति न मिल पाती और ब्रिटिश वृत्तान्तकार अप्रीय सत्यों की घोषणा से बच जाता भयंकरतम स्थिति में भी धैर्य व साहस न खोने वाले लार्ड गफ का प्रबल व्यक्तित्व अनेक अवसरों पर ब्रिटिश सम्मान का रक्षक सिद्ध हुआ है।

[इस युद्ध के सम्बन्ध में जनरल सर चार्ल्स गफ तथा आर्थर डी० इनेस 'सिक्ख एण्ड सिक्ख वार्स' (पृ० ४२) में सिक्खों के शौर्य की प्रशंसा करते हुये लिखते हैं—"भारत की कोई भी देशी सेना···अंग्रेजों से सिक्खों की सी दृढ़ता से कभी नहीं लड़ी थी और न कभी ब्रिटिश पक्ष की विजय किसी युद्ध में उतनी सन्दिग्ध रही जितनी कि फिरोशहर में, और यदि विजय को निर्णायक माना जाय तो भी इस विषय में मतभेद ही रहेगा कि इस स्थिति में इस युद्ध का क्या परिणाम होता यदि सिक्ख सेना के पास ऐसे सेनापति होते जिनके संचालन में वे अपने गुणों के प्रदर्शन का पूर्ण अवसर पाते; वे आगे फिर लिखते हैं, हमको भारत में जिन सेनाओं से लड़ना पड़ा, उनमें सिक्ख सेना सर्वाधिक दक्ष और दुर्जय थी"—अनुवादक)

१—दिल्ली और यमुना घाटी क्षेत्र पर अधिकार बनाए रखने के लिए अंग्रेजों की चिन्ता की तुलना आगस्टस की उस समय की स्थिति से की जा सकती है जब उसने वेरस की पराजय और सेना के विनाश का समाचार पाया था, फिर भी यह स्पष्ट नहीं है कि वह अपने लिए नहीं वल्कि रोम के लिए चिन्तित था। सम्भवतः उसने सोचा होगा कि बर्बरों की सफल घुसपैठ से आन्तरिक शत्रु

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ब्रिटिश जाति की सैनिक ख्याति और विगत तीन पीढ़ियों द्वारा स्थापित राजनीतिक श्रेष्ठता की रक्षा के लिए अत्यधिक दूरस्थ सूबों से भी रेजिमेण्टों व विभिन्न कार्यों पर तैनात अफसरों को बुला भेजा गया। प्रतिहिंसा की अग्नि प्रत्येक हृदय को दग्ध कर रही थी; कठिनाइयों के बीच भी वे अपने दृढ़ प्रतिज्ञ प्रधान सेनापति के उच्च व्यक्तित्व व अडिग धैर्य की छाया के नीचे प्रसन्न थे और लार्ड गफ व हार्डिज के क्रमवद्ध उद्योग एवम् सैनिक आवश्यकताओं के ज्ञान पर उन्हे पूर्ण विश्वास था, यद्यपि गत संकट का स्मरण उनकी बदले की आंच को जब तब कुछ कम कर देता था।

सिक्ख पुनः सतलज पार लुधियाना खतरे में, जून, १८४६:

ब्रिटिश सेना की शक्ति में पर्याप्त वृद्धि कर लिए जाने के पश्चात् ब्रिटिश सेना ने फिरोज पुर से हरिकी की ओर उस क्षेत्र के समानान्तर मोर्चा बाँधा जहाँ—सतलज के दाहिने तट की सीध में—सिक्खों का जमावड़ा था, परन्तु भारी तोपों और गोला-बारूद के अभाव के कारण अंग्रेज लगभग निष्क्रिय से थे और इस विलम्ब से जहाँ ब्रिटिश पक्ष का उत्साह मन्द पड़ता जा रहा था, वहीं शत्रु को पुनः युद्ध छेड़ने के लिए प्रोत्सहित भी कर रहा था। सिस-सतलज क्षेत्र की संरक्षित रियासतें अपने नए स्वामियों के सहयोग देने के स्थान पर जहाँ तहाँ अशान्ति ही उत्पन्न कर रही थीं; अंग्रेजों

भी उत्साहित और सक्रिय हो जायँगे तथा देश की वास्तविक शक्ति को कोई क्षति न पहुँचाते हुए भी उसका विनाश कर देंगे, ठीक इसी प्रकार फिरोशहर के युद्ध के पश्चात् अंग्रेजों की चिन्ता व्यक्तिगत होने के साथ, राष्ट्रीय भी थी, और इस बात पर विश्वास करने के लिए कोई तर्क नहीं दिया जा सकता कि सतलज पर एक या दो, या तीन बार भी पराजित होने पर दिल्ली के दक्षिण व पूर्व के ब्रिटिश क्षेत्र को कोई क्षति पहुँचती। भारत की समस्त रियासतें स्वतंत्र होने की इच्छा अवश्य रखतीं हैं, परन्तु इस सामान्य कार्य के लिए वे अब भी संगठित प्रयास के लिए तैयार नहीं हैं, और उनमें से एक दो रियासतें ही शस्त्र उठाने का साहस रखती हैं, जब कि अंग्रेजों के संसाधन विस्तृत हैं, वे अनुशासित हैं और विजय शौर्य व संगठन को ही मिला करती है; फिर भी लगातार तीन चार साल के असफल युद्धों को, भारत में अंग्रेजी राज्य के पतन का प्रथम चरण माना जा सकता है, यद्यपि यह पूर्णतः सन्दिग्ध है कि वर्तमान शक्तियों के किसी भी प्रकार के गठबन्धन से अंग्रेजों को बंगाल या दक्षिण के तटों से भगाया जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

द्वारा संरक्षित लाडवा का राजा—जिसे अंग्रेज एक वर्ष पहले से ही विश्वास-घाती समझते थे[1]—खुले रूप में करनाल के पास से आगे बढ़ा और रणजोर के साथ की सिक्ख डिवीजन में जा मिला जिसने लुधियाना के निकट से जलन्धर दोआब को पार कर लिया था। इस महत्वपूर्ण नगर से पिछले युद्ध में प्रति-रक्षा सेना की सहायता के लिए लगभग सभी टुकड़ियों को बुला लिया गया था, और अब धीरे धीरे पूरब से आने वाली रेजिमेण्टों को यहाँ भेजा जा रहा था, जबकि इस नगर की स्थिति की सुदृढ़ता महत्वपूर्ण थी क्योंकि यह ऐसा स्थान था जहाँ से, यमुना तथा यमुना, से फिरोजपुर के अनेक मार्गों पर नियन्त्रण रक्खा जा सकता था[2]। जनवरी के प्रारम्भ में अपने परिवार को लुधियाना

१—मेजर ब्राँडफुट का पत्र सरकार को, १३ दिसम्बर १८४४; इस सरदार को लार्ड ऑकलैण्ड द्वारा राजा की उपाधि दी गई थी-कुछ तो इस कारण कि वह महाराजा रणजीतसिंह का रिश्तेदार था, और कुछ इस कारण कि थानेसार में सरस्वती पर पुल बनाने में उसने अपनी ओर से अंग्रेजों को पूर्ण सहायता प्रदान की थी। वह औसत क्षमता का एक निर्भीक व्यक्ति था परन्तु उसे अपने पिता से विरासत में अस्थिर मति मिली थी, उसके पिता का नाम गुरदत्त सिंह था जिसने एक समय करनाल और यमुना के पूरब में स्थित कुछ गाँवों पर अधिकार कर लिया था, और १८०३ तथा १८०६ के बीच में अंग्रेजों को परेशान किया था।

२—यह स्पष्ट नहीं है कि लुधियाना जैसे महत्वपूर्ण स्थान की रक्षा के लिए, फिरोशहर के युद्ध के पश्चात् मेरठ से चली हुई टुकड़ियों को वहाँ क्यों नहीं भेजा गया। इस समय गवर्नर जनरल का पूरा ध्यान फ़िरोजपुर में असहाय स्थिति में पड़ी मुख्य सेना को सशक्त बनाने की ओर केन्द्रिया था, जिसके अभाव से उत्पन्न असुविधाओं का अनुभव किया जा चुका था; सम्भव है कि सिक्खों से युद्ध की स्थिति को बचाने के लिए १८०६ की, सतलज के स्थान पर यमुना के तट पर स्थिति को सशक्त बनाने की मूल नीति ही बुद्धिमत्ता पूर्ण थी।

पजाब की राजधानी तथा सिक्खों की मुख्य सेना के केन्द्र के निकट तक ब्रिटिश शक्ति का दबाव बढ़ाने की प्रबल इच्छा से प्रेरित हो कर ही लार्ड हार्डिज ने मुल्तान की चिन्ता किये बिना सर चार्ल्स नेपियर को सिन्ध से कूच करने का निर्देश भेज दिया था, यद्यपि—जैसा कि गवर्नर जनरल ने सार्वजनिक रूप से स्वीकार किया था—उस विजयी सेनानायक को उस स्थिति में वापस बुला लिया गया था जब उसके अभियान के, घेरों की एक शृंखला में परिवर्तित होने की सम्भावना का अनुभव किया जाने लगा था।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के निकट स्थित अपनी जागीर—बड़वाल से ले जाने के लिए लाडवा का राजा वापस लौटा और अवसर पाकर उसने लुधियाना की छावनी के एक भाग को बिना विरोध के जला डाला, क्योंकि वहाँ पैदल सेना की संख्या अति न्यून थी और अश्वारोही थे ही नहीं। लगभग इसी समय, अपने शत्रुओं की निश्चेष्टता से उत्साहित होकर कर सिक्खों की मुख्य सेना ने पुनः सतलज को पार करना तथा अपने मार्ग की सुरक्षा के लिए पुल बाँधना प्रारम्भ कर दिया। अपनी स्थिति से विवश अंग्रेज अनिच्छा पूर्वक सिक्खों को अपने काम में व्यस्त देखते रहे क्योंकि उन्हें भय था कि यदि उन्हें छेड़ा गया और तत्काल युद्ध प्रारम्भ हों गया तो गोलाबारूद के अभाव में अंग्रेजों का विजय – या पूर्ण विजय प्राप्त करना लगभग असम्भव ही था। उनकी इस स्थिति का अनुभव करके सिक्खों के उत्साह में वृद्धि होना स्वाभाविक ही था; वे शीघ ही इन घृणित विदेशियों पर टूट पड़ने की आतुरता प्रकट करने लगे। सिक्खों की उत्साहपूर्ण स्थिति तथा उनकी गर्वोक्तियों से अंग्रेजों को कम चिन्ता नहीं थी; सीमावर्ती चौकी के रूप में फिरोज पुर की असुविधा जनक स्थित पूर्णतः स्पष्ट हो चुकी थी, और अब वे उन रियासतों से रसद आदि प्राप्त करने में भी कठिनाई का अनुभव करने लगे थे जिन्हें उन्होंने, तलवार से नहीं, बल्कि कलम की चोट से ब्रिटिश राज्य में मिला लिया था। मुक्तसर के गढ़ पर—जहाँ से, छमकौर से पलायन के पश्चात् गुरुगोबिन्द जी ने मुगल सैनिकों को मार भगाया था—अधिकार करने के लिए सूबों की कुछ कम्पनियों तथा बीकानेर की सहायक सेना ने घेरा डाला, परन्तु मुख्य ब्रिटिश सेना की भाँति ही उनके पास भी गोलाबारूद का अभाव होने से मुक्तसर को बचाने के लिए सिक्खों को कोई विशेष प्रयास नहीं करना पड़ा और इसी प्रकार ब्रिटिश सेना की दाहिनी विंग के निकट ही उपस्थित रहने के बावजूद सिक्खों ने धरमकोट के किले को भी अपने अधिकार में ले लिया; सरहिन्द की ओर सैनिक दृष्टि से महत्वपूर्ण अन्य स्थानों में भी आतंक की लहर सी दौड़ गई और दूतों तथा सैन्यदलों की दौड़धूप सर्वत्र दिखाई देने लगी[1]।

१—इसी प्रकार मण्डी के सिक्ख सरदार तथा कुछ अन्य सरदारों ने शिमला, कसौली और सबाथू को आतंकितकर रक्खा था, और चूँकि इन स्थानों से सभी रेजिमेण्टों को बुला लिया गया था, अतः सिक्ख चाहने पर इन स्थानों को नष्ट कर सकते थे, परन्तु स्थानीय ब्रिटिश अधिकारियों ने पहाड़ी राजपूत रियासतों से संरक्षण की शर्तें के अनुसार सिपाहियों को इकट्ठा करने, और

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

बड़वाल का युद्ध २१ जनवरी १८४६

सन् १८४६ ई० की १७वीं जनवरी को मेजर जनरल सर हैरी स्मिथ[1] के नेतृत्व में धरमकोट पर अधिकार करने के लिए एक ब्रिगेड भेजी गई जिसने सहज ही, बिना रक्तपात के, उस किले पर अधिकार पा लिया और इस प्रकार सेना के लिए खाद्यसामग्री की आपूर्ति का एक सुरक्षित स्थान प्राप्त हो गया। सर हैरी स्थिम को धरमकोट भेजने का मूल उद्देश्य था सिक्खों को उलझाए रखना, ताकि वे फिरोजपुर भेजे जाने वाले सामानों—तोपें, गोलाबारूद, रसद आदि—के मार्ग में बाधा उत्पन्न करने का प्रयास न करें और मार्ग में आवागमन को अवरुद्ध करने वाली छिटपुट सिक्ख टुकड़ियों को भी खदेड़ दिया जाय, परन्तु जब यह ज्ञात हो गया कि रणजोरसिंह ससैन्य सतलज पार कर लुधियाना की ओर बढ़ रहा था, तो सर स्मिथ को वहाँ जाकर उस नगर की रक्षा करने का आदेश दिया गया। जनवरी को २०वीं तारीख को उसने अपने लक्ष्य से २५ मील के अन्दर ही स्थित जुगराँव नामक व्यापारिक नगर में कैम्प डाला; यह नगर सन् १८०५ की सन्धि के समय से ही फतेह सिंह अहलूवालिया और उसके बाद उसके पुत्र के अधिकार में था जिसने बड़ी प्रसन्नता से नगर का सुदृढ़ गढ़ ब्रिटिश सेनानायक को सौंप दिया। उसी दिन यह ज्ञात हुआ कि लुधियाना के थोड़ी ही दूर पश्चिम में रणजोर सिंह ने मोर्चा बना लिया था और जुगराँव से सीधी सड़क पर १८ मील की दूरी पर स्थित बड़वाल की सुरक्षा के लिए एक सैन्यदल तैनात कर दिया था। इस समय तक ब्रिटिश दल में पैदल सेना की चार, और अश्वारोहियों की तीन रेजिमेण्टों के अतिरिक्त १८ तोपें भी आ चुकी थीं, अतः अर्धरात्रि के थोड़ी ही देर बाद ब्रिटिश सेना ने उस दिशा में कूच किया और २१ जनवरी को प्रातःकाल ही ज्ञात हुआ कि लगभग पूरी सिक्ख सेना जिनमें अनुमानतः दस हजार सैनिक थे – पिछले ही दिन बड़वाल की ओर जा चुकी थी। बड़वाल

साधनों का समुचित, प्रयोग करने में सक्रियता दिखाई, अतः कोई गम्भीर घटना नहीं घटित हुई।

१—[पेनिनसुला युद्ध के इस ख्याति प्राप्त सेनानी को बाद में दक्षिणी अफ्रीका भेजा गया, जहाँ हैरीस्मथ नामक नगर अब भी उसकी याद दिलाता है। उसकी पत्नी–जो एक स्पेनिश महिला थी और पेनिनसुलर अभियानों में भी उसके साथ रही थी–की स्मृति में भी दक्षिणी अफ्रीका के एक नगर का नाम लेडीस्मिथ रक्खा गया जो कम प्रसिद्ध नहीं है—सम्पादक]

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ब्रिटिश सेना के अग्रभाग से कुल आठ मील दूर था, सर हैरी स्मिथ ने विचार किया कि यदि वह थोड़ा दाहिने का मार्ग पकड़कर सिक्खों को तीन मील की दूरी पर छोड़ते हुए आगे बढ़ जाय तो वह बिना संघर्ष के लुधियाना की ब्रिगेड से मिल सकता था। सेना के साथ की सामग्रियों से लदे पशुओं को कुछ आगे भेज देने के विचार से सेना कुछ देर के लिए थम गई और सुरक्षा की दृष्टि से यह व्यवस्था की गई कि भारवाहक पशुओं को सैनिकों की कतारों के समानान्तर, दाहिनी ओर से आगे बढ़ाया जाय जब सर हैरी स्मिथ बड़वाल के निकट पहुँचा तो सिक्ख भी उसी प्रकार राह बचाकर जाने का प्रयास करते दिखाई पड़े; अंग्रेजी सेना पर नजर पड़ने पर सिक्खों ने उसे अवरुद्ध करने की प्रवृत्ति दिखाई, चूँकि सर हैरी स्मिथ अभी युद्ध का इच्छुक नहीं था, अतः उसने थोड़ा और दाहिने हट कर, और बीच बीच में, अश्वारोही और पैदल रेजिमेण्टों को साथ रखने के ध्येय से रुकते हुए आगे बढ़ना जारी रक्खा; परन्तु सिक्ख तो युद्ध के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ थे, उन्होने पहल करते हुए ब्रिटिश अश्वारोहियों को लक्ष्य कर तोपों की एक बाढ़ दागी जिन्हें भाग्यवश बलुए तटों की हल्की सी आड़ मिल गई थी; प्रत्युत्तर में ब्रिटिश तोपों ने भी आग उगलना शुरू किया और सिक्खों को आगे बढ़ने से रोक रक्खा। इस बीच ब्रिटिश सेना के पृष्ठ रक्षक अश्वारोही पैदल सेना से आ मिले थे, और सिक्ख तोपों की मार भी अब कम हो चली थी। सर हैरी स्मिथ ने सोचा कि यदि पैदल सेना निरन्तर गोले फेंकती रहे तो सिक्खों की पंक्तियाँ विच्छिन्न हो जायँगी और लुधियाना की बिग्रेड को भी अपने साथियों की सहायता के लिए आ पहुँचने का समय प्राप्त हो जायगा। उस समय प्रत्येक सैनिक के हृदय में खुलकर गुत्थमगुत्था युद्ध करने का उत्साह था, परन्तु जब पैदल रेजिमेण्टों को पंक्तिवद्ध किया जा रहा था, उसी समय देखा गया कि सक्रिय सिक्ख नजर बचाकर, रेत के टीलों की आड़ लेते हुए अपनी तोपों को ब्रिटिश पंक्तियों के पीछे खींच ले गए थे और ब्रिटिश सेना का वाम पार्श्व उनकी तोपों की मार में आ गया था। इन तोपों ने बिलकुल ठीक निशाने पर पूर्ण तीव्रता के साथ ब्रिटिश सेना पर गोलों की वर्षा प्रारम्भ कर दी, और गोलों की सनसनाती हुई आवाज में गिरते हुए सेक्शन के सेक्शन जवानों की चीख पुकार दब सी गई। जमीन रेतीली थी, और पिछले नौ घण्टों में अठारह मील की दूरी तय कर वहाँ पहुँचे जवान थक कर चूर हो गए थे, और शीघ्र ही स्पष्ट हो गया कि यदि सिक्खों ने अब चार्ज बोल दिया तो वह थके हुए विजेताओं के लिए घातक ही सिद्ध होगा। अब पैदल सेना ने प्राण-रक्षार्थ पुनः लुधियाना की ओर

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

बढ़ना प्रारम्भ कर दिया और अश्वारोहियों ने पर्याप्त साहस व कौशल का प्रदर्शन करते हुए पद-सेना के लिए आड़ बनाई[1]। सिक्खों ने भागती हुई ब्रिटिश सेना का पीछा नहीं किया क्योंकि उनके पास कोई ऐसा नेता न था जो अंग्रेजों को पिटते देखना पसन्द करता। रणजीरसिंह ने अपने अधीनस्थ सैनिकों को ब्रिटिश सेना से भिड़ जाने दिया, परन्तु उसने व्यक्तिगत रूप से इस युद्ध में सिक्ख सैनिकों का साथ दिया था अथवा नहीं, यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं हुआ, परन्तु इतना तो निश्चित था कि उसने अंग्रेजी सेना को पूरी तरह पराजित करके अपनी सफलता के यश में और वृद्धि करने का प्रयास नहीं किया, यद्यपि उस समय की स्थिति में यह एक अत्यन्त सरल कार्य था। ब्रिटिश सेना का काफी सामान पीछे ही रह गया था; और नेतृत्वविहीन सिक्ख सैनिक ऐसा सुअवसर पाकर लूट पाट का लोभ संवरण न कर सके। विभिन्न सामग्रियों से लदे पशु पर्याप्त संख्या में सिक्खों के हाथ लगे; बच सके तो केवल वही पशु जो लुधियाना की सीमा तक पहुँच चुके थे, या जिन्हें गोलाबारी प्रारम्भ होते ही बुद्धिमत्तापूर्वक जुगराँव की ओर हाँक ले जाया गया था; गोलाबारूद की कुछ गाड़ियाँ भी उनके हाथ लग गईं थी जिनका प्रदर्शन करते हुए वे ऐसी डींगें मार रहे थे जैसे उन्होंने कोई ब्रिटिश तोप ही पकड़ लो हो[2]।

लुधियाना खतरे से मुक्त हो गया, परन्तु गत २१ जनवरी के युद्ध में सिक्खों की क्षणिक विजय से अंग्रेजों के अधीन भारतीय राजाओं के उस आनन्ददायक विश्वास को बल मिला कि गुरु गोविन्द जी के शिष्यों के कौशल और पराक्रम ने अन्त में उनके विदेशी स्वामियों की अजेय समझी जाने वाली सेना का दाँत खट्टा कर ही दिया। ब्रिटिश सेना के देशी सिपाहियों ने सिक्ख प्रोत्साहित शर्माए हुए नेत्रों से एक दूसरे की ओर देखा और उन्हें

१—[अश्वारोहियों की रेजिमेण्ट का कमाण्डर, कर्नल क्योरटन था—सम्पादक]

१—देखिए गवर्नर जनरल का पत्र सिक्रेट कामिटी को, १६ जनवरी तथा ३ जनवरी तथा ३ फरवरी, और कमाण्डर-इन-चीफ, का पत्र, १ फरवरी १८४६। २१ जनवरी के संघर्ष के पश्चात् गणना करने पर ज्ञात हुआ कि इस मुठभेड़ में ६६ सिपाही मारे गए थे, ६८ घायल हुए थे और ७७ गायब थे इन गायब सैनिकों में से कुछ को सिक्खों ने बन्दी बना लिया था, और शेष एक या दो दिन के अन्दर ही अपनी टुकड़ियों में आ मिले थे। बन्दियों में से सहायक सर्जन मि० बैरन तथा कुछ अन्य यूरोपीय सैनिकों को लाहौर ले जाया गया था।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गुलाब सिंह पुनः लाहौर में

अपने घर की याद आने लगी तथा विजयों के स्थान पर संघर्षों के विषय में सोचने के लिए विवश अंग्रेजों के माथों पर बल पड़ गए। गवर्नर जनरल और कमाण्डर इन चीफ गोलाबारूद और घेरा डालनेवाली सामग्रियों की गड़ियों के विषय में चिन्ता में पड़े हुए थे, जो सेना की क्षमता के लिए अत्यधिक महत्व रखती थी, और जिन्हें उन्होंने जल्दी में आक्रामकों को अवरुद्ध करने के लिए झोंक कर विरोधी शस्त्रों की मार से नष्ट भ्रष्ट करा दिया था। पिटी हुई ब्रिग्रेडों के कमाण्डर, हैरी स्मिथ के गौरवपूर्ण अतीत में एक बदनुमा धब्बा लग गया था, और अब भी, उसे प्रोत्साहन व आशा की कोई ऐसी किरण नहीं दिखाई दे रही थी कि शीघ्र ही इस पराजय का प्रतिकार किया जा सकता। उधर दूसरी ओर सिक्खों का उत्साह बढ़ता जा रहा था; यूरोपीय बन्दियों की उपस्थिति उनकी विजय का प्रतीक बनी हुई थी; लाल सिंह और तेज सिंह भय से सिकुड़े हुए थे; गुलाब सिंह—जिसे निरन्तर वजीर व नेता के रूप में सादर आमंत्रित किया जा रहा था—अब सोचने लगा था कि खालसा सेना वास्तव में उस महान शक्ति से टकराने की सामर्थ्य रखती थी जिसके सामने स्वयम् वह, नगण्य था, अतः सिक्खों की सैनिक पंचायतों को शक्ति व एकता प्रदान करने के लिए वह जनवरी की २७ वीं तारीख को लाहौर आ पहुँचा।[1] तेज सिंह के अधीनस्थ सेना ने सतलज को फिर पार कर लिया था 'और ब्रिटिश डिवीजनों की नजरों के सामने ही एक सुदृढ़ मोर्चा बना लिया था। सिक्खों की तैयारियों से ऐसा ज्ञात होता था कि वे एक बार पुनः शत्रु के क्षेत्र में युद्ध की ज्वाला फैलाने की योजना बना रहे थे; परन्तु खालसा सेना के बल पर अपन कीर्ति बढ़ाने के स्वप्न से प्रेरित गुलाब सिंह विलम्ब से आया-सिक्ख सेना की ख्याति चोटी तक पहुँच चुकी थी, और अब उनकी पराजय और अधीनता के दिन निकट आ गए थे।

अलीवाल का युद्ध २८ जनवरी १८४६:

२२ जनवरी की रात को रणजोर सिंह ने बड़वाल से सतलज पर, लुधियाना से लगभग १५ मील नीचे स्थित एक स्थान के लिए कूच किया जहाँ उसने नावें जुटा लीं जैसे कि वह नदी पार करने के चक्कर में हो। उसकी इस यात्रा का उद्देश्य ज्ञात नहीं हो सका; स्वयम् सिक्खों में आत्मविश्वास का अभाव भी इसका एक कारण हो सकता है क्योंकि उस समय उनके पास इनी गिनी स्थायी रेजिमेण्टें ही थीं, परन्तु शीघ्र ही मुख्य सेना

१—देखिए गवर्नर जनरल का पत्र सिक्रेट कमेटी को, ३ फरवरी १८४६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

की चार बटेलियनों की एक ब्रिग्रेड कुछ तोपों के साथ उनमें आ मिली और उनकी संख्या पन्द्रह हजार तक पहुँच गई। सर हैरी स्मिथ ने अविलम्ब शत्रु द्वारा छोड़े गए मोर्चे को अपने अधिकार में ले लिया; और जिस समय सिक्खों को मुख्य सेना की सहायता प्राप्त हुई संयोगवश उसी समय मुख्य ब्रिटिश सेना की एक ब्रिगेड उसकी सहायता के लिए भी आ पहुँची। २८ वीं जनवरी को जनरल स्मिथ ग्यारह हजार की सेना के साथ शत्रु से संघर्ष करने के लिये चल पड़ा। उस समय सिक्ख सेना का जमाव दस मील की दूरी पर था, और सर स्मिथ को मध्य भाग में ही ज्ञात हो गया कि गूनग्राना के गढ़ को मुक्त कराने अथवा जुगराँव पर अधिकार करने के ध्येय से सिक्खों का पूरा सैन्य-दल या उसका एक भाग मोर्चे से हट गया था, जब कि ये दोनों चौकियाँ यमुना क्षेत्र से ब्रिटिश सरकार का सम्बन्ध बनाए रखने के लिए अत्यन्त आवश्यक एवम् महत्वपूर्ण थीं। मैदान के छोर पर पहुँच जाने पर सिक्खों का एक दल कुछ ऐसा मोड़ लेकर बढ़ता दिखाई दिया कि वह ब्रिटिश सेना के मार्ग के बाईं ओर पड़ता, परन्तु ज्यों ही सिक्खों ने देखा कि अंग्रेजी सेना उन पर बगल से आक्रमण करने की स्थिति में आ सकती थी, उन्होंने सीधे शत्रु सेना की ओर रुख किया और दाहिनी ओर बुन्दरी नामक गाँव तथा बाँईं ओर अलीवाल की छोटी सी पहाड़ी को आड़ के रुप में प्रयोग किया, और जैसी कि उनके जैसी युद्ध प्रणाली की विशेषता होती है उन्होंने चटपट अपनी तोपों के सामने मिट्टी के ढेर लगाना प्रारम्भ कर दिया, क्योंकि आड़ या रक्षा का कोई अन्य साधन न रह जाने पर ये मिट्टी के ढेर जहाँ एक ओर उनके लिए आड़ का काम देते वहीं शत्रुओं के आगे बढ़ने पर उनकी गति में भी अवरोध उत्पन्न करते। अब युद्ध के टल जाने की कोई सम्भावना न रह गई थी अत: ब्रिटिश कमाण्डर ने अविलम्ब युद्ध का आदेश दे दिया। अग्र भाग में स्थित अश्वाराही रेजिमेण्टों ने दाहिने बाँएँ फैलकर अपनी चमकती हुई कतारों को खोला और पैदल सैनिक तथा तोपों के मुँह भयंकर विनाश का सन्देश देते हुए से प्रतीत होने लगे। दृश्य शानदार और फिर भी आतंकित करने वाला था; एक ही स्थान से पूरे युद्ध क्षेत्र को देखा जा सकता था और सभी के हृदय में उत्साह और आँखों में दृढ़ता थी। इस प्रकार युद्ध करती हुई दोनों सेनाओं की पंक्तियाँ एक दूसरे के ठीक समानान्तर नहीं थीं। सिक्ख-पंक्तियाँ अपनी योजना-नुसार ब्रिटिश सेना के दाहिने पार्श्व की ओर फैली हुई थीं जब कि ब्रिटिश पक्ष की अन्य पार्श्ववर्ती टुकड़ियाँ कुछ दूरी पर थीं। आठ मील की यात्रा में अंग्रेजी सेना ने बीच में शायद ही विश्राम लिया था, परन्तु सिक्ख पहले से डरे थे और

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पहल भी उन्होंने ही की थी। सर हैरी स्मिथ ने अनुभव किया कि अलीवाल को अपने अधिकार में ले लेना अत्यधिक महत्वपूर्ण था; अतः पद-सेना के दाहिने भाग को इस कार्य का भार सौंपा गया। एक घातक युद्ध की सम्भावना दिखाई पड़ने लगी क्योंकि सिक्खों की कतारें दृढ़ थी और उनकी तोपें अनवरत गति से अग्निवृष्टि कर रही थीं; परन्तु जिन टुकड़ियों को इस कार्य के लिए भेजा गया था, उनमें सब पहाड़ी जातियों के सिपाही थे जो खालसा के विरुद्ध द्वेष-भाव रखते थे, इन बढ़ती हुई टुकड़ियों पर गोलियों और गोलों की एक अन्तिम बाढ़ छोड़कर सिक्ख सैनिक अपने नायक रणजोर सिंह के साथ, अस्तव्यस्त होकर तथा तोपखाने के आदमियों को विजेताओं द्वारा मारे जाने के लिए छोड़कर भाग खड़े हुए। ठीक इसी समय दाहिने पार्श्व के ब्रिटिश अश्वारोहियों ने सीधा धावा किया, और शत्रु-सेना का लगभग आधा भाग पूर्णतः अस्त-व्यस्त होकर बिखर गया, परन्तु ब्रिटिश पद सेना तथा तोपखाने के सारे प्रयत्नों के बावजूद सिक्ख अपने दाहिने पार्श्व से उन पर भारी पड़ रहे थे, क्योंकि वहाँ रेगुलर बटालियनें पंक्ति में थीं और दृढ़ प्रतिज्ञ सिक्खों का प्रतिरोध करना सहज नहीं था, और इसके लिए तत्काल सशक्त प्रयास आवश्यक था, अतः हिन्दुस्तानी अश्वारोहियों की एक रेजिमेण्ट की सहायता से यूरोपियनों की एक रेजिमेण्ट को लाहौर सेना की सीधी पंक्तियों पर आक्रमण करने का आदेश दिया गया। अपने देश की उच्चता व महानता, सैनिक उत्साह तथा प्रतिकार व्यक्तिगत भावना से प्रेरित इन अंग्रेज़ योद्धाओं के प्रबल चार्ज को सँभालने के लिए सिक्ख घुटनों के बल हो गए, परन्तु इस नाजुक अवसर पर अनुशासन की भावना खालसा के पुत्रों का साथ छोड़ गई; और वे उठ खड़े हुए, फिर भी गोलीबारी करते रहे और ब्रिटिश योद्धाओं के एक भाले की दूरी तक आ जाने तक भी वे एक साथ गोलियों की बाढ़ दागते रहे अश्वारोहियों द्वारा तीन बार पूरी कतारों के रौंदे जाने पर ही सिक्ख बिखरे। अंग्रेज़ सैनिकों का चार्ज समयानुकूल एवम् बीरता पूर्ण था, परन्तु भूमि पर पराजित पद-सैनिकों की तुलना में विजयी अश्वारोहियों की लाशें ही एक बड़ी संख्या में बिछी हुई दिखाई पड़ रही थीं। बुन्दरी के पीछे भी सिक्खों द्वारा अड़ने का प्रयास किया, परन्तु अब सारा प्रतिरोध व्यर्थ था। सिक्खों को सतलज के पार खदेड़ दिया गया; उनकी पचास से भी अधिक तोपें अंग्रेजों के हाथ लगीं[1]। एक समस्तरीय शत्रु पर, सूनियोजित और वीरता पूर्वक लड़े गए युद्ध में विजय

१—[पकड़ी गई तोपों की संख्या सरकारी तौर पर ६७ बताई गई थी—सम्पादक]

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्राप्त कर लेने की सामान्य प्रसन्नता में ब्रिटिश जनरल अपने सारे दुःखों को भूल गया, और सिपाहियों को विजय की प्रसन्नता में कुछ समय तक अपने विगत कष्टों का स्मरण तक न रह गया[1]।

१—देखिए सर हैरी स्मिथ का पत्र, ३० जनवरी तथा लार्डगफ को पत्र १ फरवरी, १८४६ (पार्लि० पेपर्स, १८४६)। इस युद्ध में ब्रिटिश पक्ष के १५१ सैनिक मारे गये थे ४१३ घायल हुए थे और २५ लापता थे।

'कलकत्ता रिव्यू', (संख्या १६. पृ० ४९९) लिखता है कि बड़वाल की पराजय के पश्चात् पुनः सिक्खों से युद्ध करने के लिए सर हैरी स्मिथ पर कुछ दबाव डाला गया था; पर वास्तव में उस सक्रिय नायक को ऐसे दबावों की आवश्यकता नहीं, और यदि ताजी टुकड़ियाँ और युद्ध सामग्री उसके पास इससे कुछ पहले ही पहुँच गई होती, तो अलीवाल के युद्ध और पहले भी प्रारम्भ किया जा सकता था, यहाँ यह उल्लेख कर देना भी आवश्यक है कि उक्त रिव्यू के पूरे लेख में उसके लेखक ने लार्ड गफ के साथ और रसद-आपूर्ति विभाग के साथ न्याय नहीं किया है। कमाण्डर इन चीफ के सम्बन्ध में रिव्यू का इतना ही संकेत काफी है कि फिरोशहर में सिक्खों पर आक्रमण करने में जो विलम्ब हुआ, उसका दोषी गवर्नर जनरल को नहीं माना जा सकता, और, इस कथन का सीधा अर्थ होता है कि सारा दोष कमाण्डर इन—चीफ की दिया जाना चाहिए। इस विलम्ब के के कारणों को निश्चित करना इस विलम्ब के भागीदारों का निश्चय करना तो कुछ कठिन होगा, परन्तु गवर्नर जनरल अपने गुणों और ब्रिटिश राज्य की सेनाओं के कारण वैसे ही गर्व से सर ऊँचा कर सकते हैं, उनके गौरव की वृद्धि के लिये एक कुशल और अनुभवी सेनापति पर दोषा रोपण करना उचित नहीं प्रतीत होता। रसद-आपूर्ति विभाग के सम्बन्ध में उसी 'रिव्यू' के पृ० ४८८ पर कहा गया है कि विभाग के प्रधान द्वारा रसद की आपूर्ति के लिए दिए गए छः सप्ताह के समय का कार्य मेजर ब्राँड फुट ने छ दिनों में ही पूरा कर लिया था, जब कि इस युद्ध में इस विभाग का कार्य चिन्तनीय था। यह विभाग रूपया खर्च करके, ठीके द्वारा या खुले बाजार से रसद खरीद भर ही तो सकता था, जब कि मेजर ब्राँडफुट संरक्षित राज्यों से, बलात् खाद्य सामग्री वसूल कर सकता था। यदि दिल्ली, सहारनपुर, बरेली और अन्य जिलों के मजिस्ट्रेटों को अपनी सीमा में बलात् अन्न और गाड़ियाँ एकत्रित करने अधिकार दे दिया जाता तो आपूर्ति विभाग को दोष देने का अवसर ही न आता। फिर यह तो सर्वविदित हैं कि यदि सैनिक अधिकारियों को अपनी ओर से तैयारी कर लेने का निर्देश

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अंग्रेजों की यह विजय महत्वपूर्ण होने के साथ भाग्यपूर्ण भी थी। अवसरवादी गुलाब सिंह ने जो अपनी क्षमता और कुशलता से युद्ध को और विस्तार देने की सामर्थ्य रखता था—लाहौर पहुँचते ही पहले तो अपने निकटस्थ पड़ोसियों से अदूरदर्शिता पूर्वक युद्ध में उलझ जाने के लिए पराजित सिक्खों की आलोचना की और फिर ब्रिटिश अधिकारियों से सन्धि वार्ता प्रारम्भ कर दी[1]। लाहौर अधिकारियों को झुकने के लिए तैयार देख कर गवर्नर जनरल को प्रसन्नता ही हुई, क्यों कि वे महसूस कर रहे थे कि कुछ ही महीनों के भीतर पंजाब को पूर्णतः पराजित करना, –जब कि सिक्ख सेना की संख्या व क्षमता ब्रिटिश सेना से कम नहीं थी—तथा मुल्तान, जम्मू और पेशावर पर घेरा डालना, ये सभी कार्य सम्पन्न नहीं किए जा सकते थे जब कि इनमें से प्रत्येक कार्य के मार्ग में न जाने कितनी कठिनाइयाँ और विपत्तियाँ सामने आ सकती थीं। भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की नींव मुख्यतः उनके ही देशवासियों की उस संख्या व क्षमता पर निर्भर थी जिसे ब्रिटिश अधिकारी अवसर पड़ने पर युद्ध भूमि में उतार सकते थे, और अत्यधिक सुविधा जनक स्थितियों के बावजूद ग्रीष्म ऋतु में किया गया कोई भी अभियान यूरोपीय रेजिमेण्टों के लिए दुःखदायी व विपत्ति पूर्ण सिद्ध हो सकता था, साथ लू और हैजा जैसी बीमारियाँ प्रत्येक टुकड़ी के अफसर के साथ ही सामान्य सिपाहियों के लिए भी प्राणघातक बन सकती थी। उक्त बातों के अतिरिक्त यह अनुभव भी किया गया कि पूरे हिन्दुस्तान के लोगों के हृदय में इन संघर्षों से एक उत्तेजना सी उत्पन्न हो रही थी और यदि युद्ध अधिक समय तक चलता रहता तो न केवल यमुना घाटी से सम्पर्क विच्छिन्न हो जाता, बल्कि उत्तर पश्चिम के सभी सूबो में विद्रोह की आग सी दौड़ जाती जहाँ के युद्ध-प्रिय

दिया गया होता तो सिक्खों द्वारा सतलज पार किये जाने के बहुत पूर्व ही आवश्यकतानुसार आक्रामक या प्रतिरक्षात्मक तैयारियाँ पूर्ण करली गई होतीं; इसके अतिरिक्त एक सम्भावित युद्ध के लिए समय पर सेना की, सज्जा का उत्तरदायित्व लॉड हार्डिंज पर था, और जब गवर्नर जनरल स्वयम् ही युद्ध क्षेत्र में थे फिर कमाण्डर इन चीफ् को व्यवस्था के लिए दोषी ठहराना उचित नहीं है।

१—देखिये गवर्नर जनरल का पत्र सिक्रेट कमेटी को, १९ फरवरी १८४६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

निवासी वेतन या लूटपाट की सुविधा पाने पर किसी भी झण्डे के नीचे तलवार बाँधे एकत्रित हो सकते थे, विशेष कर ऐसी स्थिति में, कि वे इधर अनेक वर्षों से चलती आ रही शान्तिविहीन शान्ति से ऊबे हुए थे। गवर्नर जनरल निस्सन्देह कल्पना में, सिन्ध की भूमि पर विजेता के रूप में खड़े होने और इंग्लैण्ड के प्रान्तों में सिकन्दर महान की सुदूर विजयों की स्मृति ताजी कराने के स्वप्न देखा करते थे, परन्तु उनके सामने प्रथम लक्ष्य था सिक्खों को शस्त्र शक्ति से सतलज के पार खदेड़ देना। पंजाब राज्य के सरदारों और सेना के प्रतिनिधियों द्वारा बिना शर्त, अधीनता स्वीकार करा कर उन्हें उनकी सीमा तक हटा देने की व्यवस्था करना, क्योंकि जब तक ऐसा न किया जाता, यह नहीं कहा जा सकता था कि गत युद्धों से अंग्रेजों को कोई लाभ हुआ था, और तब हिन्दुस्तान का प्रत्येक छोटा बड़ा राजा अपनी स्वाधीनता के लिए गुप्त रूप से प्रयास आरम्भ कर देता था अवसर मिलते ही अपने क्षेत्र विस्तार का प्रयत्न करता। यदि पंजाब के देशद्रोही सरदारों का महत्व समाप्त कर सारे सिक्ख सैनिक किसी एक सुयोग्य और देश भक्त नायक के नेतृत्व में संगठित होकर युद्ध में तत्पर हो जाते तो इतनी बड़ी और इतनी सुसज्जित सिक्ख सेना को केवल एक बार बिखेर कर ही पूर्णतः पराजित मानना मूर्खतापूर्ण होता, इस लिए अंग्रेजों ने गुलाब सिंह के समक्ष प्रस्ताव रक्खा कि खालसा सेना को पूरी तरह बिखेर दिए जाने की शर्त पर वे लाहौर में एक सिक्ख राजा को मान्यता देने के लिए तैयार थे परन्तु अन्य सरदारों व भूतपूर्व वजीरों की भाँति गुलाब सिंह भी सेना से बुरी तरह भयभीत था अतः उसने सेना को बिखेरने में अपनी असमर्थता प्रकट की यद्यपि इस असामर्थ्य की स्वीकारोक्ति के पीछे उसके कुछ व्यक्तिगत स्वार्थ भी निहित थे। समय इसी प्रकार बीतता रहा। उधर अंग्रेज अनुभव कर रहे थे कि भारत में ब्रिटिश राज्य के सम्मान को बनाए रखने के लिए शीघ्रातिशीघ्र लाहौर किले की दीवालों के भीतर, सन्धि की शर्तों का निश्चित होना तथा सन्धिपत्र पर दोनों पक्षों का हस्ताक्षर हो जाना आवश्यक था; अन्त में दोनों पक्ष एक सामान्य, यद्यपि अत्यन्त निन्दनीय शर्त पर सहमत हो गए जिसके अनुसार यह निश्चय किया गया कि अंग्रेज सिक्ख सेना पर आक्रमण करेंगे, और सिक्ख सेना के पराजित हो जाने पर लाहौर सरकार उसे खुले रूप से त्याग देगी, और यह भी हुआ कि सतलज के मार्ग पर ब्रिटिश सेना निर्विरोध आ जा सकेगी और लाहौर का राजमार्ग विजेताओं के स्वागत के लिए खुला रहेगा। कुटिल नीति और लज्जाविहीन देशद्रोह के संयोग से हुई इस

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

घृणित और निन्दनीय गुप्त सन्धि के अन्तर्गत ही सोबराँव का युद्ध लड़ा गया था[1]।

सिक्खों की प्रतिरक्षात्मक स्थिति:

सिक्खों ने धीरे-धीरे अपनी सेना का एक बड़ा भाग सतलज के बाँएँ तट पर बने मोर्चे पर जमा दिया था जो अब काफी सुदृढ़ एवम् विस्तृत हो चुका था; इस मोर्चे पर उन्होंने ६७ तोपें लगा दी थीं और उनकी कुल अनुमानित संख्या लगभग पैंतीस हजार थी, परन्तु सम्भवतः यह संख्या बीस हजार से अधिक नहीं थीं, और इसमें भी सभी रेजिमेण्टें नियमित सैनिकों की नहीं थी। इस मोर्चे पर योजना और नेतृत्व का भी घातक अभाव था, और सोबराँव के युद्ध में भी, इस अभियान के अन्य युद्धों की भाँति सेना ने ही सब कुछ किया, और सेनापतिगण निश्चेष्ट रहे। खतरा उठाने वाले दिलों, और शस्त्र चलानेवाले हाथों का सिक्खों में बिल्कुल ही अभाव नहीं था, परन्तु उनमें नेतृत्वशक्ति वाला कोई मस्तिष्क नहीं था जो उन्हें मार्ग दिखाता और अनुप्राणित करता; प्रत्येक अधीनस्थ नायक अपने मोर्चे की रक्षा अपने ही कौशल एवम् साधनों से करता था और मध्य तथा बाँए पार्श्व में—जहाँ मुख्यतः अनुशासित बटेलियनों को रक्खा गया था तोपों को आदमकद टीलों पर चढ़ा दिया गया था तथा खाइयाँ इतनी गहरी और चौड़ी थीं कि एक सशस्त्र सैनिक उन्हें मुश्किल से ही फाँद सकता था। सिक्खों के मोर्चे में एक अन्य विशेषता यह थी कि उन्होंने थोड़ी थोड़ी दूर के अन्तर पर टीलों एवम् खाइयों के रूप में ऐसी सुरक्षित आड़ों का प्रबन्ध कर रक्खा था कि उनकी आड़ में पड़े हुए सैनिक गोलियों की मार से तो बचे ही रहते, अवसर पाने पर सुरक्षित रूप से सो भी सकते थे। दाहिने पार्श्व में ऐसी आड़ें विशेष तौर पर बनाई गई थीं, और इस भाग में अस्थायी टुकड़ियों को रखना सुविधाजनक एवम् अधिक उप-

---

१—देखिए गवर्नर जनरल का पत्र सिक्रेट कमिटी को, १९ फरवरी १८४६, जिससे केवल वही लोग इस गुप्त अभिसन्धि की शर्तों का कुछ आभास पा सकते थे, जो गुलाबसिंह से हुई इस सन्धिवार्ता में सम्मिलित थे, मुख्यतः केवल इसी नोट के लिए लेखक को ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा राजनीतिक सेवा से निष्कासित कर दिया गया था; यह लेखक का अपना ही विचार था जो भारत में ही की गई सतर्क जाँच पर आधारित था, और इंग्लैंड में भी इस सम्बन्ध में जाँच करने पर लेखक के पूर्वमत की पुष्टि ही हुई थी।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

योगी समझा गया था। इस पार्श्व की रक्षा के लिए दो सौ 'ज़म्बूरुकों'[1] की एक पंक्ति सी बना दी गई थी, परन्तु उसे इन भारी तोपों की भी सहायता प्राप्त हो सकती थी जो अभी भी नदी के विपरीत तट पर लगी हुई थीं[2]। इस मोर्चे का संचालन तेजसिंह के हाथ में था, और लाल सिंह ने अश्वारोहियों का नेतृत्व ले रक्खा था जिन्हें उसने नदी के ऊपर के क्षेत्र में इधर उधर बिखेर रक्खा था और जिन पर ब्रिटिश अश्वारोहियों का एक दल निरन्तर दृष्टि रक्खे हुए था। अलीवाल की पराजय से सिक्ख सामान्यतः कुछ हतोत्साह से हो गये थे और सतलज में उनके अपने मृत साथियों की असम्मानित लाशों के, बहते हुए ढेरों का दृश्य उनके मानस-पटल पर अब भी अंकित था परन्तु भीड़ का आत्म-विश्वास बहुत शीघ्र ही लौट आता है, वे अंग्रेजों की एक ऐसी चौकी पर अधिकार करके बहुत ही उत्साहित हुए जिसे निगरानी करने के लिए बनाया गया था, और रात में जिसकी रक्षा की कोई व्यवस्था नहीं की गयी थी; वे प्रायः परेड, ड्रिल और युद्ध की कार्य-

---

१—[ये एक प्रकार की छोटी व हल्की तोपें थीं जो प्रायः ऊँटों पर रहती थीं; इस प्रकार की तोपों के नमूने लाहौर किले के शस्त्रागार में देखे जा सकते हैं—सम्पादक।]

२—साधारणतः यह विश्वास किया जाता था कि सोबराँव के मोर्चे की योजना, एवम् उसके निर्माण का श्रेय एक फ्रान्सीसी और स्पेनिश कर्नल का था, परन्तु यह उतना ही आधारहीन है जितना यह विश्वास कि सिक्ख सेना की क्षमता का श्रेय फ्रान्सीसी और इटालियन जनरलों को था। उस समय सोबराँव में ही उपस्थित मोटों नामक फ्रान्सीसी तथा हर्बन नामक स्पेनवासी ने यथा सम्भव श्रम अवश्य किया था परन्तु उनके अधिकारों की सीमा एक रेजिमेण्ट या ब्रिगेड तक ही थी और मोर्चों में भी वैज्ञानिक कौशल या क्रमबद्ध योजना का आभास नहीं मिलता था।

[यह नोट लेखक द्वारा सिक्खों के सुदृढ़ मोर्चे को उचित महत्व दिए जाने की प्रवृत्ति का द्योतक है, यहाँ प्रतिरक्षा के उद्देश्य से किए गये कार्य वास्तव में काफ़ी मजबूत थे; इन्हीं में से एक अत्यन्त शक्तिशाली प्रतिरोध के निर्माण का उल्लेख करते हुए मीडोज़ टेलर कहता है—"ढाई मील लम्बे इस प्रतिरोध की रक्षा की व्यवस्था नदी के दाहिने तट पर चढ़ी हुई तोपों के ऊपर थी, जिससे कि मार्ग पर भी नियंत्रण रक्खा जा सकता और यहाँ ६७ तोपों के साथ सर्व श्रेष्ठ सिक्ख टुकड़ियों के १५ हजार जवानों को तैनात किया गया था—सम्पादक।]

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वाहियों का अभ्यास करते रहते और उनकी हुँकारें ब्रिटिश जसूसों के कानों तक पहुँचती थी, परन्तु इस उत्साह के बावजूद सिक्ख बुजुर्गों का अनुभव धोखा नहीं खा सकता था और वे कल्पना की आँखों से सिक्ख स्वतंत्रता के दिन समाप्त होने के लक्षण देख रहे थे; सिक्खों के हृदय आसन्न विपत्तियों को देखकर दहल रहे थे, वे न तो आन्तरिक अराजकता की समाप्ति का कोई मार्ग ढूँढ़ पा रहे थे न ही विदेशियों से अपनी स्वतंत्रता की रक्षा का, और अन्त में अटारी के वयोवृद्ध सरदार शार्मसिंह ने अपनी जाति के शत्रुओं के साथ भविष्य में होने वाले प्रथम युद्ध में अपने प्राण उत्सर्ग करने का दृढ़ संकल्प लिया, और इस संकल्प की खुली भोषणा करते हुए विधर्मियों से खालसा की रक्षा के लिए गुरु गोबिन्द जी के अनुयायियों व शिष्यों का अह्वान किया।

अंग्रेजों के आक्रमण की योजना

उधर ब्रिटिश कैम्प में भी सिपाहियों में आत्मविश्वास की भावना अत्यन्त प्रबल थी, और इंग्लैण्ड की विजय के सम्बन्ध में किसी को सन्देह ही नहीं था। अलीवाल की विजय के बाद से उनका मनोबल काफ़ी ऊँचा हो चुका था, और फरवरी के प्रारम्भ में ही दिल्ली से गोलाबारूद तथा अन्य आवश्यक सामान काफ़ी परिमाण में आ पहुँचा था। विशाल और भारी तोपों से लदी गाड़ियों को राजसी हाथियों द्वारा लाए जाते देख कर सिपाहियों का हृदय उत्साह से भर उठा था और अपनी जाति के विस्तृत राज्य के इन विशाल प्रतीकों को देख कर अंग्रेजों का हृदय भी जातिगत गर्व से झूम उठा था। सारी तैयारी हो जाने पर यह निश्चय किया गया कि उसी माह अर्थात् फरवरी की दसवीं तारीख़ को सिक्खों पर आकमण किया जाय, और निश्चित विजय प्राप्त करने तथा उत्साहित सैनिकों की प्रतिहिंसाग्नि को त्वरित तृप्ति के लिए अनेक योजनाओं पर विचार विमर्श किया गया। तोपखाने के अफ़सरों ने प्रस्ताव रक्खा कि युद्ध-कौशल का प्रतिनिधित्व करने वाली तोपों का प्रयोग इंजीनियरों द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार किया जाय या बटेलियनों के खुले आक्रमण के पूर्व ही तोपों द्वारा सिक्खों की प्रतिरक्षात्मक दीवालों को अग्र भाग की ओर ध्वस्त कर दिया जाय और पार्श्व को मोड़ दिया जाय। परन्तु जान बूझकर संघर्ष को अधिक देर तक टिकाए रखने वाली इस लम्बी और उलझी हुई प्रक्रिया का प्रस्ताव अधीर कमाण्डरों की सहमति न प्राप्त कर सका और यह व्यवस्था की गई कि शत्रु के मोर्चे के विशिष्ट स्थानों के सामने सभी बड़ी तोपों को एक साथ लगा दिया जाय और जब गोलों की

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अनवरत मार से सिक्खों की पंक्तियाँ बिखरने लगें तो उनके दाहिने, या निर्बलतम पार्श्व पर उन तीनों संघर्षरत डिवीजनों में से सर्वाधिक कुशल डिवीजन सीधा आक्रमण कर दे जिनकी सम्मिलित संख्या १५ हजार थी। ब्रिटिश अश्वारोहियों के एक काफी बड़े दल को लाल सिंह की गतिविधियों पर नजर रखने के लिए तैनात कर दिया गया था, और विजय की सम्भावना देखते ही सतलज को पार करने के लिए फ़ीरोज पुर के निकट की दो डिवीजनों को तैयार रहने का निर्देश दे दिया गया था; पिछले दिन के दोपहर के पूर्व आक्रमण के निश्चित ढंग का अन्तिम रूप से निर्धारण न किया जा सका, क्योंकि अधिकारी अपनी उस पर्यवेक्षक चौकी पर अचानक आक्रमण करके पुनः अपने अधिकार में ले लेना चाहते थे जो उनकी उदासीनता या असावधानी के कारण सिक्खों के हाथ पड़ गई थी। इस प्रकार ९ फरवरी की सन्ध्या तथा रात के कुछ घण्टे तरह तरह की तैयारियाँ करने में व्यतीत हुए; अब तक शान्त से दिखाई पड़ने वाले ब्रिटिश कैम्प में सर्वत्र सक्रियता दिखाई देने लगी। स्थान स्थान पर सैनिकों के दल अपने शौर्य द्वारा प्राप्य विजय के सम्बन्ध में उत्साहपूर्वक बातें करते दिखाई दे रहे थे और अफसर आदेश लेने या देने के लिए घोड़ों पर दौड़ते नजर आ रहे थे।

सोबराँव का युद्ध
१० फरवरी १८४६:

रात्रि के अन्धकार में, जो घनी झाड़ियों के कारण और भी गहन हो गया था, ब्रिटिश डिवीजनें चुपचाप आगे बढ़ीं। पर्यवेक्षक चौकी खाली पड़ी हुई थी; ब्रिटिश डिवीजनों ने जहाँ तहाँ पड़े सिक्ख दलों पर अचानक धावा कर दिया और जब सिक्खों ने देखा कि शत्रु सेना उनके सर पर आ पहुँची हैं तो उन्होंने अन्धाधुन गोलियाँ चलाना प्रारम्भ कर दिया। प्रभात की रक्तिम किरणों के साथ ही ब्रिटिश तोपों ने अग्निवृष्टि करना प्रारम्भ कर दिया, और तीन घण्टों से भी अधिक समय तक शत्रु सेना के मुख्य भाग पर गोले बरसाए जाते रहे जिनकी मार से सिक्खों की गोलेबारूद से लदी गाड़ियाँ उड़ गईं और रेत के टीले हवा में बिखर गए और भयंकर अग्निबाण सनसनाते हुए सिक्ख सैनिकों पर गिरने लगे, परन्तु मृत्यु के इस भयंकर ताण्डव से भी सिक्ख विचलित नहीं हुए; वे दृढ़ता व अनुशासन के साथ डटे रहे और 'रक्त का बदला रक्त से और आग का बदला आग से' लेते रहे। युद्धरत योद्धाओं की हुंकारों से पूरा युद्ध क्षेत्र गूँज रहा था; एक क्षण फटे हुए गोलों की बारूद का धुआँ उठता दिखाई देता था तो दूसरे ही क्षण

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पालिश किया हुआ तीखा फौलाद उस धुएँ को चीरने का प्रयास सा करता दिखाई देता था। तोपों की तीव्र गड़गड़ाहट और गूँज दृश्य को और भी प्रभावशाली बना रही थी और युद्धरत सैनिक बादल और बिजली के इस संयोग से प्रेरणा प्राप्त कर रहे थे; परन्तु जैसे जैसे सूर्य ऊपर उठने लगा, यह अनुभव किया जाने लगा कि इतनी दूर से बिना स्पष्ट लक्ष्य के गोलाबारी से युद्ध की अवधि बढ़ती ही जायगी और गुत्थमगुत्था युद्ध के लिए आतुर पद सेना का अपने ही बल पर विजय श्री प्राप्त करने का उत्साह मन्द पड़ता जायगा। तोपों के मुँह कुछ समय के लिए शान्त हुए और प्रत्येक सैनिक ने आगे आने वाले कठिन संघर्ष के लिए स्वयम् को तैयार कर लिया; उनकी चमकती हुई आखें और हथियारों की दृढ़ पकड़ ही उस वीर-भावना का परिचय दे रही थी जो उनके हृदय को उद्वेलित किए हुए थी। ब्रिटिश सेना का बाँया डिवीजन हल्के कदमों से, सीधी कतारों में आक्रमण करने के लिये आगे बढ़ा परन्तु प्रारम्भ में ही रेजिमेण्टों को कालम में व्यवस्थित करने के स्थान पर पंक्तिबद्ध करके जो भूल कर दी गई थी, उससे यह संघर्ष अधिक असंतुलित हो गया जितना कि ऐसे आक्रमण में नहीं होना चाहिए था। शत्रु की पंक्तियों से आने वाला प्रत्येक वार प्रभावशाली सिद्ध हो रहा था; शीघ्र ही तोपों, जम्बूरकों और बन्दूकों की मार से आगे बढ़ी हुई डिवीजन का एक बड़ा भाग पीछे लौटने के लिए विवश हो गया। मोर्चे के एकदम बाईं ओर रेजिमेण्टों ने सिक्खों द्वारा बनाए गए अग्रिम अवरोधों और साधारण खाइयों को पार करने में सफलता प्राप्त कर ली यद्यपि उस भाग पर अधिकार कर लेने से कोई विशेष लाभ या सुविधा प्राप्त होने की आशा नहीं थी, पर दाहिने पार्श्व से लड़ रहे उनके साथी इस आंशिक सफलता के समाचार से अनुप्राणित हुए; पीछे लौटने के लिए विवश होने के अपमान से उत्तेजित होकर उन्होंने एक समूह का रूप ले लिया और एक वृद्ध परन्तु निडर नायक के नेतृत्व में वे क्रोध से हुंकारते हुए आगे बढ़े[1]। एक जोशभरी ललकार के साथ वे खाई को फाँद गए और बाढ़ की भाँति उमड़ते हुए प्रतिरक्षात्मक दीवाल पर चढ़ गए और दूसरे ही क्षण वे अधिकार में आ गई सिक्ख तोप के चारो ओर विजेताओं के रूप में खड़े दिखाई पड़े; परन्तु सिक्खों का शौर्य भी कम सराहनीय नहीं था। वे दृढ़ निश्चय तथा अन्तिम निर्णय का संकल्प लेकर लड़ रहे थे। सिक्ख सेना के आन्तरिक भाग में लगी तोपों का मुँह इन थके हुए आक्रामकों की ओर घुमा

१ — इस प्रयास में सर राबर्ट डिक बुरी तरह घायल हो गए थे।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

दिया गया, और वे खाँई से आगे न बढ़ सके। यह उपलब्धि भी कोई एक क्षण का कार्य नहीं था। पहले आगे बढ़े हुए ब्रिटिश आक्रामकों की विवशता को देखते हुए मध्यवर्ती डिवीजन को आगे बढ़ाने की आवश्यकता का अनुभव किया गया, और सहायतार्थ आगे बढ़ने वाली ये रेजिमेण्टें भी उन्हीं प्रति-रक्षात्मक दीवालों की ओर एक पंक्ति में बढ़ने का प्रयास करने लगीं जहाँ से उनके पहले दल को पीछे लौटने के लिए विवश होना पड़ा था। उत्साहित सिक्खों की तोपों ने उनका भी वही हाल किया जो उनके पूर्ववर्ती साथियों का हुआ था; अर्थात् उन्हें भी पीछे लौटना पड़ा, परन्तु एक फर्लांग की दूरी तक हटते हटते उनके आन्तरिक शौर्य और दृढ़ अनुशासन ने उन्हें पुनः घूम कर धावा करने के लिए प्रेरित किया। उनके इस दूसरे धावे में बाईं ओर से पहली डिवीजन के उन विजयी सैनिकों ने भी सहायता पहुँचाई जो अभी तक खन्दकों में ही पड़े हुए थे, और इस प्रकार ब्रिटिश सेना की मध्यवर्ती डिवीजन ने भी, अपनी दाहिनी ओर से भयंकर संघर्ष करते हुए सिक्खों की इन सभी तोपों पर अधिकार कर लिया जो उनके सामने थीं। द्वितीय डिवीजन के अप्रत्याशित रूप से पीछे हटने, तथा उस भयंकर संघर्ष को देखने पर—जिनमें प्रथम डिवीजन उलझी हुई थी, कोई आकस्मिक दर्शक उन विभिन्न परिस्थितियों पर विचार करने लगता जो युद्ध में सफलता का निर्णय करती है। अलीवाल के युद्ध में विजय प्राप्त करने वाली बटेलियनों ने जो दाहिने पार्श्व से लड़ रही थीं—अपने सामने की सिक्ख कतारों पर जोरदार हमला किया, परन्तु अन्य स्थलों की भाँति वहाँ भी विनाश इन योद्धाओं की प्रतीक्षा कर रहा था। वे ढेर के ढेर गिरे, और प्रथम पंक्ति स्वयम् को न सँभाल पाकर दूसरी पंक्ति पर जा पड़ी, परन्तु दूसरी पंक्ति, अवरोधों की चिन्ता न करते हुए पुनः आक्रमण करने के लिए झपटी। दोनो पंक्तियाँ आपस में मिल गई और वे सामूहिक रूप में उसी प्रकार आगे बढ़े, जिस प्रकार द्वितीय डिवी-जन ने अपनी कीर्ति की रक्षा की थी, और इसी समय अश्वारोहियों के एक दल को बाँई ओर से अग्रिम पंक्ति का स्थान लेने के लिए झोंक दिया गया था जहाँ पदसेना की शक्ति व्यर्थ सिद्ध हो रही थी।

इस प्रकार ब्रिटिश सैनिकों सिक्खों की खाँइयों में हर ओर से प्रवेश कर गए परन्तु सिक्ख तोपें इधर उधर से अब भी गोले बरसा रही थीं। सिक्खों की सेना के आन्तरिक भाग में वीर और साहसी खालसा सैनिक स्वयम् द्वारा निर्मित अवरोधों का भरपूर लाभ उठाते हुए एक एक इंच भूमि के लिए भयंकर संघर्ष कर रहे थे। सिक्ख सेना के दाहिने पार्श्व में सैनिकों की थकी

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हुई शक्ति को राहत पहुँचाने के लिए सुरक्षित व ताजादम सैनिकों को उस भाग में भेजने के स्थान पर स्वजाति द्रोही तेजसिंह, ब्रिटिश डिवीजन के प्रथम आक्रमण में ही मैदान से भाग खड़ा हुआ, परन्तु अटारी के वृद्ध सरदार शाम सिंह को अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण था; उसने मृत्यु का वरण करने के संकल्प अनुकूल ही श्वेत वस्त्र धारण किए और अपने चारो ओर युद्धरत सिक्खों को गुरु व खालसा के सम्मान की रक्षा में जान दे देने के लिए ललकारते हुए बिखरी हुई सिक्ख पंक्तियों को दो बार संभाला और अन्त में शहीद होकर अपने भाइयों की लाशों के ढेर पर सो गया। अन्य सिक्ख सैनिक भी वीरतापूर्वक लड़ते दिखाई दे रहे थे, गोलों की सनसनाहट के बीच कुछ सैनिक दीवालों पर खड़े होकर आक्रामकों को तलवार की धार पर उतार रहे थे, और कुछ सैनिक तोपचियों को ऐसे स्थलों का संकेत दे रहे थे जहाँ ब्रिटिश सैनिक काफी बड़ी संख्या में लड़ रहे थे। सिक्ख मोर्चे के उस आधे भाग में, जिसे अत्यन्त सुदृढ़ बनाया गया था आधे घण्टे की अवधि के युद्ध में भयंकरता के सभी नमूने सामने आए, और अवरोधक दीवालें एक छोर से दूसरे छोर तक रक्त से लाल हो उठीं और खाँइयाँ हताहतों से पट गईं। तोपों की, बहरा कर देने वाली गड़गड़ाहट और बन्दूकों की गोलीबारी में भी विजय और ललकार के उत्साह पूर्ण शब्द सुनाई दे रहे थे, तैरती हुई तलवारों की चमक अभी भी दिखाई दे रही थी; समय समय पर फटने वाले गोलों से लकड़ी के टुकड़े और धूल के बादल, धुएँ और ज्वाला के उस सागर से भी ऊपर दिखाई पड़ते थे जिसने संघर्षरत योद्धाओं को ढँक रक्खा था, और इतने कड़े संघर्ष में भी सैनिकों की दृष्टि कुछ समय के लिए ऐसे दृश्यों की ओर जब तक आकृष्ट हो जाती थी। धीरे धीरे सिक्खों के सभी अवरोधों को पार कर लिया गया, और अब प्रबल पड़ रही ब्रिटिश सेना सिक्खों को सतलज की धारा की ओर हटने पर विवश करने लगी, परन्तु ब्रिटिश अश्वारोहियों तथा पदसैनिकों द्वारा हर ओर से घिरे होने पर भी खालसा के धर्मोन्मादी पुत्रों ने न तो अस्त्र रक्खे, न प्राणों की भिक्षा ही माँगी। उन्होंने प्रत्येक स्थल पर विजेताओं का कड़ा प्रतिरोध किया और लड़ते लड़ते वीरगति प्राप्त की; और कितने ही सैनिक तो बिल्कुल अकेले ही निश्चित व सम्मानजनक मृत्यु का वरण करने के लिए तलवार घुमाते हुए शत्रु की पंक्तियों में घुस गए। विजेताओं ने आश्चर्य विस्फारित नेत्रों से पराजित शत्रुओं के अदम्य साहस को देखा और उन घायल, असहाय और अन्तिम साँसे गिनने वाले सिक्खों पर वार करने से विरत हो गए जिनके नेत्रों में अब भी उनके प्रति

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अपार घृणा का भाव भरा हुआ, था परन्तु युद्ध की नीति से विवश अंग्रेजी कमाण्डरों के लिए उस सेना को पूरी तरह बिखेरना ही था जो इतने दिनों से उनके राज्य के प्रति द्वेष एवम् घृणा के भाव प्रकट करती आ रही थी। एक बार फिर तोपों की गड़गड़ाहट और वृटिश सैनिकों की बन्दूकों से त्रस्त सिक्खो को सतलज में उतरने पर विवश होना पड़ा, और अंग्रेजों की विजय पूर्ण हो गई। गर्द-गुबार से ढँके हुए ब्रिटिश सैनिक कुछ क्षणों तक स्तब्ध एवम् मूक खड़े रहे, परन्तु शीघ्र ही विजय के गौरव ने उनके चेहरों पर प्रसन्नता का भाव ला दिया; उन्होंने अब अपनी भावनाओं को अभिव्यक्ति दी और विजयनाद तथा ललकारों के साथ उन्होंने अपने कमाण्डरों को कठिन संघर्ष के उपरान्त प्राप्त इस विजय के लिए बधाई दी[1]।

विजय की रात्रि को, कुछ रेजिमेण्टों को फ़ीरोज़ पुर के सामने से सतलज के पार भेज दिया गया, जहाँ अब शत्रु पक्ष का एक भी सैनिक नहीं दिखाई पड़

१—देखिये लॉर्ड गफ़ का पत्र, १३ फरवरी १८४६, और मैकग्रेगर, हिस्ट्री ऑव द सिख्स, २:१५५। इस युद्ध में ब्रिटिश पक्ष के ३२० सैनिक मारे गए, और २०८६ घायल हुए थे, और मारे गये सिक्खों की संख्या सम्भवतः ५००० से अधिक थी, जिसे कुछ लोग ८००० तक मानते हैं।

कमाण्डर इन चीफ ने इस युद्ध में सिक्ख सेना की संख्या का अनुमान ३०,००० के लगभग लगाया था और उसके अनुसार मोर्चे पर सिक्खों की ३६ रेजिमेण्टें थीं, फिर भी यह सन्दिग्ध है कि खाँइयों—खन्दकों में २०,००० सैनिक भी थे या नहीं। वास्तविक आक्रामक अंग्रेजी सिपाहियों की संख्या १५, ००० थी। युद्ध के पश्चात् लॉर्ड गफ़ ने लाहोर स्थित ब्रिटिश अधिकारियों के आधार पर यह निश्चित किया कि स्वयम् सिक्खों के अनुसार सोबराँव युद्ध में ४२ ३२६ सैनिकों ने भाग लिया था, इस संख्या में खाइयों में मोर्चा लिये हुए सैनिकों के साथ नदी के दाहिने तट पर पड़े सैनिक भी सम्मिलित थे, और इस स्थिति में इस संख्या की विश्वसनीय माना जा सकता है लॉर्ड गफ के ही अनुसार इस निर्णायक युद्ध में सिक्ख पक्ष के १२ से १५ हजार तक सैनिक कामआये थे।

सोबराँव या शुद्धतः सुब्राहान एक गाँव, या दो छोटे गाँवों का नाम है जिसके निकट यह प्रसिद्ध युद्ध हुआ था; यहाँ सुबह नामक जनजाति की एक उपश्रेणी रहती थी जिसे बहुबचन में सुब्राह्मण कहा जाता था, और उसी श्रेणी के नाम पर इस गाँव का नाम पड़ा।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

रहा था, और १२ फरवरी को बिना किसी बाधा-विरोध के कसूर के किले पर अधिकार कर लिया गया। अगले दिन ब्रिटिश सेना ने सतलज का मार्ग, दीवालों द्वारा घिरे हुए इस प्राचीन नगर में विश्राम किया महाराजा की अधी और इस सूचना को निश्चित रूप से सत्य मान लिया गया नता और लाहौर कि लगभग बीस हजार की संख्या में सिक्ख अब भी अमृत- पर अधिकार सर में जमे हुए थे; परन्तु अब खालसा के सशस्त्र प्रतिनिधियों की शक्ति समाप्त हो चुकी थी; जिन लोगों के पास धनकोष या अन्न के भण्डार थे, उन्होंने प्रारम्भ में सिक्खों की पराजय में दबे छिपे सहायता पहुंचाई थी, और अब खुले रूप से शत्रु से मिल गए थे। सिक्ख सैनिकों ने दरबार के इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया था कि उनके चुने हुए वज़ीर गुलाब सिंह को, लाहौर में एक सिक्ख सरकार को मान्यता दिए जाने के पूर्व निश्चित आधार पर अंग्रेजों से सन्धि करने का पूर्ण अधिकार दे दिया जाय। उसी माह की १५ वी तारीख़ को कसूर में गवर्नर जनरल हार्डिंज ने राजा गुलाब सिंह तथा अन्य प्रमुख सरदारों से मुलाकात की और उन्हे बता दिया गया कि दलीप सिंह अंग्रेजों के मित्र, तथा पंजाब के महाराजा की हैसियत से लाहौर के सिंहासन पर बने रहेंगे, लेकिन व्यास और सतलज के मध्य स्थित समस्त क्षेत्र विजेताओं के अधिकार में रहेंगे, साथ ही यह भी कि युद्ध के व्यय के रूप में लाहौर दरबार को डेढ़ करोड़ रूपया भी देना होगा जिससे कि हिन्दुस्तान की अन्य रियासतें यह देख लें कि अंग्रेज़, अक्रामकों को कैसा दण्ड देते हैं, और शान्ति प्रिय अंग्रेजों के विरुद्ध-शत्रुता पूर्ण कार्यवाहियों से कितनी हानि उठानी पड़ती है। काफ़ी लम्बी बहस के पश्चात् सिक्ख पक्ष को विजेताओं की इन शर्तों को विवशतः स्वीकार करना पड़ा तथा बालक-महाराजा को व्यक्तिगत रूप से आकर अधीनता स्वीकार करनी पड़ी और तब ब्रिटिश सेना सिक्खों की राजधानी पहुँची (२० फरवरी)। इसके दो दिन पश्चात् किले के एक भाग को इस ध्येय से अंग्रेज़ी रेजिमेण्टों के हवाले कर दिया गया जिससे हिन्दुस्तानी रियासतों को स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाय कि एक उद्धत शत्रु का सिर सफलता पूर्वक कुचल दिया गया है, क्योंकि देश भर में अंग्रेजों के अधीन राजा सिक्ख-अंग्रेज युद्ध में विदेशी शासकों के पतन की कल्पना करके प्रसन्न हो रहे थे, और उनमें अंग्रेजों के पञ्जे से मुक्ति पाने की आशा बलवती हो चली थी[1]।

१—गवर्नर जनरल का पत्र सिक्रेट कमेटी को १९ फरवरी तथा ४ मार्च १८४६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गवर्नर जनरल न केवल सिक्खों को उनकी गत आक्रामक कार्यवाहियों के लिए समुचित रूप से दण्डित करना चाहते थे बल्कि उन्हें भविष्य के लिए भी सचेत कर देना चाहते थे और इसीलिए उन्होंने इस बार दोनों राज्यों की सामान्य सीमा के लिए सतलज के स्थान पर ब्यास को चुना था जहाँ से लाहौर पर अधिक कड़ा नियंत्रण रक्खा जा सकता था। इसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर उन्होंने प्रारम्भ में विचार किया था कि राजा गुलाब सिंह को पंजाब की अधीनता से मुक्त करके जम्मू का स्वतंत्र राजा बना देना ब्रिटिश हितों के लिए लाभदायक सिद्ध होगा[1]। जम्मू का महत्वाकांक्षी राजपरिवार बहुत पहले से ब्रिटिश सरकार द्वारा ऐसी मान्यता प्राप्त करने का इच्छुक था, परन्तु गवर्नर जनरल को सम्भवतः यह स्मरण नहीं रहा कि गुलाब सिंह अधीनस्थ पंजाब राज्य के वजीर के पद के लिए भी अत्यधिक उत्सुक था[2], और सम्भवतः इस बात पर भी विचार नहीं किया गया कि अलीवाल के युद्ध में सिक्ख सेना के सर्वनाश का आभास मिल जाने के पश्चात् से ही राजा गुलाब सिंह की समस्त वार्ताओं का लक्ष्य, यही था कि उसे लाहौर के पूरे राज्य-क्षेत्र में एक वास्तविक प्रशासक का अधिकार मिल जाय। सिक्ख सरदारों ने गुलाब सिंह को उस स्थिति

सन्धि-वार्ता : गुलाब सिंह

२—गवर्नर जनरल का पत्र सिक्रेटकमेटी को ३ और १६ फरवरी १८४३।

३—अनेक वर्षों से यही इस परिवार का मुख्य लक्ष्य था, या, कम से कम उस समय से तो अवश्य ही था जब ध्यानसिंह इस आशा में कर्नल वेड को स्थानांतरित कराने के प्रयास में व्यस्त था कि उसके स्थान पर शायद कोई ऐसा ब्रिटिश प्रतिनिधि आजाय जो उसके पक्ष में हो। मि० क्लर्क लाहौर के वजीर की दोनों ही योजनाओं से भिज्ञ था यद्यपि इस योजना को अधिक महत्व दिया गया कि जम्मू के राजाओं को सिक्ख-अधीनता से मुक्त करा दिया जाय क्योंकि नौनिहाल सिंह के बाद से पंजाब में उनका प्रभाव एवम् सम्मान बहुत कम हो गया था।

यदि अंग्रेज़ों ने कहा होता कि वे गुलाबसिंह को वज़ीर के पद पर बना रहना देखना चाहते थे, और इस ओर कोई ध्यान न देते कि लाल सिंह जीवित था या मार डाला गया था, तो उसकी बहुत सम्भावना थी कि लाहौर में एक अत्यन्त कुशल एवम् शक्तिशाली सरकार का गठन हुआ होता, और लाहौर पर अधिकार करने तथा १८४६ की दूसरी सन्धि की आवश्यकता ही न पड़ती।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

में अपना बजीर बनाया था जब कि एक भयानक खतरा उनके सिर पर था, और जब गवर्नर जनरल ने तैयारी के लिए समय के अभाव तथा आवश्यक साधनों की प्राप्ति में विलम्ब का अनुभव किया था, उस समय भी अंग्रेजों द्वारा औपचारिक रूप से गुलाबसिंह को ही सिक्ख राज्य का वजीर मानकर वार्ता की गई थी,[1] परन्तु जब लालसिंह ने देखा

लाल सिंह

कि चार बार जमकर हुए युद्धों के पश्चात् ब्रिटिश वायसराय सन्तुष्ट या हिन्दुस्तान की परिस्थितियों से विवश होकर, लाहौर को अधीनस्थ मित्र मानकर लौटने की तैयारी कर रहा था तो यह सोचकर बहुत प्रसन्न हुआ कि महाराजा की माँ पर जमे हुए अपने व्यक्तिगत प्रभाव के बल पर वह बड़ी सरलता से जम्मू के राजा का स्थानापन्न बन सकेगा। इस घृण्य देशद्रोही ने अपने उन समस्त षड़यंत्रों और विश्वासघातों की सफलता के लिए स्वयम् को बधाई देना प्रारम्भ कर दिया था, जिनके पीछे सिक्ख-स्वतंत्रता को दाँव पर रखकर अपना प्रभाव स्थापित करना ही उसका एकमात्र उद्देश्य था। उधर गुलाबसिंह अनुभव कर रहा था कि बिना अंग्रेजों का समर्थन प्राप्त किए वह वर्तमान स्थिति में पंजाब में लगभग असहाय था, परन्तु अंग्रेजों ने उसे बजीर के पद के लिए कोई आश्वासन नहीं दिया था। अंग्रेजों के समर्थन के इच्छुक गुलाबसिंह ने इसी समय यह पूछकर गवर्नर जनरल को परेशानी में डाल दिया कि उसने सिक्ख सेना के विनाश तथा शीघ्रतापूर्वक शान्ति की स्थापना के लिए जो कुछ किया था, उसके बदले में उसे क्या मिलने वाला था। अंग्रेजों को याद था कि गुलाबसिंह ने कसूर में कहा था कि अंग्रेजों के साथ सफल युद्ध करने का तरीका यह था कि पैदल सेना को खाँइयों-खन्दकों में छोड़ दिया जाता और अश्वारोहियों के दल सारे मैदान को रौंदते हुए दिल्ली के फाटक तक धावा करते; और जब कि सन्धिवार्ता चल ही रही थी यह

१—देखिए गवर्नर जनरल का पत्र सिक्रेट कमेटी को, ३ और १९ फरवरी १८४६, इन दोनों ही पत्रों में लार्ड हार्डिंज ने संकेत किया है कि वे गुलाबसिंह के लिए कुछ करना चाहते थे परन्तु वे यह नही कहते कि वे उसे लाहोर की अधीनता से मुक्त करने के विषय में सोच रहे थे, न वे यही कहते हैं कि उन्होंने सिक्ख सरदारों को स्पष्ट बता दिया था कि उस समय की विचाराधीन व्यवस्थाओं में एक यह भी थी कि जम्मू को लाहौर से पृथक कर दिया जाय और सम्भवतः वास्तविकता यह थी कि प्रारम्भ में, विजय की प्रसन्नता में गवर्नर जनरल, इस शक्तिशाली राजा को सन्तुष्ट रखने के विचार को भूल गये थे।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

विचार किया गया कि राजा गुलाबसिंह जैसे कूटनीतिज्ञ राजा को मित्र बनाए रखना आवश्यक था क्योंकि वह बची खुची सिक्ख शक्ति को संगठित कर, तथा अपने निजी कोष की सहायता से और सेना संग्रहीत कर एक ही दिन में एक प्रबल आक्रामक का रूप लेने की सामर्थ्य रखता था।

पंजाब का विभाजन, और गुलाबसिंह की स्वतंत्र सत्ता;

लाहौर के राज-कोष की रिक्तता तथा एक प्रतिद्वन्द्वी को अपने मार्ग से हटाने की लालसिंह की उत्सुकता ने मिलकर गवर्नर जनरल को, गुलाबसिंह को सन्तुष्ट करने की एक ऐसी विधि सुझाई जिसे स्वयम् गुलाबसिंह ने भी सहर्ष स्वीकार किया, तथा जिससे महाराजा रणजीतसिंह के महत्व में और अधिक ह्रास हो गया, युद्ध के व्यय के रूप में लाहौर दरबार से जितने धन की माँग की गई थी, उसका दो तिहाई भाग नहीं दिया जा सका क्योंकि खजाने में इससे अधिक रूपया नहीं था; अतः शेष धन के बदले में व्यास से लेकर सिन्ध तक के मध्य में स्थित कश्मीर तथा अन्य पहाड़ी रियासतों को मुख्य पंजाब राज्य से ले लिया गया और एक करोड़ रुपया लेकर यह सारा क्षेत्र स्वतंत्र सत्ता सम्पन्न राजा गुलाबसिंह को दे दिया गया। इस व्यवस्था को इस दृष्टि से भले ही उचित मान लिया जाय कि इससे सिक्खों पर दुतरफ़ा नियंत्रण रक्खा जा सकता था, परन्तु यह सौदा ब्रिटिश नाम की महानता पर एक कलंक सा प्रतीत होता है, और यह उस समय और भी अधिक निन्द्य लगने लगता है, जब हम यह सोचते हैं कि इसी गुलाबसिंह को सिक्ख-अंग्रेज युद्ध प्रारम्भ होने से पूर्व कैदी की सी हैसियत से लाहौर लाया गया था जहाँ उसने जुर्माने के रूप में महाराजा को ६८ लाख रूपया देने का वादा किया था,[1] और न केवल पश्चिम में बल्कि पूरब में भी यह प्रथा प्रचलित है कि अधीनस्थ राजा और सामन्त विदेशी युद्ध या आन्तरिक संकट के समय अपने सत्ता सम्पन्न सम्राट को सैनिक व आर्थिक सहायता देते हैं। इस प्रथा के अनुसार चाहिए तो यह था कि लाहौर की प्रजा होने के नाते गुलाबसिंह, अंग्रेजों द्वारा माँगी गई रकम का उतना भाग अपने खजाने से दे देता जिसे देने में लाहौर का खजाना उस समय असमर्थ था, परन्तु हुआ यह कि उल्टे उसे स्वतंत्र राजा घोषित करके लाहौर राज्य के कुछ प्रान्तों का स्वामी बना दिया

१ –मेजर ब्राँडफुट का पत्र सरकार को, ५ मई १८४५। लेखक ने न कभी सुना, न उसे विश्वास ही है कि गुलाब सिंह द्वारा जुर्माने की यह रकम लाहौर के खजाने में जमा की गई थी।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गया। जम्मू के राजा को इतना महत्व दिया जाना सिक्खों को बहुत खला, और स्वयम् राजा को भी यदि महाराजा रणजीतसिंह के विशाल साम्राज्य का वजीर बना दिया जाता तो वह अपेक्षाकृत अधिक प्रसन्न एवम् सन्तुष्ट होता; परन्तु उसे प्रभुसत्ता-सम्पन्न राजपद मिल जाने से अन्य सरदारों की महत्वाकांक्षा की प्रेरणा दी और तेजसिंह ने – जिसके पास पर्याप्त सम्पत्ति थी और जो स्वर्ण की शक्ति पर प्रबल विश्वास रखता था—एक राजमुकुट तथा सिक्ख प्रान्त के लिए पचीस लाख रूपया देने का प्रस्ताव अंग्रेजों के समक्ष रक्खा, परन्तु ब्रिटिश कार्यप्रणाली एवम् राजनीतिक सिद्धान्तों का भ्रामक अर्थ लगाने के लिए उसे फटकार दिया गया। गुलाबसिंह के लिए जो व्यवस्था की गई थी उसकी पुनरावृत्ति करने का अंग्रेजों का कोई इरादा नहीं था। १५ मार्च सन् १८४६ को अमृतसर में अंग्रेजों के इस नए मित्र को महाराजा की उपाधि से विभूषित किया गया,[1] परन्तु प्रारम्भ में पंजाब का जितना भूभाग उसे देने का निश्चय किया गया था, उसका एक भाग उसके स्वामियों ने अपने लिए सुरक्षित रख लिया, जिसके बदले में पूर्वनिर्धारित रकम में से एक चौथाई कम कर दिया गया, और अंग्रेज उसे उस खजाने का उत्तराधिकारी मानकर शेष रकम की अदायगी के प्रति निश्चिन्त हो गए जिसे उसके भाई सुचेतसिंह ने फिरोजपुर में गाड़ रक्खा था![2]

१—इस भव्य समारोह में, उपाधि ग्रहण करने के उपरान्त 'महाराजा' गुलाब सिंह उठ खड़े हुए और उन्होंने हाथ जोड़कर ब्रिटिश वायसराय के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा कि वे वास्तव में वायसराय के 'जरखरीद' (स्वर्ण से खरीदे गये) गुलाम थे।

इस इतिहास के घटनाक्रम में अनेक स्थलों पर राज्य गुलाबसिंह के कपट पूर्ण चरित्र का उल्लेख किया गया है परन्तु यह नहीं समझ लेना चाहिए कि वे प्रकृति से ही बुरे थे। वे किसी भी शत्रु को धोखा देकर बिना हिचके उसके प्राण ले सकते थे और धन संग्रह के लिए अनेक प्रकार के अत्याचार कर सकते थे, परन्तु उनके चरित्र पर विचार करते समय हमें उनके काल व जाति की नैतिकता, तथा राजनीतिक आवश्यकताओं का भी ध्यान रखना चाहिए, और तब हम उन्हें एक योग्य और उदार व्यक्ति पाएँगे।

२—लाहौर व जम्मू के साथ हुई सन्धियों के लिए देखिए परिशिष्ट ३४, ३५ व ३६।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

लाल सिंह एक बार पुनः पंजाब का वजीर बना, परन्तु केवल वही नहीं, बल्कि सभी देशद्रोही सरदार भली भाँति जानते थे कि खालसा सेना की शक्ति के लगभग पूर्णतः समाप्त हो जाने पर भी जब अंग्रेज पंजाब को पूरी तौर पर छोड़कर चले जायँगे, तो वे अपनी स्थिति को बनाए न रख सकेंगे, और इस प्रकार गुलाब सिंह के अलग हो जाने से अंग्रेजों को अपनी पूर्व निर्धारित योजना में पुनः परिवर्तन करना पड़ा। यह निश्चय किया गया कि इन सरदारों की सुरक्षा के लिए ब्रिटिश सेना की एक टुकड़ी दिसम्बर १८४६ के अन्त तक लाहौर में रहेगी और इस बीच वे अपनी सेना का संगठन कर लेंगे और प्रशासन में भी एक स्थिरता और क्षमता आ जायगी। धीरे धीरे वर्ष का अन्त आ गया, परन्तु सिक्ख सरदार अब भी असहाय थे; विदेशी सहायता उनके अस्तित्व का आवश्यक अंग बन गई और अन्त में एक अन्य व्यवस्था की गई जिसके अनुसार महाराजा रणजीत सिंह के विभाजित साम्राज्य का प्रशासकीय अधिकार उस समय तक के लिए ब्रिटिश सरकार के अधिकार में चला गया जब तक कि उनका अवयस्क उत्तराधिकारी शासन-भार सँभालने के योग्य न हो जाता[1]।

१८४६ की पूरक व्यवस्थाएँ, वयस्क होने तक दलीपसिंह ब्रिटिश संरक्षण में

जिस समय बीस हजार सैनिकों के साथ गवर्नर जनरल और कमाण्डर-इन चीफ लाहौर में थे, खालसा सेना के कुछ दल अपना बकाया वेतन तथा बर्खास्तगी लेने के लिए राजधानी में आए। इन सैनिकों में न तो विद्रोहियों का सा उद्धत भाव ही था, न नौकरी पेशा सैनिकों की सी उदासीनता ही, और उनकी पुरुषोचित मुखमुद्रा उनके उस शौर्य का स्पष्ट आभास दे रही थी जिसे विजेताओं ने आश्चर्य से देखा था और हृदय से सराहा था। वे बात चीत में अपनी पराजय को युद्ध का संयोग मात्र मान रहे थे, परन्तु उनके नेत्रों में भविष्य के प्रति आशा एवम् विश्वास का भाव झलक रहा था; उनके मुख पर पराजय की कालिमा न थी बल्कि एक वीरोचित मुस्कान थी, जहाँ तहाँ वे यह भी कहते सुनाई देते थे कि खालसा तो अभी शिशु है; और जैसे जैसे इसका आकार बढ़ेगा, गुरु गोविन्द जी अपने शिष्यों को अदम्य शक्ति का वस्त्र पहनाएँगे और अतुलनीय कौशल से उनका पथ प्रदर्शन करेंगे, इसी प्रकार की बातों से वे वीर

सिक्खों की मनोदशा

१—लाहौर के साथ हुई दूसरी सन्धि के लिए देखिये परिशिष्ट ३७।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

स्वयम् को सन्तोष देते थे जब कि उनको सामूहिक रूप से अनुप्राणित करने वाली भावना ने इंग्लैण्ड की श्रेष्ठतर प्रतिभा के आगे सिर झुका दिया था, और उनकी सभ्यता को सँवारने का कार्य, शक्ति के खुरदरे हाथ में आ गया था जो उन्हें, सम्भवतः ज्ञान और दर्शन के स्पर्श से, उच्चतम लक्ष्यों की प्राप्ति के योग्य बना सकती थी।

—: o :—

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उप संहार

भारत में अंग्रेजों की स्थिति

सिक्खों की पृथक प्रभुसत्ता और पंजाब की स्वतंत्रता का पराक्षेप हो गया है और इंग्लैण्ड भारत के विशाल भूभाग का एक छत्र स्वामी है। भारत पर इंग्लैण्ड की राजनीतिक प्रभुसत्ता ब्राह्मणों एवम् क्षत्रियों के प्राचीन शासन की तुलना में कहीं अधिक नियमित और प्रणाली बद्ध है, और मुसलमानों की अपूर्ण सत्ता को तुलना में इस समय विदेशी आक्रमणों की आशंका नाम मात्र को भी नहीं है, क्योंकि अनुशासित शक्ति एवम् संसाधनों के विस्तार में, लक्ष्य व कार्य की एकता एवम् योजनाओं की दूरदर्शिता में इंग्लैण्ड की सरकार, पूरब के अनुभवों की तुलना में बहुत आगे है, और रोम के शासन के गौरवपूर्ण आदर्श के साथ स्पर्द्धा करती है, परन्तु एक सागर से दूसरे सागर तक, तथा हिममण्डित पर्वतीय श्रेणियों से लेकर राम द्वारा निर्मित पौराणिक सेतु तक के सम्पूर्ण क्षेत्र को हिन्दुओं ने एक ही रंग में ढाल लिया है और किसान की भाषा आज भी वही है जो दोनों श्रेष्ठ जातियों—ब्राह्मणों एवम् क्षत्रियों की है. मध्य एवम् दक्षिण के असभ्य जंगलियों और पर्वतीय जातियों की भाषा पर क्षत्रियों की प्राचीन सत्ता का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है और हजारों लाखों लोगों की आशाएँ एवम् आशंकाएँ अब भी ब्राह्मणों की सुखदायी पौराणिक कथाओं तथा गम्भीर दर्शन का प्रतिनिधित्व करती हैं जिन्होंने दो हजार वर्ष से भी अधिक समय पूर्व ग्रीकों का ध्यान आकृष्ट किया था। मुसलमानों ने विध्वन्सात्मक उद्देश्य से भारत-भूमि पर कदम रक्खे थे परन्तु वे यहीं के होकर रह गया और विदेशी विजेताओं की एक लम्बी शृंखला समय-समय पर उत्तरी भारत के समृद्ध मैदानों को पदाक्रान्त किया, विजितो की भाषा एवम् उनके विचारों को भिन्न-भिन्न परिमाणों में प्रभावित किया, और इस सम्पर्क के फलस्वरूप स्वयम् भी परिवर्तित हुए, यहाँ तक कि मुगलों के स्वर्णकाल में 'इस्लाम' को भारत की राष्ट्रीय प्रणाली का रूप दिया गया, और इन सारे पारस्परिक मेल मिलापों के परिणामस्वरूप आज भारत भूमि पर बसे हिन्दुओं और मुसलमानों में परस्पर उतना ही अन्तर रह गया है

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जितना मनु, तथा सिकन्दर के आक्रमण के काल में ब्राह्मणों, क्षत्रियों एवम् वैश्यों में था। हिन्दू और मुसलमान—दोनों दो भिन्न जातियाँ हैं जिनकी अपनी भिन्न धार्मिक प्रणालियाँ हैं, परन्तु उनका सामाजिक जीवन सौहार्द्रपूर्ण है और वे एक दूसरे के तौर तरीकों, उत्सवों, पर्वों एवम् परम्पराओं के प्रति सम्मान का भाव रखते हैं और उनमें भाग लेते हैं। इस प्रकार वे चुपचाप परन्तु निश्चित रूप से पारस्परिक भेदों और विशिष्टताओं की दीवारों की धीरे-धीरे ढहाने के प्रयास में लगे हुए हैं। मराठों, गुरखों तथा सिक्खों के रूप में दलित शूद्र जातियों के उत्थान के फलस्वरूप शहरों और नगरों में देहाती आबादी और निम्नस्तर के वर्गों में उच्चतर जीवन के प्रति आकांक्षा जागृत हुई है, और इस प्रकार प्राचीनता के प्रति सम्मान की परम्परागत भावना को एक और धक्का लगा है। लोगों द्वारा बोली जानेवाली भाषाओं में हुए पारस्परिक मेलजोल के फलस्वरूप उत्पन्न परिवर्तनों की तुलना में उनके धार्मिक सिद्धान्तों में कहीं अधिक परिवर्तन हुए हैं, और कट्टर मुल्लों और ब्राह्मणों के शिक्षित वर्ग के अतिरिक्त अन्य किसी भी वर्ग में अरबी पैगम्बर के धर्म या वेद-पुराणों के नीतिवचन की शुद्धता का आभास नहीं मिलता। आपस में घुल मिल जाने की प्रवृत्ति प्रदर्शित करने वाले ये वर्ग अब ब्रिटिश सत्ता के अन्तर्गत आ चुके हैं। आधुनिक विश्व में इंग्लैण्ड की प्रमुखता व महत्ता अन्य राष्ट्रों के लिए ईर्ष्या का कारण बन सकती है, परन्तु इस समय इंग्लैण्ड को इस महान कार्य के सम्बन्ध में अच्छी तरह विचार विमर्श कर लेना चाहिए जिसे उसकी साहसी सन्तानों ने पूरब में प्रारम्भ कर दिया है और इस बात के प्रति निश्चिन्त हो लेना चाहिए कि एक यथार्थ और प्राप्य लक्ष्य के प्रति, मानवता के विकास की दृष्टि से, उसके सहानुभूतिपूर्ण प्रयास उच्च-बुद्धि द्वारा संचालित होते हैं। राजनैतिक संकटों को शान्त करने वाली शक्ति के रूप में उसकी सत्ता सर्वोच्च है, परन्तु उसके राज्य क्षेत्र का बाह्य-भाग कम्पित रूप में सामाजिक परिवर्तन और मानसिक क्रान्ति के उफनते हुए सागर में विश्राम करता है। उसकी अपनी ही उच्च सभ्यता तथा हस्तक्षेप के लिए प्रेरित करने वाली परिस्थितियों ने उसकी सम्पूर्ण महानता के बावजूद उसे सर्वथा एकाकी छोड़ रक्खा है; वह केवल अपनी प्रजा को अपने अनुकूल बनाए रख सकता है, और कभी भी उनकी कृतज्ञता या पूर्वस्नेह का हकदार नहीं बन सकता[1]। अपनी राजनैतिक उच्चता

१—राजकीय पद मर्यादा के सम्बन्ध मे मेकाले द्वारा की गई जार्जों तथा चार्ल्स द्वितीय के तौर-तरीकों की तुलना (हिस्ट्री ऑव इंग्लैण्ड' १:३६४) भारत में ब्रिटिश शासन पर भी लागू की जा सकती है। गत शताब्दी के अपने विदेशी

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

को बनाए रखने के लिए उसे नीतिज्ञता एवम् सतर्कता का दामन सदैव पकड़े रहना चाहिए और जनमानस पर एक स्थायी प्रभाव छोड़ जाने के लिए उसे मन्दिरों-महलों के निर्माण के अतिरिक्त और बहुत कुछ करना चाहिए। ग्रीस एवम् रोम की भाँति वह अद्वितीय सौन्दर्य युक्त भवन बनवा सकता है, पुलों का निर्माण करा सकता है और धन तथा विज्ञान की शक्ति से पर्वतों का हृदय विदीर्ण कर सकता है। उन्हीं प्राचीन देशों की भाँति वह विदेशी भूमियों पर ऐसे हेरॉड के समान महाराजाओं तथा फ्लेवियस जोसेफियस जैसे इतिहास-कार उत्पन्न कर सकता है, तथा अन्य अनेक प्रकार की प्रतिभाओं कों जन्म, विकास एवम् प्रोत्साहन दे सकता। ये ऐसे कार्य हैं, जिन्हें सरलतापूर्वक किया जा सकता है अपने कवियों और सन्तों को अजन्मे राष्ट्रों में अमरत्व प्रदान करना; ऐसे कानूनों की रचना करना जो आगे की साठ पीढ़ियों तक सम्मानित एवम् उपयोगी समझे जाँय तथा लाभकारी विज्ञान तथा न्याय नैतिक द्वारा जनता के हृदय एवम मस्तिष्क को प्रकाशित एवम् प्रभावित करना, ये तथा इसी प्रकार के अन्य कार्य ऐसे हैं जिनके द्वारा शासित प्रजा के हृदय में विदेशी शासकों के प्रति सम्मान की भावना उत्पन्न की जा सकती है। ग्रीस एवम् रोम जैसे महान, प्राचीन देशों की सभ्यता, या उनसे आगे बढ़ जाने की आशा करने से पूर्व इंग्लैण्ड के लिए, अपने सम्पूर्ण राज्यक्षेत्र में सर्वांगीन प्रतिभा के बीज डालना और नींव डालना चाहिए[1]।

शासकों की भाँति अंग्रेज भी पूरब में कानून के अनुसार शासन करते हैं, परन्तु वे अपनी प्रजा के हृदय में अपने लिए कोई प्रेमपूर्ण स्थान नहीं बना सकते, जब कि राजनैतिक मामलों में बुद्धि से संचालित व्यक्ति न बहुत अधिक हैं, 'न विशेष प्रभाव शाली ही। भारत के मुस्लिम इतिहासकारों के सम्बन्ध में लिखे गये अपने महत्व पूर्ण ग्रंथ की भूमिका में सर एच० एम० एलियट (भूमिका पृ०२६) 'विदेशी शासन प्रणाली में निहित अनेक दोषों को' स्वीकार करता है, 'जिनमें भाषा, वर्ण, धर्म और प्रथाओं की भिन्नता से शासक और शासित में प्राकृतिक सहानुभूति उत्पन्न ही नहीं हो पाती, परन्तु साथ ही वह यह भी घोषित करता है कि अंग्रेजों ने ५० वर्षों में ही भारत, विशेषकर उत्तर भारत के विकास के लिए इतना कर दिया है जितना मुगलों ने इसके दस गुना अधिक समय में भी नहीं किया था, परन्तु अपने इस मत की पुष्टि के लिये विद्वान लेखक ने ठोस कार्यों का जो तुलनात्मक विवेचन किया है, वह अपर्याप्त है।

१—देखिये परिशिष्ट १५।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

परन्तु इंग्लैण्ड उस समय तक कुछ नहीं कर सकता जब तक कि भारत में उसका राज्य-क्षेत्र सुरक्षित नहीं हो जाता, और इसीलिए उसका सारा ध्यान सत्ता के विस्तार पर केन्द्रित है। इस समय तक वह निरन्तर उत्कर्ष के मार्ग पर बढ़ता रहा है; उसने मुगलों एवम् मराठों की सत्ता को धूल में मिलाकर यथेष्ट सम्मान अर्जित किया है और एक लम्बे समय से निर्बल शासक अपने सबल पड़ोसियों के विरुद्ध उससे सहायता की याचना करते रहे हैं। अब भारत में उसकी सत्ता सम्भवतः सबलतम स्थिति में है अब देशी नरेश उससे भयभीत रहते हैं और तथा उसकी मित्रता के आकांक्षी हैं, जब कि महत्वाकांक्षी व्यक्ति केवल भारत से ब्रिटिश सत्ता की समाप्ति की आशा पर ही अपनी आकांक्षाओं का भवन तैयार कर सकते हैं। देशी नरेशों में अब इतनी शक्ति शेष नहीं रही है कि वे एक दूसरे को अपना शिकार बनाकर यश या क्षेत्र अर्जित कर सकें। अपने नए प्रभुओं की सबल शासन प्रणाली के अन्तर्गत वे अपनी आकांक्षाओं एवम् हिंसात्मक प्रवृत्तियों का त्याग करने के लिए बाध्य हैं, और केवल नाममात्र के लिए ही राजा की उपाधि धारण किए रहने में ही उनका कल्याण है। भारत वासी, स्वयम् ही विनम्रतापूर्वक ब्रिटिश राज्य, व उसके द्वारा संरक्षित राजाओं की तुलना रात्रि के समय नील गगन में खुशी से झूमते हुए सितारों के मध्य में स्थित सुखदायी चन्द्रमा से करेंगे, सूरज से नहीं जो रौद्र रूप में, अपने तीव्र प्रकाश एवम् उत्ताप से गगन के इस छोर से उस छोर तक किसी एकाकी यात्री की भाँति, दिखाई पड़ता है, परन्तु मनुष्य शक्ति के साथ ही विश्राम की भी कामना करता है, और सम्पत्ति के साथ ही यश का भी भूखा होता है; और ये सभी भौतिक सन्तुष्टियाँ उस व्यक्ति को ही प्राप्त होती है जो विपत्तियों से खेलता चलता है। इंग्लैण्ड के लिए, हिन्दुस्तानी, अधीनस्थ नरेशों के मन में इस बात को दृढ़तापूर्वक जमा देना आवश्यक है कि ब्रिटिश सत्ता का विरोध करना उनके लिए न हितकारी है न उससे सफलता प्राप्त होने वाली है, जब कि अपनी वर्तमान स्थिति में वे सम्मानित हैं और अकुशल शासकों के रूप में सहन किए जाने अथवा अर्ध-बर्बर मनुष्यों के रूप में घृणा एवम् उपेक्षा की दृष्टि से देखे जाने के स्थान पर ब्रिटिश-सरकार की अर्धनीति में उनकी एक ठोस स्थिति है। इधर कुछ समय से इंग्लैण्ड का शासन मुख्यतः व्यापारिक समुदाय के हितों पर अधिक ध्यान देता रहा है; भारत के विदेशी प्रभुओं के समाज में, ख्याति प्राप्त हिन्दुस्तानी परिवारों के नाम को कोई महत्व नही दिया जाता, और न इसके आधार पर नौकरियों के लिए की जानेवाली नियुक्ति में ही ऐसे लोगों को कोई सुविधा ही दी जाती; दूसरी ओर किसानों

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

को जहाँ यदा कदा वसूल किए जानेवाले विनाशकारी करों तथा व्यक्तिगत अत्याचारों से मुक्त किया गया है, वही उन्हें कल्याणकारी समझ कर बनाए गए, परन्तु वास्तव में एक कष्टकारी एवम् अक्षय कानून, तथा आवश्यकता से अधिक एवम् पक्षपातपूर्ण करों द्वारा और अधिक दलित तथा निर्धन बना दिया गया है, जिसके द्वारा केवल भूमि से ही राज्य का सारा राजस्व वसूल करने की योजना पर चला जा रहा है[1]। कृषक असन्तुष्ट एवम् उदासीन है[2], प्रबुद्धवर्ग अपने क्रोध को आवरण में छुपाए हुए है, राजा गण षड्यंत्रों की रचना में व्यस्त हैं, और सबके-सब इन गौरांग प्रभुवों की सत्ता के परिवर्तन से हर चीज की आशा करने के लिए तैयार है; केवल व्यापारी वर्ग यह सोचकर अंशतः प्रसन्न हैं कि यदि उसे उपाधियों एवम् पदों से सम्मानित नहीं किया जाता तो क्या हुआ, धनप्राप्ति का मार्ग तो सरल हो ही गया है जिसका उपयोग वह सुरक्षित रूप से कर सकता है।

१—देखिए परिशिष्ट १६।

२— लेफ्टि० कर्नल स्लीमन का विचार है ('रैम्बुल्स एण्ड रिकलेक्शन्स'; पृ० ४३२) कि किसानों और जमीदारों की सद्भावना न अंग्रेजों को प्राप्त थी न इन देशी नरेशों को ही।

भारत में अंग्रेजों, या किसी भी अन्य शासकीय शक्ति की स्थिति का विचार करने में इस बात को सदैव ध्यान में रखना चाहिए कि सम्भवतः सिक्खों, एवम् कुछ अंशों में पश्चिम के राजपूतों को छोड़कर कोई भी अन्य कृषक जाति, तथा मुसलमानों, एवम् कुछ अंशों में ब्राह्मणों के अतिरिक्त अन्य कोई भी जनवर्ग अपने देश के प्रशासन में कोई रुचि नहीं लेता, न ही सत्ता प्राप्त करने का प्रयास करता है। सामान्य जनसमुदाय, चाहे वह नगरों का हो, अथवा गाँवों का, देशी, या बिदेशी किसी भी राजा के समक्ष सिर झुकाने के लिए तैयार रहता है, और इंग्लैण्ड के अधीनस्थ प्रजा की विशाल संख्या का अधिकांश, राज्य को कर देने के अतिरिक्त, अन्य किसी भी विधि से उसका हाथ मजबूत नहीं करता, और युद्ध-काल में अथवा विजय के पश्चात् बिना असमंजस के तत्कालिक विजेता को, उपज का निश्चित भाग देकर स्वयम् को कर्तव्यमुक्त समझता है। इस पालतू भीड़ के प्रति इंग्लैण्ड को अवश्य ही उदार होना चाहिए, परन्तु यहाँ कुछ ऐसी युद्धप्रिय जातियाँ भी हैं जो सदैव विद्रोह करने एवम् सत्ता प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहती हैं, और ब्रिटिश भारत में ब्रिटिश राज्य के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए ऐसी जातियों को अपनी सेना में सम्मिलित करना आवश्यक है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

एक अधिक पूर्ण सैन्य प्रणाली तथा सबल साधनों द्वारा भारतीय नरेशों सामन्तों, एवम् कृषकों--सभी को ब्रिटिश कानून का अनुगामी होने को बाध्य किया जा सकता है। अगणित दुर्ग एवम् गढ़,[1] सेनाओं के, यदा कदा, एकत्रीकरण तथा विभिन्न जन-जातियों की पृथकतः संगठित रेजिमेण्टों[2] के बल पर

१—भारत में अंग्रेजों की सैनिक प्रणाली का एक भयंकर दोष है—अस्त्र शस्त्रों एवम् गोलाबारूद आदि की सुरक्षा के लिए सुदृढ़ स्थानों की सीमित संख्या विशाल एवम् सम्पन्न अन्नागारों का अभाव भी खटकता है, जब कि युद्ध-काल या किसी सैनिक कार्यवाही में और एक ऐसे देश में—जहाँ व्यापारी प्रसन्नता से सरकार का साथ नहीं देते—मूल्यों को नियन्त्रण में रखने के लिए सरकार के लिए खाद्य पदार्थों का वृहद भण्डार आवश्यक है।

[प्रसिद्ध गदर से मिली सिक्खों ने इनमें से पहले दोष का निराकरण तो करा दिया है, परन्तु मूल्यों पर नियन्त्रण रखने की समस्या आज भी सिर-दर्द बनी हुई है। सम्पादक]।

२—अपनी सुव्यस्थित सेना को भिन्न जातियों या जनवर्गों के आधार पर संगठित करने में अंग्रेज़ मद्रास के अतिरिक्त और कहीं भी सफल नहीं हो सके हैं जहाँ सिपाही का घर ही उसका रेजिमेण्ट है। यह बात भी अत्यधिक स्पष्ट है कि भारत में सिपाहियों का सक्रिय उत्साह उतना नहीं रह गया है जितना उस समय था जब 'कम्पनी' की प्रणाली नई थी और विदेशियों के भाग्य का सितारा भारत के क्षितिज पर उदित हो रहा था। इसके मुख्य कारण निम्न है—(१) देश में सामान्यतः शान्ति पूर्ण स्थिति; (२) सेना में निम्न जाति वालों की एक बड़ी संख्या में भरती, जो आज्ञा पालन में तत्पर होते हैं, तथा कुचक्रों में प्रवृत्त ब्राह्मणों की भरती क्योंकि वे बुद्धिमान होने के साथ ही लिख पढ़ भी सकते हैं; तथा (३) केन्द्रीय अथवा एकाकी व्यवस्था की प्रणाली का आवश्यकता से अधिक विस्तृत प्रयोग। हिन्दुस्तानी सामान्यतः अंग्रेजों का सपक्षी है और उससे उच्चतर अधिकारी के लिए उसके पूर्व स्नेह को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, विशेष रूप से इसलिए कि ब्रिटिश कमाण्डर की राजभक्ति में कोई सन्देह हो ही नहीं सकता। भारत में जातिगत या व्यवसायिक सम्बन्ध के आगे किसी विशेष तार्किक विचार-दर्शन अथवा राजनीतिक सिद्धान्तों को कोई विशेष महत्व नहीं दिया जाता और इसलिए बटेलियनों के कर्नलों को बहुत विस्तृत अधिकार दे दिए जाने चाहिए। एक या दूसरी युद्ध प्रिय जाति के जवानों से बनी हुई रेजिमेंट कभी कभी विपत्ति

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भारत में ब्रिटिश सत्ता को पर्याप्त लम्बी अवधि तक स्थापित प्रदान किया जा सकेगा तथा महत्वाकांक्षी व्यक्तियों के प्रयासों का दमन किया जा सकेगा; परन्तु इंग-लैण्ड को मुख्यतः सामाजिक सम्बन्धों तथा धार्मिक भावनाओं के उस परिवर्तन पर सतर्क दृष्टि रखना जिसका कि सिक्ख धर्म सर्वाधिक महत्वपूर्ण दृष्टान्त है। सभी श्रेणियों के लोगों में काम की एक ऐसी भावना है जो ब्रह्मणवाद या मुसलमान धर्म के प्राचीन विचारों एवम् मूल्यों की उपेक्षा करती है,[1] तथा

में डाल देती हैं, अथवा अन्य रेजिमेण्टों से उलझ पड़ते हैं, और जब तक इंग्लैण्ड यहाँ को कुछ निम्न जातियों में स्वयम् के प्रति समानता व सम्मान के भाव जागृत नहीं करता, और एक धार्मिक सुधारक के रूप में उनमें एक नया उत्साह उत्पन्न नहीं कर लेता, जब तक उसे इस जीते हुए साम्राज्य को, देश में लोकप्रिय एवम् प्रबल भावनाओं का सहारा लेकर, बनाए रखना चाहिए इस परामर्श को नए सैनिक प्रशासक मण्डल ने अव्यवहारिक व अनुपयोगी बता कर अस्वीकृत कर दिया गया है—सम्पादक]।

१—भारत के कुछ महान धार्मिक व्यक्तियों के सम्बन्ध में हिन्दुओं के निम्न विचार आज बहुत अधिक व्यापक हैं, वे परशुराम, व्यास, राम और कृष्ण को क्रमशः 'सिर्री, सिफ्ती, दाना और दीवाना कहते हैं; परशुराम को 'सिर्री' या जल्दबाज, इसलिए कि केवल एक शासक के दोष के लिए उन्होंने सम्पूर्ण क्षत्रिय पीढ़ी के विनाश के लिए परशु उठा लिया था, व्यास को 'सिफ्ती' या बकवादी, वे सभी को देवताओं की श्रेणी तक पहुँचा देते हैं, राम को 'दाना' या बुद्धिमान या नीतिकुशल, क्योंकि उनके सभी कार्य पूर्व नियोजित होते थे, और कृष्ण को दीवाना, क्योंकि उनके सभी कार्य इसी श्रेणी के थे। अभी भी सम्मानित स्वर से लिए जाने वाले इन नामों के साथ ऐसा व्यवहार, परिवर्तन की तत्परता प्रकट करता है। [न केवल हिन्दुओं; बल्कि मुसलमानों में भी, धर्म के सम्बन्ध में वही सामान्य प्रवृत्ति दिखाई देती है जो यूरोप में रिफार्मेशन' या धर्म सुधार की प्रेरक शक्ति बनी थी, जो समाज के कुछ निश्चित वर्गों द्वारा, उलझी हुई धार्मिक प्रगति को हटाने तथा पूर्वकालीन सरलता एवम् पवित्रता की ओर लौटने के ध्येय से, किया गया एक आन्दोलन था। ऐसी विचारधारा का परिणाम, भारतवर्ष में 'आर्य समाज' की स्थापना के रूप में प्रकट हुआ है जिसके समर्थकों की संख्या देश में बहुत अधिक है और जिसका प्रभाव बहुत व्यापक है। आर्य समाज आन्दोलन का मूल उद्देश्य है वेदों की ओर

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जो वर्तमान की सन्तुष्टि तथा भविष्य की प्रसन्नता के लिए शासकों तथा ईश्वरीय शक्ति एवम् दया के एक अन्य स्वरूप से चिपकने का प्रयास कर रही है इस भावना ने स्वयम् को दो परस्पर विरोधी धर्मों की सीमा पर अत्यन्त श्रम परन्तु मजबूती के साथ विकसित किया है परन्तु आज यह भावना भारत पर

जो मानवमात्र के मोक्ष के लिए अकेले ही पर्याप्त हैं – तथा धर्म की पूर्वकालीन सादगी की ओर लौटना। यहाँ आर्य समाज एवम् उसके संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती की प्रगति एवम् उनके पूर्ण इतिहास के विस्तार में जाना समीचीन नहीं है; इस सम्बन्ध में विस्तृत अध्ययन के इच्छुक पाठक लाला लाजपतराय लिखित, तथा हाल ही में प्रकाशित आर्य-समाज का इतिहास पढ़ें।

हिन्दुओं में 'ब्रह्मसमाज' एक अन्य आधुनिक धार्मिक संस्था है जो अद्वैतवाद का सर्थमन एवम् प्रचार करती है। इस्लाम संसार में भी ऐसी ही सुधारवादी प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। आधुनिक काल में, इस्लाम की सीमा में सेनुस्सी आन्दोलन सर्वाधिक व्यापक सुधारवादी आन्दोलन रहा है, परन्तु अफ्रीका में स्पष्ट प्रभाव स्थापित करने वाले इस आन्दोलन का भारत पर बहुत साधारण प्रभाव पड़ा है अनेक शिक्षित व विचारशील भारतीय मुसलमानों ने मुझे बताया है कि वे अपने धर्म की वर्तमान स्थिति को इंग्लैण्ड के चर्च की सुधार ('रिफार्मेशन') की सन्धा की स्थिति के समान ही पाते हैं। उनके अनुसार आज भारत की धार्मिक स्थिति मध्यकालीन इंग्लैण्ड के 'हेड–हैण्ड' (मृतक हाथ) के ही एक अन्य रूप के समान है। इस स्थिति के लिए एकाकीपन, तथा यहाँ का विशिष्ट वातावरण, दोनों ही समान रूप से उत्तरदायी हैं; जहाँ तक इनमें से प्रथम साधन का सम्बन्ध है, इस इंग्लैण्ड की सुधार से पूर्व-स्थिति एवम् भारत की वर्तमान स्थिति की इस समानता को ऐतिहासिक दृष्टि से और पीछे ले जाया जा सकता है। इस बात को एक मान्य तथ्य के रूप में स्वीकार किया जा सकता है कि नार्मन-विजय के पूर्व इंग्लैण्ड का चर्च एकाकीपन के दोषों से बुरी तरह ग्रस्त था, जिसको समाप्त करने का श्रेय उस विजय को ही है। भारतीय मुसलमानों की ओर लौटने पर हम उन्हें भी उसी एकाकीपन से ग्रस्त पाते हैं; उनकी हज की कड़ी बनी हुई है – जो यात्रा की आधुनिक सुविधाओं के कारण और मजबूत बन गई है फिर भी इस एकाकी पत्र का अस्तित्व बना हुआ है, जिसके परिणाम स्वरूप स्थानीय परम्पराओं एवम् मतों के एक समूह का क्रमिक विकास हुआ है, और यहीं से दूसरे साधन–वातावरण का प्रभाव परिलक्षित होने लगता है। हिन्दू धर्म के निकट सम्पर्क में रहकर तथा बहुत

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

हावी है, और सिक्ख-शक्ति के प्रसार से शीघ्र ही गुरु नानक जी तथा गोबिन्द सिंह जी को भी चिर इच्छित शान्तिदाता के रूप में पहचाना जाना लगेगा[1]। सिक्ख भी अब एक ठोस शक्ति के हाथों प्रबल चोट पड़ चुकी है और एक अन्य जाति की प्रभुता ने सर्वत्र नए विचारों को जन्म दिया है और लोगों की आकांक्षाओं का रूप बदल दिया है।

कुछ समय से दो समाजों के सम्मिश्रण का यह प्रभाव बढ़ता चला आ रहा है, और शीघ्र ही मानसिक विकास की इस नई प्रवृत्ति को नए रूपों में प्रकट होना है, और सम्भव है कि कोई ऐसा धार्मिक नेता जन्म ले जो इन सारी प्रगतियों को समेट कर भारत के विदेशी शासकों की सभ्यता एवम् उनके धर्म के प्रकाश की एक किरण भी न ग्रहण करते हुए प्रचीन भारतीय ऋषियों महर्षियों के सिद्धान्तों को ही धर्म का आधार बना दे; परन्तु इंगलैण्ड को यह आशा तो रखनी ही चाहिए कि भारत में उसकी सत्ता का प्रभाव कुछ न कुछ सीमा तक सदैव बना रहेगा और वह अपनी कीर्ति में और भी अधिक वृद्धि करेगा, तथा भविष्य की पीढ़ियों के हृदय में अपने प्रति कृतज्ञता का भाव उत्पन्न कर सकेगा, यदि वह

पहले ही एक भारी संख्या में हिन्दुओं को अपने धर्म में लेकर भारत के मुसलमान स्वयम् भी बहुत अधिक प्रभावित हुए हैं। दृष्टान्ततः जाति को ही लीजिये, जो मुसलमान राजपूतों के वंशज हैं, वे अपनी मूल-जाति को भूल नहीं पाते। इस नए धर्म को ग्रहण कर लेने के बाद भी उसका सम्पूर्ण जीवन उसके पूर्वजों के धर्म की परम्पराओं और जन्मगत संस्कारों से प्रभावित होता रहता है। आधुनिक भारत में इस्लाम एक मार्टिन लूथर की प्रतीक्षा कर रहा है, परन्तु आन्तरिक सुधार की भावना में अन्य धर्मों के प्रति द्वेष का भाव नहीं है, सामान्यतः सोचा जाता है कि अपनी अपूर्णताओं के कारण ही इस्लाम वर्तमान स्थिति तक पहुँचा है तथा आज के अन्य धर्मों में इसका सिर ऊंचा करने के लिए सुधार की अत्यधिक आवश्कता है। सन् १९१२ की सेन्सस रिपोर्ट में पंजाबी मुसलमानों में अनेक सुधरे हुए वर्गों का विवरण देखा जा सकताहैं—सम्पादक।]

१—अत्यधिक व्यापक विचार चाहे वे कितने ही दोषपूर्ण क्यों न हों—सदैव विचारणीय होते हैं क्योंकि उनमें सत्य की एक चिनगारी अवश्य होती हैं। इक प्रकार, हिन्दू भागवत के एक सन्दिग्ध अंश को उद्धृत करते हैं जिसमें भारत के शासकों के इस क्रम का विवरण है—(१) यवन (ग्रीक), आठ राजा; (२) तुर्क, १४ राजा, (३) गुरन्द (गोरे, या अंग्रेज), १० राजा और ४ मोवना (अर्थात् नानक जी के शिष्य) ११ राजा

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

उस तत्व के मूलभूत सिद्धान्तों को समझ सके जो उसकी भारतीय प्रजा को अशान्त बनाए रहती है; इस मानसिक अशान्ति की जड़ें उखाड़ कर लाभदायक तथा नए गुणों के बीजों के विकास के लिए भारतीयों के मन उर्वर बना सके, और उसे एक उत्साह और दिशा दे सकें और तब एक सत्य धर्म की प्रमुखता स्थापित होगी तथा एक स्वतन्त्र एवम् प्रगतिशील शासनतन्त्र को ग्रहण किया जा सकेगा।

— — —

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

परिशिष्ट

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

परिशिष्ट १ : नट तथा उत्तरी भारत के जाट

शब्द कोषों के अनुसार 'जाट' एक जाति है जबकि 'जट' का अर्थ 'तरीका' अथवा 'किस्म है, परन्तु पंजाब भर में जट शब्द का प्रयोग भेड़ के बालों के लिए होता है जब कि ऊपरी सिन्ध में जट ऊँट पालने वाले को कहते हैं। पंजाब में सामान्यतः 'जट' का अर्थ उजड्ड गँवार होता है, परन्तु जब से लाहौर के जटों एवम् यमुना तटके जाटों ने शक्ति प्राप्त कर ली है, उस शब्द का प्रयोग अधिक नियंत्रित हो गया है, और केवल इस जाति के सदस्यों के लिए किया जाता है।

जाट एक ओर तो राजपूतों में मिल जाते हैं और दूसरी ओर अफगानों में: टॉड के 'राजस्थान' (१:१०६) में जाटों को ३६ राजसी राजवंशी जातियों में से एक माना गया है; वे स्वयम् भोटियों से सम्बद्ध तथा चन्द्रवंशी होने का दावा करते हैं, जैसा कि पटियाला का राजा करता है; भारत के लोगों के सम्बन्ध में हमारी जानकारी की अपूर्णता का एक दृष्टान्त यह है कि जाटों की एक प्रमुख शाखा-विर्क (या बिर्क) को चालुक राजपूतों में मिला दिया गया है (टॉड, १ : १००); इसी प्रकार सिन्ध स्थित अमरकोट परिवार को टॉड (१:९३, ३३) पट मार (या पँवार) बताता है जबकि हुमायूँ का वृत्तान्त कार उस परिवार को जाट बताता है (मेम्वायर्स ऑव हुमायूँ, पृ० ४५)। पंजाब के जाटों की कुछ प्रमुख उपश्रेणियों के नाम ये हैं—सिन्धु, चिनेह, वरैच, चट्ठेह, करियाल, गोण्डुल आदि। सिन्ध के जाटों के सम्बन्ध में कुछ विवरणों के लिए देखिए, एच. एम. एलियट, 'हिस्टोरियन्स ऑव इण्डिया', पृ. ६९ तथा २७०।

परिशिष्ट २ : जातियों एवम् धार्मिक मतों के अनुपात; भारत की जनसंख्या

सन् १८४४ ई० में ब्रिटिश प्रबन्ध के अन्तर्गत, यमुना और सतलज के मध्य स्थित १०३० गाँवों में ४१ कृषक जनजातियाँ थीं, जिनके अनुपात इस प्रकार हैं:—

जातियाँ	गाँव	जातियाँ	गाँव	जातियाँ	गाँव
जाट	४४३	राजपूत	१९४	गूजर	१०९
सैयद	१७	शेख	२५	पठान	८

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

मुगल	५	ब्राह्मण	२८	क्षत्रिय	६
रैन (या अरैन	४७	कम्बो	१९	माली	१२
रोर	३३	डोगरा	२८	कलाल	५
गुसाई	३	बैरागी	२	अन्यजातियाँ	४६

भारत के इतिहास को ठीक से समझने के लिए, स्थिति, उत्पत्ति एवम् धर्म के अनुसार यहां की जनसंख्या का वर्गीकरण अत्यन्त आवश्यक है जिसका बहुत अभाव है; गंगा के उत्तरी प्रान्तों के रेवेन्यू सर्वे में अनेक जातियों का उल्लेख है, और इन सूचियों को अधिक पूर्ण बनाया जा सकता है।

पंजाब व सम्बद्ध जिलों में सिक्खों की कुल आबादी लगभग ५ लाख आँक गई है (बर्नेस, 'ट्रवेल्स', १:२८९, एलफिन्सटन, 'हिस्ट्री ऑव इण्डिया', २:२७५, परन्तु वस्तुतः इस अनुमान में कुल के आधे या तिहाई की कमी है; हमारे पासो कोई सही आंकड़े नहीं हैं, परन्तु सिक्ख-सेना में ७०,००० से कम सैनिक कभी नहीं रहे, और कुछ के अनुसार यह संख्या २,५०,००० तक पहुँच गई थी। इसमें सन्देह नहीं कि झेलम व यमुना के बीच वे अपने ही धर्म के लगभग १२५,००० सैनिक एकत्र कर सकते थे जब कि यह निश्चित है कि एक कृषक जाति के कुछ परिवारों से एक भी व्यक्ति सेना में नहीं जाता और अन्य परिवारों का कम से कम एक व्यक्ति कृषि कार्य के लिए रह जाता है; इस प्रकार कुल सिक्खों-स्त्री, पुरुष व बच्चे की संख्या १२½ या १५ लाख के बीच आकी जा सकती है।

जातियाँ, धर्म, और जनसंख्या

पूरे भारत में हिन्दुओं व मुसलमानों की जनसंख्या के सम्बन्ध में विभिन्न अनुमान मिलते हैं; जहाँगीर के अनुसार यह अनुपात ५ और १ का ('मेम्वायर्स', पृ० २९; मि० एलफिन्स्टन (हिस्ट्री ऑव इण्डिया', २:२३८) इसे ८:१ मानता है; सन् १८४८ में प्रकाशित 'स्टेटिस्टिक्स ऑव नार्थ वेस्ट प्राविन्सेज' (पृ० १६९) में गाजीपुर तथा हरिद्वार के मध्य स्थित कुल आबादी—२३,१९९,६६८—में १९,४५२,६४६ हिन्दू तथा ३,७४७,०२२ मुसलमान थे, और शेष अन्य जातियों के थे।

उक्त आंकड़े के अनुसार हिन्दुओं का अनुपात ५ से अधिक ही आता है जो जहाँगीर के उक्त अनुमान से साम्य प्रकट करता है। अपर प्रविन्सेज की मालगुजारी लगभग ४७ लाख पौण्ड थी, और इस प्रकार कर भार ५ शिलिंग प्रति-व्यक्ति

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

था। इसी हिसाब से यदि सम्पूर्ण भारत का राजस्व ४ करोड़ स्टर्लिंग (ब्रिटिश क्षेत्र, २२० लाख, तथा देशी राज्य, १८० लाख), और प्रति व्यक्ति कर भार के हिसाब से भारत की कुल आबादी उस समय बीस करोड़ होनी चाहिए।

परिशिष्ट ३ : पंजाब के क्षत्रिय और अरोड़ा

पंजाब के क्षत्रियों की रक्त-शुद्धता अभी तक असन्दिग्ध है, और वे स्वयम् को उनका वंशज मानते हैं जिन्हें परशुराम ने जीवित छोड़ दिया था। इनकी अधिक संख्या ऊपरी पंजाब, दिल्ली और हरद्वार में बसी है, वैसे वे गंगा के तटीय नगरों में पटना तक मिलते हैं परन्तु बंगाल, मध्य भारत तथा दक्षिण में उनका प्रतिनिधित्व शासकीय परिवारों द्वारा ही होता है जो स्वयम् को सूर्य या चन्द्रवंशी मानते हैं। पंजाब में दीपालपुर उनकी धार्मिक राजधानी है। इनके तीन मुख्य वर्ग हैं—(१) चार जाति (२) बारह जाति और (३) बावनजई। चार जातियां हैं—खन्ना, सेठ, मेरहोता और कपूर, जिनमें से प्रथम के दो तथा शेष के तीन-तीन उपवर्ग हैं। बारह जातियों में से मुख्य हैं–चोपड़ा, तलवार, तुन्नुहन, सहगल, काकर, मेहता आदि, तथा बावन जइयों में भण्डारी, महेन्द्रो, सेठी, सूदी, साहनी, आनन्द, मसीन, सोधी, बेदी, तिहान, वल्लह आदि।

अरोड़ा स्वयम् को क्षत्रिय पिता वैश्य एवम् शूद्र माताओं की सन्तान मानते हैं; कथा है कि वे पहले उच में बसे थे, पर दिल्ली से निकाले जाने के बाद वे सिन्ध व मुल्तान में जा बसे। युद्ध में क्षत्रियों ने अरोड़ाओं से सहायता चाही, पर न प्राप्त कर सके, अतः उन्होंने ब्रह्मणों से, अरोड़ा वर्ग को धार्मिक क्रियाओं से वंचित करा दिया, और तीन सौ वर्ष के पश्चात् सिद्ध भोज एवम् सिद्ध श्याम (दीपालपुर) ने उन्हें पुनः हिन्दू-धर्म में सम्मिलित कराया। शिकारपुर के हिन्दू-महाजन अरोड़ा हैं और खोरासान तथा बोखारा के दूकानदारों को भी पंजाबी, ही मानते हैं; इनके दो मुख्य उपवर्ग हैं—(१) उत्तर दी या उत्तर के, तथा (२) दखनी, जिसको प्रमुख उपश्रेणी है दुहुनी।

निचले पंजाब और सिन्ध में पूरी हिन्दू, व्यापारिक आबादी को, मुसलमानों-द्वारा 'किरार' कहा जाता है; ऊपरी पंजाब में यह शब्द काचर अथवा निम्नस्तरीय लोगों का विशेषण है, और मुल्तान में भी यह शब्द उतना ही घृणित माना जाता है। मध्यभारत में भी किराड़ों की एक उपजाति है, परन्तु शाब्दिक अर्थ में यह

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जंगलियों के लिए प्रयुक्त होता है, यद्यपि अब यह एक विशेष जाति का नाम बन गया है। केरात पाँच प्रस्थों—चीनप्रस्थ, भवनप्रस्थ, इन्द्रप्रस्थ, दक्षिणप्रस्थ तथा केरातप्रस्थ में से एक है जिसका मुख्य क्षेत्र उज्जैन और उड़ीसा के मध्य में है (देखिए विल्सन, 'विष्णु-पुराण', पृ० १७५)। नर्वदा के ब्राह्मण गोण्डों को 'राजगोण्ड' कहते हैं, जबकि हिन्दू धर्म की परिधि से बाहर के गोण्डों को अब भी 'किरिया-गोण्ड' कहा जाता है।

परिशिष्ट ४ : भारत और जाति

भारत में जातियों की प्रणाली का विकास एक ऐसा विषय है जिस पर बहुत गहरे अध्ययन की आवश्यकता है, और मिश्र, फारस और मध्यकालीन यूरोप के सम्बन्ध में भी यही बात है। भारत में इसका विकास बहुत धीरे-धीरे और क्रमिक गति से हुआ है; परन्तु प्रारम्भ काल में जातिगत अन्तरों पर उतना ध्यान नहीं दिया जाता था जितना इधर गत तीन-चार सौ वर्षों से दिया जाने लगा है। विश्वामित्र द्वारा ब्राह्मणत्व प्राप्त करने की कथा सर्वविदित है; इसी प्रकार व्यास ने भी एक शूद्र को ब्रह्मण के पद तक पहुँचा दिया था जिसके वंशजो को अब भी ब्राह्मण माना जाता है, यद्यपि उतने ऊँचे नहीं (वार्ड, 'द हिन्दूज' १:८५: मनु, 'इंस्टीट्यूट्स', अध्याय १०:४२–७२)। वर्तमान काल में भी, रणजीतसिंह से सम्बद्ध सिन्धानवाला के जाट सिख परिवार ने क्षत्रियों के धार्मिक-संस्कारों में भाग लेने का प्रयास किया था, और इस बात को निश्चित समझा जा सकता है कि यदि विजेता मुग़ल व पठान यदि बिना किसी स्पष्ट धर्म के होते तो वे वैदिक-धर्म को स्वीकार करके क्षत्रियों में सम्मिलित हो गए होते। रामानन्द ने यह कह कर-कि कबीर ब्रह्म को जानकर ब्राह्मण हो गया है–सम्भवतः प्राचीन हिन्दू धर्म की महानता का परिचय दिया था।

भारत मे मुसलमान स्वयम् को चार भागों में बाँटते हैं—सैयद, शेरव्, मुग़ल, व पठान, जिनमे प्रथम दो को हज़रत मुहम्मद साहब के दामाद के वंशज होने से, श्रेष्ठतर माना जाता हैं। मुख्यतः उत्तर पश्चिम में क्षत्रियों या सिक्खों से परिवर्तित मुसलमानों को भी शेरव् कहते हैं, और निम्न जातीय लोगों के मुसलमान होने पर उन्हें मुग़लों व पठानों में तथा धर्म परिवर्तन करने वाले ब्राह्मणों को सैयदों में सम्मिलित किया जाता है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

परिशिष्ट ५ : भारतीयों की दार्शनिक प्रणालियाँ

भारतीयों की छः शास्त्रीय प्रणालियाँ ग्रीस की तीन दार्शनिक प्रणालियों—नीति सम्बन्धी, तार्किक एवम् भौतिक-आंशिक प्रतिनिधित्व करती हैं, इसी प्रकार वेदों की प्रथम एवम् द्वितीय मीमांसा पैथागोरस के सिद्धान्तों से निकट साम्य प्रकट करती हैं; गौतम एवम् कणाद की न्याय एवम् वैशषिक प्रणालियाँ जेनोफेन के मतों से मिलती जुलती हैं, जबकि कपिल और पातंञ्जलि का सांख्य एनेक्सागोरस द्वारा प्रचरित बेल्स की भौतिक प्रणालियों से साम्य रखता है। मि. एलफिन्सटन ('इण्डिया', १:२३४) ने भारतीय और ग्रीक अध्यात्म के साम्भ का उल्लेखनीय विवेचन किया है, तथा मि. वार्ड ('हिन्दूज', २:११३) विभिन्न तार्किको के साथ तुलनात्मक विवेचन का प्रयास करता है, यद्यपि इस सम्बन्ध में ज्ञान के अभाव से ऐसे विवेचन न यथार्थ हो सकते हैं, न महत्वपूर्ण ही।

दार्शनिक प्रणालियों को सामूहिक रूप से भारतीयों ने तीन भागों में विभाजित किया है—(१) 'आरम्भवाद', जिसमें प्रथम मीमांसा न्याय और वैशोषिक सम्मिलित हैं; इसके अनुसार पदार्थ अनश्वर है, अणु में किसी अन्तर्निहित गुण का उल्लेख नहीं है, और इस वाद का मत है कि अणुओं के विभिन्न स्वरूप ईश्वरेच्छा पर निर्भर हैं। (२) 'पुर्नामवाद', जिसमें सांख्य एवम् योग सम्मिलित हैं; इसके अनुसार पदार्थ में प्रतिरोधक शक्ति के साथ विकास-क्रम भी होता है, और ईश्वरेच्छा के साथ ही अपने अन्तर्निहित गुणों के आधार पर अणुओं के स्वरूप बनते हैं आधुनिक वैष्णव इस वाद को इस परिवर्तन के साथ मानते हैं कि ईश्वर विश्व के समस्त पदार्थों में व्याप्त है, और सुविधा व आवश्यकतानुसार विभिन्न रूप ग्रहण करता रहता है। (३) 'विवर्तवाद' या शंकराचार्य की प्रणाली अथवा द्वितीय मीमांसा, ईश्वर अपना स्वरूप नहीं बदलता बल्कि एक साथ ही पदार्थ और आत्मा दोनों हैं, यद्यपि मानव-इन्द्रियों के समक्ष वह 'माया' के रूपों में प्रकट होता है।

एक अन्य विभाजन मिलता है 'आस्तिक' और 'नास्तिक' का; 'आस्तिक' में सभी छः दर्शन, तथा कुछ आधुनिक तार्किकों के अनुसार इस्लाम और ईसाई धर्म भी आते हैं और नास्तिक में बौद्ध एवम् जैन मतों को रक्खा जाता है, और कुछ लोग चार्वाक को भी इसी श्रेणी में सम्मिलित करते हैं, परन्तु कट्टर हिन्दू इस्लाम और ईसाई धर्मों के साथ गोरख, कबीर, और नानक के पंथों को जिनमें वेदों को महत्व नहीं दिया गया है, और पूर्व तथा उत्तर मीमांसा को भी सम्मिलित करते है जो ईश्वर के बिना माध्यम के प्रकट होने में विश्वास रखते हैं।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

बौद्ध मत चार उपवर्गों में विभाजित है—सौत्रान्तिक, वैभाविक, योगचार और मदी अमित जिम्मे से प्रत्येक में जीवों के पाँच गुणों का समावेश है—(१) स्वतंत्र चेतना, (२) बाह्य रूप की पहचान (३) अनुभूति (४) समझ और (५) मस्तिष्क, शक्ति एवम् लक्ष्य। बौद्धों का प्रथम वर्ग समझदारी को मानवता की आत्मा मानता है, द्वितीय वर्ग साधारण चेतना को वरीयता देता है; तृतीय, बाह्य अनुभूति को मुख्य मानता है और चतुर्थ के अनुसार अस्तित्वहीनता के अतिरिक्त कुछ भी स्थायी नहीं हैं। यह अन्तिम विचार चार्वाक दर्शन में मिल जाता है और इसे 'शून्यवाद' भी कहते हैं।

जैन मत मानव के अस्तित्व को पाँच सिद्धान्तों के संगठन पर आधारित बताता है जिनमें से एक—जीव-पुण्यों द्वारा अमर आत्मा हो सकता है; इस मत की दोनों शाखाओं-श्वेताम्बर और दिगम्बर में कुछ अध्यात्मिक अन्तर हैं। दिगम्बर शाखा के अनुसार स्त्री की आत्मा में अमर होने की योग्यता नहीं रहती।

इस प्रकार भारत की छः वास्तिक प्रणालियाँ इस प्रकार हैं—बौद्ध धर्म की चार तथा जैन धर्म की दो शाखाएँ, या यदि जैनधर्म को एक ही मानें तो चार्वाक छठा हो जाता है।

परिशिष्ट ६ : भारतीयों का माया पर

हिन्दुओं में प्रचलित 'मायावाद' पर तीन दृष्टिकोणों से विचार किया जा सकता है—नैतिक, काव्यात्मक, एवम् दार्शनिक।

नैतिक दृष्टि से माया का तात्पर्य विश्व की असारता एवम् अतित्वहीनता से है और सन्त कबीर इसकी उपमा मृगतृष्णा से देते थे। काव्यात्मक दृष्टि से माया एक ऐसा आवरण है जो देवताओं तथा महापुरुषों तक की दृष्टि को सीमित कर देती है। समस्त विश्व की काव्यात्मक अभिव्यक्तियों में प्रमाण मिलते हैं कि अपूर्ण शक्तियाँ मानव को; इस विश्व को ठीक से समझने के आयोग्य बना देतीं हैं।

दार्शनिक दृष्टिकोण से वेदान्त प्रणाली की माया (जो सांख्य प्रणाली की प्राकृती से पर्याप्त साम्य प्रकट करती है) बर्कले के आदर्शवाद के रूप में ग्रहण की जा सकती है एक भ्रम के रूप में माया, प्लेटों के 'आइडिया' या सत्य की विलोम है। साधारणतः माया वास्तविक के विपरीत आभास देती है, जैसे कि हम रस्सी को साँप समझ बैठते हैं, जब कि एक अन्य दृष्टिकोण से यह

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ब्रह्मांण्ड में ईश्वर के प्रकटीकरण का एक माध्यम अथवा साधक—एजेण्ट—है, चाहे वह प्रतिछाया के रूप में हो या वास्तव में लोकों की रचना में वास्तविक एवम् सक्रिय रूप से घुली मिली हो। यह बात महत्वपूर्ण है कि इग्लैण्ड व भारत दोनों ही देशों में, बर्कले के स्वप्न के सिद्धान्तों तथा ब्राह्मणों के मायावाद के खण्डन के लिए एक ही प्रकार के स्थूल तर्क दिए जाते हैं।

माया पर हिन्दुओं द्वारा राजनीतिक दृष्टिकोण से विचार किए जाने की बात पर भी विचार किया जा सकता है जैसा कि 'अर्थ-शास्त्र' या 'चतुर्थ उपवेद' के 'साहित्य' या 'नीति' वाले भाग में मिलता है। इसमें राजाओं के कर्तव्यों पर विचार करते समय कहा गया है कि माया को भी किसी राजनीतिक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए साधन बनाया जा सकता है, परन्तु राजनीति में माया धोखे के स्थान पर गुप्तता, कूटनीति या चाल का आभास देती है, क्योंकि धोखा घड़ी और झूठ को निषिद्ध माना जाता है; शत्रु को भ्रम में डालने तथा प्रजा को आज्ञाकारी बनाने के लिए भी माया का प्रयोग उचित माना गया है। सुकरात भी स्वीकार करता है, कि इस प्रकार की स्थितियों में धोखा देना उचित है, और उसके विचार से ऐसे धोखों को 'न्याय्य' की श्रेणी में रक्खा जा सकता है (मेमोरेबिलिया', ४ : अध्याय ३)।

परिशिष्ट ७ : भारतीय सुधारकों का अध्यात्म

प्रस्तुत ग्रन्थ में आधुनिक सुधारकों के विषय में जो कुछ कहा गया है, वह मुख्यत: प्रचलित नीति-शास्त्र से सम्बद्ध है; उनमें से कुछ में वस्तुओं की उत्पत्ति का दार्शनिकीकरण किया गया है; 'उत्तर मीमांसा' को शंकर की शुद्ध प्रणाली अथवा अद्वैत, तथा माधव, रामानुज और बल्लभ के 'मध्वाद्वैत', विशिष्टाद्वैत' एवम् 'शुद्धाद्वैत' में विभाजित किया जाता है। शंकराचार्य का मत था कि ईश्वर, जो स्वयम् अपरिवर्तनशील है, समस्त वस्तुओं की उत्पत्ति का मूल है, परन्तु स्वयम् के प्रति अज्ञान में पड़ जाने पर वह अपरिवर्तित होते हुए भी माया के विभिन्न रूपों में प्रकट होता है, जैसे कि दर्पण, जो स्वयम् स्थिर रहते हुए प्रत्येक वस्तु का प्रतिबिम्ब देता है। इस प्रणाली में जीव और आत्मा एक हैं। इसके विपरीत, माधव के मत से जीव आत्मा से भिन्न है, और पवित्र आत्माएँ, बिना विलीन हुए, ईश्वर के साथ रहती हैं, परन्तु वह 'माया' को ईश्वर के समान ही स्थायी मानता है जो पदार्थ को रूप देती है; रामानुज के

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अनुयायी माधव के मत का विस्तार करते हुए ईश्वर, जीव, माया और अणु पर अपने विचार प्रकट करते हैं। वल्लभ तथा शुद्धाद्वैतवादी, जीव या मानवीय आत्मा को पृथक अस्तित्व देते हुए मानते हैं कि मोक्ष का अर्थ ईश्वर के साथ रहता और आवागमन से मुक्त होना है, परन्तु माया के सिद्धान्त का पूर्ण खण्डन करते हुए, वे मानते हैं, अपनी इन्द्रियों द्वारा मनुष्य जो ज्ञान या अनुभव प्राप्त करता है, वह वास्तविक है, भ्रामक नहीं।

परिशिष्ट ८ : शीर्षक नानक के दार्शनिक विचार वैज्ञानिक न होकर नैतिक व लोकप्रिय अधिक थे।

प्रो० विल्सन (एशि० रिस० : १७ : २६३) के अनुसार नानक के सिद्धान्त, केवल सूफी मत और वेदान्त पर आधारित आध्यात्मिक विचार जैसे प्रतीत होते हैं, किन्तु किसी भी विचारक के लिये स्पष्टतया यह प्रगट कर पाना कठिन कार्य है कि ईश्वर घट घट वासी है, क्योंकि ऐसा करते ही उसे भावनात्मक संसार में काम करना पड़ता है। मिल्टन कवि भी था और राजनैतिक भी, उसने जब पैराडाइज लॉस्ट भाग ५ में कहा कि 'शरीर आत्मा के उत्थान के लिये कार्यरत रहता है', तो उसकी प्रवृत्ति एकांकी हो उठी थी। उत्साही सुधारक सेंट पाल ने (१ कोरेंथियंस १५.४४) कहा कि 'बीज से प्राकृतिक शरीर ही अंकुरित होता है और वही आगे चलकर आत्मिक शरीर में उन्नत होता है।' जरमिया में (२३.४) कहा गया है 'क्या ईश्वर ही आकाश एवम् पृथ्वी को भर नहीं देता ?' रोमंस ११.३६ में कहा कि 'तमाम पदार्थों की स्थिति उसी की, उसी तक और उसी के माध्यम से है।' उपरोक्त तमाम उद्धरण ईश्वर की व्यापकता को ही प्रगट करते हैं, परन्तु पॉल, जरमिया तथा नानक ने इस प्रकार की बातें केवल इसीलिये कहा है कि मानव जाति को ईश्वर की सर्वोच्चस्थिति का ज्ञान हो सके। इनकी भाषा भी ऐसी ही है कि पाठक एवम् श्रोता के पथ-भ्रष्ट होने का भय नहीं रहता।

प्रोफेर विल्सन (एशियाटिक रिसर्चेज भाग १७; पृ० २२३, २३७, २३८) तथा मुहसिन कानी (दबिस्तां भाग २ पृष्ठ २६६,'७०,'८५, ८६) के लेखों को तुलनात्मक दृष्टि से परखा जा सकता है और इन दोनों को सियासत मुताखरीन (१·११०) के मुकाबले में रक्खा जा सकता है और इन तुलनाओं से सिक्खों के धर्म और ब्राह्मणों के धर्म का साम्य व अन्तर स्पष्ट हो जायगा। वास्तव में सही तो दोनों ही हैं।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

इमें यह याद रखना चाहिये कि सिक्ख लोग नानक के उपदेशों को मान्य समझते हैं और इसीलिये यदि वे ब्रह्मा, विष्णु की बात करते है तथा अन्य स्वर्गस्थ आत्माओं का स्मरण करते हैं तो हम उन्हें एकदम तर्कहीन कह सकते। यदि ईसाइयों को देखा जाय तो हमें पता लगेगा कि वे भी मोजेज, एब्राहम, माइकेल तथा गैब्रील की चर्चा करते रहे हैं। ऐसी स्थिति में यदि सिक्खों के साहित्य में ऐसी बातें पाती हैं तो वे सर्वदा सम्य हैं। यद्यपि नानक ने पौराणिक चरित्रों को अपनी रचनाओं में स्थान दिया है, पर वे मूर्तिपूजा के एकदम विरुद्ध थे। हम जानते हैं कि सेण्ट जान ने ग्रीक दर्शन से प्रायः काम लिया है और सेंट पालने ग्रीक कवियों की चर्चा प्रायः की है, मिल्टन के भी प्रयत्न इस बात के अपवाद नहीं हैं। वास्तविकता यह है कि धार्मिक लेखकों ने अपनी बातों को स्पष्ट एवम् प्रमाणित करने के प्रायः दूसरे धर्म वालों का सहारा लिया है और समय समय पर उनके साहित्य से उद्धरण भी किया है।

परिशिष्ट ९ : राज तथा योग; देग तथा तेग

मालकम (स्केच पृष्ठ ३४, ३५) तथा फार्स्टर (ट्रैवेल्स २९८,२९९) के अनुसार हरगोविन्द गुरु ने अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिये सिक्खों को शस्त्र सज्जित किया, यद्यपि मुसलमानों से उनका सहज बैर भी इसके कारणों में से था। मुहसिन फानी ने भी उनको इस प्रवृत्ति पर कोई आश्चर्य प्रगट नहीं किया है और दबिस्तां में शायद इसी लिये इसका कोई कारण भी नहीं दिया है। जहाँ तक सिक्खों का प्रश्न है वे इस परिवर्तन को मिथिला के पौराणिक राजा जनक की प्रवृत्ति की भाँति का ही मानते हैं, जिन्होंने भोगों में डूबकर भी उनके प्रति अद्वितीय अनासक्ति का प्रदर्शन किया था। यह तो सिक्खों का विश्वास ही है कि उनके प्रत्येक गुरु में उनके प्रथम गुरु नानक की ही आत्मा का निवास रहा करता था। इस विषय में एक व्यक्तिगत कथा का भी सहारा लिया गया है। ऐसा प्रसिद्ध है कि गुरु अर्जुन देव की स्त्री निस्सन्तान थी और उसे सन्तानवर्ता होने की कोई आशा नहीं रह गयी थी। वह भाई बुद्ध के समीप गयी, नानक के समकालीनों में जो अकेले जीवित व्यक्ति थे, परन्तु उन्हें उस स्त्री को तड़क-भड़क पूर्ण भूषा पसन्द नहीं आयी। उसके कीमती उपहार भी उन्हें आडम्बर पूर्ण प्रतीत हुए। उन्होंने उसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया। कुछ ही दिनों बाद वह नंगे पाँव अकेली उनकी सेवा में पहुँची। उसके सिर पर सामान्य

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

कृषकोंयो के श्य खाद्य पदार्थ थे। सन्त बड़े ही प्रसन्न हुए और मुस्करा कर कहा कि उसे पुत्र की प्राप्ति होगी जो देग और तेग का समान स्वामी होगा। यह देग और तेग उसी प्रकार की भावना की अभिव्यक्ति करते हैं, जिस प्रकार की भावना की अभिव्यक्ति राजा जनक के सम्बन्ध में राज तथा योग से होती है। भारतीय मुसलमानों में पीरी तथा मीरी शब्द युग्म से भी यही अभिव्यक्ति होती है। इस प्रकार कहा जाता है कि गुरु हरगोविन्द दो तलवारें बाँधते थे, जिनमें एक आध्यात्मिक शक्ति की तथा दूसरी सांसारिक शक्ति की प्रतीक थे। मालकम (स्केच पृष्ठ ३५) के अनुसार एक तलवार पितृहत्या का बदला लेने के लिये तथा दूसरी मुसलमानों के विनाशार्थ थी।

गुरु अर्जुनदेव का भाग्य तथा उनके पुत्र का व्यक्तिगत चरित्र दोनों ही सिक्खों सशस्त्र होने के मूल में थे। वैसे इस परिवर्तन के विस्तृत कारणों का पता लगाना अभी शेष ही है।

परिशिष्ट १० : सिक्खों में जाति व्यवस्था

यह कहा जा सकता है कि गुरु गोविन्द ने यद्यपि जातिपाँत तोड़ने के लिये कोई नियम नहीं बनाया था, फिर भी परम्परा चला कर ही उन्होंने जाति को अनावश्यक करार दिया था, किन्तु सिखों में जातियाँ अब भी पायी जाती हैं। वैसे भी किसी भी गुरु ने कहीं भी ऐसा न तो कहा है और न लिखा ही है कि ब्राह्मणों एवम् शूद्रों के बीच रोटी-बेटी व्यवहार होना चाहिये यद्यपि निम्नलिखित उद्धरणों से स्पष्ट हो जायगा कि उन लोगों ने मानसिक रुप से जाति व्यवस्था को हेय समझा था। वास्तव में वे सत्य एवम् धार्मिक एकता को सामाजिक एकता एवम् सारंग राग राजनैतिक समानता के ऊपर मानते थे :—

'जाति की बात मत सोचो, अपने को बिनया बनत करो और मुक्ति का प्रयत्न करो'—नानक।

ईश्वर किसी की जाति नहीं पूछेगा वह तो यही पूछेगा की तुमने क्या किया है नानक प्रभाती रागिनी।

'सभी में ब्रह्म ही बीज रूप है अतः सब समान हैं'—अमरदास-भैरव

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र जो भी भगवन्नाम का स्मरण करेगा, उसी की मुक्ति होगी'—रामदास–विलावल

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

परिशिष्ट ११ : सिक्ख धर्म में दीक्षा काल की क्रियाएँ

सिक्खों की दीक्षा प्रायः ७ वर्ष की उमर प्राप्त कर लेने पर होती है, किन्तु कभी कभी युवा हो जाने पर भी दीक्षा होती है। इस विषय में कोई अधिकृत नियम नहीं है। दीक्षा काल के अनुष्ठान को भी कोई सर्वमान्य व्यवस्था नहीं हैं। बस इतना ही आवश्यक है कि कम से कम ५ सिक्ख उपस्थित हों, जिनमें से एक धार्मिक वृत्ति का हो। एक बर्तन के पानी में कुछ चीनी घोल दी जाती है, जिसे दो धारे कृपाण से हिला दिया जाता है यद्यपि लोहे का कोई भी शास्त्र काम में लाया जा सकता है। दीक्षा लेने वाला व्यक्ति दोनों हाथ जोड़ कर बिनयावनत खड़ा हो जाता है और गुरु का अनुसरण करता हुआ सिक्ख धर्म की प्रमुख बातों को कहता जाता है। कुछ चीनी मिश्रित जल उसके चेहरे व तन पर छिड़क दिया जाता है, शेष को वह पी जाता है और 'वाह गुरु' का नारा लगाता है। अन्त में उसे भगवान के प्रति व सिक्ख धर्म के प्रति निष्ठा रखने की शपथ लेनी पड़ती है और दीक्षा कर्म समाप्त हो जाता है। इस विषय की विस्तृत जानकारी प्राप्त करने की इच्छा करने वालों को फार्स्टर कृत ट्रैवेल्स भाग १ पृष्ठ ३०७, मालकम कृत स्केच पृष्ठ १८२ व प्रिंसेप द्वारा सम्पादित मरे कृत लाइफ़ आव् रनजीत सिंह पृष्ठ २१७ देखना चाहिये।

पहले चीनी के स्थान पर किसी पवित्रात्मा सिक्ख की पगधूलि मिलायी जाती थी, परन्तु कालान्तर में चीनी मिलायी जाने लगी। कुछ दिनों तक उस पानी को सिक्ख श्रेष्ठ के पैर केअंगूठे से छुवाया जाता रहा, किन्तु धीरे धीरे इस प्रथा का भी अन्त हो गया। सम्भवतः कटार से स्पर्श करने की प्रथा गुरु गोविन्द सिंह द्वारा चलायी गयी थी।

परम्परा तो नहीं हैं किन्तु यदा कदा सिक्ख धर्म में स्त्रियों को भी दीक्षित किया जाता है और इस स्थिति में एक धार वाली कटार का प्रयोग होता है न कि दुधारे कृपाण का।

परिशिष्ट १२ : वाह गुरु, देग़, तेग़ तथा फतह का नारा

साधारणतया सिक्खों का तारा है 'वाह गुरु'। 'वाह गुरु की फतह' या 'वाह गुरु का खालसा' ये दोनों नोर अधिकृत नोर नहीं हैं, यद्यपि प्रथम नारा परम्परामूलक हो चुका है। 'देग़ और तेग़' का प्रचलन शायद गुरु गोविन्द के समय में उन्हीं द्वारा प्रचलित किया गया था।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आदि ग्रन्थ के बहुत से अध्यायों का प्रारम्भ 'एको ऊँकार, सत गुरु प्रसाद' से हुआ है। 'दसवें पादशाह का ग्रन्थ' के कुछ अध्याय 'एको ऊँकार, वाह गुरु की फ़तह' से प्रारम्भ किये गये हैं।

गुरु रत्नावली के अनुसार सतयुग का नारा था 'वासुदेव', त्रेता का नारा था 'हर हर', द्वापर का नारा था 'गोबिन्द गोबिन्द', और कलियुग का नारा था 'राम राम' और अब पाँचवें युग का नारा है 'वाह गुरु'।

परिशिष्ट १३ : लोहे के प्रति सिक्ख-भक्ति तथा 'सच्चा पादशाह'

देखिये मालकमकृत स्केच, पृष्ठ ४८, टिप्पणी ११७,१८२

वास्तव में गुरु गोविन्द सिंह ने अपने अनुयायिओं को लौह धारण करना अनिवार्य कर दिया।

चूँकि सिक्खों के गुरु लोग सिक्खों के शरीर पर नहीं किन्तु आत्मा पर शासन करते थे, इसी से सिक्ख जान अपने गुरुओं को 'सच्चा बादशाह' कहा करते थे। मुसलमान लोगों में 'मालिक हकीकी' इसी भाव में प्रयुक्त होता है।

परिशिष्ट १४ : सिक्खों के परिचयात्मक चिह्न

सिक्खों की मुख्य पहचान है उनके लम्बे केश तथा नीली पोशाक; यद्यपि नीली पोशाक का प्रचलन अब बन्द सा हो रहा है। सम्भव है कि ये चिह्न शायद इसीलिये चलाये गये हों ताकि सिक्खों को हिन्दुओं से देखकर ही अलग किया जा सके। हिन्दुओं में नीली पोशाक पहनने का कोई रिवाज नहीं है।

सिक्ख लोग तम्बाकू से परहेज करते हैं और मादक द्रव्यों से दूर रहते है। ये लोग अण्डर वियर के रूप में एक जाँघिया पहनते हैं जिसे कच्छ कहते हैं। सिक्ख स्त्रियाँ शेष स्त्रियों से अपने पोशाक के कारण ही पहचान में आ जाती हैं।

परिशिष्ट १५ . भारत में शिक्षा के लिये संस्कृत के स्थान पर अरबी का प्रयोग

इस समय तक अँगरेजों ने इस देश में फौजी सुधारों एवम् कतिपय शासन सुधारों के अतिरिक्त कुछ भी नवीन नहीं किया है। इंगलैण्ड की प्रतिभा का प्रभाव भारत पर नहीं के बराबर ही पड़ा है। इसका प्रभाव पड़ भी नहीं सकता

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जब तक संस्कृत या अरबी भाषा को ज्ञानार्जन का साधन नहीं बनाया जाता। इन भाषाओं की आवश्यकता इसलिये नहीं है कि उनका भण्डार उत्तम है। आवश्यकता तो इस लिये है कि यहाँ का विद्वत्समाज इन्हें समझता है। एक बार यदि यहाँ के शिक्षित जन किसी बात को समझ जायँगे तो समय पाकर उनका प्रचार जन सामान्य में भी हो सकेगा। जन भाषाओं में दिये गये ज्ञान का प्रभाव होगा पर बहुत ही धीरे-धीरे। फिर बहुत सी पुस्तकें भी इन भाषाओं में तैयार करनी होंगी।

यहाँ के शिक्षा-प्रसारेच्छुकों को ध्यान रखना चाहिए कि ये लोग टालेमी नक्षत्रशास्त्र को या यूक्लिड की ज्यामिति को तभी ग्रहण कर सकेंगे, जब इन्हें संस्कृत का जामा पहना दिया जायगा।

कलकत्ता में अँगरेजी के माध्यम एवम् प्रान्तिय भाषाओं की सहायता से जो जो अध्ययन अध्यापन चल रहा है तथा उसमें कुछ उन्नति भी हो रही है, उससे हमारी उपरोक्त मान्यता का खण्डन नहीं होता। मेडिकल कालेजों में छात्र गया मुर्दे को चीरते अवश्य है, परन्तु भारत की सहायता बिना उनकी प्रगति पर्याप्त धीमी है। कलकत्ता में अनेक अँग्रेजों के वैभव ने भारतियों को आकर्षित किया है, परन्तु इसकी छाया बनारस, दिल्ली पूना तथा हैदराबाद तक नहीं पहुँच पा रही है।

परिशिष्ट १६ : भारत के भूमि पर

बृटिश भारत में भूमि कर व्यवस्था इस प्रकार की हैं :—बंगाल २।५ बम्बई २।३, मद्रास ३।४, आगरा ४।५; औसतन् पूरे का ३।५।

कुछ योरोपियन देशों में यही दर इस प्रकार है :—

इंगलैण्ड १।२४; फ्रांस १।४; स्पेन १।१७ (शायद त्रुटिपूर्ण है); बेलजियम २।११; प्रशा २।११; नेपुल्स १।४; आस्ट्रिया १।२।

यूनाइटेड आव् अमेरिका में भूमिकर परम्परा के अनुसार भिन्न भिन्न दर से लगता है।

यह एक बेकार का ही कार्य होगा कि हम इस फेर में पड़े कि प्राचीन हिन्दू युग में या हाल के मुसलमान काल में भूमि कर का रेट क्या था। यह तय है कि— (१) सरकार भूमि की समूची अतिरिक्त आमदनी ले लेती थी और (२) यहाँ के किसानों को इंगलैण्ड के किसानों की सी सिंचाई की सुविधाएँ देना सरकार के

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जिम्मे नहीं है। भारत में सुधार पर रुपया लगाना कोई भी नहीं चाहता। किसान से लगान चाहे सरकार लेती हो या जमींदार यह तय है कि निम्न कोटि का भोजन एवम् अगले साल के बीज के लिये अन्न छोड़कर किसानों के लिये कुछ भी नहीं शेष रह पाता। ऐसी स्थिति में अँगरेज सरकार का यह कर्तव्य है कि वह यहाँ के किसानों को भी उसी प्रकार की सुविधाएँ उनके स्वयम् के देश में किसानों को मिलती हैं।

इस विषय में लेव्कर्नल स्लीमैन के रैम्बुल्स ऐंड रिकलेक्शन्स आव् ऐन इंडियन आफीशियल (आक्सफोर्ड १९१५ पृष्ठ ५८, ५६१, ५७१ देखना चाहिये। विशेष जानकारी के इच्छुक उत्तरी पश्चिमी सूबों के ले० गवर्नर लिखित 'डाइरेक्शन फारसेटिलमेंट आफिसर्स' तथा रिमार्कस आन दी रिवेन्यू सिस्टम (१८४९) देखना चाहिये।

परिशिष्ट १७ : आदिग्रन्थ या नानक रचित ग्रन्थ

[नोट]--आदिग्रंथ में कहीं पर भी ऐतिहासिक या वर्णनात्मक विवरण नहीं पाया जाता। प्रत्यक्षतः सोलहवीं या सत्रहवीं शताब्दी के राजनैतिक भारत पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता हाँ सामाजिक एवम् धार्मिक स्थितियों का इसमें पूरा चित्र उपस्थित किया गया है। इसकी शिक्षा का सारांश यही है कि ईश्वरोपासना सच्ची भावना के साथ करनी चाहिये तथा बिना धर्म, विश्वास एवम् सत्कर्म के मुक्ति असम्भव है।

आदिग्रंथ में नानक जी की रचनाएँ (लोगों के अनुसार) हैं साथ ही साथ प्रथम ९ गुरुओं की बाणियाँ हैं, किन्तु ६ वें, ७ वें तथा ८ वें गुरुओं की कृतियाँ इसमें नहीं हैं। इसमें कुछ अन्य सम्प्रदाय के हिन्दू सन्तों के बचन संग्रहीत हैं तथा कुछ भाटों के कथन दिये गये हैं। ग्रंथ की विभिन्न प्रतियों में एकरुपता नहीं है। १६ भक्तों में दो डोम हैं तथा १ रबाबी है।

ग्रंथ का प्रथम संग्रह गुरु अर्जुन द्वारा किया गया, परन्तु बाद के गुरुले उसमें बहुत कुछ घटाते बढ़ाते गये। ग्रंथ पद्यों में है, यद्यपि छन्दों में एकरूपता नहीं है। इसकी भाषा पंजाब की भाषा न होकर अपर इंडिया की जनभाषा हिन्दी है। कुछ भाग संस्कृत में है।

ग्रंथ में १२३२ पृष्ठ हैं, हर पृष्ठ में २४ पक्तियाँ है, हर पंक्ति में प्रायः ३५ अक्षर हैं।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आदि ग्रंथ की सूची

प्रथम—जप-जिसे गुरु मंत्र कहते है। इसमें ७ पृष्ठ हैं और पौरी नामक ४० छन्द हैं। यह नानक जी द्वारा लिखा गया है।

द्वितीय—सुन्दर राह रास-सिक्खों की संध्या कालीन प्रार्थनाएँ। इसमें ३½ पृष्ठ है। इसे नानक, रामदास तथा अर्जुन द्वारा लिखा कहा जाता है। शायद गोबिन्द सिंह का इसमें कुछ योगदान है।

तृतीय—किरित सोहिल-विश्राम के पूर्व की प्रार्थना। यह एक पृष्ठ से एक या दो पंक्ति अधिक है। यह नानक, रामदास तथा अर्जुन द्वारा रचा गया है। शायद १ छन्द गोबिन्द का भी है।

चतुर्थ—शेष ग्रंथ ३१ विभागों में है जो इस प्रकार हैं :—

१—श्रीराग	१२—दोडी	२२—तुखारी
२—माज	१३—वरारी	२३—केदारा
३—गौरी	१४—तैलंग	२४—भैरव
४—आसा	१५—सूधी	२५—बसन्त
५—गूजरी	१६—बिलावल	२६—सारंग
६—देवगान्धारी	१७—गौड़	२७—मल्हार
७—बिहागड़ा	१८—रामकली	२८—कान्हरा
८—बड़हंस	१९—नट नारायण	२९—कल्यान
९—सोरठ	२०—माली गौर	३०—प्रभाती
१०—धनाश्री	२१—मारु	३१—जयजयवन्ती
११—		

ये सब मिलकर ११५४ पृष्ठ है। प्रत्येक विभाग में विभिन्न गुरुओं के वचन हैं। इन गुरुओं के नाम इस प्रकार है।

१—नानक, २—अंगद, ३—अमरदास, ४—रामदास, ५—अर्जुन, ६—तेगबहादुर।

निम्नलिखित भगतों और साधुओं की रचनाएँ हैं :

१—कबीर, २—त्रिलोचन, ३—बेनी, ४—रविदास, ५—नामदेव, ६—धन्ना जाट, ७—शाहफरीद, ८—जयदेव, ९—भीखन, १०—साईं, ११—पीपा, १२—सदन, १३—रामानन्द बैरागी, १४—परमानन्द,

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

१५—सूरदास, १६—मीराबाई, १७—बलवन्त, १८—सत्ता, १९—सुन्दरदास। इनमें कबीर जुलाहा, त्रिलोचन, ब्राह्मण, रविदास चमार, नामदेव हिन्दू रंगरेज, शाहाफरीद मुसलमान, जयदेव ब्राह्मण, साईं बाई, पीपा जोगी, सदन कसाई, रामानन्द बैरागी, सूरदास अन्धे थे। मीराबाई भक्तिन, बलवन्त एवम् सत्ता डोम थे तथा सुन्दरदास रबाबी थे।

पंचम—भोग—६६ पृष्ठ, उपरोक्त व्यक्तियों एवम् गुरुओं के अतिरिक्त निम्नलिखित ९ भाटों की भी रचनाएँ हैं—

१—भीखा, अमरदास का शिष्य, २—कल्ल, रामदास का शिष्य, ३—कल्ल सहार, ४—जालय, ५—सल्ल, ६—नल्ल, ७—मथुरा, ८—बल्ल ९—किरित।

इनमें से अनेक उपनाम हैं। गुरु बिलास में ९ भाटों की गणना है। जिसमें केवल बल्ल उभयनिष्ठ हैं।

ग्रन्थ का पूरक

षष्टम्—भोग का बानी—यह ७ पृष्ठों में है। जिसका अन्तिम भाग गुरु गोविन्द के समय में भाई भन्नू द्वारा लिखा गया है।

कहते हैं कि 'रतन माला' प्रारम्भ में तुर्की भाषा में लिखी गयी थी या किसी तुर्की रचना से ली गयी हैं।

परिशिष्ट १८ : दसवें पादशाह का ग्रन्थ

नोट—आदि ग्रन्थ की ही भाँति गोविन्द सिंह द्वारा लिखित भाग भी पद्यमय भाषा में है, जिसमें विभिन्न छन्दों का प्रयोग हुआ है।

इसकी लिपि पंजाबी तथा भाषा हिन्दुओं की सामान्य बोलचाल की भाषा है। अन्तिम अध्याय फारसी में है, यद्यपि लिपि गुरुमुखी ही है।

इस अंश के अध्याय में इतिहास का भी विवरण है। अन्य भागों में पौराणिकता ही अधिक है और इनमें ईश्वर की एकात्मकता का प्रतिपादन हुआ है और ब्रह्माण्ड के शासक की महत्ता दिखायी गयी है। पाँचवें अध्याय तक और छठें अध्याय का कुछ भाग स्वयम् गोविन्दसिंह द्वारा लिखा कहा जाता है और शेष भाग को उनके चार शिष्यों ने लिखा है। इनमें शाम और नामक को लेखकों

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

का नाम लिखा हुआ है। दसवें यादशाह का ग्रन्थ कुल ग्रन्थ का ½ है जितमें प्रत्येक पृष्ठ पर ३८ से लेकर ४१ अक्षरों २३ पंक्तियाँ हैं।

सूची १—जायी, २—अकालस्तुत, ३—विचित्र नाटक, ४—चंडी चरित्र, ५—चंडी चरित्र, ६—चंडी की वार ७—ज्ञान प्रबोध, ८—चौबीस अवतारों की चौपाइयाँ ९—मेहदी मीर, १०—ब्रह्मा के अवतार, ११—रुद्र या शिव के अवतार १२—शास्त्राणाम् माला, १३—श्री मुख वाक्, १४—शब्द हजारा १५—स्त्री चरित्र, १६—हिकायतें।

परिशिष्ट १९ : सिक्ख गुरुओं द्वारा स्थापित कुछ नियम

१. ईश्वर-नाम सत्य है, वह निर्भाण, अद्रोही, अमर, मुक्तिदाता, दयालु और गुरु है।

२. अवतार, साधु, महात्मा, हिन्दू अवतार, मुहम्मद, सिद्ध और पीर।

बहुत से हिन्दू और मुसलमान, ब्राह्मण, वैष्णव शैव हो गये हैं। साधु महात्मा तो अत्यधिक हुए हैं, परन्तु ईश्वर ही इन सबका साध्य रहा है।

(नानक, रत्नमाला)

इन्हीं विषयों पर गुरु अर्जुन, गोविन्द इत्यादि की रचनाएँ हैं।

३. सिक्ख गुरु उपास्य नहीं हैं। गोविन्द, विचित्र नाटक।

४. मूर्तिपूजा एवम् सन्त पूजा नहीं होनी चाहिये। केवल ईश्वर ही पूज्य है।

५. चमत्कार प्रदर्शन सिद्ध पुरुषों का काम नहीं है।

६. पुनर्जन्म का मान्य कहा गया है।

७. विश्वास, श्रद्धा एवम् विश्वास से ही मुक्ति सम्भव है।

८. दया-बिना ईश्वर की दया के वह नहीं मिलता।

९. पूर्व संचित कर्म—कर्म फल अवश्य ही मिलता है।

१०. वेद, पुराण और कुरान—भगवान की भक्ति के बिना ये सब कुछ नहीं हैं।

११. गृहत्याग—सच्चा गृहस्थ गृहत्यागी से उत्तम होता है।

१२. जाति—भगवान जाति को नहीं कर्मों को देखता है।

१३. भोजन—किसी जीवधारी का खाना त्याज्य है।

१४. ब्राह्मण, सन्त इत्यादि—जनेऊ से नहीं, कर्म से ब्राह्मण पूज्य होता है।

१५. बालहत्या-त्याज्य है।

१६. सती-आग में नहीं, जीवित रह कर पति वियोग में जलना ही सती होना है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पुनश्च

इस विभाग में (१) भाई गुरुदास भल्ला नानक के धर्मोपदेशों पर प्रकाश डाला है,

(२) विचित्र नाटक के माध्यम से गोविन्द के जीवनोद्देश्य पर वार्ता है,

और (३) २४ अवतारों का वर्णन है ।

परिशिष्ट २० : काल्पनिक सम्राट् काँरूच के नाम नानक के पत्र

तथा

गुरु गोविन्द के पत्र सिक्खों के पथप्रदर्शनार्थ

१. इस विभाग में नानक का नसीहत नामा है, जिसमें 'आया अकेला, जाय अकेला' विषय का प्रतिपादन किया गया ।

२. मदीना के स्वामी के नाम नानक का पत्र ।

३. गुरु गोविन्द का राहतनामा—दरियाई उदासी के लिये लिखित ।

४. तनखानामा—भाई नन्द लाल के प्रश्नों के उत्तर, इसमें विधि-निषेध दिये गये हैं ।

परिशिष्ट २१ : कुछ सिक्ख वर्गों एवम् जातियों की सूची

१—उड़सी—नानक के एक पुत्र श्रीचन्द्र द्वारा स्थापित । बाद में अमरदास जी ने उड़सियों को सच्चा सिख नहीं माना था ।

२—बेदी—नानक के एक अन्य पुत्र लक्ष्मीदास द्वारा स्थापित ।

३—तेहुन—गुरु अंगद जी द्वारा स्थापित ।

४—भल्ला—गुरु अमरदास जी द्वारा स्थापित ।

५—सोधी—गुरु रामदास जी द्वारा स्थापित ।

नोट—बेदी, तिहान, भल्ला और सोधी, सिक्खों के पृथक वर्ग न होकर, सिक्ख क्षत्रियों के उपवर्ग (विभिन्न गुरुओं द्वारा स्थापित जातियाँ) हैं ।

६—राम मरैया—वह वर्ग जो तेग बहादुर जी के गुरु होने पर रामराय के पक्ष में थे । निचले हिमालय क्षेत्र में, हरद्वार के निकट वे काफी संख्या में बसे हैं ।

७—बन्दा-पन्थी—जो बन्दा वैरागी के अनुयायियों के वंशज है ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

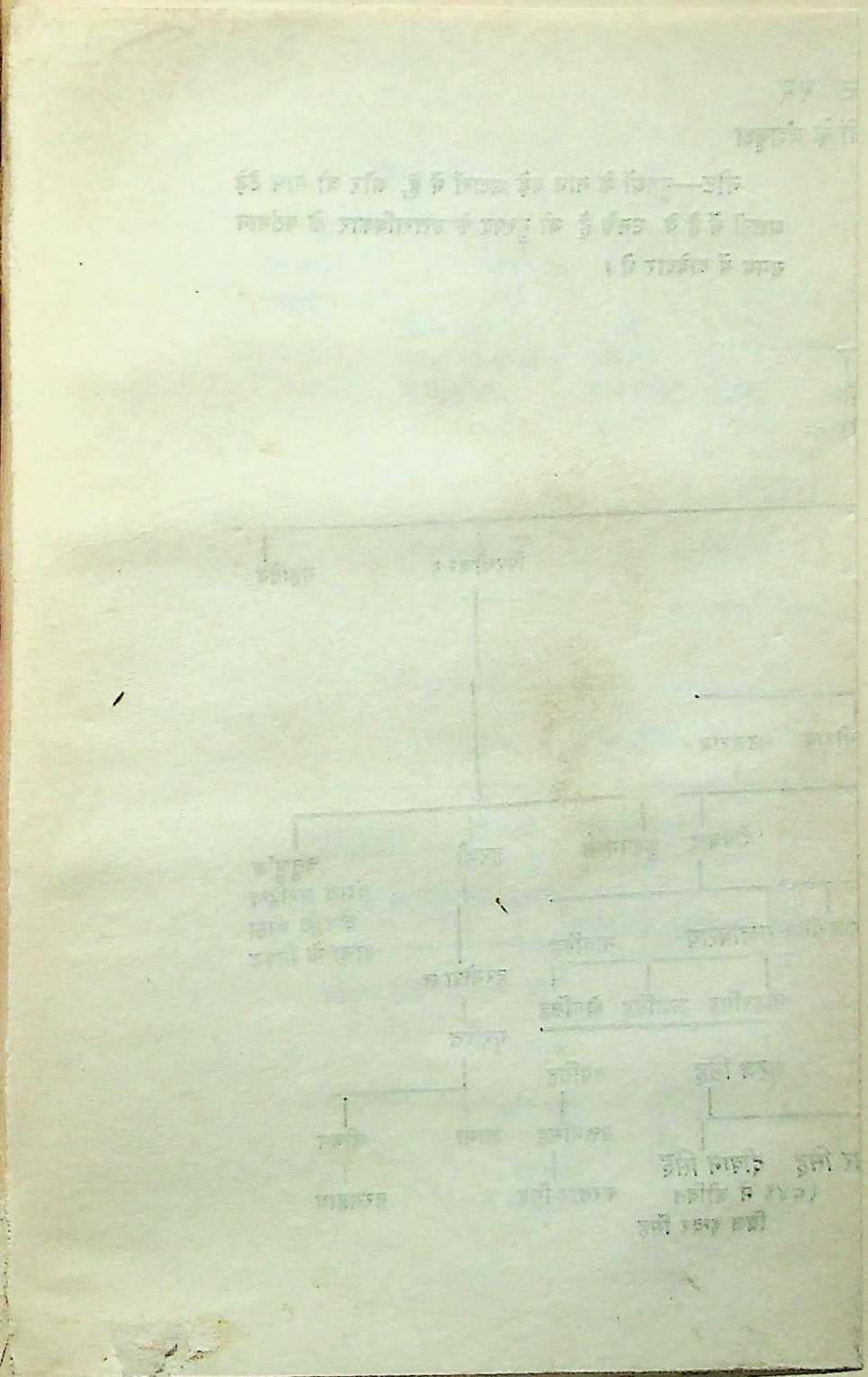

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri Funding : IKS

सिक्ख गुरुओं के वंशवृक्ष

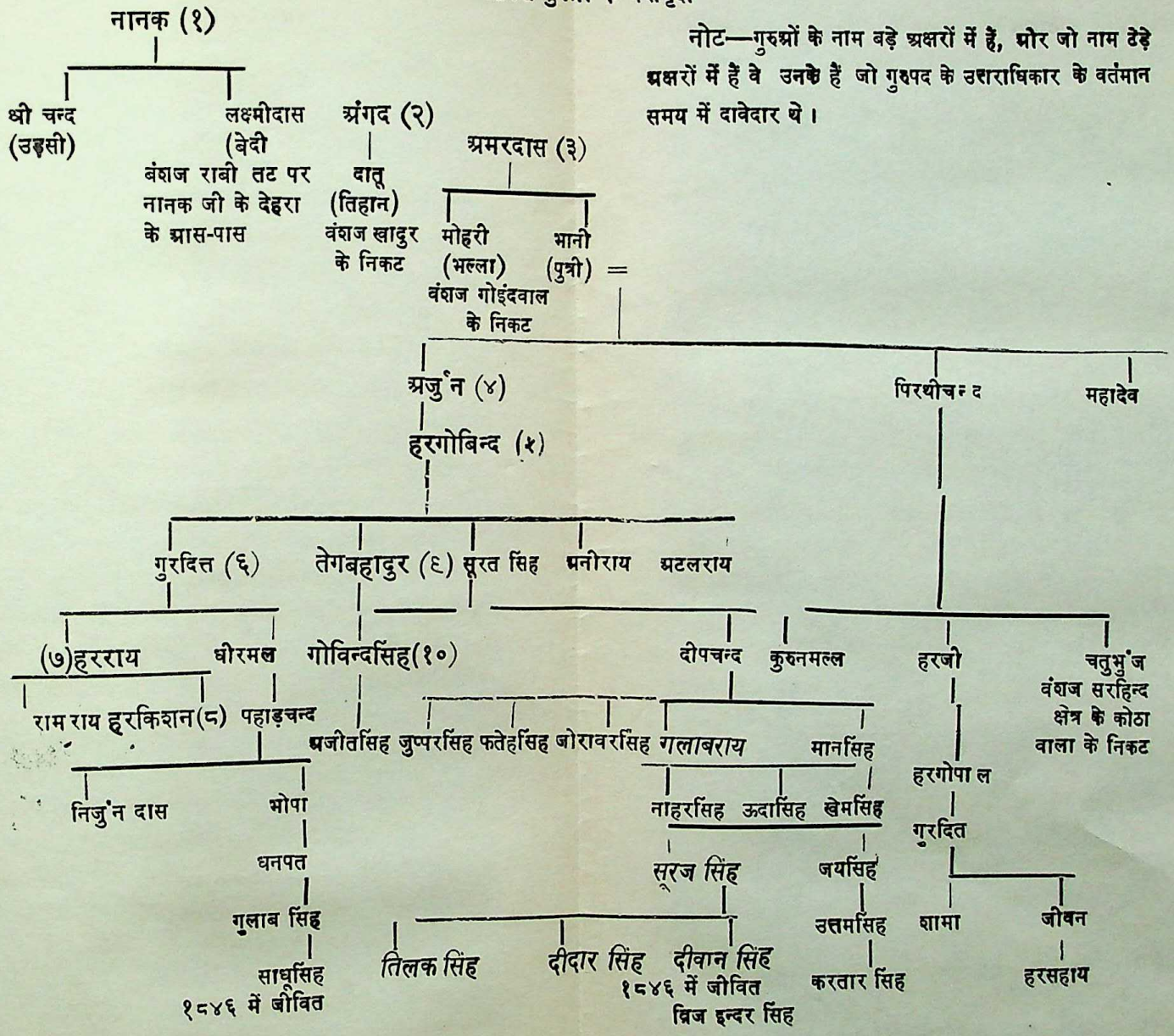

नोट—गुरुओं के नाम बड़े अक्षरों में हैं, और जो नाम ढेढ़े अक्षरों में हैं वे उनके हैं जो गुरुपद के उत्तराधिकार के वर्तमान समय में दावेदार थे।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

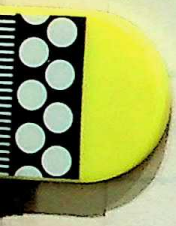

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

८—मसनद क्षेत्रियों के एक उपवर्ग का नाम है, परन्तु यह उन लोगों के लिए भी प्रयुक्त होता है, जिनके पूर्व-पुरुष गोबिन्द जी के विरोधी थे, और कुछ लोग रामराय के अनुयायियों को मसन्द मानते हैं; उनके सम्बन्ध में यह कथा प्रचलित है कि वे गुरु-परिवार के सेवक थे, परन्तु उनमें गर्व की मात्रा अधिक होने से गोबिन्द जी ने दो या तीन के अतिरिक्त सभी को निष्कासित कर दिया था।

९—रंगरेहटा—भंगियों व अन्य निम्न जातियों से परिवर्तित सिक्ख।

१०—रमदासी—अर्थात् राव या रैदासी-सिक्खों का चमार वर्ग, जो स्वयम् को भक्त रैदास का वंशज मानता है।

११—मजहबी—मुसलमान से सिक्ख होने वाले।

१२—अकाली—अकाल की आराधना करने वाले।

१३—निहंग—शुद्ध।

१४—निर्मले—इस उपाधि को धारण करने वाला धार्मिक सिक्ख प्रायः पाहल की क्रिया सम्पन्न करता है।

१५—ज्ञानी—धार्मिक एवम् विद्वान की उपाधि।

१६—सुथरा-शही—सुच्चा नामक ब्राह्मण द्वारा स्थापित।

१७—सुचीदरी—पवित्र या शुद्ध; संस्थापक के सम्बन्ध में कुछ निश्चित पता नहीं है।

१८—भाई—धार्मिक सिक्खों के लिए एक सामान्य सम्बोधन; यह किसी वर्गादि से सम्बद्ध नहीं है।

सिक्ख जातियों व वर्गों की इस सूची में उन दलों को जोड़ा जा सकता है जो विभिन्न गुरुद्वारों से सम्बद्ध होते हैं या जो स्वयम् को गुरुओं के प्रमुख शिष्यों द्वारा स्थापित वर्गों का वंशज मानते हैं। उदाहरणस्वरूप कुछ सिक्ख स्वयम् को रामदास का प्रतिनिधि मानते हैं जो गुरु नानक जी के साथी थे, और जिन्हें 'बृद्ध' की उपाधि दी गई थी। कुछ खानदानी गाने बजाने वाले रबाब नामक बाजे के आधार पर स्वयम् को 'रबाबी सिक्ख' कहते हैं और वे नानक जी के एक अन्य साथी, मददाता को अपना स्थापक मानते हैं; एक वर्ग स्वयम् को दीवाना कहता है जिसके पूर्व-पुरुष गुरुओं की सेवा के लिए श्रद्धालु भक्तों से चन्दा इकट्ठा करते थे, और इस वसूली के समय पगड़ी में मोरपंख लगाते थे। एक अन्य वर्ग मुसद्दियों का है जो धर्म मुसलमान हैं परन्तु नानक जी के 'जप' को धार्मिक नियम के रूप में ग्रहण कर लिया है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

परिशिष्ट २३

लाहौर के साथ सन् १८०६ की सन्धि

आँनरेबुल ईस्ट इण्डिया कम्पनी तथा सरदार रणजीत सिंह व सरदार फतेह सिंह के बीच मैत्री व एकता की सन्धि (१ जनवरी १८०६)

"ब्रिटिश सरकार की ओर से गवर्नर जनरल आँनरेबुल सर जाँर्ज हिलेरो थार्लो तथा रणजीत सिंह की ओर से सर्वाधिकार युक्त प्रतिनिधि की हैसियत से सरदार फतेह सिंह द्वारा अधिकृत राइट आँनरेबुल लार्ड लेक के निर्देशन में लेफ्टि० कर्नल जाँन माँलकम द्वारा तैयार किए गए सन्धि-पत्र की निम्नलिखत शर्तों से सरदार रणजीत सिंह व फतेह सिंह सहमत हो गये हैं:—

आर्टिकिल १—इस सन्धि पत्र द्वारा सरदार रणजीत सिंह तथा सरदार फतेह सिंह इस बात पर सहमति प्रकट करते हैं कि वे अविलम्ब जसवन्त राव होलकर को सेना सहित अमृतसर से कम से कम ३० कोस दूर हटने के लिए बाध्य करेंगे, और इसके पश्चात् वे उससे कोई सम्बन्ध नहीं रक्खेंगे न उसे किसी प्रकार की सहायता पहुँचाएँगे, वे यह भी स्वीकार करते हैं कि वे किसी भी प्रकार से जसवन्त राव होलकर के उन अनुयायियों या सैन्य दलों के मार्ग में बाधक नहीं बनेंगे जो डेकन स्थित अपने घरों की ओर लौटने के इच्छुक हैं, बल्कि इसके विपरीत ऐसी इच्छा की पूर्ति हेतु वे उनकी; यथाशक्ति प्रत्येक सम्भव सहायता करेंगे।

आर्टिकिल २—ब्रिटिश सरकार इस बात पर राजी है कि उसके तथा जसवन्तराव होलकर के बीच शान्तिपूर्ण सम्बन्ध न स्थापित होने की स्थिति में ब्रिटिश सेना अपने वर्तमान शिविर से हट जायगी, परन्तु तभी, जब जसवन्तराव होलकर अपनी सैन्य सहित, अमृतसर से तीस कोस दूर हट चुकेगा, इस पर भी कि इसके पश्चात् यदि ब्रिटिश सरकार व जसवन्त राव होलकर में कोई सन्धि हुई, तो उसमें यह शर्त रक्खी जायगी, कि ऐसे किसी सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर करते ही होलकर सिक्खों के राज्य क्षेत्र को खाली करके अपनी सीमा की ओर चला जायगा, और मार्ग में पड़ने वाले सिक्ख-भूभाग को कोई भी हानि नहीं पहुँचाएँगा। ब्रिटिश सरकार इस बात पर भी राज़ी है कि जब तक सरदार रण-

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जीत सिंह और फतेह सिंह सरकार के किसी शत्रु के साथ कोई मित्रता पूर्ण सम्बन्ध बनाने की चेष्टा नहीं करेंगे, या अपनी ही ओर से सरकार के विरुद्ध कोई शत्रुता पूर्ण कार्य न करेंगे, तो ब्रिटिश सेनाएँ कथित सरदारों के भू भाग में प्रवेश नहीं करेगी, न ही ब्रिटिश सरकार उनके अधीनस्थ किसी भाग को जप्त करने या जीतने की योजनाएँ ही बनाएँगी।"

दिनांक—प्रथम जनवरी, १८०६।

परिशिष्ट २४

सर डेविड आक्टरलोनी की १८०६ की घोषणा

जनरल सेण्ट लाँजर की मुहर तथा कर्नल आक्टरलोनी की मुहर व दस्तखत में 'इत्तिलानामा,'—लिखा गया ६ फरवरी १८०६, अर्थात् २३ वीं जी हिजेह तथा १२२३ हिजरी।

"ब्रिटिश सेना द्वारा महाराजा रणजीत सिंह ?" की सीमाओं के निकट कैम्प डाल दिए जाने पर, इस 'इत्तिलानामें' (अर्थात् घोषणा) द्वारा ब्रिटिश सरकार ने अपनी प्रसन्नता का आभास देना उचित समझा है जिससे कि महाराजा के समस्त सरदार ब्रिटिश सरकार की भावनाओं से परिचित हो जाँय जिसका एक मात्र लक्ष्य एवम् उद्देश्य है महाराजा के साथ अपनी मैत्री को दृढ़ करना और उनके देश को कोई हानि न पहुँचने देना, दोनों राज्यों की मित्रता बनाए रखना कुछ ब्रिशिष्ट शर्तों पर आधारित है जो विस्तार में इस प्रकार है—

सतलज नदी के इस पार के खरार, खानपुर, तथा अन्य स्थानों के थानों को—जिन्हें महाराजा के अधीनस्थ सरदारों के हाथ में रख दिया गया है—सिक्ख सरदारों से लेकर उनके पूर्ववर्ती अधिकारियों को सौंप दिए जाँय। महाराजा द्वारा उन अश्वारोहियों तथा पद सेना को नदी के दूसरी ओर बुला लिया जाय जो सतलज को पार कर इस ओर आ गए हैं।

फिल्लौर के घाट पर रक्खी गई टुकड़ियाँ वहाँ से कूच करके उक्त कथनानुसार नदी के दूसरी ओर चली जाँय तथा भविष्य में महाराजा की टुकड़ियाँ नदी के इस ओर स्थित सरदारों के क्षेत्र में प्रवेश न करें जिन्होंने अपनी सुरक्षा के लिए ब्रिटिश थानों का संरक्षण माँगा है; परन्तु जिस ढंग से सतलज के इस पार ब्रिटिश सरकार ने कुछ छोटे छोटे थानों (अर्थात् पुलिस चौकियों) की व्यवस्था की है, उसी ढंग से यदि थाने के रूप में (सिक्ख सरकार)

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

फिल्लौर के घाट पर एक छोटी सी टुकड़ी रखना चाहे तो इस पर एतराज नहीं किया जायगा।

यदि महाराजा उक्त शर्तों को पूरा करें—जैसा करने का वादा उन्होंने मि० मेटकॉफ से बार बार किया है—तो पारस्परिक मित्रता दृढ़ होगी। इन शर्तों से सहमत न होने की स्थिति में यह स्पष्ट हो जायगा कि महाराजा ब्रिटिश मित्रता का सम्मान नहीं करते, बल्कि इसके विपरीत शत्रुता पर उतारू हैं, ऐसी स्थिति में विजयी ब्रिटिश सेना प्रतिरक्षा के अपने प्रयास प्रारम्भ कर देगी।

इस घोषणा का एक मात्र लक्ष्य है ब्रिटिश भावनाओं की अभिव्यक्ति एवम् महाराजा के विचार जानना। अंग्रेज विश्वस्त है कि महाराजा इस घोषणा को अपने लिए वस्तुतः लाभदायक, तथा ब्रिटिश मित्रता का एक स्पष्ट प्रमाण समझेंगे, जो युद्ध की क्षमता के साथ शान्ति की प्रवृत्ति भी रखते हैं।

———

परिशिष्ट २५

लाहौर से सन्धि १८०९

ब्रिटिश सरकार व लाहौर के राजा के बीच सन्धि २५ अप्रैल १८०९

चूँकि ब्रिटिश सरकार एवम् लाहौर के राजा के मध्य उत्पन्न अनेक विवादों का समाधान प्रसन्नतापूर्वक किया जा चुका है और दोनों पक्ष पूर्ण बन्धुत्व एवम् एकता का सम्बन्ध बनाए रखने के लिए इच्छुक हैं, अतः स्वयम् राजा रणजीत सिंह, तथा ब्रिटिश सरकार की ओर से सी० टी० मेटकॉफ द्वारा निम्नलिखित शर्तों से युक्त सन्धि निर्णीत की है जिसे मानने के लिए दोनों पक्षों के उत्तराधिकारी बाध्य होंगे।

आर्टिकिल १—ब्रिटिश सरकार एवम् लाहौर के मध्य स्थायी मैत्री रहेगी, तथा सरकार लाहौर राज्य के प्रति, अन्य मित्र राज्यों के ही समान सम्मान का भाव रक्खेगी और सतलज के उत्तर स्थित राजा के क्षेत्र व प्रजा से ब्रिटिश सरकार का कोई सम्बन्ध न रह जायगा।

आर्टिकिल २—सतलज नदी के बाएँ तट पर अपने अधिकृत क्षेत्रों में राजा उससे अधिक सैनिक नहीं रक्खेंगे जितने उस क्षेत्र की आन्तरिक व्यवस्था के लिए आवश्यक है, तथा आसपास स्थित सरदारों के अधिकारों या अधिकार क्षेत्रों मे न हस्तक्षेप करेंगे न सहेंगे।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आर्टिकिल ३—पिछली शर्तों में किसी एक के भी भंग किए जाने या मित्रता के नियमों की उपेक्षा किए जाने की स्थिति में इस सन्धि का समाप्त समझा जायगा।

आर्टिकिल ४—चार आर्टिकिल्स से युक्त इस सन्धि के अमृतसर में निर्णीत हो जाने पर अप्रैल १८०९ की २५ वीं तारीख को मि० सी० टी० मेटकाँफ ने अपनी मुहर व हस्ताक्षर के साथ, अंग्रेजी और फारसी भाषाओं में लिखित सन्धिपत्र की नकलों को लाहौर के राजा को अपने हाथ से दे दिया है और राजा ने भी उसकी एक अन्य प्रतिलिपि, मुहर व दस्तखत के साथ वापस कर दिया है, और मि० सी० टी० मेटकाँफ द्वारा दो माह के भीतर उस प्रतिलिपि पर कौंसिल में विचार के पश्चात् राइट आँनरेबुल गवर्नर जनरल का मुहर युक्त हस्ताक्षर कराके राजा को लौटाने पर वर्तमान सन्धि को पूर्ण एवम् दोनों पक्षों पर लागू समझा जायगा, और राजा को इस समय दी गई प्रतिलिपि उस समय ले ली जायगी।

—: ० :—

परिशिष्ट २६

लाहौर के विरुद्ध सिस सतलज राज्यों के संरक्षण की घोषणा १८०९

सतलज के इस पार स्थित, सरहिन्द और मालवा के सरदारों के नाम एक इत्तिलानामे का अनुवाद (३ मई १८०९)।

यह सूर्य से भी स्पष्टतर तथा बीते हुए कल के अस्तित्व से भी अधिक प्रमाणित है कि नदी के इस पार ब्रिटिश टुकड़ियों की गतिविधियों का कारण था अनेक सरदारों द्वारा की गई निष्ठापूर्ण मैत्री और सहायता की प्रार्थना, और इसके मूल में उन्हें उनके अधिकार क्षेत्र में सुरक्षित व स्वतंत्र रखने की ब्रिटिश सरकार के मैत्रीपूर्ण विचार थे। २५ अप्रैल १८०९ को महाराजा रणजीत सिंह तथा राइट आँनरेबुल गवर्नर जनरल-इन-कौंसिल के निर्देशानुसार ब्रिटिश सरकार की ओर से मि० सी० टी० मेटकाँफ के मध्य सन्धि के निर्णीत हो जाने पर, मालवा और सरहिन्द के सरदारों की सन्तुष्टि के लिए मुझे निम्न सात आर्टिकिल्स से युक्त ब्रिटिश सरकार के संकल्पों के प्रकाशित करने में मुझे बहुत प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आर्टिकिल १—मालवा और सरहिन्द के क्षेत्रों के ब्रिटिश संरक्षण में आ जाने से वे सन्धि की शर्तों के अनुसार वे भविष्य में महाराजा रणजीत सिंह के आतंक एवम् प्रभाव से सुरक्षित रक्खे जायँगे।

आर्टिकिल २—इस प्रकार ब्रिटिश संरक्षण में आए हुए समस्त सरदार ब्रिटिश सरकार की ओर से समस्त करों से मुक्त रहेंगे।

आर्टिकिल ३—ये सरदार अपने क्षेत्रों में उन सम्पूर्ण अधिकारों व प्रभुत्व के साथ अस्तित्व में रहेंगे, जिनका उपभोग वे ब्रिटिश संरक्षण में आने से पहले करते थे।

आर्टिकिल ४—सामान्य कल्याण के उद्देश्य से यदि ब्रिटिश सेना को उक्त सरदारों के क्षेत्र में से गुजरना पड़े तो यह आवश्यक होगा कि प्रत्येक सरदार अपने अधिकार क्षेत्र में उस सेना को खाद्यान्न एवम् अन्य आवश्यक सामग्रियों से यथाशक्ति सहायता करेगा।

आर्टिकिल ५—यदि इस देश पर किसी ओर से कोई शत्रु आक्रमण करे, तो मित्रता और पारस्परिक हित का तकाजा है कि सरदार अपनी सारी शक्ति के साथ ब्रिटिश सेना में सम्मिलित हों और शत्रु को मार भगाने का भरपूर प्रयास करते हुए अनुशासन में रहकर काम करे।

आर्टिकिल ६—विभिन्न सरदारों के थानेदार, ब्रिटिश सेना के उपयोगार्थ, पूर्वी जिलों से लाई जाने वाली यूरोपीय सामग्रियों को बिना चुंगी माँगे या बाधा डाले, गुजर जाने देंगे।

आर्टिकिल ७—ब्रिटिश अश्वारोही सेना के लिए खरीदे गए घोड़ों को लाने वाले जिन व्यक्तियों के पास दिल्ली के रेजिडेण्ट या सरहिन्द के कमाण्डिंग अफसर की मुहर युक्त 'रहदरियाँ' होंगी, उन्हें भी इन सरदारों के क्षेत्रों से, बिना चुङ्गी माँगे या बाधा डाला गुजर जाने दिया जायगा।

—: ० :—

परिशिष्ट २७

सिस सतलज रियासतों की एक दूसरे के बिरुद्ध सुरक्षा की घोषणा सन् १८११ ई०

सतलज और यमूना के मध्य स्थित मैदानों के संरक्षित सरदारों के आश्वासन एवम् सूचना के लिए २२ अगस्त १८११

मई १८०९ की तीसरी तारीख को ब्रिटिश सरकार के आदेश से सात

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आर्टिकल्स से युक्त एक 'इत्तिलानामा' जारी किया गया था जिसके अनुसार सरहिन्द और मालवा के सरदारों के, ब्रिटिश संरक्षण में आ जाने से, सन्धि के अनुसार राजा रणजीत सिंह को उन सरदारों के अधिकार क्षेत्र से कोई सम्बन्ध नहीं रख सकते थे, कि ब्रिटिश सरकार उनसे काई नजराना या पेशकश लेने की इच्छुक न थी, और यह कि वे अपने अधिकार क्षेत्र में पूर्ण स्वतन्त्रता का उपयोग करते रहेंगे, उक्त घोषणा का प्रकाशन सरदारों को पूर्णतः आश्वास्त करने के लिए किया गया था कि अंग्रेजों का मुख्य लक्ष्य, देश की रक्षा को दृढ़ करना था, कि वे सरदारों को नियंत्रित करने के इच्छुक नहीं थे, और कि सरदारगण अपने अधिकार क्षेत्र के पूर्ण स्वामी बने रहेंगे।

परन्तु अनेक जमीन्दारों, तथा इस देश के सरदारों की प्रजा के अन्य वर्गों ने ब्रिटिश अधिकारियों से शिकायत की है जिन्होंने इत्तिलानामे का सम्मान करते हुए इन शिकायतों पर न तो ध्यान दिया है, न भविष्य में देंगे ही, दृष्टान्ततः जून १८११ की १५ को समाना के दिलवर अली खाँ ने दिल्ली के रेजिडेण्ट से शिकायत की कि राजा साहब सिंह के कर्मचारियों द्वारा उसके हीरे जवाहरात, तथा कुछ अन्य सम्पत्ति छीन ली गई थी, जिसके उत्तर में उससे कहा गया कि चूँकि समाना कर कस्बा राजा की अमलदारी में था अतः यह शिकायत सीधे उन्हीं से की जानी चाहिए थी, इसी प्रकार १८११ की १२ जुलाई को रसौंधा सिंह तथा गुरमुख सिंह ने सरदार चरत सिंह के विरुद्ध, सम्पत्ति में अपने हिस्सों के सम्बन्ध में गवर्नर जनरल के एजेण्ट कर्नल आक्टरलोनी के पास शिकायत की, जिसके उत्तर में उनकी अरजी की पीठ पर लिख दिया गया था कि चूँकि तीन वर्षों की अवधि में चरत सिंह के विरुद्ध उसके किसी भाई द्वारा कोई दावा नहीं किया गया था, और चूँकि 'इत्तिलानामा' में भी विज्ञापित कर दिया गया था कि प्रत्येक सरदार अपने क्षेत्र में पूर्णतः स्वतंत्र एवम् हस्तक्षेप मुक्त रहेगा, अतः उनकी शिकायत पर ध्यान दिया जाना सम्भव नहीं था। शिकायतों के इन उत्तरों का उल्लेख इसलिए किया गया है कि प्रत्येक जमीन्दार तथा प्रजा समझ ले कि वे न्याय की आशा केवल अपने सरदार से ही कर सकते हैं; इस लिए सतलज के इस पार स्थित समस्त राजाओं व सरदारों के लिए आवश्यक है कि वे अपनी प्रजा को उक्त स्थिति से अवगत करा दें और प्रजा का विश्वास प्राप्त करने का प्रयास करें, ताकि उनकी प्रजा को ज्ञात हो जाय कि ब्रिटिश अधिकारियों से शिकायत करना व्यर्थ होगा, वे अपने सरदारों को ही न्याय का स्रोत मानें, तथा स्वेच्छा से, उनकी आज्ञाओं के पालन की आदत डालें।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जहाँ प्रथम घोषणा के अनुसार ब्रिटिश सरकार इस क्षेत्र के सरदारों की गतिविधियों में हस्तक्षेप करने की इच्छा नहीं रखती, वहीं सरदारों के इस समुदाय को संगठित रखने, के उद्देश्य से इस सामान्य सूचना को प्रसारित करना विशेष आवश्यक समझती है कि राजा रणजीत सिंह के गत आक्रमण के बाद से ही अनेक सरदारों ने दूसरों के क्षेत्रों को हड़प कर उन्हें उनके वैधानिक अधिकारों से वंचित कर दिया है, और बिना ब्रिटिश सेना के हस्तक्षेप के ऐसी सम्पत्ति को शीघ्र वापस करने की प्रवृत्ति नहीं दिखाई है, जैसा कि तिरह की रानी, चूलियाँ के सिक्खों करौली व चेहलौंदी के तालुकों तथा चिबा नामक गाँव के मामलों में हुआ है, अतः ब्रिटिश सरकार के आदेशानुसार यह घोषणा की जाती है यदि इन सरदारों में से किसी ने भी, किसी दूसरे के इलाके पर बलात् अधिकार कर लिया है, या कोई अन्य हानि पहुँचाई है, तो यह आवश्यक है कि कोई शिकायत आने के पूर्व ही क्षति ग्रस्त सरदारों को, अपहरणकर्ता सन्तुष्ट कर लें, और उनका न्याय्य अधिकार वापस करने में विलम्ब न करें, जिसमें यदि विलम्ब किया गया, और ब्रिटिश सरकार को हस्तक्षेप करने के लिए विवश होना पड़ा, तो अपहरणकर्ताओं से सम्बद्ध इलाके के अपहरण की तिथि से अब तक उसकी मालगुजारी, तथा सेनाओं के अभियान से उस इलाके के निवासियों को होने वाली हानियों का मुआविजा बिना हिचक, ले लिया जायगा, और प्रस्तुत आदेशों की अवहेलना के लिए अपराधी एवम् अपराध की स्थिति के अनुसार ब्रिटिश सरकार के आदेशों पर चलते हुए उनसे दण्ड वसूल किया जायगा।

परिशिष्ट २८

सिंध जल यातायात सन्धि १८३२

सिन्ध और सतलज नदियों में नौकागमन का प्रारम्भ करने के लिए अनरेबुल ईस्ट इण्डिया कम्पनी तथा पंजाब के शासक, हिज़-हाइनेस महाराजा रणजीत सिंह मध्य निर्णीत एक व्यवस्था के आर्टिकिल्सः (मूलतः २६ दिसम्बर १८३२ को लिखा गया)।

ईश्वर की कृपा से, पूर्वतः सर टी. सी. मेटकॉफ द्वारा निर्णीत शुभ सन्धि, तथा तत्पश्चात् रुपड़ की मुलाकात में, ब्रिटिश भारत के गवर्नर-जनरल, राइट ऑनरेबुल लॉर्ड डब्लू जी. बेण्टिक द्वारा निष्ठापूर्ण मैत्री के लिखित वचन द्वारा

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पुष्ट, ऑनरेबुल ईस्ट इण्डिया कम्पनी, और हिजहाइनेस महाराजा रणजीत सिंह के मध्य स्थापित सन्धि एवम् मैत्री पूर्ण सम्बन्धों दृढ़ एवम् अटूट बन्धन समस्त विश्व के समक्ष सूर्य के समान स्पष्ट है, जो इसी प्रकार मजबूत होते रहेंगे, और पीढ़ी दर पीढ़ी वृद्धि के प्राप्त होते रहेंगे:—दृढ़तापूर्वक स्थापित मैत्री के इन बन्धनों से ही, राइट ऑनरेबुल, गवर्नर जनरल द्वारा इसी कार्य के लिए नियुक्त, लुधियाना के पॉलिटिकल एजेण्ट, कै० सी० एम० वेड के माध्यम् से, हाल ही में, मुख्य सिन्ध (अर्थात् पञ्चनद के संगम के नीचे का भाग) तथा सतलज नदियों में नौकागमन की व्यवस्था की गई है जिसे व्यापार के सामान्य हितों में प्रगति की दृष्टि से दोनों राज्यों का समर्थन प्राप्त है)। अधिकारियों को मनोनीति करने, चुंगी इकट्ठा करने का तरीका, और उक्त मार्ग के व्यापार की सुरक्षा आदि ऐसे नियमों के निर्धारण के ध्येय से जिनसे जल यातायात की यह योजना संचालित होगी —निम्न धाराओं (आर्टिकिल्स को निर्धारण किया गया है जिससे इस योजना के क्रियान्वयन के लिए दोनों राज्यों द्वारा नियुक्त अधिकारी उनके अनुसार कार्य कर सकें : —

आर्टिकल १—सतलज के दाहिने तट से सम्बन्ध सन्धि तथा उसकी समस्त शर्तों तथा पूर्व उल्लिखित मित्रता के वादों का प्रभाव बना रहेगा, और इस कार्य का नियन्त्रक सिद्धान्त होगा, दोनों राज्यों के मध्य स्थापित मैत्री पूर्ण सम्बन्धों को बनाए रखने का दृढ़ प्रयास; उस सन्धि के अनुसार, ऑनरेबुल कम्पनी सतलज के दाहिने तट से न कोई सम्बन्ध रखती है, न रक्खेगी।

आर्टि० २—कथित जल मार्ग के लिए जो टैरिफ (आयात-निर्यात कर) निर्धारित होगा, वह उस मार्ग द्वारा लाई याले जाई ले जाने वाली व्यापारिक सामग्रियों पर लागू होगा, और वह, एक तट दूसरे तट को जाने वाले माल की चुंगी में, या उसकी वसूली के लिए निश्चत स्थानों के सम्बन्ध में कोई हस्तक्षेप नहीं करेगा; इसकी व्यवस्था निम्न ढंग से होगी।

आर्टि० ३—उसी मार्ग से प्रायः आनेवाले व्यापारी, महाराजा की सीमा में स्थित क्षेत्र से गुजरते समय उनके अधिकार के प्रति सम्मान का भाव प्रकट करेंगे जैसा कि समान्यतः व्यापारियों द्वारा किया जाता है, और सिक्खों की धार्मिक एवम् नागरिक संस्थाओं के प्रति कोई अनुचित कार्य नहीं करेंगे।

आर्टि० ४—कथित मार्ग से जाने की इच्छा रखने वाला व्यक्ति किसी भी राज्य के एजेण्ट को इस सम्बन्ध में सूचित करेगा, और एक निर्धारित प्रारुप में पासपोर्ट के लिए प्रार्थनापत्र देगा, जिसे प्राप्त कर लेने पर वह अपनी यात्रा

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

प्रारम्भ कर सकता है। अमृतसर और सतलज के दाहिने तट के अन्य भागों से आने वाले व्यापारी हरिके या किसी अन्य निश्चित स्थान पर नियुक्त महाराजा के एजेण्ट को सूचित करेंगे और हिन्दुस्तान, या सतलज के बाँए तट के अन्य लोगों के व्यापारी आँनरेबुल कम्पनी के एजेण्ट को सूचित कर, उसके माध्यम से पासपोर्ट प्राप्त करेंगे। विदेशी, हिन्दुस्तानी और संरक्षित सिक्ख रियासतों के अथवा अन्य भागों के सरदार जो अभी तक महाराजा के अधिकारों से पासपोर्ट के लिए बिना सतलज न पार करने के अभ्यस्त नहीं है. आगे भी इसी नियम का पालन करेंगे और बिना पासपोर्ट के नदी नहीं पार करेगी।

आर्टि० ५—एक टैरिफ़ की स्थापना की जायगी जो हर प्रकार की व्यापारिक सामग्री पर चुंगी के दर निर्धारित करेगा, जिसे; दोनों सरकारों की स्वीकृति मिल जाने के पश्चात् सुपरिन्टेन्डेन्टों एवम् कलेक्टरों का पथप्रदर्शन करने वाला स्तर मान लिया जायगा।

आर्टि० ६—इस नए मार्ग का पूर्ण विश्वास के साथ उपयोग करने के लिए व्यापारियों को आमन्त्रित किया जाता है; कोई भी उन्हें परेशान न कर सकेगा, न उनकी गति में कोई अनावश्यक बाधा डाली जायगी; और इस बात पर विशेष ध्यान दिया जायगा कि उन्हें निश्चित स्थानों पर केवल चुंगी वसूलने के लिए ही रोका जायगा।

आर्टि० ७—जिन अधिकारियों को नदी के दाहिने तट पर माल की जाँच और चुंगी का भार सौंपा जायगा, वे मिठनकोट और हरिके में रहेंगे, और केवल इन्हीं दोनों स्थानों पर नावों का निरीक्षण किया जायगा या रोका जा सकेगा; जब नावों के स्वामी स्वेच्छा से मार्ग देने या पाने के लिए रुक जायँगे, तो आर्टि० २ के अनुसार, तट पर माल उतारे जाने से पूर्व, उन नावों से महाराजा की सरकार को स्थानीय चुंगी लेने का अधिकार होगा। मिठनकोट में स्थित सुपरिटेण्डेण्ट नावों के माल की जाँच कर लेने के पश्चात् निर्धारित चुंगी वसूल करेगा, और वज़न तथा भाड़े के लिखित विवरण के साथ पासपोर्ट दे देगा। नाव के हरिके पहुँचने पर उस स्थान पर नियुक्त सुपरिटेण्डेण्ट पासपोर्ट और नाव का मिलान करेगा, और पूर्व-विवरण से अधिक माल पर निर्धारित चुंग लेगा जब कि शेष माल—जिस पर मिठनकोट में चुंगी ली जा चुकी होगी—चुंगी से मुक्त रहेगा। हरिके से नदियों द्वारा सिन्ध की ओर जाने वाले माल पर भी यही नियम लागू होगा, अर्थात् महाराजा के अपने, तथा सन्धिबद्ध

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

रियासतों के क्षेत्रीय अधिकार के रूप में, महाराजा के अधिकारी, सतलज के दाहिने तट पर, निश्चित स्थानों पर अपने हिस्से की चुंगी वसूल कर लेंगे। इस मार्ग से यात्रा करने वाले व्यापारियों की सुरक्षा के सम्बन्ध में महाराजा के अधिकारी प्रत्येक सम्भव प्रयास करेंगे, और रात को सतलज के किसी भीतर पर पड़ाव डालने के इच्छुक व्यापारियों को चाहिए कि वे उस स्थान पर नियुक्त थानेदार को अपना पासपोर्ट दिखाकर सुरक्षा के लिए अनुरोध करें; यदि इतनी सतर्कता पर भी, कभी उनकी कोई हानि हो ही गई तो उसकी कड़ी जाँच की जायगी, और दोषी पाए जानेवालों से मुआवजा दिलाया जायगा। ऊपर उल्लिखित नदियों में यातायात चालू करने के लिए की गई यह सन्धि राइट ऑनरेबल गवर्नर जनरल द्वारा स्वीकृत कर लिए जाने पर, तदनुसार क्रियान्वित की जायगी।

लाहौर, २६ दिसम्बर १८३२ [मुहर व हस्ताक्षर उपरी सिरे पर

परिशिष्ट २९

सिन्ध जल यातायात पूरक सन्धि, १८३४

ब्रिटिश सरकार तथा महाराजा रणजीत सिंह के बीच, सिन्ध पर टॉल स्थापित करने के लिए पूरक सन्धि, २९ नवम्बर १८३४)

ऑनरेबुल ईस्ट इण्डिया कम्पनी तथा हिज़ हाइनेस महाराजा रणजीत सिंह के मध्य पूर्ववर्ती सन्धियों द्वारा स्थापित तथा पुष्ट मैत्री पूर्ण सम्बन्धों के अनुरूप २६ दिसम्बर १८३२ को लाहौर में निर्णीत सन्धि के पाँचवें आर्टिकिल में यह निश्चित किया गया था कि दोनों सरकारों की सहमति से सिन्ध व सतलज नदियों में आने जाने वाले मालों पर चुंगी की दर निर्धारित की जायगी; दोनों सरकारें अब यह मत रखती हैं कि ऐसे मामलों में इन देशों की अनुभव हीनता के कारण उस समय प्रस्तावित (अर्थात् माल की कीमत, व उसके परिणाम पर) चुंगी निर्धारित करने से पारस्परिक सम्बन्धों में भ्रम उत्पन्न हो सकते हैं, जिसे रोकने के लिए टैरिफ के स्थान पर टॉल स्थापित करना अधिक उचित समझा गया है जो माल पर ध्यान दिए बिना केवल नावों के हिसाब से ही वसूल किया जायगा। पूर्ववर्ती सन्धि के पूरक के रूप में निम्न आर्टिकिल्स को ग्रहण किया गया है, और इनके अनुरूप प्रत्येक सरकार सहमत हैं, कि टॉल वसूल किया जायगा और इसकी रकम पारस्परिक सहमति से ही बढ़ाई या घटाई जा सकेगी।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आर्टि० १—समुद्र और रूपड़ के मध्य आने जाने वाली नावों पर ५७० रूपये का टाँल वसूल किया जायगा जिसमें नावों के आकार, और उन पर लदे माल के मूल्य अथवा भार पर विचार नहीं किया जायगा; उक्त टाँल की रक़म विभिन्न रियासतों के तटीय क्षेत्रफल के अनुपात में उनमें वितरित करदी जायगी।

आर्टि० २—उक्त टाँल में, इन नदियों के दोनों तटों पर स्थित लाहौर-नरेश के क्षेत्रों के लिए जो भाग होगा, वह समुद्र से रूपड़ और आने जाने वाली नावों पर मिठनकोट के सामने, तथा रूपड़ से समुद्र की ओर जाने वाली नावों पर हरिके-पट्टन के पास वसूल किया जायगा—

सिन्ध व सतलज नदियों के दाहिने तट महाराजा द्वारा अधिकृत क्षेत्रों का टाँल में भाग,	सतलज व सिन्ध के बाएँ तट पर स्थित महाराजा के क्षेत्र के लिए टाँल में भाग,
१५५ रु० ४ आना।	६७ रु० १५ आ० ६ पा०

आर्टि० ३—विभिन्न रियासतों को प्राप्य टाँल के भाग की वसूली को सुविधाजनक बनाने तथा नये मार्ग पर यातायात की सुरक्षा और व्यापार की प्रगति के सम्बन्ध में उठ खड़े होने वाले किन्हीं विवादों के तीव्र व सन्तोषजनक समाधान के लिए मिठनकोट की दूसरी ओर एक ब्रिटिश अफ़सर, और हरिके-पट्टन के सामने ब्रिटिश सरकार की ओर से एक देशी एजेण्ट रहा करेगा, और ये दोनों अधिकारी लुधियाना के ब्रिटिश एजेण्ट के अधीन होंगे; इस यातायात से सम्बद्ध अन्य रियासतों—बहावलपुर, सिन्ध व लाहौर—की ओर से नियुक्त किए जाने वाले कर्मचारी, कार्य व्यवहार में उक्त अफ़सरों की सहायता करेंगे।

आर्टि० ४—व्यापारियों द्वारा ऐसे मालों के लिए लुट जाने—जिन्हें उन्होंने कभी लादा ही नहीं—की झूठी शिकायतों के विरुद्ध सुरक्षा के लिए व्यापारियों के लिए आवश्यक है कि पासपोर्ट लेते समय वे अपनी नावों पर लदे माल का बीजक, अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत करें जिसे प्रमाणित करके उसकी प्रतिलिपि, पासपोर्ट के साथ नत्थी कर दी जायगी; और वे जहाँ भी रात्रिकालीन विश्राम के लिए रुकते हैं, उन्हें चाहिए कि मिठनकोट या हरिके से प्राप्त पासपोर्ट दिखाते हुए वहाँ के थानेदार या सम्बद्ध कर्मचारी को सूचित करके सुरक्षा के लिए अनुरोध करें।

आर्टि० ५—२६ दिसम्बर १८३२ की सन्धि के आर्टि० ५,७,९ व १० के, मालों के मूल्य व भार के अनुसार चुंगी तय करने, व वसूली के ढंग से सम्बद्ध भागों को समाप्त किया जाता है, और उनके स्थान पर उक्त आर्टिकिल्स ग्रहण किए जाते हैं जिनके आधार पर चुंगी वसूल की जायगी।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नोट—ब्रिटिश संरक्षित रियासतों व महाराजा के अधीनस्थ रियासतों—जो सतलज के बाँए तट पर हैं—के भाग का निर्धारण बाद में किया जायगा।

परिशिष्ट ३०

रणजीतसिंह एवम् शाहशुजा के साथ त्रिदलीय सन्धि, १८३८

ब्रिटिश सरकार की सहमति तथा समर्थन के साथ महाराजा रणजीतसिंह तथा शाहशुजा में मैत्री व सहयोग की सन्धि:

(लाहौर, २६ जून १८३८; शिमला में हस्ताक्षरित, २५ जून १८३८)।

ऐसी स्थिति में, जबकि महाराजा रणजीतसिंह व शुजा उलमुल्क में बिना किसी विशेष निर्णय के चौदह आर्टिकिल्स की एक सन्धि हो चुकी थी, जब कि विशेष कारणों से उक्त सन्धि की व्यवस्थाओं का पालन न हो सका और जब कि राइट ऑनरेबुल जॉज, लॉर्ड ऑकलैण्ड, जी०सी०बी; गवर्नर जनरल ऑव इण्डिया द्वारा मि० डब्लू० एच० मैकनॉटेन को सन्धि के सम्बन्ध में पूर्ण अधिकार के साथ महाराजा रणजीतसिंह के दरबार में नियुक्त किया गया, है, उक्त सन्धि पर पुन: विचार किया गया है तथा कुछ परिवर्तनों एवम् ४ नई आर्टिकिल्स के साथ, ब्रिटिश सरकार की सहमति एवम् स्वीकृति से उसे नवजीवन दिया गया है जिसकी शर्तें अठारह आर्टिकिल्स में हैं जिनका समुचित ढंग से पालन किया जायगा :—

आर्टि० १—शाह शुजा उल-मुल्क अपनी तथा अपने उत्तरधिकारियों और सभी सहोजइयों की ओर से, सिन्ध के दोनों तटों पर महाराजा द्वारा अधिकृत निम्न भू-भागों से अपना दावा सदैव के लिए समाप्त करता है—पूर्व, पश्चिम, उत्तर व दक्षिण की सीमाओं सहित समूची कश्मीर, अटक, चन्द-हजारा, खबल और अम्ब दुर्ग व उनसे सम्बद्ध क्षेत्र जो सिन्ध के बाँए तट पर स्थित हैं; और दाहिने तट पर उसुफजइयों के क्षेत्र सहित पेशावर, खटकों का क्षेत्र, हष्ट नगर, मिचनी, कोहात, और पेशावर के अधीनस्थ खैबर दर्रे तक के क्षेत्र—बन्नू, वजीरी का भूभाग, दौर-टाँक, गरंग, कालाबाग, खुशालगढ़, और अधीनस्थ जिले, डेरा इस्माइल खाँ, कोट मिठन, उमरकोट व सम्बद्ध भू-माग; संगहर, हर्रन्द-दलज, हाजीपुर रज्जन पुर, तीनों कच्छ, मनखेरा, तथा बाँए तट पर स्थित मुल्तान का सूबा। ये समस्त स्थान व प्रदेश महाराज के राज्य-क्षेत्र के अंग समझे जाँयगे; उनसे शाह का कोई सम्बन्ध है न रहेगा;

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

वे महाराजा के अधिकार में है, और पीढ़ी-दर-पीढ़ी उनके वंशजों के अधिकार में रहेंगे।

आर्टि० २--खैबर दर्रे की दूसरी ओर स्थित क्षेत्र के लोगों को इस ओर के क्षेत्रों में डाका डालने तथा घुसपैठ करने या अशान्ति फैलाने से रोका जायगा। यदि दो में से किसी राज्य का अपराधी या मालगुजारी को दबाने वाला व्यक्ति दूसरे राज्य में शरण लेता है, तो वह राज्य उसे सम्बन्धित राज्य के हवाले कर देगा और कोई भी खैबर दर्रे से निकलने वाली धारा का मार्ग अवरुद्ध नहीं करेगा जिससे फतेहगढ़ के किले को प्राचीन समय से ही जल मिलता आ रहा है।

आर्टि० ३—चूँकि ब्रिटिश सरकार व महाराजा के मध्य हुई सन्धि के अनुसार बिना महाराजा से पासपोर्ट पाए सतलज के बाएँ तट से दाहिने तट के लिए सतलज पार नहीं कर सकता, अतः यही नियम सिन्ध नदी के सम्बन्ध में भी लागू होगा जिसका पानी सतलज में मिलता है और बिना महराजा की अनुमति के कोई भी सिन्ध नदी को पार नहीं करेगा।

आर्टि० ४—सिन्ध के दाहिने तट पर स्थित शिकारपुर और सिन्ध के क्षेत्र के सम्बन्ध में, ब्रिटिश सरकार व महाराजा के मध्य स्थित सुखदायक सम्बन्धों के अनुरूप, कैप्टेन वेड के माध्यम से जो कुछ भी ठीक और उचित समझा जायगा उसे शाह स्वीकार करेगा।

आर्टि० ५—जब शाह काबुल और कन्दहार में अपना शासन स्थापित कर चुकेगा तो वह प्रतिवर्ष महाराजा को निम्न वस्तुएँ दिया करेगा-इच्छित रंग और चाल के ऊँची नस्ल वाले ५५ घोड़े; ११ फारसी कटारें, ७ फारसी खंजर, २५ अच्छे खच्चर, विभिन्न प्रकार के सूखे और ताजे फल तथा मीठे और स्वादिष्ट खरबूजे (जो वर्ष भर काबुल नदी द्वारा पेशावर पहुँचाए जा सकते हैं) अंगूर, अनार, सेव, पिश्ता, बादाम आदि, हर रंग के साटिन के कपड़े, फरके चोंगे; सोने व चाँदी के काम किए हुए किमखाब, १०१ ईरानी गलीचे।

आर्टि० ६--दोनों शासक एक दूसरे के साथ समानता का व्यवहार करेंगे,

आर्टि० ७--लाहौर अमृतसर व महाराजा द्वारा अधिकृत भूभाग के किसी भी क्षेत्र में व्यापार करने के इच्छुक अफगान व्यापारियों को मार्ग में परेशान नहीं किया जायगा; इसके विपरीत उनको यथा सम्भव सुविधा देने के लिए कड़े आदेश जारी किए जाँयगे, और अफगास्तिान जाने की इच्छा रखने वाले व्यापारियों के साथ भी ऐसा ही वर्ताव किया जायगा।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आर्टि० ८--मित्रता के नाते महाराजा, शाह को प्रतिवर्ष निम्न उपहार भेजेंगे—५५ शालें, मलमल के २५ थान, ११ दुपट्टे, कमखाब के ५ थान, ५ पगड़ियां, ५ गूलूबन्द बड़ा चावल के ५५ बोझ।

आर्टि० ९--महाराजा द्वारा घोड़े खरीदने या किसी अन्य व्यापार कार्य के लिए अफगानिस्तान भेजे गए तथा शाह द्वारा कपड़ों के थान या शाल आदि खरीदने के लिए--जिनकी कीमत ११ हजार रुपये तक हो—पंजाब भेजे गए लोगों के साथ अच्छा व्यवहार किया जायगा और उनके कार्य की पूर्ति के लिए प्रत्येक सुविधा का प्रबन्ध किया जायगा।

आर्टि० १०—जब कभी संयोगवश दोनों राज्यों की सेनाएँ एक स्थान पर आ जुटें, किसी भी तरह का रक्तपात न होना चाहिए।

आर्टि० ११—जब शाह महाराजा से कोई सैन्य सहायता लेगा तो बारक जइयों से लूटे के माल के रूप में जवाहरात घोड़े, अस्त शस्त्र, चाहै छोटे हों या बड़े जो भी मिलेग, दोनों दलों में बराबर वितरित किया जायगा; यदि शाह बिना महाराजा की सेना की सहायता के, बारकजइयों की किसी सम्पति पर अधिकार करने में सफल होता है तो वह उसका एक भाग मित्रता के तौर पर अपने ही एजेण्ट द्वारा महाराजा के पास भेज देगा।

आर्टि० १२—दोनों राज्यों के बीच पत्रों एवम् उपहारों के साथ शिष्टदलों का आदान प्रदान निरन्तर होता रहेगा।

आर्टि० १३—यदि इस सन्धि में समाविष्ट किसी लक्ष्य की पूर्ति अथवा प्रगति के लिए महाराजा को शाह की सैनिक सहायता की आवश्यकता पड़ती है तो शाह को एक मुख्य अधिकारी के अधीन एक टुकड़ी भेजने की व्यवस्था करनी होगी, इसी प्रकार आवश्यकता पड़ने पर महाराजा भी सन्धि में समाविष्ट किसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए एक नायक के अधीन मुसलमानों की टुकड़ी काबुल तक भेजेंगे। जब कभी महाराजा पेशावर जायँगे तो उनसे भेंट करने क लिए शाह, किसी शाहजादे को भेजेगा और ऐसे अवसरों पर महाराजा, उसके पद व सम्मान के अनुरूप ही उसके स्वागत करेंगे और उसे बिदा करेंगे।

आर्टि० १४—इन तीन बड़ी शक्तियों—ब्रिटिश, सिक्ख, व शाहशुजा उल-मुल्क—में से किसी भी शत्रु व मित्र, शेष के भी शत्रु व मित्र रहेंगे।

आर्टि० १५—अपने लक्ष्य की पूर्ति के पश्चात् उसी तिथिके हिसाब से शाह-शुजा महाराजा को नानक शाही या कल दार रूपयों में दो लाख देगा, जब से कि सिक्ख टुकड़ियाँ उसको काबुल में पुनः स्थापित करने के लिय कूच करेंगी

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

और इस कार्य के लिए महाराजा, पेशावर की सीमा के निकट कम से कम पाँच हजार मुसलमान अश्वारोहियों और पद-सैनिकों की टुकड़ी सदैव सन्नद्ध रक्खेंगे, और जब कभी ब्रिटिश सरकार, महाराजा की राय व सहमति से, आवश्यक समझेगी, उसे काबुल भेज दिया जायगा, और यदि पश्चिम में कोई बहुत महत्वपूर्ण मामला उठ खड़ा हो, तो उसके लिए वैसे ही कदम उठाये जाँयगे जैसा कि ब्रिटिश एवम् सिक्ख सरकारें उचित समझेंगी। यदि महाराजा को कभी शाह की सैन्य सहायता की आवश्यकता होगी, तो जितने समय तक वे शाह के सैनिकों को रोके रहेंगे, उस हिसाब से शाह द्वारा उन्हें दी जाने वाली रकम में कटौती कर दी जायगी। ब्रिटिश सरकार इस बात की जिम्मेदारी लेती है कि जब तक इस सन्धि के व्यवस्थाओं का पालन किया जाता रहेगा, महाराजा को प्रतिवर्ष शाह से निर्धारित धनराशि मिलती रहेगी।

आर्टि० १६--शाहशुजा उस क्षेत्र से अपनी व अपने उत्तराधिकारियों की ओर से प्रभुत्व एवम् करके समस्त दावे समाप्त करने के लिए तैयार है जो इस समय सिन्ध के अमीरों के अधिकार में है (और जो उनके वंशजों के अधिकार में बना रहेगा), बशर्तेकि वे अमीर ब्रिटिश सरकार की मध्यस्थता में निर्धारित धनराशी शाह को देते रहे जिसमें से शाह को १५ लाख रुपया महाराजा रणजीत सिंह को देना होगा इन धनराशियों का भुगतान हो जाने पर १२ मार्च १८३३ की सन्धि १ की चौथी आर्टिकिल रद्द समझी जायगी, और सिन्ध के अमीरों व महाराजा रणजीत सिंह के बीच पत्रों व उपहारों का आदान प्रदान पूर्ववत चलता रहेगा।

आर्टि० १७—जब शाहशुजा अफगानिस्तान में अपना प्रभुत्व स्थापित करने में सफल हो जायगा तो वह अपने भतीजे, हेरात के शासक के विरुद्ध कोई आक्रामक कार्यवाही नहीं करेगा।

आर्टि० १८—शाहशुजा उल-मुल्क अपनी तथा अपने उत्तराधिकारियों की ओर से इस बात के लिए सहमत है कि वह या उसके वंशज बिना ब्रिटिश व सिक्ख सरकारों की जनकारी व सहमति के किसी विदेशी राज्य से किसी प्रकार की सन्धि वार्ता नहीं करेंगे और ऐसी किसी भी शक्ति के विरुद्ध यथा शक्ति कार्यवाही करेंगे जो ब्रिटिश और सिक्ख क्षेत्रों पर सशस्त्र आक्रमण करने की इच्छा रखती हो।

इस सन्धि से सम्बद्ध तीनों दल—ब्रिटिश सरकार, महाराजा रणजीत सिंह और शाहशुजा उल-मुल्क—उक्त आर्टिकिल्स से सहमति प्रकट करते हैं। कोई

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

भी इनमें से किसी को भंग नहीं करेगा; यह सन्धि स्थायी होगी, और उस तिथि से क्रियान्वित होगी जब कि इस सन्धि पत्र पर तीनों पक्षों के मुद्रायुक्त हस्ताक्षर हो जायंगे।

ईसा के वर्ष १८८३ के जून माह की २६ वीं तिथि और बिक्रमाजीत के वर्ष १८९५ के आषाढ़ मास की पन्द्रहवीं तिथि को लाहौर में लिखित

राइट आँनरेबुल गवर्नर जनरल द्वारा सन् १८३८ ई० के जुलाई माह की २३ वीं तारीख को शिमला में प्रमाणित।

(हस्ताक्षर) आँकलैण्ड
रणजीत सिंह
शुजा उल-मुल्क

—: ० :—

परिशिष्ट ३१

सिन्ध सतलज टाँल समझौता १८३९

सन् १८३२ ई० का सन्धि की पूरक आर्टिकिल्स के संशोधन के रूप में, सतलज और सिन्ध नदियों द्वारा आने जाने वाले माल की चुंगी के सम्बन्ध में लाहौर की सरकार के साथ समझौता १९ मई १८३९।

छोटे या बड़े आकार की नीव पर उतनी ही चुंगी लिए जाने के विरुद्ध व्यापारियों द्वारा, माल के भार अथवा मूल्य के आधार पर चुंगी लिए जाने का परामर्श दिए जाने पर, हम राजी हैं कि सारी चुंगी एक ही स्थान लुधियाना या फिरोजपुर या मिठनकोट—में ले ली जाएगी और चुंगी नावों पर नहीं, बल्कि निम्न दर से माल पर ली जायगी :—

१—शाहशुजा व रणजीत सिंह के मध्य			
पश्मीना	१०	रुपया	प्रति मन
अफीम	७½	,,	,,
नील	२½	,,	,,
सूखे फल	१	,,	,,
ऊँचे सिल्क, मलमल		,,	,,
हल्का सिल्क सूती			
कपड़े छींट वगैरह	४	,,	,,

पंजाब से निर्यात किए जाने वाले माल पर :—

चीनी, घी, तेल; औषधियाँ, सूती वस्त्र ४ आना प्रति मन

केसर, अदरख आदि

मजीठ (Madder) ८ ,, ,,

अनाज २ ,, ,,

बम्बई से आयात किए जाने वाले माल

हर प्रकार के माल ४ आना प्रति मन

—: ० :—

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

परिशिष्ट ३२

सिन्ध सतलज टाँल समझौता १८४०

सतलज और सिन्ध में चलनेवाली नौकाओं पर चुंगी के लिए लाहौर और ब्रिटिश सरकारों में समझौता (२७ जून ४०)।

पूर्वत: दोनों मित्र एवम् सन्धिबद्ध सरकारों की समान इच्छाओं के अनुसार, राइट ऑनरेबुल लॉर्ड डब्लू कैवेण्डिश बेण्टिण्क, गवर्नर जनरल ऑव इण्डिया द्वारा पूस (पौष) १४ सम्वत् १८८९ (अर्थात् सन् १८३२ ई०) को खालसा क्षेत्र स्थित सतलज व सिन्ध में नौकागमन के सम्बन्ध में कर्नल, उस समय कैप्टेन, वेड के माध्यम से एक सन्धि की गई थी। उसी अफसर के माध्यम से सम्वत् १८९१ (अर्थात् सन् १८३४ ई०) में इसी विषय पर एक अन्य सन्धि की गई जिसमें माल को महत्व न देते हुए केवल नावों पर चुंगी लगाने का निश्चय किया गया था। दोनों सरकारों की इच्छानुसार मई १८३९ में गवर्नर जनरल के एजेण्ट, मि० क्लर्क के, दरबार में पहुँचने पर माल की किस्म व उसके भार पर चुंगी लगाने का निश्चय करते हुए, तीसरा समझौता हुआ, और यह भी स्पष्ट कर दिया कि दोनों सरकारों में से कोई भी उन दरों को घटाने का प्रस्ताव नहीं करेगी। जेठ सम्वत् १८९७ (मई सन् १८४० ई०) में अमृतसर के खालसा दरबार में उक्त अधिकारी के पहुँचने पर उसे उन असुविधाओं और कठिनाइयों के विषय में बताया गया जो गत वर्ष में प्रस्तावित प्रणाली के फलस्वरूप उत्पन्न हो गई थी-जैसे जाँच के लिए नावों को रोकना, व्यापारियों की अभिज्ञता, तथा नावों में लदे विभिन्न किस्म के मालों पर चुंगी निश्चित करना आदि, और मि० क्लर्क ने प्रस्ताव रक्खा कि यदि दोनों सरकारें स्वीकार करें तो नावों के आकार व माप के अनुसार चुंगी निर्धारित करके उस प्रणाली को संशोधित किया जा सकता है। अपनी सरकार को सारी स्थिति की सूचना देकर उसने सिन्ध और सतलज में चलनेवाली व्यापारिक नौकाओं पर लगाई जाने वाली चुंगी की दरों की एक सारिणी बनाई और मित्र दरबार के समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत किया, खालसा सरकार ने भी पुराने मित्रतापूर्ण सम्बन्धों के अनुरूप ही, गतसन्धियों के विषय में कुछ वाक्य लिखकर सारिणी पर मुहर सहित हस्ताक्षर कर दिया, और बिना दोनों सरकारों की सहमति के—जो पारस्परिक हित में हो—इसमें कोई भी परिवर्तन या अन्तर नहीं आएगा, और परिवर्तन उसी दशा में हो सकेगा कि उससे अमृतसर, लाहौर

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

और अन्य आन्तरिक स्थानों में, या खालसा क्षेत्र की अन्य नदियों पर स्थापित चुंगी–चौकियों में कोई हस्तक्षेप न हो।

आर्टि० १--अनाज, चूने का पत्थर और लकड़ी पर चुंगी नहीं ली जायगी।

आर्टि० २—उक्त सामग्रियों के अतिरिक्त अन्य प्रत्येक सामग्री पर नाव के माप के अनुसार चुंगी की वसूली की जायगी।

आर्टि० ३--पहाड़ियों की तलहटी, रूपड़ या लुधियाना से मिठनकोट या रोज़हान तक, या रोज़हान या मिठनकोट से पहाड़ियों की तलहटी, रूपड़ अथवा लुधियाना तक आने जाने वाली नाव पर–जिस पर लदे माल का भार २५० मन से अधिक न हो-५० रुपया चुंगी ली जायगी, जो विभिन्न केन्द्रों के लिए इस प्रकार होगी :--

पहाड़ियों की तलहटी से फीरोज पुर तक, या पीछे	२० रुपया
फीरोज पुर से बहावल पुर तक या पीछे	१५ ”
बहावल पुर से मिठनकोट या रोजहान तक या पीछे	१५ ”
ऊपर या नीचे की ओर पूरा सफर	५० रुपया

२५० मन से ५०० मन तक की नावों की चुंगी—पहाड़ियों की तलहटी, रुपड़ या लुधियाना से मिठनकोट या रोज्हान तक अथवा रोजहान या मिठन कोट से तलहटी, रूपड़ या लुधियाना तक—१०० रुपया होगी जो इस प्रकार होगी--

पहाड़ियों की तलहटी से फीरोज पुर तक या पीछे	४० रुपया
फीरोज पुर से बहावल पुर तक या पीछे	=३० ”
बहावल पुर से मिठनकोट या रोजहान तक या पीछे	=३० ”
ऊपर या नीचे की ओर पूरा सफर	=१०० रुपया

५०० मन से अधिक भारवाली नाव की चुंगी १५० रुपए होगी, जो इस प्रकार होगी

पहाड़ियों की तलहटी से फिरोज पुर तक या पीछे	६० रुपया
फीरोज पुर से बहावल पुर तक या पीछे	४५ ”
बहावल पुर से मिठनकोट या रोजहान् तक या पीछे	४५ ”
ऊपर या नीचे की ओर पूरा सफर	१५० रुपया

आर्टि० ४--उक्त क्रम से नावों १, २, ३ में वर्गीकृत करके उन पर वैसा लिखा जायगा और प्रत्येक नाव का पञ्जीकरण किया जायगा।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आर्टि० ५--सतलज व सिन्ध नदियों में व्यापारिक सामग्रियों पर लगाई गई चुंगियाँ खालसा क्षेत्र की अन्य नदियों के तटों की चुंगियों, या राज्य की अन्य चुंगी चौकियों के कार्य में बाधा नहीं डालेगी।

तिथि १३ असार (अषाढ़) सम्वत १८९७ तदनुसार २७ जून १८४० ई०।

परिशिष्ट ३३

युद्ध की घोषणा १८४५

भारत के गवर्नर जनरल द्वारा की गई घोषणा

कैम्प, लश्करी खाँ की सराय

दिसम्बर १३, १८४०

ब्रिटिश सरकार अब तक पंजाब सरकार से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध का निर्वाह करती आ रही है।

सन् १८०९ ई० में ब्रिटिश सरकार और स्वर्गीय महाराजा रणजीत सिंह के मध्य मैत्री की सन्धि हुई थी जिसकी शर्तों का ब्रिटिश सरकार सदैव सम्मान करती रही है, और महाराजा भी कुछ शंकायुक्त रूप से पालन करते थे।

वर्तमान समय तक भी महाराजा रणजीत सिंह के उत्तराधिकारियों के साथ ब्रिटिश सरकार वैसा ही मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रखती आई है।

गत महाराजा शेर सिंह की मृत्यु के पश्चात से ही लाहौर सरकार की अव्यवस्थित दशा ने गवर्नर जनरल इन कौंसिल को ब्रिटिश सीमा की सुरक्षा के लिए प्रतिरक्षात्मक कदम उठाने पर विवश कर दिया है। इन तैयारियों की प्रकृति और उनके कारणों की व्याख्या भी लाहौर दरबार के समक्ष यथावसर कर दी गई थी।

पिछले दो वर्षों से लाहौर सरकार की अव्यवस्थित दशा और दरबार की अनेक अमैत्रीपूर्ण गतिविधियों के बावजूद गवर्नर जनरल इन कौंसिल, पारस्परिक हितों व दोनों के कल्याण के लिए, दोनों राज्यों के बीच एक लम्बे समय से चले आ रहे मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों को बनाए रखने की दृढ़ इच्छा प्रकट करते हैं। प्रत्येक अवसर पर, शिशु महाराजा दलीप सिंह की असहाय स्थिति को देखते हुए--जिन्हें ब्रिटिश सरकार ने गत महाराजा शेर सिंह के उत्तराधिकारी के रूप में मान्यता देती है--गवर्नर जनरल ने पूर्ण सहनशीलता का परिचय दिया है।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

गवर्नर जनरल इन कौंसिल सच्चे दिल से चाहते थे कि पंजाब में एक सबल सिक्ख सरकार पुनर्गठित हो जो सेना को नियंत्रण में रख सके और अपनी प्रजा की रक्षा कर सके; वर्तमान क्षण तक, उस देश के लोगों एवम् सरदारों के देश भक्तिपूर्ण प्रयासों द्वारा उस महत्वपूर्ण लक्ष्य की पूर्ति होते देखने की आशा उनके हृदय में थी।

जैसा कि कहा गया, हाल ही में दरबार के आदेश से, ब्रिटिश क्षेत्रपर आक्रमण करने के ध्येय से सिक्ख सेना ने लाहौर से कूच कर दिया।

गवर्नर जनरल के निर्देश से, गवर्नर जनरल के एजेण्ट ने इस गति विधि का कारण पूछा और उत्तर में आवश्यकता से अधिक विलम्ब किए जाने पर पुनः सफाई दिए जाने की माँग की गई। बिना किसी कारण के सिक्ख सरकार के आक्रामक इरादों पर विश्वास न कर पा रहे गवर्नर जनरल ने कोई ऐसी प्रतिक्रिया नहीं दिखाई जिससे महाराजा की सरकार परेशानी में पड़े या दोनों राज्यों में संघर्ष की सम्भावना को बल मिले।

जब बार बार स्पष्टीकरण की माँग की जाने पर भी कोई उत्तर नहीं दिया गया - जब कि लाहौर में जोर शोर से सैनिक तैयारियाँ की जा रहीं थीं-तो गवर्नर जनरल ने सीमावर्ती चौकियों को सुदृढ़ बनाने के ध्येय से सेनाओं को उस ओर भेजने का आदेश देना आवश्यक समझा।

अब सिक्ख सेना ने बिना किसी बहाने की आड़ लिए ब्रिटिश क्षेत्रों पर आक्रमण कर दिया अतः ब्रिटिश प्रान्तों की सुरक्षा, ब्रिटिश सरकार की प्रभु सत्ता की अक्षुणता तथा सन्धि, व जनता की शान्ति को भंग करने वालों को दण्ड देने के लिए, सशक्त कदम उठाना गवर्नर जनरल के लिए आवश्यक हो गया है।

गवर्नर जनरल, सतलज के बाएँ, अर्थात् ब्रिटिश तट के, महाराजा दलीप-सिंह द्वारा अधिकृत क्षेत्रों के जन्त किये जाने और ब्रिटिश राज्य में मिल जाने की घोषणा करते हैं।

गवर्नर जनरल, ऐसे क्षेत्रों में स्थित जागीरदारो तथा किसानों के वर्तमान अधिकारों का सम्मान करेंगे, जिन्होंने अब तक के व्यवहार से ब्रिटिश सरकार के प्रति अपनी निष्ठा का विश्वास दिला दिया है।

सामान्य दुश्मनों को दण्डित करने तथा संरक्षित राज्यों की व्यवस्था को कायम रखने के लिए गवर्नर जनरल समस्त संरक्षित राजाओं व सरदारों की पूर्ण सहायता प्राप्त करने के लिए उनका आह्वान करते हैं।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

संरक्षक सत्ता के समक्ष उत्तरदाई इन सरदारों में से जो इस कर्तव्य की पूर्ति में निष्ठा एवम् सक्रियता दिखाएंगे। उनके हितों का विशेष ध्यान रक्खा जायगा और इसके विपरीत मार्ग पर चलनेवाले ब्रिटिश सरकार के शत्रु समझे जाएँगे और दण्ड के भागी होगें।

सतलज के बाएँ तट के सभी इलाकों के निवासियों को उनके गाँवों में शान्ति पूर्वक रहने के लिए निर्देशित किया जाता है जहाँ उन्हें ब्रिटिश सरकार द्वारा सक्षम सुरक्षा प्राप्त होगी। ऐसे सशस्त्र दलों के पाए जाने पर, जो अपनी गतिविधियों का सन्तोष जनक विवरण न दे सकेंगे, उन्हें सार्वजनिक शान्ति का शत्रु समझ कर उनके साथ तदनुरूप व्यवहार किया जायगा।

ब्रिटिश सरकार की समस्त प्रजा तथा सतलज नदी के दोनों ओर, जागीरों पर स्वामित्व रखने वाले लोगों को–जिन्हें ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिष्ठा के कारण हानि पहुँच सकती है–उनके अधिकारों और हितों की रक्षा की जायगी।

दूसरी ओर ब्रिटिश सरकार के वे समस्त प्रजाजन–जो अब भी लाहौर राज्य की सेवा में पड़े रह जायंगे और तुरन्त वापस न लौटकर इस घोषणा का उल्लघंन करेंगे–सतलज के इस पार स्थिति अपनी सपनी सम्पत्ति से वंचित कर दिये जाएँगे, और ब्रिटिश सरकार के शत्रु घोषित किये जाएँगे।

परिशिष्ट ३४

लाहौर के साथ प्रथम सन्धि १८४६

लाहौर में निर्णीत, ब्रिटिश सरकार व लाहौर राज्य के मध्य सन्धि, मार्च ९, १८४६

ब्रिटिश सरकार एवम् स्वर्गीय महाराजा रणजीत सिंह के मध्य सन् १८०९ ई० में हुई मैत्री की सन्धि ब्रिटिश प्रान्तों पर सिक्ख सेना के आक्रमण द्वारा भंग हो गई थी, और उस स्थिति में १३ दिसम्बर की घोषणा द्वारा सतलज के ब्रिटिश तट पर लाहौर के महाराजा द्वारा शासित भूभागों को ब्रिटिश प्रान्तों में मिला लिया गया था, और उसी समय से दोनों सरकारों द्वारा एक दूसरे के विरुद्ध शत्रुतापूर्ण कार्यवाहियाँ की जाती रहीं, जिसके परिणाम स्वरूप लाहौर ब्रिटिश सेनाओं के अधिकार में आ गया है, और चूँकि यह निश्चय हुआ है कि दोनों सरकारों के मध्य शान्तिपूर्ण सम्बन्ध पुनः स्थापित हो, अतः

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आँनरेबुल ईस्ट इण्डिया कम्पनी और महाराजा दलीपसिंह बहादुर एवम् उनके बच्चों व उत्तराधिकारियों के मध्य एक सन्धि निर्यात हुई जिसमें आनरेबुल कम्पनी की ओर से फ्रेडरिक क्यूरी और ब्रेवेट-मेजर हेनरी माण्टगोमरी लॉरेन्स—जिन्हें राइट आँनरेबुल सर हेनरी हार्डिंज द्वारा इस सम्बन्ध में पूर्ण अधिकार प्रदान किए गए थे और हिज हाइनेस महाराजा दलीपसिंह की ओर से पूर्ण अधिकार के साथ भाई रामसिंह, राजा लालसिंह, सरदार तेजसिंह सरदार और चतर सिंह अटारीवाला, सरदार रणजोर सिंह मजीठिया दीवान दीनानाथ तथा फकीन नूरुद्दीन ने भाग लिया था।

आर्टि १—एक ओर ब्रिटिश सरकार तथा दूसरी ओर महाराजा दलीप सिंह व उनके उत्तराधिकारियों के मध्य स्थायी शान्ति के मैत्री के सम्बन्ध बने रहेंगे।

आर्टि० २—लाहौर के महाराजा अपनी, व अपने उत्तराधिकारियों की ओर से सतलज के दक्षिणी तट पर अपने अधिकृत क्षेत्रों का त्याग करते हैं, और भविष्य में उन क्षेत्रों व वहाँ के निवासियों से उनका कभी कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा।

आर्टि० ३—महाराजा, व्यास और सतलज के मध्य स्थित दो आब और पहाड़ी-क्षेत्रों के सारे किले भूमि और अधिकारों को आँनरेबुल कम्पनी के हवाले करते हैं।

आर्टि० ४—आर्टि० ३ द्वारा सौंपे गये इलाको के अतिरिक्त युद्ध के व्यय के रूप में, ब्रिटिश सरकार द्वारा डेढ़ करोड़ रूपया माँगे जाये, और इसी समय सारी धनराशि दे देने के लिए लाहौर सरकार द्वारा असमर्थता प्रकट किए जाने तथा, या शीघ्र ही इसकी अदायगी के लिये सन्तोषजनक जमानत न दिये जाने की स्थिति में एक करोड़ रूपये के बदले में महाराजा कश्मीर और हजारा सहित, व्यास व सिन्ध नदियों के मध्य स्थित सारे किले, उनसे सम्बन्द्ध क्षेत्र एवम् अधिकार, ब्रिटिश सरकार के हवाले करते हैं।

आर्टि० ५—महाराजा, इस सन्धिपत्र के प्रमाणित किये जाने के पूर्व शेष पचास लाख रूपया अदा कर देगें।

आर्टि० ६—महाराजा लाहौर-सेना की विद्रोही टुकड़ियों को उनके हथियार छीन कर बिखेर देने के लिए राजी हैं और हिज हाइनेस, स्वर्गीय महाराजा रणजीतसिंह के समय की प्रणाला, व वेतन भत्तों से सम्बन्धित नियमों के अनुसार रेगुलर, या आईन पद सेना को पुनसंगंठित करता स्वीकार करते हैं। उस

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आर्टिकिल के परिणाम स्वरूप जो सैनिक नौकरी से निकाले जायँगे, महाराजा उनका सारा बकाया वेतन देगें।

आर्टि० ७—अब लाहौर राज्य की नियमित सेना में पद सेना कि २५ बटेलियन्स जिनमें से प्रत्येक के पास ८०० संगीने रहेंगी—तथा १२,००० अश्वारोही रहेंगे, और बिना ब्रिटिश सरकार की अनुमति के इस संख्या में वृद्धि न की जा सकेगी। यदि कभी, किसी विशेष कारण से सैनिक संख्या में वृद्धि की आवश्यकता का अनुभव किया जाय तो ब्रिटिश सरकार के समक्ष उस कारण को स्पष्ट किया जाना चाहिये, और उस विशेष आवश्यता के समाप्त हो जाने पर, अतिरिक्त सैनिकों को हटा दिया जायगा।

आर्टि० ८—महाराजा उन समस्त ३६ तोपों को ब्रिटिश सरकार के हवाले कर देगें जिन्होंने ब्रिटिश सैन्य-दलों पर गोला वारी की है और सतलज के दाहिने तट पर रहने के कारण सोबराँव युद्ध में नहीं पकड़ा जा सका था।

आर्टि० ९—टॉल और नौकागमन की दृष्टि से, मिठनकोट में सिन्ध नदी के संगम तक व्यास और सतलज तथा सतलज की दो अन्य धाराओं के घार और पन्चनद का एवम् मिठनकोट से बलूचिस्तान की सीमा तक सिन्ध नदी का नियंत्रण ब्रिटिश सरकार के हाथ में रहेगा, यह आर्टिकिल उक्त नदियों में लाहौर सरकार के नावों के मार्ग तथा यात्रियों के उन मार्गों द्वारा आवागमन में कोई बाधा नहीं पहुँचेगी। दोनों देशों के बीच उक्त नदियों के विभिन्न घाटों पर प्रचलित नौका-व्यवस्था के सम्बन्ध में, यह स्वीकार किया जाता है कि ब्रिटिश सरकार व्यवस्था और निर्माण के सारे व्यय निकाल लेने के बाद, इन घाटों से प्राप्त कुल आय के आधा भाग लाहौर सरकार को दे देगी। इस आर्टिकिल की व्यवस्थाओं का सतलज के उन घाटों से कोई सम्बन्ध नहीं होगा जो बहावलपुर व लाहौर राज्य की सीमा बनाती हैं।

आर्टि० १०—यदि अंग्रेजों, या उनके मित्रों के क्षेत्रों की सुरक्षा के ध्येय से, ब्रिटिश सरकार अपनी सेना को हिन्दुस्तान से महाराजा के राज्य क्षेत्र से होकर भेजना चाहेगी, तो ऐसे विशेष अवसरों पर, उचित सूचना पालेने पर उसे लाहौर राज्यक्षेत्र से होकर जाने की अनुमति दी जायगी। ऐसी स्थित में लाहौर राज्य के अधिकारी ब्रिटिश सेना के लिए नावों एवम् अन्य आवश्यक सामग्रियों की व्यवस्था करेंगे, ब्रिटिश सरकार नावों व सामग्रियों की पूरी कीमत अदा करेगी, और सेना के अभियान से होने वाली व्यक्तिगत क्षत्रियों का समुचित मुआवजा देगी। जिन क्षेत्रों से ब्रिटिश सेना गुजरेगी, वहाँ के निवासियों की भावनाओं को कोई ठेस न पहुँचे, ब्रिटिश सरकार इसका ध्यान रक्खेगी

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आर्टि० ११—महाराजा स्वीकार करते हैं कि बिना ब्रिटिश सरकार की सहमति के किसी ब्रिटिश प्रजा या यूरोपीय या अमरीकी राज्य की प्रजा को अपनी सेवा में नियुक्त नहीं करेंगे।

आर्टि० १२—लाहौर और ब्रिटिश सरकारों के मध्य मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों की पुनर्स्थापना में जम्मू के राजा गुलाबसिंह द्वारा लाहौर राज्य के प्रति की गई सेवाओं का ध्यान रखते हुए, महाराजा ऐसे पहाड़ी जिलों और क्षेत्रों में राजा गुलाबसिंह की स्वतंत्र प्रभुसत्ता को मान्यता देना स्वीकार करते हैं, जो राजा व ब्रिटिश सरकार के पृथक समझौते द्वारा उसे दिए जा सकें, जिनमें वे अधीनस्थ क्षेत्र भी सम्मिलित होंगे जो स्वर्गीय महाराजा खड़क सिंह के समय से ही राजा के अधिकार में रहे होंगे, और राजा गुलाबसिंह के सद्व्यवहार पर विचार करते हुए ब्रिटिश सरकार ऐसे क्षेत्रों में भी उसकी स्वतंत्र सत्ता को मान्यता देने एवम् ब्रिटिश सरकार के साथ पृथक सन्धि की सुविधा देने के लिए राजी हैं।

आर्टि० १३—लाहौर राज्य और राजा गुलाब सिंह के बीच कोई विवाद उत्पन्न हो जाने पर उसे ब्रिटिश सरकार की मध्यस्थता में निर्णीत किया जायगा, और महाराजा उस निर्णय को मानने की स्वीकृति देते हैं।

आर्टि० १४—बिना ब्रिटिश सरकार की स्वीकृति के लाहौर राज्य की सीमा में किसी भी समय कोई परिवर्तन नहीं किया जायगा।

आर्टि० १५—लाहौर राज्य के आन्तरिक प्रशासन में ब्रिटिश सरकार कोई हस्तक्षेप नहीं करेगी, परन्तु किसी भी प्रश्न या मामले पर, ब्रिटिश सरकार का परामर्श माँगे जाने पर गवर्नर जनरल लाहौर सरकार के हितों का पूरा ध्यान रखते हुए सहर्ष परामर्श देंगे।

आर्टि० १६—किसी एक राज्य के प्रजाजन यदि दूसरे राज्य में जायेंगे तो उन्हें सर्वाधिक घनिष्ठ राज्य की प्रजा के अनुकूल सम्मान दिया जायगा।

सोलह आर्टिकिल्स से युक्त यह सन्धि, ब्रिटिश सरकार की ओर से राइट ऑनरेबुल सर हेनरी हार्डिंज, जी० सी० बी० द्वारा निर्देशित फ्रेडरिक क्यूरी, इस्क्वायर, तथा ब्रेवेट मेजर हेनरी माण्ट गोमरी लॉरेन्स; तथा महाराजा दलीपसिंह की ओर से भाई रामसिंह, राजालालसिंह, सरदार तेजसिंह, सरकार चतरसिंह अटारीवाला, सरदार रणजोरसिंह मजीठिया, दीवान दीनानाथ तथा फकीर नूरुद्दीन द्वारा आज के दिन सम्पन्न हुई, और यह सन्धि आज ही राइट ऑनरेबुल सरहेनरी हार्डिंज जी० सी० बी० तथा हीज हाइनेस महाराजा दलीपसिंह के मुहरबन्द हस्ताक्षरों से प्रमाणित की गई। ईसा के वर्ष १८४६ के मार्च

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के ९ वे दिन, और रबी-डल-अव्वल, १२६२ हिजरी के १० वे दिन लाहौर में लिखित, और उसी दिन प्रमाणित।

परिशिष्ट ३५

लाहौर के साथ प्रथम सन्धि (१८४६) को पूरक आर्टिकिल्स ब्रिटिश सरकार व लाहौर दरबार के मध्य समझौते के आर्टिकिल्स, १६मार्च १८४६

चूँकि इसी माह की नवीं तारीख को निर्णीत सन्धि की छठवीं आर्टिकिल की व्यवस्थाओं के अनुसार, लाहौर सेना के पुनर्गठन तक महाराजा तथा राजधानी की सुरक्षा के हेतु लाहौर सरकार ने गवर्नर जनरल से लाहौर में एक ब्रिटिश सैन्य दल तैनात करने की सिफारिश की है; गवर्नर जनरल कुछ शर्तों पर इसके लिए सहमत हो गये हैं; और चूँकि उक्त कथित सन्धि की तीसरी और चौथी आर्टिकिल द्वारा ब्रिटिश सरकार को सौंपे गए इलाकों के सम्बन्ध में कुछ बातों को स्पष्ट कर लेना आवश्यक है अतः ऊपर कथित सन्धिबद्ध दलों में, आज समझौते की निम्न आर्टिकिल्स निर्णीत की गई हैं—

आर्टि० १—वर्तमान वर्ष—के अन्त तक के लिए, लाहौर की सन्धि की छठी आर्टिकिल के अनुसार सिक्ख सेना के पुनर्गठन के दौरान, महाराजा तथा लाहौर के निवासियों की सुरक्षा के लिए ब्रिटिश सरकार लाहौर में उतने सैनिक छोड़ देगी, जितना गवर्नर जनरल इस कार्य के लिए पर्याप्त समझें, और यदि दरबार की दृष्टि में इच्छित लक्ष्य वर्ष के पूर्व ही पूर्ण हो जाय, तो वर्ष की समाप्ति के पूर्व ही, सुविधा के अनुसार उक्त सैन्य दल को वापस बुला लिया जायगा, परन्तु वर्ष की समाप्ति के उपरान्त इस सैन्य दल को लाहौर में रोक नहीं रक्खा जायगा।

आर्टि० २—लाहौर सरकार इस पर राजी है कि पिछली आर्टिकिल में उल्लेखित ध्येय के लिए लाहौर में तैनात सैन्य दल लाहौर के किले व नगर को पूर्णतः अपने अधिकार में रक्खेगा, और लाहौर की टुकड़ियों को नगर की सीमा से हटा दिया जायगा लाहौर सरकार इस सैन्य दल के अफ़सरों एवम् सैनिकों के निवास की समुचित व्यवस्था करेगी, और ब्रिटिश सरकार को, उसके सैनिकों के दूसरे राज्य में रहने से होने वाले व्ययों के लिए यथोचित रकम देगी।

आर्टि० ३—लाहौर सरकार निर्धारित शर्तों के अनुसार अविलम्ब, और निष्ठापूर्वक अपनी सेना के पुनर्गठन में, और इस कार्य तथा टुकड़ियों के लिए

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

स्थान नियत करने के सम्बन्ध में लाहौर स्थित ब्रिटिश अधिकारियों से वार्ता करते रहने में तत्पर होगी।

आर्टि० ४—यदि लाहौर सरकार पिछली आर्टि० की शर्तों के अनुसार कार्य करने में असफल रहती है तो ब्रिटिश सरकार पहली आर्टिकिल में निश्चित अवधि की समाप्ति से पूर्व ही, किसी भी समय अपने सैन्य दल को वापस बुला लेने के लिए स्वतन्त्र होगी।

आर्टि० ५—ब्रिटिश सरकार गत ९ मार्च की लाहौर की सन्धि की तीसरी व चौथी आर्टिकिल्स द्वारा सौंपे गये क्षेत्रों के उन जागीरदारों के अधिकारों का सम्मान करेगी जो स्वर्गीय महाराजा रणजीत सिंह, खड़क सिंह व शेर सिंह के परिवारों से सम्बद्ध थे, और वे अपने जीवन पर्यन्त अपने अधिकृत इलाकों के जागीरदार बने रहेंगे।

आर्टि० ६—लाहौर की सन्धि की तासरी व चौथी आर्टिकिलों द्वारा ब्रिटिश सरकार को सौंपे गये इलाकों के कारदारों व प्रबन्धकों से, वर्तमान वर्ष की खरीफ के अन्त तक, बकाया मालगुजारी वसूल करने में लाहौर सरकार को स्थानीय ब्रिटिश अधिकारियों की सहायता प्राप्त होगी।

आर्टि० ७—पिछली आर्टिकिल में उल्लेखित क्षेत्रों के किलों से, तोपों के अतिरिक्त सारा खजाना और राजकीय सम्पत्ति हटा लेने के लिए लाहौर सरकार स्वतन्त्र है, यदि ब्रिटिश ऐसी सम्पत्ति के किसी भाग को रखना चाहे तो उचित मूल्य देकर ऐसा कर सकती है, ऐसी सम्पत्ति के उस भाग को, बेच डालने में ब्रिटिश अफ़सर लाहौर सरकार को सहायता देंगे जिसे न लाहौर सरकार हटाने की इच्छा रखती है न ब्रिटिश अफसर ही रखना चाहते हैं।

आर्टि० ८—९ माच १८४६ की लाहौर की सन्धि की चौथी आर्टिकिल के अनुसार दोनों राज्यों की सीमा निर्धारित करने के लिए दानों सरकारों द्वारा कश्मिनरों की नियुक्ति अविलम्ब कर दी जायगी।

परिशिष्ट ३६

गुलाब सिंह के साथ सन्धि १८४६

ब्रिटिश सरकार तथा महाराजा गुलाब सिंह के मध्य अमृतसर में निर्णीत सन्धि

१६ मार्च, १८४६

एक ओर ब्रिटिश सरकार तथा दूसरी ओर जम्मू के महाराजा गुलाब सिंह

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

के बीच सन्धि, जिसे ऑनरेबुल कम्पनी द्वारा ईस्ट इण्डीज़ की सारी कार्यवाहियों को निर्देशित एवम् निमंत्रित करने के लिए नियुक्त, हर ब्रिटेनिक मैजेस्टी के ऑनरेबुल, प्रिवी कौंसिल, गवर्नर जनरल राइट ऑनरेबुल सर हेनरी हार्डिंज, जी० सी० बी० के आदेश के अन्तर्गत, ब्रिटिश सरकार की ओर से फ्रेडरिक क्यूरी, इस्क्वायर और ब्रेवेट-मेजर हेनरी मान्ट गोमरी लॉरेन्श, तथा स्वयम्-महाराजा गुलाब सिंह द्वारा निर्णीत ।

आर्टि० १—ब्रिटिश सरकार, महाराजा गुलाब सिंह व उनके उत्तराधिकारियों को सिन्ध नदी के पूर्व और रानी के पश्चिम स्थित समस्त पर्वतीय क्षेत्र को (जिसमें लाहुल सम्मिलित नहीं होगा) चम्बा सहित सदैव के लिए सौंपती है जो ९ मार्च १८४६ की लाहौर की सन्धि की चौथी आर्टिकिल के अनुसार ब्रिटिश सरकार को सौंपे गये क्षेत्रों का एक भाग है ।

आर्टि० २—पिछली आर्टिकिल द्वारा महाराजा गुलाब सिंह को हस्तान्तरित किए गये क्षेत्रों की पूर्वी सीमा ब्रिटिश सरकार तथा महाराजा द्वारा नियुक्त कमिश्नरों द्वारा निर्धारित की जायगी ।

आर्टि० ३—पिछली आर्टिकिलों द्वारा हस्तांतरित इलाकों बदले में महाराजा गुलाब सिंह ब्रिटिश सरकार को ७५ लाख रूपया (नानक शाही) देंगे, जिसमें से २५ लाख, इस सन्धिपत्र के प्रमाणित होने पर तथा २५ लाख वर्तमान वर्ष को पहली अक्टूबर को, या उससे पूर्व देना होगा ।

आर्टि ४—बिना ब्रिटिश सरकार की सहमति और स्वीकृति के महाराजा गुलाबसिंह के राज्यक्षेत्र की सीमाओं में कोई परिवर्तन नहीं होगा ।

आर्टि० ५—लाहौर राज्य या किसी अन्य पड़ोसी राज्य से कोई विवाद उठ खड़ा होने पर महाराजा गुलाब सिंह उसे ब्रिटिश सरकार की मध्यस्थता में छोड़ देंगे, और उसके निर्णय को स्वीकार करेंगे ।

आर्टि० ६—ब्रिटिश सेना के, पहाड़ी या महाराजा के पड़ोसी क्षेत्रों में रहने पर महाराजा गुलाबसिंह व उत्तराधिकारी अपनी पूरी सेना की सक्रिय सहायता अर्पित करेंगे ।

आर्टि० ७—महाराजा गुलाब सिंह स्वीकार करते हैं कि बिना ब्रिटिश सरकार की अनुमति किसी भी ब्रिटिश, यूरोपीय या अमेरिकन राज्य की प्रजा को अपनी सेना में नियुक्त नहीं करेंगे ।

आर्टि० ८—महाराजा गुलाबसिंह को हस्तांतरित इलाकों के सम्बन्ध में, वे ब्रिटिश सरकार व लाहौर दरबार के बीच, ११ मार्च १८४६ की सन्धि की ५ वीं, ६ वीं, व ७ वी आर्टिकिल्स की व्यवस्थाओं का सम्मान करेंगे ।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आर्टि० ९—महाराजा के राज्यक्षेत्र को विदेशी आक्रमणों से सुरक्षित रखने में ब्रिटिश सरकार उन्हे सहायता देगी ।

आर्टि० १०—महाराजा गुलाबसिंह ब्रिटिश सरकार की प्रभुसत्ता को स्वीकार करते हैं जिसके प्रमाण के रूप में वे ब्रिटिश सरकार को प्रति वर्ष १ घोड़ा, १२ ऊँची नस्ल की कश्मीरी भेड़ें (६ नर, ६ मादा) और कश्मीरी शाल के तीन जोड़े ।

दस आर्टिकिल्स से युक्त यह सन्धि आज, ब्रिटिश सरकार की ओर से राइट ऑनरेबुल सर हेनरी हार्डिंज, जी० सी० बी० गवर्नर जनरल के निर्देशन में फ्रेडरिक क्यूरी इस्क्वायर, तथा ब्रेवेट-मेजर हेनरी माण्टगोमरी लारेन्स तथा स्वयम् महाराजा गुलाब सिंह द्वारा निर्णीत हुई, और आज ही यह सन्धिपत्र राइट ऑनरेबुल सर हेनरी हार्डिंज, जी० सी० बी० गवर्नर जरनल की मुहर से प्रमाणित किया गया ।

ईसा के वर्ष १८४६ के मार्च माह के १६ वें दिन, तदनुसार १२६२ हिजरी के रबी-उल-अव्वल के १७ वें दिन, अमृत सर में लिखित ।

———

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

परिशिष्ट ३७

लाहौर के साथ द्वितीय सन्धि १८४६

ब्यास के बाँए तट पर स्थित भिरोवल घाट, फारेन डिपार्टमेण्ट

कैम्प, २२ दिसम्बर १८४६

लाहौर राज्य की ओर से नियुक्त कश्मीर के गत सूबेदार, शेख इमामुद्दीन द्वारा, कश्मीर के लिए अधिकृत महाराजा गुलाबसिंह का सशस्त्र विरोध किए जाने पर, लाहौर दरबार को अपने सूबेदार को नियंत्रित रखने तथा ९ मार्च १८४६ की सन्धि की शर्तों के अनुसार उस सूबे को ब्रिटिश प्रतिनिधि के हवाले कर देने के लिए कहा गया था।

इस कार्य में महाराजा गुलाबसिंह व लाहौर दरबार की सम्मिलित सैन्य के सहायतार्थ एक ब्रिटिश टुकड़ी भी भेजी गई थी।

इस बीच शेख इमामुद्दीन ने ब्रिटिश सरकार को सूचित किया उसने लाहौर दरबार के निर्देशानुसार ही उक्त विरोधात्मक कार्यवाही की थी, और कहा कि उसके लिए वजीर राजा लालसिंह से लिखित आदेश प्राप्त हुए थे।

शेख इमामुद्दीन ने इस गारण्टी पर ब्रिटिश एजेण्ट के समक्ष आत्म समर्पण कर दिया कि यदि वह सिद्ध कर सका कि अभी तक उसके कार्य दरबार द्वारा निर्देशित थे और विरोध का निर्देश लाहौर के वजीर द्वारा दिया गया था तो दरबार को उसे दण्ड देने उसकी सम्पत्ति को जप्त करने की अनुमति नहीं दी जायगी। ब्रिटिश एजेण्ट ने अपनी सरकार की ओर से मामले की पूर्ण एवम् निष्पक्ष जाँच का वचन दिया।

शेख इमामुद्दीन द्वारा प्रस्तुत तथ्यों की खुली जाँच की गई, और यह निष्कर्ष निकला कि राजा लालसिंह ने महाराजा गुलाबसिंह द्वारा कश्मीर पर अधिकार किए जाने के प्रयत्न का विरोध करने के लिए शेख इमामुद्दीन के पास गुप्त आदेश भेजा था।

गवर्नर जनरल ने अविलम्ब लाहौर राज्य के मंत्रियों व सरदारों से वजीर राजा लालसिंह को ब्रिटिश प्रान्तों में निवासित किए जाने की माँग की।

यह सिद्ध नहीं हुआ कि दरबार के अन्य सदस्य वजीर की गतिविधियों से परिचित थे और कश्मीर पर अधिकार करने और सन्धि की शर्तों की पूर्ति में आनेवाली बाधाओं को दूर करने में सिक्ख सरदारों और सेना के कार्य-व्यवहार

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

ने सिद्ध कर दिया कि वजीर की दुरभिसन्धि से सिक्ख राष्ट्र का कोई हाथ नहीं था।

मंत्रियों एवम् सरदारों ने गवर्नर जनरल की माँग के अनुसार वजीर को अविलम्ब पद-च्युत कर दिया।

लाहौर में सरकार के गठन की समस्या पर कुछ दिनों तक विचार करने के पश्चात् दरबार के शेष सदस्यों ने, राज्य के समस्त सरदारों की सलाह से महाराजा दलीपसिंह के वयस्क होने तक उनकी रक्षा, तथा पंजाब का प्रशासन चलाने के लिए ब्रिटिश सरकार से सहायता व हस्तक्षेप की सिफारिश की।

दरबार और सरदारों की इस सिफारिश के फलस्वरूप इसी वर्ष की ९ वीं मार्च को हुई सन्धि द्वारा ब्रिटिश व लाहौर सरकार के मध्य स्थापित सम्बन्धों में अस्थायी परिवर्तन हुआ है।

इस परिवर्तन की शर्तों का विवरण समझौते की निम्नलिखित आर्टिकिल्स में किया गया है : —

ब्रिटिश सरकार व लाहौर दरबार के बीच १६ दिसम्बर १८४६ को हुए समझौते की आर्टिकिल्स :—

चूँकि लाहौर दरबार और मुख्य सरदारों ने खुले शब्दों में ब्रिटिश सरकार से यह आग्रह किया है कि महाराजा दलीपसिंह के वयस्क होने तक लाहौर राज्य के प्रशासन में गवर्नर जनरल उनकी सहायता करें जो उनकी दृष्टि में शासन व्यवस्था को चलाने के लिए अत्यधिक आवश्यक है; और चूँकि कुछ निश्चित शर्तों पर गवर्नर जनरल इच्छित सहयोग देने के लिए राजी हो गए हैं अतः गत ११ मार्च की सन्धि की आर्टिकिल्स में हुए कुछ परिवर्तनों के विवरण के लिए समझौते को निम्न आर्टिकिल्स निर्णीत हुई जिसमें ब्रिटिश सरकार की ओर से राइट आनरेबुल विस्काउण्ट हार्डिंज द्वारा प्रदत्त पूर्ण अधिकारों से युक्त भारत सरकार के सेक्रेटरी फेडरिक क्यूरी, इस्ववायर तथा उत्तरी पश्चिमी सीमा पर गवर्नर जनरल के एजेण्ट लेफ्टि० कर्नल हेनरी मान्टगोमरी लारेन्स सी०बी०, तथा हिज हाइनेस, महाराजा दलीपसिंह की ओर से सरदार तेजसिंह, सरदार शेरसिंह दी वान दीनानाथ, फकीर नूरुद्दीन, राय किशन चन्द, सरदार रणजोरसिंह मजीठिया, सरदार अतरसिंह कलीवाल, भाई निधानसिंह, सरदार खानसिंह मजीठिया, सरदार शमशेर सिंह, सरदार लाल सिंह मुरारिया, सरदार केहर सिंह सिन्धानवाला, सरदार अर्जुन सिंह रंगरंगिया ने—लाहौर में एकत्रित राज्यके सरदारों ने अधिकारियों के सामूहिक मत से भाग लिया।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

आर्टि० १--मार्च १८४६ की नवी तिथि को ब्रिटिश सरकार और लाहौर राज्य में हुई शान्ति की सन्धि का--१५ वीं धारा के उस भाग के अतिरिक्त, जिसमें इस समझौते द्वारा परिवर्तन किया गया है--का सब और प्रत्येक भाग दोनों सरकारों पर पूर्ववत लागू रहेगा।

आर्टि० २—अनेक सहयोगियों के साथ एक ब्रिटिश अधिकारी को गवर्नर जनरल द्वारा लाहौर में नियुक्त किया जायगा जिसे राज्य के प्रत्येक विभाग के समी मामलों को निर्देशित एवम् नियंत्रित करने का अधिकार रहेगा।

आर्टि० ३--शासन कार्य के संचालन में जनता की भावनाओं, राष्ट्रीय संस्थाओं और परम्पराओं तथा सभी वर्गों के न्याय अधिकारों की सुरक्षा का पूर्ण ध्यान रक्खा जायगा।

आर्टि० ४--प्रशासन की व्यवस्था व ढंग में उसी समय परिवर्तन किया जायगा जब पिछली धारा में उल्लेखित ध्येय की पूर्ति या लाहौर सरकार के न्याय अधिकारों की सुरक्षा के लिए ऐसा करना आवश्यक हो जाय। इन व्यवस्थाओं की देख-भाल पूर्ववत् देशी अधिकारी ही करते रहेंगे जिन्हें ब्रिटिश रेजिडेन्ट के पथनिर्देशन एवम् नियन्त्रणमें रहने वाले सरदारों से बनी एक रीजेन्सी कौंसिल नियुक्त करेगी।

आर्टि० ५--कौंसिल आंव रीजेन्सी में अभी निम्नलिखित व्यक्ति रहेंगे--सरदार तेज सिंह, सरदार शेरसिंह अटशिवाला, दीवान दीनानाथ, फकीर नूरुद्दीन, सरदार रणजोर सिंह मजीठिया, भाई निधान सिंह, सरदार अतर सिंह कलीवाल, सरदार शमशेर सिंह सिन्धानवाला, गवर्नर जनरल के आदेशान्तर्गत ब्रिटिश रेजीडेन्ट की सहमति के बिना इन मनोनीत सदस्यों में कोई परिवर्तन नहीं होगा।

आर्टि० ६--राज्य का प्रशासन इस कौंसिल आव रीजेन्सी द्वारा उसी प्रकार किया जायगा जैसा कि ब्रिटिश रेजीडेन्ट से विचार विमर्श करते हुए उसके सदस्य निश्चित करे जिस (रेजीडेन्ट) को प्रत्येक विभाग के कार्यों को नियंत्रित व निर्देशित करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त होगा।

आर्टि० ७—गवर्नर जनरल द्वारा निर्धारित संख्या और स्थिति में महाराज की सुरक्षा तथा देश में शान्ति बनाए रखने के लिए। लाहौर एक ब्रिटिश सैना दल रक्खा जायगा।

आर्टि० ८--राजधानी की सुरक्षा या देश की शान्ति व्यवस्था के ध्येय से यदि ब्रिटिश सरकार लाहौर राज्य के किसी किले को ब्रिटिश सैनिकों द्वारा

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अधिकार में लेना आवश्यक समझे तो गवर्नर जनरल ऐसा करने के लिए स्वतंत्र होगे।

आर्टि० ९—इस सैना दल के निर्वाह तथा इस व्यवस्था में ब्रिटिश सरकार द्वारा होने वाले व्यय के लिए लाहौर राज्य ब्रिटिश सरकार को प्रति वर्ष पूरे भार के २२ लाख नानक शाही रुपए देगा जिसकी अदायगी प्रतिवर्ष दो किस्तो में इस प्रकार करनी होगी। १३ लाख २० हजार रुपया मई में तथा ८ लाख ८० हजार रुपया नवम्बर या दिसम्बर में।

आर्टि० १०—चूंकि यह न्याय एवं उचित है कि महाराजा दलीप सिंह की मा हर हाइनेस, महारानी, को व्यक्तिगत व्यय तथा आश्रितों के निर्वाह के लिए समुचित व्यवस्था हो, अतः प्रति वर्ष एक लाख पचास हजार रुपए की धनराशि अलग कर दी जायगी जिसे हर हाइनेस अपनी अच्छानुसार व्यय कर सकेगी।

आर्टि० ११—इस समझौते की व्यवस्थाएँ हिज हाइनेस महाराजा दलीपसिंह के वयस्क न होने तक की लागू रहेगी, और महाराजा के ठीक १६ वर्ष के होने पर अर्थात् ४ सितम्बर १८५४ का समाप्त हो जायगी, परन्तु यदि इसके पूर्व भी किसी समय गवर्नर जनरल और लाहौर दरबार को विश्वास हो जाय कि हिज हाइनेस, महाराजा की सरकार को चलाने के लिए अब ब्रिटिश सरकार का हस्तक्षेप आवश्य नहीं है तो गवर्नर जनरल इस व्यवस्था को समाप्त कर देना अपना कर्तव्य समझेंगे।

११ आर्टिकिल्स से युक्त यह समझौता ऊपर उल्लेखित अफसरों और सरदारों द्वारा १८४६ ई० के सितम्बर माहके सोलहवें दिन लाहौर में निर्णीक हुआ और लिखा गया।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

परीशिष्ट ३८

पंजाब का राजस्व, सन् १८४४ में अनुमानित

कर देने वाले राज्य	रुपया	रुपया
बिलासपुर कर १०,०००, लहनासिंह के अधिकार में	७०,०००	
सुकेत, कर १०,०००, लहनासिंह के अधिकार में	७०,०००	
चम्बा, अज्ञात, गुलाबसिंह के अधिकार में	२,००,०००	
राजौरी, अज्ञात, ,, ,, ,, ,,	१,००,०००	
लद्दाख, कर ४२,०००, गुलाबसिंह के अधिकार में	१,०० ०००	
इसकदू, कर ७,०००, ,, ,, ,, ,,	२५,०००	
		४,६५,०००

नोट—विलासपुर के अतिरिक्त इनमें से सभी रियासतें, करद राज्य न होकर कृषि-कार्म मात्र थी और सामान्यतः सरदारों के समस्त संसाधन सरकारी प्रतिनिधि के नियंत्रण में थे, अतः सम्भावित मालगुजारियाँ पूरी की पूरी दर्ज की गई होंगी।

जमीन की मालगुजारी

कृषि फार्म

मण्डी-मण्डी के राजा के अधीन जिसके व्यय के लिए ४ लाख में से एक लाख छोड़ा जाता था।	४,००,०००
कुल्लू-परिवार के सदस्यों को पेंशनें दी जाती थीं।	१,२०,०००
जसवान-परिवार के पास जागीर थी।	१,२५,०००
कांगड़ा—परिवार के पास फार्म के अतिरिक्त जागीर भी थी	६,००,०००
कुटलहलर—परिवार के पास जागीर थी	२५,०००
सिबा—परिवार को पूरी रियासत का जागीरदार माना जा सकता है, वे अवसर पड़ने पर सवारों द्वारा राज्य की सेवा करते थे	२०,०००

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

नूरपुर--परिवार के पास जागीर थी ३,००,०००
हरीपुर—परिवार के पास जागीर थी १,००,०००
दतार पुर--परिवार के पास जागीर थी ५०,०००
कटलह—परिवार के पास जागीर थी २०,०००

नोट—उक्त सभी फार्म लहनासिंह के मजीठिया के अधिकारान्तर्गत थे।

बिसोहली—राजा हीरा सिंह के अधिकार में ७५,०००
कश्मीर--शेख गुलाम मुहीउद्दीन

इकरार—२१,००,०००

सेना—५,००,०००

X—Assignments. —४,००,००० १०,००,०००
मुजफ्फराबाद आदि (कश्मीर में) मुजफ्फराबाद का सरदार जागीरदार था १,००,०००
चच-हजारा और परवली धमतोर } राजा गुलाब सिंह, गंगधर और तरनौली के सरदारों के पास जागीर थी परन्तु वे लगभग पूर्णतः स्वतन्त्र लुटेरे थे। १,००,०००
रावलपिण्डी—दीवान हकीम राय १,००,०००
हसन अब्दुल खतिर और घीपी } दीवान मूलराज कुछ समय पूर्व चच-हजारा भी उसके हाथ में था १,००,०००
धन्नी कटस व चकवल—राजा गुलाब सिंह १,००,०००
पेशावर—सरदार तेजसिंह, बरकजइयों के पास जागीरें थीं १०,००,०००
टांक-बन्नू—दीवान दौलत राय, सरदार भाग गया; उसके भाई के पास जागीर थी २,५०,०००
डेरा इस्माइल खाँ—दीवान दौलतराय, सरदार के पास जागीर ४,५०,०००
मुल्तान, डेरा गाजी खाँ, मनकेरा-दीवान सावनमल

इकरार—३६,००,०००

सेना—७,००,०००

Assignments—२,००,००० ४५,००,०००

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

रामनगर आदि—दीवान सावनमल	३,००,०००	
मित्ता तुवाना—स्वर्गीय ध्यानसिंह	१,००,०००	
भेर-खुशाब—राजा गुलाब सिंह	१,००,०००	
पिंड दादन खाँ—राजा गुलाब सिंह	५०,०००	
गुजरात—राजा गुलाब सिंह	३,००,०००	
वजीराबाद आदि—स्वर्गीय सुचेतसिंह	६,००,०००	
सियालकोट—राजा गुलाब सिंह	५०,०००	
जलन्धर-दो आब—शेख इमामुद्दीन	२२,००,०००	
शेखपुर आदि—शेख इमामुद्दीन	२,५०,०००	
सिस सतलज फार्म	६,५०,०००	
पंजाब में स्थित विविध फार्म	१५,००,०००	१,७६,८५,००
जमीन की मालगुजारी (चालू)		
धार्मिक अनुदान		
'सोधितों' के अधिकार में	५,००,०००	
'बेदियों' के अधिकार में	४,००,०००	
विविध—अकालियों, फकीरों, ब्राह्मणों के पास तथा अमृतसर आदि से सम्बद्ध जमीन	११,००,०००	२०,००,०००
जम्मू के राजाओं की पहाड़ी जागीरें		
जेसरोत आदि—हीरासिंह,	१,२५०००	
पदेर व चम्बा के अन्य जिले—गुलाबसिंह	१,००,०००	
भदरवा—गुलाबसिंह (चम्बा के राजा के चाचा के साथ जागीर)	५०,०००	
मनकोट—स्वर्गीय सुचेतसिंह--परिवार के साथ जागीर	५०,०००	
भद्दू ,, ,, ,, ,,	५०,०००	
बन्द्रल्ता ,, ,, ,, ,,	१,२५,०००	
चनिनी (रामनगर) गुलाबसिंह ,, ,,	३०,०००	
जम्मू और रियासी—गुलाबसिंह-परिवार अधिकांशतः शरणार्थी	४,००,०००	
सम्ब—स्वर्गीय सुचेतसिंह--परिवार समाप्त या पलायित	४०,०००	
किश्तवार—गुलाबसिंह--परिवार शरणार्थी	१,५०,०००	

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

केसरीसिंह के परिवार के साथ चक्का सहित अखनूर		
गुलाबसिंह, परिवार के साथ जागीर	५०,०००	
भिम्बर—स्वर्गीय ध्यान सिंह पारिवारिक जागीरों के कुछ सदस्य शेष शरणार्थी	१,५०,०००	
चिभ भाऊ जातियाँ—स्वर्गीय ध्यानसिंह पारिवारिक जागीरें	१,००,०००	
कोटली—स्वर्गीय ध्यानसिंह पारिवारिक जागीरें	३०,०००	
सुनच— ,, ,, पारिवारिक सम्भवतः शरणार्थी	७०,०००	
दंगली, खानपुर आदि–गुलाबसिंह पारिवारिक जागीरों के कुछ सदस्य, कुछ कैद में व कुछ शरणार्थी	१,००,०००	१६,२०,०००

जागीरें

जम्मू के राजाओं द्वारा अधिकृत विभिन्न जागीरें (मैदानों में)	५,००,०००
कांगड़ा के राजा रणवीर चन्द आदि	१,००,०००
सरदार लहनासिंह मजीठिया	३,५०,०००
सरदार निहालसिंह अहलूवालिया	६,००,०००
सरदारकिशनसिंह (जमादार खुशालसिंह का लड़का)	१,२०,०००
सरदार तेजसिंह	६०,०००
सरदार शामासिंह व चतरसिंह अटारीवाला	१,२०,०००
सरदार शमशेरसिंह सिन्धानवाला	१५,०००
सरदार अर्जुनसिंह व हरीसिंह के अन्य पुत्र	१५,०००
कुवर पिशौरासिंह	५,०००
जमीन की मालगुजारी जागीरें (चालू)	
कुवर तारासिंह	२०,०००
सरदार जवाहर सिंह (दलीप सिंह के मामा)	५०,०००
सरदार मंगल सिंह	५०,०००
सरदार फतेह सिंह	५०,०००
सरदार अतर सिंह कलनवाला	५०,०००
सरदार हुकम सिंह मुलवई	५०,०००
सरदार बेलसिंह मोकल	५०,०००

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

सरदार सुल्तान मुहम्मद, सैयद मुहम्मद व पीर मुहम्मद खाँ	१,५००००	
सरदार जमालुद्दीन खाँ	१,१०,०००	
शेख गुलाम मुहीउद्दीन	३०,०००	
फकीर अजीजुद्दीन व उसके भाई	१,००,०००	
दीवान सावनमल	२०,०००	
अन्य	५०,००,०००	७६,१५,०००

चुंगी आदि

नमक की खानें--राजा गुलाब सिंह	८,००,०००	
नगरों की चुंगियाँ--अमृतसर--स्वर्गीय ध्यान सिंह	५,५०,०००	
,, ,, लाहौर-स्वर्गीय ध्यानसिंह	१,५०,०००	
,, ,, अन्य	१,००,०००	
आबकारी आदि	५०,०००	
माल के आने जाने पर चुंगिया लुधियाना से पेशावर	५,००,०००	
मोहराना	२,५०,०००	२४,००,०००
योग		३,२४,७५,०००

नोट--जैसा कि प्रारम्भिक भूमिका में कहा गया है, रणजीतसिंह जी के सरकारी कागजात के निरीक्षण से इन आँकड़ों में जहाँ तहाँ कुछ अन्तर भी मिल सकते है--

सम्पादक

सारांश

	रुपए
जमीन की मालगुजारी	
कर देने वाले राज्य	५,६५,०००
फार्म	१,७६,८५,०००
धार्मिक	२०,००,०००
जागीरें	६५,२५,०००
चुंगी आदि	२०,००,०००
योग	२२४,७५,०००

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

पूरी सेना का संक्षिप्त विवरण

६० रेजिमेण्ट इनफैन्ट्री (पैदल सेना)		
प्रत्येक में ७००	४२,०००	
रामगोल-अकाली	५,०००	
अनियमित (दूर्रेगुलर) लेवी, गैरिसन कम्पनियाँ आदि	४५,०००	
		९२,००० पैदल
सतारों की ८ रेजिमेण्ट प्रति ६००		४८००
घुड़चढ़े		१२०००
जागीरदारों के घोड़े		५१०००
		३१८००
तोपखाना		१८४ तोपें

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

परिशिष्ट ३९

लाहौर की सेना सन् १८४४ की गणना नुसार

नियमित (रेगुलर) सेना		पैदल रेजिमेंटें	सवार रेजिमेण्टें	हल्का तोपखाना	फील्ड गानें	गढ़ रक्षक (गैरिसन)
टुकड़ियों के नायक	सैनिकों की जातियाँ					
सरदार तेजसिंह	सिक्ख	४	१	१०	०	०
जनरल परताब सिंह पट्टीवाला	सिक्ख	३	०	०	०	०
जनरल ज्वाला सिंह	पैदल सिक्ख—तोपखाना-सिक्ख व मुस्लिम	२	०	४	०	०
शेख इमामुद्दीन	मुसलमान	३	०	४	०	०
सरदार लहनासिंह मजीठिया	पैदल-सिक्ख तोपें—मुख्यतः सिक्ख	२	०	१०	३	२
जन बिशनसिंह	मुसलमान, कुछ सिक्ख	२	०	४	०	०
जन गुलाबसिंह पुहुविन्धिया	३ मुसलमान, तोपें—सिक्ख व मुसलमान	३	०	१४	०	०
जन महताबसिंह मजीठिया	पैदल सिक्ख—अश्पारोही मिले जुले तोप सिक्ख व मुसलमान	४	१	१२	०	०
जन गुरदत्तसिंह मजीठिया	पैदल मुख्यतः सिक्ख, तोपें सिक्ख व मुसलमान	३	०	०	०	०
कर्नल जॉन होम्स	जो पहले जनरल कोर्ट के अधीन था	१	०	१०	०	०
जन घौकलसिंह	हिन्दुस्तानी और कुछ सिक्ख	२	०	०	०	३
कर्नल कोर्टलैण्डूट (बरखास्त)	पैदल सिक्ख व हिन्दुस्तानी, तोप सिक्ख व मुसलमान	२	०	१०	०	०
शेख गुलाम मुहीउद्दीन	पैदल सिक्ख ? तोपें—सिक्ख व मुसलमान	१	०	६	८	०
दीवान अदजुधिया परसाद तोपें जन इलाही करब्श के अधीन	पैदल सिक्ख, तोप सिक्ख व मुसलमान (जनरल बेंचुरा)	४	२	१२	२२	०
जन गलाबसिंह कलकत्ता वाला (मृत)	सिक्ख	४	१	१६	०	०
दीवान जोध राम	सिक्ख, मुसलमान, पहाड़ी, (जनरल एविटेबुल)	४	१	१२	३	०

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow
Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

जन कन्हसिंह	सिक्ख और मुसलमान	४	०	१०	०	०
सरदार निहालसिंह अहलूवालिया	पैदल सिक्ख और मुसलमान तोप मुख्यतः मुसलमान	१	०	४	११	०
दीवान साहन मल	मुसलमान और सिक्ख कुछ सिक्ख	३	०	६	०	४०
राजा हीरासिंह	पहाड़ी, और कुछ मुसलमान आदि	२	१	०	३	५
राजा गुलाबसिंह	,, ,, ,,	३	०	१५	०	४०
राजा सुचेतसिंप (मृत)	,, ,, ,,	२	१	४	०	१०
कैप्टेन कुलदीपसिंह—	गुरखे	१	०	०	०	०
कमाण्डेण्ट भाग सिंह—	सिक्ख और मुसलमान	०	०	६	०	०
,, शिव प्रसाद	,, ,, ,,	०	०	८	०	०
मिसर लालसिंह	,, ,, ,,	०	०	१०	०	०
सरदार किसनसिंह	मुसलमान और हिन्दुस्तानी	०	०	०	०	२
जन किशनसिंह	सिक्ख और मुसलमान	०	०	२२	०	०
सरदार रामसिंह अटारीवाला	,, ,, ,,	०	०	०	१०	०
मियान पिरथीसिंह	मुख्यतः मुसलमान	०	०	०	१६	०
जनरल महवासिंह	सिक्ख और मुसलमान	०	०	१०	१०	०
कर्नल अमीर चन्द्र	मुख्यतः मुसलमान	०	०	०	१०	०
कमाण्डेण्ट भुजहर अली	मुसलमान और हिन्दुस्तानी	०	०	१०	०	०
जवाहिर मल मिस्त्री (लाहौर)	मुसलमान और कुछ सिक्ख	०	०	०	२०	१२
कमाण्डेण्ट सुक्खूसिंह (अमृतसर)	सिक्ख और कुछ हिन्दुस्तानी	०	०	०	०	१०
अन्य दुर्गरक्षक तोपें (गैरिसन गनें)		०	०	०	०	५०
	योग	६८	८	२२८	१५६	१७१

* कुछ ही समय बरचात शेख ने एक और रेजिमेण्ट संगठित की थी।

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

परिशिष्ठ ४०

लाहौर परिवार

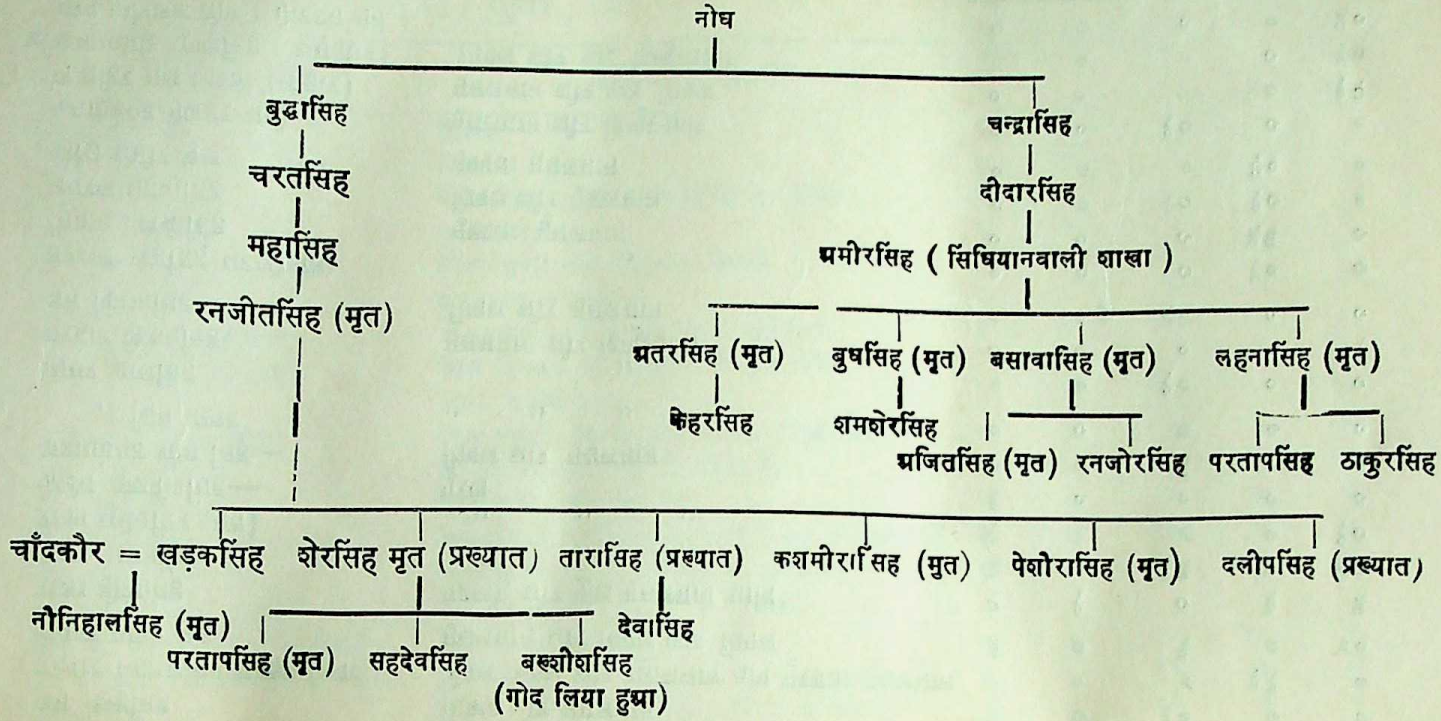

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

परिशिष्ट ४१

जम्मू परिवार

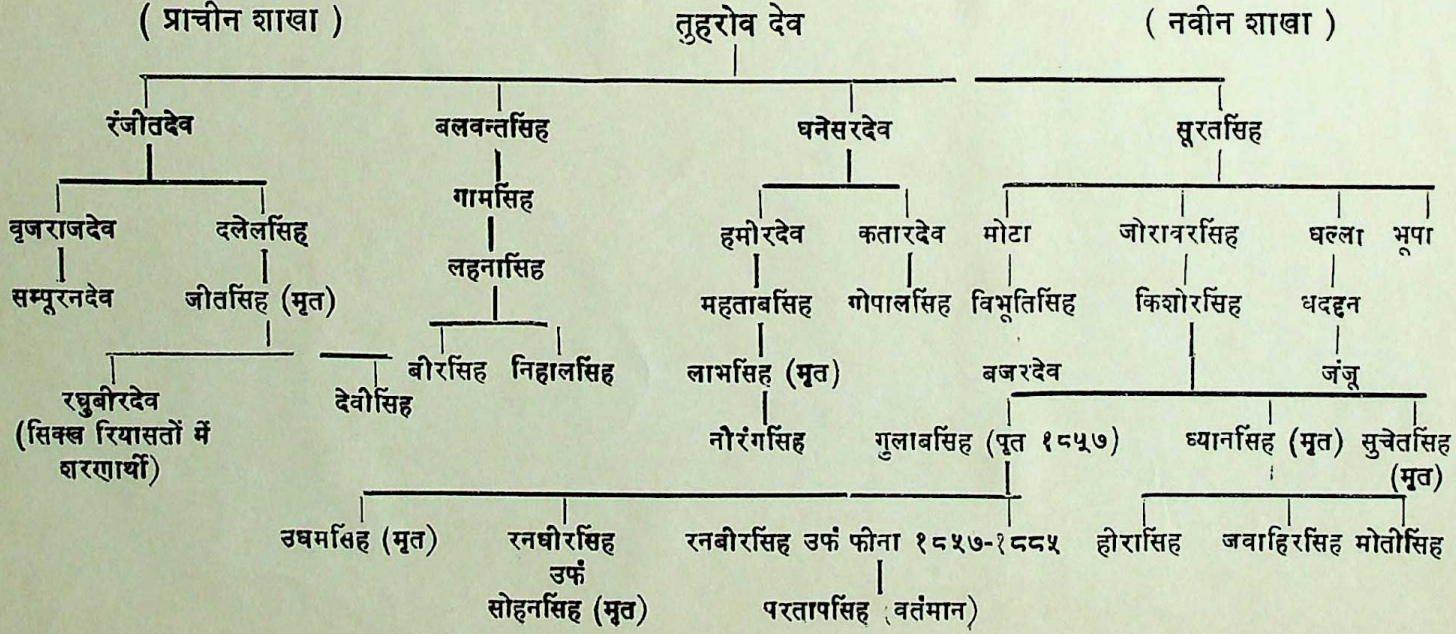

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow
Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

एक दिन यूँही ही कुछ पुराने पुस्तकों को उलट रहा था कि, चार्ल्स गफ व डी० इनेस कृत "सिक्ख एण्ड' सिक्ख वार्स" पर ध्यान केन्द्रित हो गया, लेखक कह रहा था कि :—

"भारत की कोई भीं देशी सेना···अंग्रेजों से सिक्खों की सी दृढ़ता सेकभी नहीं लड़ी थी और न कभी ब्रिटिश पक्ष की विजय किसी युद्ध में उतनी सन्दिग्ध रही जितनी कि फिरोशहर में, और यदि विजय को निर्णायक माना जाय तो भी इस विषय में मतभेद ही रहेगा कि इस स्थिति में इस युद्ध का क्या परिणाम होता यदि सिक्ख सेना के पास ऐसे सेनापति होते जिनके संचालन में वे अपने गुणों के प्रदर्शन का पूर्ण अवसर पाते; वे आगे फिर लिखते हैं, हमको भारत में जिन सेनाओं से लड़ना पड़ा, उनमें सिक्ख सना सर्वाधिक दक्ष और दुर्जय थी"

इन वाक्यों के पढ़ने के बाद मेरी इच्छा हुई कि सिक्खों के अतीत पर किसी अच्छी पुस्तक को पाठकों के समक्ष रक्खूँ। कुछ दिनों से यही कर रहा हू। परिणाम स्वरूप कर्लिघम कृत सिक्खों का यह इतिहास आपके हाथ में है। यदि इससे अतीत प्रेमी पाठको व इतिहास के विद्यार्थियों को कुछ भी लाभ हुआ तो अपना श्रम सार्थक समझूँगा।

रमेश तिवारी
अनुवादक

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust , Delhi and eGangotri Funding : IKS

अंग्रेजों के साथ युद्ध पृ० ३६६

उनके विख्यात तोपखाने ने गोले उगलना प्रारम्भ कर दिया, परन्तु सिक्ख तोपों ने भी उतनी ही तत्परता, तीव्रता व कुशता से ब्रिटिश गोलों की बाढ़ का प्रत्युत्तर दिया; सिक्ख सैनिक तोपों के बीच में और उनके पीछे दृढ़तापूर्वक डटे रहे और उनकी बन्दूकें अपना काम करती रहीं। अंग्रेजी सेना के अधिकारी व सैनिकों की आँखें आश्चर्य से विस्फारित हो गई क्योंकि उन्होंने सिक्खों से इतने कड़े प्रतिरोध की आशा नहीं की थी, सिक्ख तोपों की भयंकर अग्निवृष्टि से ब्रिटिश घने अन्धकार और युद्ध की भयंकरता ने अंग्रेजों को घबराहट में डाल दिया, विभिन्न रेजिमेण्टों और विभागों के आदमी एक भीड़ के रूप में जहाँ तहाँ इकट्ठे हो गए; विभिन्न सेनानायक यह भी न जान पाए कि उन्हें कुछ सफलता मिली अथवा नहीं; और मिली भी तो किस सीमा तक; कर्नलों को यह भी पता नहीं था कि जिन रेजिमेण्टों को लेकर वे युद्ध क्षेत्र में उतरे थे, वे उस समय कहाँ थीं, या उस सेना की क्या गति हुई जिसके वे अंग थे। शत्रु सेना की पंक्तियों के कुछ भागों में दरार भी नहीं पड़ने पाई थी; सिक्खों की जो तोपें अभी तक उन्हीं के अधिकार में थीं, उनके मुँह ब्रिटिश सैनिकों की अस्तव्यस्त भीड़ की ओर घुमा दिए गए जो ठण्डक, प्यास और थकावट से पस्त थे, और आग जलाकर अपने ठण्ड से अकड़े हुए अंगों को गरम करने के प्रयास में सतर्क शत्रु का ध्यान आकृष्ट कर रहे थे, इस समय ब्रिटिश सेना अत्यधिक संकट एवम् घबराहट की स्थिति में थी;

कुछ ही घण्टों की गोलाबारी के ताण्डव नृत्य ने एक दूर देश की पाँच हजार सन्तानों को बता दिया कि सिक्खों ने उनकी युद्ध कला को सीख लिया था, और एक ऐसा संकट उत्पन्न कर दिया था जिससे त्राण पाने के लिए उन्हें अपनी सारी शक्ति का प्रयोग करना था। उस चिरस्मरणीय कालरात्रि को अंग्रेजों ने अनुभव किया कि शायद ही उस भूमि पर उनका अधिकार बना रह सकता था जिसपर वे लड़ रहे थे, उनके पास कोई सुरक्षित

कनिंघम

कवर-मुद्रक:- कमला मुद्रण सी.६/११० बाग बरियारसिंह, वाराणसी

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow